"IKKISAVI SADI KE PRATHAM DASHAK KI KAHANIYON MEIN SAMVEDANA AUR SHILP"

Thesis submitted in Partial Fulfillment of the Requirement for the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in Hindi

Submitted By

RATHOD JYOTI CHANDRAKANT

14HHPH04

2021

Supervisor

Prof. R.S. SARRAJU

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

(P.O.) Central University, Gachibowli

HYDERABAD – 500 046

Telangana State, India

"इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना और शिल्प"

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

शोधार्थी

राठोड़ ज्योति चंद्रकांत

14HHPH04

2021

विभागाध्यक्ष
प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक
हिन्दी विभाग,
मानविकी संकाय,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-500046.

शोध निर्देशक
प्रो. आर.एस. सर्राजु
हिन्दी विभाग,
मानविकी संकाय,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-500046.

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद- 500046

DECLARATION

I, **RATHOD JYOTI CHANDRAKANT** hereby declare that the thesis entitled **"IKKISAVI SADI KE PRATHAM DASHAK KI KAHANIYON MEIN SAMVEDANA AUR SHILP" 'इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना और शिल्प'** submitted by me under the guidance and supervision of Professor **R. S. SARRAJU** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga / INFLIBNET.

Signature of the Supervisor

PROF. R. S. SARRAJU

Date: 01 / 11 / 2021

Signature of the Student

RATHOD JYOTI CHANDRAKANT

Reg. No. 14HHPH04

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"IKKISAVI SADI KE PRATHAM DASHAK KI KAHANIYON MEIN SAMVEDANA AUR SHILP" "इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना और शिल्प"** submitted by bearing Regd. No. **14HHPH04** in partial fulfillment of the requirements for the award of **Doctor of Philosophy in HINDI** is a bonafide work carried out by her under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. Published research paper in the following publications: -

1. "इक्कीसवीं सदी की कहानियों में संवेदना के विविध धरातल" (2001-2010), Shodh Sandarsh International Journal, January-March-2019, ISSN: 2319-5908

2. "इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की हिन्दी कहानी में दलित संवेदना", Vidyawarta International Journal, April-June-2021, ISSN: 2319-9318

B. Research Paper presented in the following conferences: -

1. इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानियों में स्त्री-संवेदना, इंडो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन) एवं बोहल शोध मंजूषा (हरियाणा), 13-14 मार्च, 2021 (INTERNATIONAL).

2. 21वीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना एवं शिल्प, पूना कॉलेज ऑफ आर्ट्स, साइन्स व कॉमर्स (महाराष्ट्र), 06 मार्च, 2020 (INTERNATIONAL).

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of course work requirement for Ph.D.-

Sr. No.	Course Code	Name	Credit	Pass/Fail
1.	801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2.	803	Research Paper (Project Work)	4	Pass
4.	826	Ideological background of Hindi Literature	4	Pass
5.	827	Practical Review of the Text	4	Pass

Supervisor **Head of Department** **Dean of School**

अनुक्रमणिका

पृ.सं.

भूमिका **i-viii**

प्रथम अध्याय : इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी : परिदृश्य और सरोकार **1-58**

1.0 भूमिका

1.1 हिन्दी कहानी : अर्थ एवं स्वरूप

1.1.1 कहानी का अर्थ

1.1.2 कहानी का स्वरूप

1.1.3 कहानी की परिभाषा

1.1.4 कहानी की विशेषता

1.2 हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

1.2.1 हिंदी कहानी का विकास क्रम

1.2.2 कहानी का अंतिम दशक (1990 ई. - 2000 ई.)

1.3 इक्कीसवीं सदी का कहानी जगत में पदार्पण (2001 ई. - 2010 ई.)

1.3.1 इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की पृष्ठभूमि

1.3.1.1 धार्मिक तथा सांप्रदायिक परिवेश

1.3.1.2 सांस्कृतिक परिवेश

1.3.1.3 राजनीतिक परिवेश

1.3.1.4 आर्थिक परिवेश

1.3.1.5 सामाजिक परिवेश

1.4 निष्कर्ष

द्वितीय अध्यायः इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कहानीकारः सामान्य परिचय और रचनाएँ **59-108**

2.1 भूमिका

2.1.1 जयप्रकाश कर्दम

2.1.2 विनोद कालरा

2.1.3 यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

2.1.4 एस. आर. हरनोट

2.1.5 कविता

2.1.6 पंखुरी सिन्हा

2.1.7 जया जादवानी

2.1.8 सुशीला टाकभौरे

2.1.9 चित्रा मुदगल

2.1.10 मेहरून्निसा परवेज

2.1.11 उर्मिला शिरिष

2.1.12 चंद्रकांता

2.1.13 ओमप्रकाश वाल्मीकि

2.1.14 असगर वजाहत

2.1.15 अल्पना मिश्र

2.1.16 अंजु दुआ जैमिनी

2.1.17 अनिता गोपेश

2.1.18 सुधा अरोड़ा

2.1.19 सूरजपाल चौहान

2.1.20 सूर्यबाला

2.1.21 नासिरा शर्मा

2.1.22 मैत्रेयी पुष्पा

2.1.23 उदय प्रकाश

2.1.24 रत्नकुमार सांभरिया

2.1.25 ममता कालिया

2.1.26 भगवानदास मोरवाल

2.1.27 चंद्रकिरण सौनरेक्सा

2.1.28 इंदुबाली

2.1.29 संजीव

2.1.30 अमरीक सिंह ‘दीप’

2.1.31 दीपक शर्मा

2.1.32 गीतांजली श्री

2.1.33 कुणाल सिंह

2.1.34 नीलाक्षी सिंह

2.1.35 दूधनाथ सिंह

2.1.36 प्रत्यक्षा

2.1.37 मनीषा कुलश्रेष्ठ

2.1.38 वंदना राग

2.1.39 ज्ञानप्रकाश विवेक

2.1.40 शर्मिला बोहरा जालान

2.1.41 अखिलेश

2.1.42 मीरा कांत

2.1.43. अजय नावरिया

2.1.44 सुषमा जगमोहन

2.1.45 तरूण भटनागर

2.1.46 क्षमा शर्मा

2.1.47 बानो सरताज

2.1.48 नमिता सिंह

2.1.49 पंकज मित्र

2.1.50 सुदर्शन वशिष्ठ

2.2 निष्कर्ष

तृतीय अध्याय : इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानी : संवेदना के विविध धरातल **109-263**

3.0 भूमिका

3.1 संवेदना शब्द विश्लेषण

3.1.1 संवेदना शब्द का अर्थ

3.1.2 संवेदना का स्वरूप

3.1.3 संवेदना की परिभाषा

3.1.4 संवेदना की विशेषता

3.2 संवेदना का साहित्यिक महत्व

3.3 मानवीय संवेदना के विविध स्तर

3.3.1 प्रेम संवेदना

3.3.2 सुखात्मक संवेदना

3.3.3 दुखात्मक संवेदना

3.3.4 करुणात्मक संवेदना

3.3.5 अहंकारात्मक संवेदना

3.3.6 घृणात्मक संवेदना

3.3.7 प्राकृतिक संवेदना

3.3.8 राष्ट्रीय संवेदना

3.4 हिन्दी कहानी : संवेदना के विविध धरातल

3.4.1 आदिवासी संवेदना

3.4.1.1 विस्थापन की समस्या

3.4.1.2 समाज में शिक्षा का अभाव

3.4.1.3 समाज में फैली अंधश्रद्धा

3.4.1.4 नारी का स्थान

3.4.1.5 प्रकृति के प्रति भावना

3.4.1.6 आर्थिक परिस्थिति

3.4.1.7 नशे की आदत

3.4.1.8 आदिवासी आक्रोश

3.4.1.9 आदिवासी संस्कृति का भाव

3.4.1.10 आदिवासी मान्यताएँ

3.4.2 दलित संवेदना

3.4.2.1 अस्तित्व का प्रश्न

3.4.2.2 छुआछूत व जातिवाद की त्रासदी

3.4.2.3 शिक्षा की त्रासदी

3.4.2.4 भ्रष्टाचार तथा धार्मिक धारणा

3.4.2.5 दलित स्त्री उत्पीड़न

3.4.2.6 दलित चेतना का विकास

3.4.2.7 दलित आंदोलन

3.4.2.8 दलितों की आर्थिक व्यथा

3.4.2.9 सामाजिक विषमता

3.2.4.10 राजनीति और दलित

3.4.3 स्त्री संवेदना

3.4.3.1 अस्मिता व सम्मान के लिए लड़ती नारी

3.4.3.2 कामकाजी महिला की विवशता

3.4.3.3 रूढ़ि, परंपरा में जकड़ी स्त्री

3.4.3.4 पारिवारिक बंधनों में बंधी हुई स्त्री

3.4.3.5 स्त्री उत्पीड़न तथा यौन शोषण

3.4.3.6 प्रेम संबंध में स्त्री दृष्टिकोण

3.4.3.7 महिला सशक्तिकरण

3.4.3.8 अंधश्रद्धा में फंसी स्त्री की मान्यता

3.4.3.9 स्त्री की आर्थिक परिस्थिति

3.4.3.10 स्त्री अत्याचार व अकेलापन

3.4.4 वृद्ध संवेदना

3.4.4.1 वृद्ध मानसिक व सामाजिक वेदना

3.4.4.2 वृद्धावस्था की स्वास्थ्य रक्षा

3.4.4.3 दो पीढ़ियों के बीच अंतरभेद

3.4.4.4 वृद्धावस्था में समय गुजारने के बहाने

3.4.4.5 वृद्धावस्था में आर्थिक बाध्यता

3.4.4.6 वृद्धावस्था में सुख शांति भावना

3.4.4.7 सेवानिवृत्ति का भाव

3.4.4.8 दूसरे पर निर्भर रहने की ग्लानि

3.4.4.9 अकेलेपन की भावना

3.4.4.10 अंतिम क्षण का इंतजार

3.4.5 अल्पसंख्यक संवेदना

3.4.5.1 विभाजन की त्रासदी

3.4.5.2 मुस्लिम समाज का धार्मिक विश्वास

3.4.5.3 समाज में जातिवाद की समस्या

3.4.5.4 आर्थिक विवशता

3.4.5.5 मुस्लिम समाज की सामाजिक धारणा

3.4.6 किन्नर संवेदना

3.4.6.1 किन्नर कौन है

3.4.6.2 अपमान भावना की त्रासदी

3.4.6.3 किन्नर समाज की आर्थिक परिस्थिति

3.4.6.4 किन्नर का सामाजिक परिवेश

3.4.6.5 किन्नर का समाज में स्थान

3.4.7 भूमंडलीकरण की संवेदना

3.4.7.1 भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद

3.4.7.2 भूमंडलीकरण का स्त्री पर प्रभाव

3.4.7.3 भूमंडलीकरण का आदिवासियों पर प्रभाव

3.4.7.4 भूमंडलीकरण का समाज पर प्रभाव

3.4.7.5 भारतीय व्यापार पर भूमंडलीकरण का असर

3.4.8 मजदूर संवेदना

3.4.8.1 बाल मजदूरी की वेदना

3.4.8.2 सरकारी असुविधा

3.4.8.3 मजदूर वर्ग का आर्थिक जीवन

3.4.8.4 स्त्री मजदूर की त्रासदी

3.4.8.5 भूख की समस्या का एहसास

3.5 निष्कर्ष

चतुर्थ अध्यायः इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानीः शिल्पगत मूल्यांकन **264-315**

4. भूमिका

4.1 शिल्प शब्द का विश्लेषण

4.1.1 शिल्प शब्द का अर्थ

4.1.2 शिल्प का स्वरूप

4.1.3 शिल्प की परिभाषा

4.1.4 शिल्प की विशेषता

4.2 कहानी के अंतर्गत शिल्प का महत्व

4.3 शिल्प के विभिन्न तत्व

4.3.1 कथावस्तु

4.3.1.1 आदिवासी कहानी

4.3.1.2 दलित कहानी

4.3.1.3 औरत की कहानी

4.3.1.4 वृद्ध कहानी

4.3.1.5 किन्नर कहानी

4.3.2 चरित्र-चित्रण/पात्र

4.3.2.1 आदिवासी पात्र

4.3.2.2 दलित पात्र

4.3.2.3 मुस्लिम पात्र

4.3.2.4 वृद्ध पात्र

4.3.2.5 बाल पात्र

4.3.3 संवाद/कथोपकथन

4.3.3.1 राजनीतिक संवाद

4.3.3.2 सामाजिक संवाद

4.3.3.3 सांस्कृतिक संवाद

4.3.3.4 धार्मिक संवाद

4.3.3.5 आर्थिक संवाद

4.3.4 देशकाल /वातावरण

4.3.4.1 ग्रामीण वातावरण

4.3.4.2 शहरी वातावरण

4.3.4.3 जंगली वातावरण

4.3.4.4 पहाड़ी वातावरण

4.3.5 भाषा शैली

4.3.6 उद्देश्य

4.4 निष्कर्ष

पंचम अध्याय : इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी : भाषा का विविध प्रयोग **316-364**

5.0 भूमिका

5.1 भाषा व कहानी

5.1.1 भाषा का अर्थ

5.1.2 भाषा का स्वरूप

5.1.3 भाषा की परिभाषा

5.2 प्रथक दशक की कहानी : भाषा का विविध प्रयोग

5.2.1 उर्दू व अरबी भाषा

5.2.2 आदिवासी भाषा

5.2.3 गाँव की भाषा

5.2.4 आक्रोश जनक भाषा

5.2.5 देशज भाषा

5.2.6 अंग्रेजी भाषा

5.2.6.1 अंग्रेजी शब्द

5.2.6.2 अंग्रेजी वाक्य

5.2.7 राजस्थानी भाषा

5.2.8 सरल व सहज भाषा

5.2.9 मुहावरे व लोकोक्तियों की भाषा

5.2.10 अलंकारिक भाषा

5.3 प्रथम दशक की कहानी : बिम्ब प्रयोग

5.4 प्रथम दशक की कहानी : प्रतीक प्रयोग

5.5 प्रथम की कहानी : भाषा शैली

5.5.1 संवादात्मक शैली

5.5.2 पूर्वदीप्ति शैली

5.5.3 नाटकीय शैली

5.5.4 वर्णनात्मक शैली

5.5.5 काव्यात्मक शैली

5.5.6 पत्रात्मक शैली

5.5.7 तुलनात्मक शैली

5.5.8 आत्मकथात्मक शैली

5.5.9 लोककथात्मक शैली

5.5.10 मनोविश्लेषणात्मक शैली

5.5.11 व्यंग्यात्मक शैली

5.6 निष्कर्ष

उपसंहार **365-379**

संदर्भ ग्रंथ सूची **380-388**

- आधार ग्रंथ सूची
- सहायक ग्रंथ सूची
- पत्र-पत्रिकाएँ
- वेब सामग्री

परिशिष्ट

- प्रकाशित शोध आलेख - 1
- प्रकाशित शोध आलेख - 2
- राष्ट्रीय संगोष्ठी प्रमाण पत्र - 1
- राष्ट्रीय संगोष्ठी प्रमाण पत्र - 2

भूमिका

आज हम इक्कीसवीं सदी के खुले आसमान के नीचे खुली साँस लेकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इक्कीसवीं सदी का युग आधुनिकता के विषय में बहुत आगे बढ़ चुका है। पहले से अब तक का मनुष्य-जीवन देखा जाए तो, उसमें भी अनगिनत बदलाव आ चुका है। अंतिम दशक से वर्तमान समय तक साहित्य जगत में भी काफी बदलाव देख सकते हैं। भारत विभिन्नता से भरा हुआ देश है। यहाँ संस्कृति, परिवेश, धर्म सब में विविधता को देखा जा सकता है। यही विविधता साहित्यकारों के साहित्य में भी चित्रित हो जाती है। मनुष्य समाज का मुख्य घटक है। समाज में हो रही सभी छोटी-बड़ी घटनाओं का संबंध अपने-आप मनुष्य से जुड़ जाता है। ये घटनाएँ मनुष्य के मन तथा मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़कर चली जाती हैं। मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। संवेदना उसके मन का एक भाव ही न होकर सर्वस्व बन जाता है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदनाओं के विविध धरातलों को देख सकते हैं। कहानी मनुष्य के जीवन का दर्पण है कहना गलत नहीं होगा। कहानी यथार्थ तथा कल्पना दोनों पृष्ठभूमि पर अपने पाँव रखती है। कहानी यथार्थ के धरातल पर रची हुई हो तो, वह समाज का सच पाठकों के सामने खोलकर रख देती है। जिससे पाठक उस समाज, परिवेश, स्थिति को समझ सकता है। आज कहानी अपने सौ वर्ष से भी अधिक की कालावधि पार कर चुकी है। पहले से अब तक का कहानी का सफर बहुत लंबा हो चुका है। जिसमें पाठक अनेक बदलाव महसूस कर सकता है।

आज की पीढ़ी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचना अधिक पसंद करती है। यही प्रभाव कहानियों में भी देखा जा सकता है। आधुनिकता का प्रभाव कहानियों पर भी पड़ रहा है। प्रथम दशक की कहानियों में वैश्विकरण ने अपना जाल फैला दिया है। वैश्विकरण के चलते समाज में हो रहा बदलाव कहीं-न-कहीं मनुष्य के ह्रास का कारण भी बन रहा है। अमीर और

अमीर तथा गरीब और गरीब बनता जा रहा है। कहानियों के माध्यम से पाठक को समाज का जीता-जागता वर्णन मिल रहा है। आदिवासियों का विस्थापन, दलितों का पिछड़ापन, अस्तित्व के लिए लड़ती नारी, बंधुओं के चंगुल में फंसे छोटे-छोटे बच्चे आदि सबका चित्रण कहानीकारों ने बड़ी मार्मिक तरिके से किया है। जिसे देखकर पाठक सोच सकता है कि इक्कीसवीं सदी में आकार भी वह कितना पीछे है। यह कहानीकारों का मानसिक संवेदनात्मक चित्रण है जो पाठक वर्ग तक पहुँचाना चाहता है। प्रेमचंद की कहानियों में जातिवाद की त्रासदी दिखाई गयी है, वह इक्कीसवीं सदी तक आते-आते भी कम नहीं हुई है। वही जातिवाद आज की कहानियों में भी मौजूद है, यह कह सकते हैं। थोड़े बहुत बदलाव आएँ हैं, परंतु वही स्थिति भले ही थोड़ी कम मात्रा में लेकिन आज भी मौजूद है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में बहुत-सी कहानियों का पदार्पण हुआ। जिसका विषय समाज का प्रत्येक घटक है। कहानिकारों के अपने विचारों को आसमान छूने की इजाजत दे दी है। जिससे कहानियों का रूख और भी बदल गया। वर्तमान समय की कहानियों में कामकाजी तथा घरेलु दोनों स्त्रियों की तुलना पाठक बड़ी आसानी से कर सकता है। स्त्री कोई भी हो उसका उत्पीड़न कहानियों का केंद्र बिंदु दिखाता है। प्रथम दशक की कहानियों में विभिन्न स्त्रियों का परिचय पाठक वर्ग को मिलता है। आदिवासी स्त्री, दलित स्त्री, सवर्ण स्त्री, वृद्ध स्त्री आदि सभी स्त्रियों की अपनी एक उन्नति तथा उसकी व्यथा इन सबका नग्न चित्रण कहानियों में दिखाया गया है। एक डर जो स्त्री को रात में अकेले बाहर निकलने का होता है, वह आज भी मौजूद है। स्त्री कितनी ही स्वावलंबी क्यों न हो फिर भी पुरुषवादी समाज में उसे पुरुषों के नीचे झुकना ही है।

कहानीकार जो देखता है, वह लिखता है, उस लेखनी में कल्पनाओं की छाया भी होती है। परंतु उसे सच्चाई की पृष्ठभूमि भी होती है। इसलिए पाठक वर्ग अधिक कहानियों की ओर खींचता दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी के कहानियों का, और एक अच्छा प्रभाव

कहा जाए तो वह होगा उसकी भाषा। सरल व सहज भाषाओं के माध्यम से समाज के सभी पहलुओं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक उजागर किया गया है। समाज में बढ़ती विकृत मानसिकता का चित्रण भयावह है। आधुनिकता का प्रयोग जितना सही तरिके से हो रहा है, उतना ही उसका उल्टा भी हो रहा है। इसका एहसास कहानीकारों को है। इसलिए कहानियों में प्रत्येक बदलाव का चित्रण उपस्थित हुआ है। अंतिम दशक से प्रथम दशक की कहानियों में बदलाव आना स्वभाविक है। फिर भी इक्कीसवीं सदी की कहानीकारों ने कहानियों को नवीनता देने का प्रयास किया है। प्रथम दशक की कहानियों में कल्पना से अधिक यथार्थ का चित्रण दिखाने की कोशिश की गई है। महाश्वेता देवी, जयप्रकाश कर्दम, नासिरा शर्मा, सुशीला टाकभौरे, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मेहरून्निसा परवेज, उदय प्रकाश, असगर वजाहत आदि कहानीकारों की कहानियाँ समाज का जीता-जागता चित्रण करती हैं। इनकी कहानियों से समझा जा सकता है, आज इक्कीसवीं सदी में रहते हुए भी हमारी मानसिकता कितनी विकृत है। मनुष्य को मनुष्य समझना कितना मुश्किल होता जा रहा है। जातिवाद की धारणा आज भी समाज में प्रचलित है। जिससे दलितों का जीना मुश्किल होता जा रहा है। समता, समभाव का नारा बस अखबार तथा दूरदर्शन तक ही सीमित है। सच के जगत में उसकी कितनी मान्यता है, यह तो पाठक को कहानियों के जरिये समझ में ही आ रहा है। सही जगह, सही बदलाव आने की आवश्यकता बढ़ गयी है। परंतु यह कब तक साध्य होगा यह कहना मुश्किल है।

कहानी अपने अंदाज में समाज का पूर्ण चित्रण कर देती है। यह शायद सीधे तरिके से अपने-आप में करना इतना आसान न हो सकेगा। कहानीकारों के विचारों को समझ सकना आज के युग में आसान नहीं। क्योंकि समाज अपना भयावह रूप दिखा रहा है। यहाँ अच्छाई भी है। परंतु वह बुराई की मात्रा में कम ही है। कहानियों में अधिकतर कुंठा, त्रासदी, उत्पीड़न, विस्थापन, अत्याचार, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी व एक-दूसरे के प्रति बढ़ती नफरत,

जातिवाद आदि का चित्रण कहीं-न-कहीं अधिक है । इसलिए समाज की ओर पाठक का देखने का नजरिया अपने-आप बदल जाता है । यहां पाठक व लेखक दोनों के विचारों में तुलना की भावना अपने से ही जन्म ले लेती है । यह तुलना समाज में फैल रही अच्छाई और बुराई के मध्य की होती है । सुधा अरोड़ा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, प्रत्यक्षा, पंखुरी सिन्हा, कविता आदि कहानीकारों की कहानियों से समाज की नयी पीढ़ी की वेदना समझ में आती है । आज की पीढ़ी सही राह छोड़कर गलत राह के पीछे क्यों जा रही है वही समझा जा सकता है । यहाँ समाज की बात हो रही है, तो जाहिर है जिसका पक्ष भारी होगा उसकी बातचीत चलती जाती है । रचनाकार समाज की सभी बड़ी-छोटी घटनाओं का आकलन करना चाहता है । जिससे समाज में हो रही अच्छाई तथा बुराई दोनों को सम्मिलित किया जाए प्रथम दशक के कहानीकारों की यही विविधता उन्हें सबसे अलग करती है ।

प्रथम दशक के कहानीकारों ने सामाजिक तथा राजनीतिक सभी गतिविधियों को समझने की कोशिश की है । उनके कहानियों में माँ के प्यार की करुण माया, पारिवारिक सुख, मित्रता का भरोसा, पति-पत्नी के पवित्र रिश्ते का सच आदि चित्र हृदयस्पर्शी है जिससे कहानियों के तरफ देखने का नजरिया ही बदल जाता है । हाथ की पाँचों उँगलियाँ कभी एक जैसी नहीं होती, तथा हर सिक्के के दो पहलू आवश्य होते हैं । उसी तरह कहानियों में सुख तथा दुःख दोनों भावों को कहानीकारों ने कहानियों के माध्यम से समझा ने की कोशिश की है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी एक विशेष पद्धति तथा शैली होती है । उसका विविध प्रभाव उनकी रचनाओं में भली-भाँति झलकता है । भाषा को अपना नया औजार बनाकर रचनाकार पाठक के मन में अपना स्थान प्रतिपादित कर रहे हैं । कहानी समाज का अभिन्न अंग है । अपने-आप में कितना भी छुपाने की कोशिश करें परंतु रचनाकार की आँखों से कुछ नहीं छुपाया जा सकता । समाज के प्रति रचनाकार की संवेदनाएँ सभी घटकों को लेकर निर्मित होती हैं । यह संवेदनाएँ मन से मन तक जुड़ी होती हैं । संवेदनशील मनुष्य सभी विचारों के

साथ आगे बढ़ता है। यही विचारधारा सामान्य मनुष्य तथा एक रचनाकार को भिन्न बनाती है।

अतः प्रस्तुत शोध-कार्य को अच्छे-से समझ पाने तथा कहानी और समाज का अंतर्संबंध संबंध किस तरह से जुड़ा है वह देखने की कोशिश की गयी है। शोध-कार्य हेतु मैंने यहाँ विश्लेषणात्मक उपागम तथा तुलनात्मक उपागम का प्रयोग किया है। शोध-प्रबंध के अध्ययन को आसान बनाने के लिए तथा कहानियों के विश्लेषण की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। पाँचों अध्याय एक-दूसरे के पूरक है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंतर्गत प्रथम अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानीः परिदृश्य और सरोकार' है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत कहानी के अर्थ, स्वरूप को समझते हुए कहानी की विशेषता को विश्लेषित किया गया है। कहानी को शाब्दिक रूप से समझने के लिए परिभाषाओं का सहारा लिया गया है। इक्कीसवीं सदी के युग में बढ़ने से पहले कहानी की विकास यात्रा को समझना आवश्यक था तथा अंतिम दशक की कहानियों का संक्षिप्त स्वरूप चित्रित किया गया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में किस तरह से पदार्पण हुआ तथा इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की पृष्ठभूमि को रेखांकित किया गया। प्रत्येक युग अपने-आप में कहीं-न-कहीं विशेष होता है तथा उसकी कोई परछाई वह अपने सदी में छोड़कर चला जाता है। इक्कीसवीं सदी के धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक माहौल पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कहानीकारः सामान्य परिचय और रचनाएँ' के अंतर्गत विभिन्न कहानीकारों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में अनगिनत कहानीकारों की अनगिनत कहानियों का प्रकाशन हुआ। मैंने यहाँ कुछ चुनिंदा कहानीकारों को लिया है तथा उनकी रचनाओं पर बात की है। कहानीकारों ने अपने जीवन में किए अथक प्रयास के लिए उन्हें विभिन्न पुरस्कार तथा सम्मानों से पुरस्कृत किया गया। उन पुरस्कारों तथा सम्मानों को रेखांकित किया गया है।

साहित्यकारों से रचित विभिन्न रचनाएँ उपन्यास, कहानी, नाटक, कविता, संस्मरण आदि पर प्रकाश डाला गया है। रचनाकारों की प्रथम दशक की कुछ कहानियों पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानीः संवेदना के विविध धरातल' के अंतर्गत संवेदना शब्द को समझने की कोशिश भी की गई है। संवेदना का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में क्या महत्व है, उस पर विचार किया गया है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध धरातलों को चित्रित किया गया है। मानवीय संवेदना के विविध स्तरों को रेखांकित किया गया है। प्रथम दशक की कहानियों में संवेदनाओं के विभिन्न रूपों को विश्लेषित किया गया है। आदिवासी संवेदना, दलित संवेदना, स्त्री संवेदना, वृद्ध संवेदना, किन्नर संवेदना, भूमंडलीकरण संवेदना, अल्पसंख्यक संवेदना तथा मजदूर संवेदना पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। संवेदना के अर्थ को समझते हुए कुछ विद्वानों से परिभाषित परिभाषाएँ रेखांकित की गई हैं। संवेदनाओं के विविध धरातल मनुष्य जीवन से कैसे संबंधित है, उस पर विचार किया गया है। समाज के प्रत्येक स्थिति में मनुष्य अपने-आप को कैसे खड़ा कर पाता है, यह देखा गया है। जीवन तथा संवेदना का दोनों का एक-दूसरे से रहा गहरा संबंध कैसे होता है, यह चित्रित किया गया है। प्रथम दशक की कहानियों को आधार बनाकर मनुष्य जीवन में संवेदनाओं का महत्व है, उस पर प्रकाश डालने की कोशिश की गयी है।

चतुर्थ अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानीः शिल्पगत मूल्यांकन' के अंतर्गत शिल्प का कहानी के अंतर्गत महत्व जानने की कोशिश की गयी है। शिल्प के अर्थ तथा स्वरूप को बताकर शिल्प की परिभाषा दी गयी है। शिल्प कहानियों का मुख्य औजार है। शिल्पगत विशेषताओं से कहानी की मौलिकता को समझने का प्रयास किया गया है। शिल्प के विविध तत्व कहानी रचना के प्रक्रिया में कैसे व कहाँ प्रयोग किए जाते हैं उस पर

प्रकाश डाला गया है। प्रथम दशक की कहानियों का बदलता शिल्पगत रूपांतरण पाठक वर्ग पर किस तरह से प्रभाव डाल रहा है, उस पर चर्चा की गयी है। बदलते समय के साथ कहानियों में भी काफी सारे बदलाव देखे गये। ये बदलाव शिल्पगत पृष्ठभूमि से कैसे जुड़े हुए हैं, इस पर भी प्रकाश डाला गया है। शिल्प के माध्यम से कहानियों का तैयार हुआ ढाँचा कहानियों की विविधता कैसे चित्रित करता है, इसे समझा गया है।

पंचम अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानीः भाषा का विविध प्रयोग' के अंतर्गत प्रथम दशक की कहानियों की भाषा को समझने का प्रयास किया गया है। भाषा के अर्थ व स्वरूप को समझकर भाषा की परिभाषाएँ चित्रित की गयी हैं। भाषा की भिन्न शैलियों से कहानी की आकर्षण शक्ति कैसे बढ़ती है, यह रेखांकित किया गया है। प्रथम दशक में अनेक कहानीकारों की रचनाओं को देखा गया, सबकी अपनी एक विशेष शैली और पद्धति है, उसको समझने का प्रयास किया गया है। आदिवासी कहानी, दलित कहानी, स्त्री कहानी, किन्नर की कहानी आदि विविध कहानियों में कहानीकार अपने विचार और किस तरह की भाषा का प्रयोग किया गया, उस पर प्रकाश डाला गया है। भाषा की सुंदरता कहानियों में किस तरह से निखर के आती है देखा जा सलकता है। भाषा ही कहानी का मुख्य भाग है, जो सीधे-सीधे पाठक के संपर्क में आती है। इसलिए प्रथम दशक की कहानियों में रचनाकारों में एक विशेष बदलाव को देखा गया। भाषा को अधिक सरल व सहज रखा गया। जिससे सामान्य मनुष्य तक कहानी अपना विशेष प्रभाव डाल सके। इन्हीं विभिन्न विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत किया गया है।

प्रबंध लेखन के पाँचों अध्याय के पश्चात शोध-प्रबंध के अंत में उपसंहार के अंतर्गत सभी अध्यायों का सार प्रस्तुत किया गया है। शोध-प्रबंध के कार्य के समय जिन-जिन पुस्तकों का प्रयोग किया गया है उन्हें संदर्भ ग्रंथ सूची के अंतर्गत आधार ग्रंथ और सहायक ग्रंथ में विभाजित किया गया है।

मैं सबसे पहले धन्यवाद ज्ञापन मेरे शोध-निर्देशक आदरणीय प्रो. आर. एस. सर्राजू जी का करना चाहूँगी। जिन्होंने शोध विषय चयन से लेकर शोध-प्रबंध कार्य की पूर्ति तक अपने मार्गदर्शन से मुझे लाभान्वित किया है। सर का साथ हमेशा मेरे साथ है। शोध-कार्य में आयी सभी छोटी-बड़ी कठिनाइयों से बाहर कैसे निकलना है, यह सर के मार्गदर्शन से पता चला। अपने कार्य में इतने व्यस्त होने के बावजूद आपने प्रत्येक क्षण मुझे मार्गदर्शन दिया। शोध कार्य के दौरान निर्मित हुए सभी छोटे-बड़े प्रश्नों को सुलझाने में हमेशा मेरी मदद की। सर आपका मैं सहृदय से आभार तथा कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने माता-पिता की आजन्म ऋणी रहूँगी। उनके प्रेम तथा आशीर्वाद से मैं आज यहाँ पहुँच पायी हूँ। जीवन की इतनी कठिनाइयों के बाद भी धैर्य न छोड़कर आगे बढ़ने की सलाह बचपन से लेकर आज तक देते आ रहे हैं। आपके चरणों में नतमस्तक होकर आशीर्वाद चाहती हूँ। मेरा संपूर्ण परिवार भाई-बहन, सास-ससुर, घर के सभी छोटे-बच्चे सबका आभार प्रकट करती हूँ, जो मेरे शोध-कार्य को सफल बनाने के लिए हमेशा मेरे साथ खड़े रहे हैं।

मैं अपने पति श्री पुल्या नायक जी का हृदय से आभार मानती हूँ। आप जीवन के प्रत्येक मोड़ पर मेरी छाया बनकर मेरे साथ खड़े रहे। मेरी सभी छोटी-बड़ी गलतियों को माफ कर आगे बढ़ने की प्रेरणा हमेशा आप देते रहे। आपके सहयोग से ही आज मैं यह शोध-कार्य पूर्ण कर पायी हूँ। मेरा छोटा-सा बेटा अंश नायक की भी मैं आभारी हूँ। आपकी छोटी-छोटी बाल हरकतों ने मेरा दिन बनाकर मुझे पढ़ने की प्रेरणा दी।

अंत में मैं सभी विद्वानों, मित्रों, सहेलियों तथा पुस्तकालय के सभी कर्मियों का आभार प्रकट करती हूँ। अगर कुछ गलतियाँ इस शोध-कार्य के समय जाने-अनजाने में मुझसे हुई हो तो उसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

शोधार्थी

राठोड़ ज्योति चंद्रकांत

प्रथम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी : परिदृश्य और सरोकार

1.0 भूमिका

1.1 हिन्दी कहानी : अर्थ एवं स्वरूप

- 1.1.1 कहानी का अर्थ
- 1.1.2 कहानी का स्वरूप
- 1.1.3 कहानी की परिभाषा
- 1.1.4 कहानी की विशेषता

1.2 हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

- 1.2.1 हिंदी कहानी का विकास क्रम
- 1.2.2 कहानी का अंतिम दशक (1990 ई. - 2000 ई.)

1.3 इक्कीसवीं सदी का कहानी जगत में पदार्पण (2001 ई. - 2010 ई.)

- 1.3.1 इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की पृष्ठभूमि
  - 1.3.1.1 धार्मिक तथा सांप्रदायिक परिवेश
  - 1.3.1.2 सांस्कृतिक परिवेश
  - 1.3.1.3 राजनीतिक परिवेश
  - 1.3.1.4 आर्थिक परिवेश
  - 1.3.1.5 सामाजिक परिवेश

1.4 निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी : परिदृश्य और सरोकार

1.0 भूमिका

भारतीय संस्कृति विभिन्नता के लिए संपूर्ण जगत में जानी जाती है। बचपन से ही घर में दादा-दानी, नाना-नानी कहानी सुनाकर बच्चों को बड़ा करते हैं। यही कहानी सुनने तथा सुनाने की परंपरा भारतीय समाज में आदिकाल से चली आ रही है। कहानी एक ऐसी विधा है, जो कम समय में पाठक के हृदय में स्थान बना लेती है। आदिकाल से आ रही यह कहानी मनुष्य को बहुत कुछ सिखला जाती है। महाभारत, रामायण जैसे महाकाव्यों को छोटे-छोटे खंडों में विभाजित कर कहानी का रूप प्रदान करके जनसामान्य तक आसानी से पहुँचाया गया। कहानी को कहानीकार अपनी धारणा से रचता है। अपने मौलिक विचारों से कहानी को संपूर्णता प्रदान करता है। कहानी की उत्पत्ति अनेक भावों से, विचारों से तथा समाज में घटित हो रही घटनाओं से होती है। यह कहानी काल्पनिक घटना तथा समाज में हो रही यथार्थ घटनाओं पर रची गयी है। जैसे काल्पनिक, डरावनी कहानियाँ, भूत-प्रेत-पिशाच, बच्चों से कही जाने वाली राजा-रानी की कहानियाँ- ऐसी कहानियों में पाठक वर्ग कहानीकार की रचना क्षमता की अद्भुत शैली को जान सकते हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में कहानी लेखन का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी से हुआ है। समय के साथ-साथ कहानी लेखन में भी बदलाव आते रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी में यही बदलाव पाठक वर्ग को महसूस हुआ है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत इक्कीसवीं सदी की कहानी के अंतर्गत पदार्पण के विविध मुद्दों को बताया गया है। साहित्य की कहानी विधा समाज के यथार्थ को विभिन्न परिवेश में विभाजित करती है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक आदि आधारों पर समाज में हो रही गतिविधियों का परिचय पाठक को कहानी

के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। कहानी मनुष्य की विविध समस्याओं तथा मानवीय संवेदनाओं को सहजता से व्यक्त करने का साधन है।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी मानवीय संवेदनाओं का एक भरा तालाब है। जिसके अंतर्गत आधुनिक उपकरणों के साथ मानवीय जीवन को प्रस्तुत किया गया है। प्रथम दशक के कहानीकारों का वैचारिक दृष्टिकोण अंतिम दशक की कहानियों से अधिक बदला हुआ नहीं दिखाई देता। आज की कहानी में भी स्त्री समस्या, आदिवासी समस्या, दलित समस्या ऐसे विभिन्न मुद्दों को केन्द्रित किया गया है। प्रथम दशक की कहानी में मनोरंजकता के साथ-साथ समाज में घटित हो रहे समस्याओं का यथार्थ चित्रण भी है। प्राचीन काल से आजतक कहानी जगत में बहुत से बदलाव आए हैं। आधुनिक काल की कहानी में विद्रोह भाव अधिक प्रतीत होता है। मनुष्य जागरूक होता जा रहा है। सोच-विचार कर आगे बढ़ते जा रहे हैं। यही विविधता कहानीकार कहानियों के माध्यम से पाठक वर्ग तक पहुँचा रहे हैं। मानव सभ्यता का बदलता चरण इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित है। युवा कहानीकारों का आक्रोश, आज की परिस्थितियों, वरिष्ठ कहानीकारों की स्थिरता ऐसे विभिन्नता भरी कहानियों को हम इस दशक में देख सकते हैं। एक व्यक्तिगत भावना जो अपने विचारों से समाज में बदलाव ला सकती है, ऐसी एक विधा कहानी है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में ग्रामीण, शहरी, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुस्लिम, दलित-आदिवासी आदि सभी विषयों को संग्रहित करके कहानीकारों ने अपनी कहानियाँ रची हैं।

2.1.1 हिन्दी कहानी : अर्थ व स्वरूप

कहानी का अर्थ

सहज रीति से विचारों का आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया को कहानी कहते हैं। मनुष्य जन्म से ही कहानी के साथ जन्म लेता है। कोई-न-कोई घटित क्रिया होती है, जिसे मनुष्य एक-दूसरे के साथ बताना चाहता है, यही कहानी है। बचपन से सुनते तथा सुनाते आ रहे मनोभाव

की कहानी है। प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे से अलग होता है। उसके भाव-विचार अलग होते हैं। इन भावों को जोड़कर रचा जाने वाला साहित्य मनुष्य की प्रतिभा को समाज के सामने प्रस्तुत करता है। कहानी में कहानीकारों का वही भाव है जिससे समाज में यथार्थ घटित घटनाओं से पाठक रूबरू हो सकता है। कहानी का मुख्य उद्देश्य मनुष्य की जिजीविषा तथा कुतूहल को पूर्ण करना है। भारत देश में कहानी की परंपरा को ऋग्वेद काल से माना गया है। ऋग्वेद काल से चली आ रही कहानी परंपरा इक्कीसवीं सदी तक अपनी विशेषता को आगे बढ़ाती आयी है। हिन्दी कहानी के विविध चरणों को निम्न प्रकारों से विभाजित किया गया है -

"1. ऋग्वेद के संवाद - सूक्त
2. उपनिषदों की रूपक - कथाएँ
3. आख्यानक काव्य तथा पौराणिक कथाएँ
4. जातक कथाएँ
5. संस्कृत का परवर्ती कथा साहित्य
6. प्राकृत और अपभ्रंश में कथा
7. चरण साहित्य में कथा
8. लोक कथाएँ
9. मध्यकालीन हिन्दी आख्यानक काव्य
10. वार्ता साहित्य की धार्मिक कथाएँ"[1]

इस प्रकार से समझा जा सकता है कि कहानी की समय सीमा बहुत पुरानी है। कहानी को अंग्रेजी भाषा में 'शॉर्ट स्टोरी' कहते हैं। अगर इसका हिन्दी रूपांतरण किया जाए तो वह 'छोटी कहानी' होगा। पाश्चात्य जगत में कहानी, हिन्दी साहित्य से पूर्व आयी है। परंतु सटीक कालावधि तय करना शायद मुश्किल हो सकता है। मानव सभ्यता का परिचय देती कहानी

[1] हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान - डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, पृ.सं. 15

मनुष्य के साथ ही जन्म लेती है। कहानी हिन्दी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान पर पहुँच गयी है। उपन्यास तथा कहानी में अगर अंतर की बात की जाए तो वह दोनों के आकार से संबंधित होगा। कहानी का आकार उपन्यास से छोटा होता है। कम समय में लेखक अपनी बात को पाठक तक पहुँचा सकता है। कहानी सुनना तथा कहना यह मनुष्य का सहज स्वभाव होता है। इसी कारणवश उपन्यास से अधिक प्रचलित कहानी हुई। किसी भी समाज-देश या जाति की अपनी भावना को व्यक्त करने का भाव कहानी बन गयी। कहानी, कहानीकार तथा पाठक के बीच जोड़े जाने वाली महत्वपूर्ण कड़ी है। जो कलात्मकता से, मनोरंजन से तथा यथार्थ घटित घटनाओं से पाठक को परिचित करवाती है। कहानी की यही विशेषता है कि वह मनुष्य की मानसिकता और उसके भीतर चल रहे अंतर्द्वंद्व को लेखनी के जरिए समाज तक पहुँचाती है। यथार्थ तथा काल्पनिक दोनों परिवेश में कहानी लिखी होने के बावजूद साहित्य में कहानी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। काल्पनिकता से भरे पात्र, स्थल, घटनाएँ पाठक की रोचकता को और बढ़ा देते हैं। वैज्ञानिक क्षेत्र में मनुष्य आज चाँद पर भी आ-जा रहा है, फिर भी कहानी की काल्पनिकता पाठक को प्रेरित करती है कि वह कहानी को पढ़े और वह उसी दिलचस्पी से कहानी का पाठन करता है। शहरी-ग्रामीण, अशिक्षित-शिक्षित, सभ्य-असभ्य ऐसे सभी समाज के मनुष्य को कहानी एक-दूसरे से जोड़ने का कार्य करती है।

1.1.2 कहानी का स्वरूप

अंग्रेजी तथा बांग्ला कहानियों के प्रभाव से आधुनिक हिन्दी कहानी का स्वरूप निर्माण हुआ। बांग्ला भाषा में कहानी को 'गल्प' कहा जाता है तथा अंग्रेजी में कहानी को 'स्टोरीज' या 'शॉर्ट स्टोरीज' कहते हैं। इसी प्रकार कहानी को विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे गल्प, कथा, वृत्तांत, आख्या, आख्यायिका आदि शब्दों से कहानी को उल्लिखित किया गया है। कहानी के अंतर्गत सच-झूठ, छोटे-बड़े ऐसे विभिन्न सार्थक पहलुओं का समावेश हो जाता है। कहानी समर्थ होती है, छोटे परिदृश्य में भी समाज का सर्वथा उदाहरण

देने के लिए। कहानीकार एवं पाठक के बीच का मूलाधार कहानी की रोचकता तथा कहानी का मूल स्वरूप होता है। कहानी लेखन के मूल छ: तत्व माने गए हैं- (1) कथावस्तु (2) चरित्र-चित्रण (3) संवाद (4) देशकाल या वातावरण (5) उद्देश्य (6) शैली आदि।

(1) कथावस्तु - कथानक

हृदय के बिना शरीर कोई काम का नहीं, उसी प्रकार कथानक अथवा कथावस्तु के बिना कहानी की रचना नहीं की जा सकती। कथावस्तु कहानी का मूल आधार होता है। कहानी किसी भी विषय या कोई भी सामाजिक, राजनीतिक या ऐतिहासिक घटनाओं पर रची जाती है। इसी के आधार पर कथानक का चुनाव निर्धारित किया जाता है।

(2) चरित्र-चित्रण

कहानी के अंतर्गत पात्रों की संख्या उपन्यास से कम होती है। कहानी के अंतर्गत कम से कम पात्रों का चयन किया जाता है। जिससे कहानी का मूल स्वरूप पाठक को अधिक गुमराह न करके सीधे कहानी के मूल विषय तक ले जा सके। कहानी के पात्रों से कहानी का संपूर्ण विश्लेषण पाठक आसानी से कर पाता है।

(3) संवाद

कहानी का संवाद कहानी के भीतर जान डाल देता है। परंतु कहानी का दृश्य पहले से अब तक बदलता जा रहा है। वैसे ही कहानी का संवाद भी बदल रहा है। संवाद कहानी पात्रों के बीच का अभिवादन है जिससे कहानी का स्वरूप पाठक के सामने दृष्टिगत होता है। कहानी यथार्थ घटनाओं पर अधिक रची जाने लगी। इस कारण कहानी वर्णनात्मक एवं मनोविश्लेषणात्मक शैली में लिखी जाने लगी।

4. देशकाल - वातावरण

भारत बहुसंस्कृति का देश है। अन्य देशों से अगर देखा जाए तो भारत में विभिन्न संस्कृति, विचार, परंपराएं, रूढ़ि आदि एक प्रांत से लेकर दूसरे प्रांत में भिन्न-भिन्न होती है।

इसी कारण भारतीय कहानियाँ विविधता को दर्शाती हैं। कहानीकार जिस प्रांत से आया है उसी का प्रभाव उसकी कहानी में चित्रित होता है। हिन्दी साहित्य में अगर देखा जाए तो एक कहानी, दूसरी कहानी से कहीं भी मेल नहीं खाती। यही विशेषता भारतीय साहित्य की है।

(5) शैली

कहानी की भाषा शैली कहानी का मूल स्वरूप होती है। विभिन्न प्रांतों से उभरे कहानीकार अपनी भाषा शैली से पाठक को आकर्षित करता है। कहानी की भाषा अगर सही हो तो पाठक अपने-आप कहानी से जुड़ जाता है। कहानी की सही भाषा ही कहानीकार की मुख्य शक्ति होती है। जिससे कहानीकार अपने विचार-आचार, अपनी भावनाएँ, समाज के प्रति अपनी भावनाएँ, दुःख-सुख यह सभी कहानी के माध्यम से पाठक वर्ग तक पहुँचाता है।

(6) उद्देश्य

जीवन में किसी ध्येय या उद्देश्य के बिना जीना जैसे मनुष्य को निरर्थक लगता है, उसी प्रकार किसी मुख्य उद्देश्य के बिना कहानी की रचना भी निरर्थक होती है। कहानी का संबंध किसी भी विषय या धारणा से लिखी गयी हो, परंतु उसके लिए एक मुख्य उद्देश्य रहना अनिवार्य है। कहानी का उद्देश्य कहानी को पूर्ण बनाना है। कहानी किस रूप से पाठक के सामने आएगी, पाठक वर्ग प्रस्तुत कहानी से किस निष्कर्ष तक पहुँच सकता है, यह कहानी के उद्देश्य पर निर्भर होता है।

1.1.3 कहानी की परिभाषा

कहानी का अर्थ समझाते हुए कहानी के सार्थक रूप को विश्लेषित करने का अनेक आलोचकों ने प्रयास किया। आदिकाल से चलती आ रही कहानी की प्रथा आज इक्कीसवीं सदी तक आ पहुँची है। कहानी का इतिहास शुरू से ही प्रबल रहा है। कहानी मनुष्य जीवन से किस तरह जुड़ चुकी है। इसका उदाहरण प्रस्तुत परिभाषाओं से हमें स्पष्ट हो जाता है। कहानीकार का परिवेश उसकी विचारशीलता तथा समाज से उसका जुड़ाव कहानी के

अंतर्गत उतरता है। इन्हीं विभिन्न धारणाओं से हिन्दी आलोचकों द्वारा कहानी को परिभाषित किया गया है।

1.1.3.1 प्रेमचंद

कहानी सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को नया रूप प्रदान किया है। प्रेमचंद के अनुसार- "कहानी वह ध्रुपद की तान है, जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी संपूर्ण प्रतिभा दिखा देता है, एक क्षण में चित्र को इतने माधुर्य से परिपूर्ण कर देता है, जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।"[1] प्रेमचंद ने कहानी को जीवन राग से जोड़ा है। कहानी, मनुष्य की गहरी आस है, जो कभी भी पूर्ण नहीं होती। एक के बाद दूसरा क्या हो सकता है यह प्रश्न पूछने के लिए विवश कर देती है।

1.1.3.2 डॉ. नामवर सिंह

डॉ. नामवर सिंह की अपनी एक अलग विचारधारा है। नामवर सिंह कहानी को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- " 'छोटे मुँह बड़ी बात' कहने वाली कहानी के बारे में प्राय: 'बड़े मुँह छोटी बात' कही जाती है। कहानी का यह दुर्भाग्य है कि वह मनोरंजन के रूप में पढ़ी जाती है और शिल्प के रूप में आलोचित होती है। मनोरंजन उसकी असफलता है तो शिल्प सार्थकता।"[2] इस प्रकार डॉ. नामवर सिंह ने कहानी के प्रति अपने भावों को व्यक्त किया है।

1.1.3.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहानी को आख्यायिका कहा है। इनके अनुसार, "आख्यायिका साहित्य का वह रूप है, जिसके कथा प्रवाह और कथोपकथन में अर्थ अपने प्रकृत रूप में अधिक विद्यमान रहता है और उसे दबाने वाले भाव विधान या उक्ति वैचित्र्य के लिए और थोड़ा स्थान बचता है।"[3]

---

[1] कुछ विचार - मुंशी प्रेमचंद, पृ.सं. 27

[2] कहानी-नयी कहानी - डॉ. नामवर सिंह, पृ.सं. 18

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 602

1.1.3.4 जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने कहानी को मनुष्य की अभिव्यक्ति से जोड़ा है। कहानी मनुष्य का एक सुंदर दर्पण है जो मनुष्य के भाव और विचारों को समाविष्ट करता है। प्रसाद के अनुसार- "आख्यायिका में सौंदर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा इसकी सृष्टि करना ही कहानी का लक्ष्य होता है।"[1] हिन्दी कहानी जगत में प्रेमचंद के पश्चात जयशंकर प्रसाद को प्रमुख कहानीकार के रूप में माना गया है। जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ मुख्यत: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की होती है। प्रसाद कहानी को आख्यायिका मानते हैं जो छोटे-छोटे कथनों से कहानी को पूर्ण बनाती है।

1.1.3.5 डॉ. गुलाबराय

गुलाबराय के अनुसार "आधुनिक कहानियाँ प्राय: मानव केन्द्रित होती हैं और उनमें राजा मंत्री और साहूकार के बेटे-बेटियों की अपेक्षा साधारण श्रेणी के लोग जिनका हमें निकटतम परिचय होता है। आधुनिक कहानी में पहले की अपेक्षा कौतुहल की मात्रा कम हो गयी है और नित्य नया रूप धारण करने वाली नवीनता तथा बुद्धिवाद को अधिक स्थान मिलता जा रहा है। यह बात नहीं है कि आजकल की कहानी में मानवेत्तर सृष्टि का समावेश पात्र रूप से न होता हो, किंतु वे पात्र बुद्धिवाद से शासित रहते हैं।"[2] गुलाबराय ने कहानी को आधुनिकता से जोड़ा है। कहानी विधा भारत में प्राचीन समय से चलते आने के बावजूद भी कहानी में विदेशी संस्कारों एवं आचरण का हिन्दी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में समावेश किया है। गुलाबराय का मानना है कि भारतीय संस्कृति के साथ-साथ कहानियों में पाश्चात्य संस्कृति का भी परिचय आधुनिक कहानियों में प्रतीत होता है।

---

[1] हिन्दी कहानी कला - डॉ. प्रतापनारायण टंडन, पृ.सं. 15

[2] काव्य के रूप - डॉ. गुलाब राय, पृ.सं. 213

1.1.4 कहानी की विशेषता

कहानी अपने-आप में विशेष है। बहुत ही कम समय के भीतर कहानी ने हिन्दी साहित्य जगत में अपना बड़ा स्थान बना लिया है। मानव जीवन को उल्लिखित करती कहानी मनुष्य एवं समाज को एकत्रित एवं जोड़ने का कार्य करती है। कहानी के अंतर्गत प्रभावशाली धारणा है जो मनुष्य के भीतर रोचकता का निर्माण करती है। कहानी केवल काल्पनिकता पर आधारित न होकर यथार्थ घटित घटनाओं का उल्लेख भी करती है। कहानी किसी भी विषय पर रची हुई हो, उसके अंतर्गत मनुष्य जीवन की संपूर्ण भावना तथा उसका सामाजिक परिवेश इन दोनों को साथ लेकर चलती है। कहानी पाठक का केवल मनोरंजनात्मक साधन न होकर समाज में घटित सत्य एवं गंभीर घटनाओं की गाथा है, जिससे मनुष्य प्रेरित होकर अपनी भावनाओं एवं संवेदनाओं को पाठक के प्रत्यक्ष प्रस्तुत करता है। कहानी की मुख्य विशेषता यह है कि कम से कम पात्रों के आधार पर भी कहानी पाठक के हृदय में विशिष्ट स्थान बनाती है। कहानी मनुष्य जीवन को आइने की तरह पाठक के समक्ष खोलकर रख देती है। कहानीकार के बाहरी जीवन के साथ-साथ उसके मन में चल रहे कोलाहल को भी पाठक के सामने ला खड़ा करती है। कहानी का आकार संक्षिप्त या लघु होता है, इस कारण कहानी पाठक पर अपना अधिक प्रभाव छोड़ जाती है। कहानी के अंतर्गत विभिन्न समस्याओं का समावेश होता है। समस्याओं का समावेश मनोवैज्ञानिकता के परे होता है, इसलिए पाठक वर्ग संवेदनाओं की सहानुभूति से जागरूक होकर आगे बढ़ता है। कहानी मनुष्य के जीवन का यथार्थ भाव है। मानव जीवन के विविध पक्ष को लेकर कहानी लिखी जाती है। कहानी के तत्वों से कहानी की पूर्णता सिद्ध होती है। कहानीकार का परिवेश कहानी का मूल तत्व बन जाता है। कहानी की प्रासंगिकता कहानी को अधिक प्रभावशाली बनाकर पाठक के मन में गहरा स्थान बना लेती है। कहानी सामान्य-असामान्य सभी विशेषताओं को ध्यान में रखकर लिखी जाती है। जिससे पाठक वर्ग उस समय से अनुकूल हो सकता है। आज का कहानीकार

मानवीय संवेदनाओं को मुख्य आधार बना रहा है। मानवीय संवेदनाओं से भरी कहानी की प्रासंगिकता ही कुछ और होती है। कहानीकार जीवन के चित्र को शब्दों में बांधकर कहानी रचता है, जिससे कहानी की विशेषता और अधिक बढ़ जाती है। कहानी की सरल भाषा शैली, प्रतीक तथा बिंब का सही उपयोग कहानी की श्रेणी को अधिक आकर्षित बना देती है।

1.2 हिन्दी कहानी की विकास यात्रा

हिन्दी कहानी की विकास यात्रा का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है। हिन्दी की आरंभिक कहानी का प्रकाशन 'सरस्वती' एवं 'इंदु' पत्रिकाओं से हुआ। प्रथम कहानी को लेकर बहुत सारे मतभेद हैं। हिन्दी साहित्य जगत के कुछ विद्वान 'रानी केतकी की कहानी' जो इंशा अल्ला खां द्वारा 1803 ई. में रचित है, इसे हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। तथा हिन्दी के आलोचक 'इंदुमती' कहानी जो किशोरी लाल गोस्वामी द्वारा 1900 ई. में रचित है इसे हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। हिन्दी कहानी को जब से लेखनी का सहारा प्राप्त हुआ, तब से कहानी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी और कहानी प्रचलित होने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी से इक्कीसवीं सदी तक कहानी की रूपरेखा पूर्णत: बदल चुकी है। हिन्दी की प्रथम कहानी की दुविधा का उत्तर देते हुए अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रकट किए हैं- "आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी की पहली कहानी 'सरस्वती' में सन् 1900 में प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' नामक कहानी को मानते हैं, किंतु इस कहानी पर शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' तथा किसी राजपूत कहानी का प्रभाव माना गया है। इसलिए विद्वानों ने इसे मौलिक और प्रथम कहानी मानने से अस्वीकार किया है। श्री देवीप्रसाद शर्मा के अनुसार 1901 से 'छत्तीसगढ मित्र' में प्रकाशित माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिन्दी की प्रथम कहानी है। डॉ. धनंजय, डॉ. रामदरश मिश्र आदि विद्वानों ने इस विचार को अपना समर्थन दिया है। परंतु डॉ. बच्चन सिंह ने इसका खंडन करते हुए कहा है कि हिन्दी की संभावित प्रथम मौलिक कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की 'प्रणयिनी-परिणय' है जिसे उन्होंने 1887 में

लिखा था। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार, 'बंगलमहिला की दुलाई वाली', 'सरस्वती' में सन् 1907 में प्रकाशित हुई है जो हिन्दी की प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी है। लाला भगवान दीन की कहानी 'प्लेग की चुड़ैल' वास्तविक परिस्थिति पर आधारित है जो सन् 1902 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसी पत्रिका में ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' सन् 1903 में प्रकाशित हुई थी। इनको हम हिन्दी के प्रारंभिक कहानीकारों में परिगणित कर सकते हैं।"[1] प्रस्तुत संदर्भ से किसी एक निष्कर्ष तक पहुँचना बहुत मुश्किल है कि प्रथम कहानी की उपाधि कौन सी कहानी को दी जाए। परंपरागत रीति से चलती आ रही कहानी एक-दूसरे के साथ बोलकर सुनाई जाती थी। आधुनिक कहानी के दौर में मुद्रित रूप में आकर पाठक वर्ग तक पहुँचने लगी। इसी के साथ कहानी प्रकाशन का कार्य शुरू हो गया। पाठक वर्ग कहानी का इंतजार करने लगे। कम समय के भीतर ही कहानी ने अपना एक उच्च स्थान पाठक वर्ग में हासिल कर लिया। इसी के साथ कहानी की मुख्यधारा का प्रारंभ हुआ। कहानी की विकास यात्रा का प्रारंभ हुआ। प्रत्येक दशक अपनी एक छाप छोड़कर आगे बढ़ने लगा। कहानी की विशेषता को महत्ता प्राप्त होने लगी।

1.2.1 हिन्दी कहानी का विकास क्रम

हिन्दी कहानी का विकास क्रम बहुत लंबा है। इसे एक धारा में समझ पाने के लिए कई विद्वानों ने अपने मत रखे हैं। गोपाल राय अपना मत रखते हुए लिखते हैं- "इतिहास लेखन की एक बड़ी कठिनाई रचनाकारों और उनकी रचनाओं को वर्गीकृत करने की होती है। यदि रचनाकारों का विवेचन एक एक कर, कालक्रम के अनुसार करने की प्रविधि अपनायी जाए तो काम बहुत आसान हो सकता है।"[2] प्रस्तुत कहानी जगत के पाँच उत्थान भिन्न-भिन्न परिवेश का एकत्रीकरण है।

1. प्रथम उत्थान सन् 1900 से सन् 1925 तक

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश (प्रथम भाग) - सं. धीरेंद्र वर्मा, पृ.सं. 315

[2] हिन्दी कहानी का विकास - गोपाल राय, पृ.सं. 9

2. द्वितीय उत्थान सन् 1926 से सन् 1936 तक
3. तृतीय उत्थान सन् 1937 से सन् 1947 तक
4. चतुर्थ उत्थान सन् 1948 से सन् 1960 तक
5. पंचम उत्थान सन् 1961 से सन् 1989 तक

प्रथम उत्थान कहानी का आरंभिक पर्व था। जब हिन्दी कहानी को लिखित स्वरूप प्राप्त हुआ था। जब भारत की स्वतंत्रता संग्राम का कोई नामोनिशान नहीं था। अंग्रेजी शासन काल में हिन्दी कहानी का पदार्पण मुख्य था। प्रेमचंद तथा जयशंकर प्रसाद ने कहानी को नयी पहचान दी। कहानी का नया स्वरूप निर्मित हुआ। सन् 1907 से मुंशी प्रेमचंद ने कहानी लेखन का कार्य आरंभ किया। प्रेमचंद ने उर्दू में कहानी लेखन की शुरुआत की। इस समय को प्रेमचंद युग कहा जाने लगा। प्रेमचंद कहानी विधा को ही मुख्य मानकर कहानी जगत में आगे बढ़ने लगे। प्रेमचंद की कहानियों ने भारतीय समाज में खलबली मचा दी थी। ग्रामीण जीवन की त्रासदी, ब्रिटिश सरकार की चाकरदारी ऐसे विभिन्न प्रश्नों से रचित प्रेमचंद की कहानियों ने पाठक वर्ग में जागृति निर्माण का कार्य किया।

द्वितीय उत्थान की कहानी का आरंभ 1926 से हुआ। यह वह समय था जब जयशंकर प्रसाद और मुंशी प्रेमचंद कहानी की यथार्थ भूमि को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करने लगे। कहानी की महत्ता अब तक बहुत विस्तृत हो चुकी थी। यह समय अवधि भारतीयों के लिए अधिक त्रासदायी थी। अंग्रेजी शासन के भीतर कहानी जागृति फैलाने का कार्य कर रही थी। यशपाल की मार्क्सवादी विचारधारा उनकी कहानियों में झलकने लगी। परंपरावादी रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न यशपाल की कहानियों ने किया। भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, गोविन्दवल्लभ पंत, जी.पी. श्रीवास्तव, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' आदि यथार्थवादी रचनाकार थे। जिन्होंने अपनी समस्याओं को कहानी के माध्यम से

जनसामान्य तक पहुँचाया। ‘तर्क का तूफान’, ‘अभिशाप’, ‘उसकी माँ’, ‘सनकी अमीर’, ‘काकी’, ‘हार की जीत’ आदि कहानियों ने पाठक वर्ग में जागृति निर्माण का कार्य किया।

तृतीय उत्थान की सीमा अवधि 1937 से 1947 तक का था। यह समय भारतीय साहित्यकारों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था। यह वह समय था जब भारत स्वतंत्रता का झंडा लहराने वाला था। प्रस्तुत कालावधि की कहानियाँ मुख्यत: क्रांति से संबंध रखती थी। जैनेंद्र कुमार की कहानी ‘नीलम देश की राजकन्या’, ‘वातायन’, ‘पाजेब’, रेणु की कहानी ‘लाल पान की बेगम’, ‘तीसरी कसम’, मार्कण्डेय की कहानियाँ- ‘हंसा जाई अकेला’, ‘गुलरा के बाबा’ आदि कहानियों ने पाठक वर्ग के भीतर कोलाहल की शुरुआत कर दी थी। यह समय विश्व युद्ध का था, जो बहुत लंबा चला था। लगभग 1931 से लेकर 1945 तक युद्ध चल रहा था। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव हर तरफ फैल रहा था। यशपाल की कहानियाँ इस दौर में मुख्य बनी। ‘वो दुनिया’, ‘तक का तूफान’, ‘ज्ञानदान’, ‘भस्मावृत चिनगारी’, ‘अभिशाप’ आदि। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानियाँ भी कहानी जगत को नारी शक्ति से जोड़ती है। ‘गेंदा बन जाऊँगी’, ‘कमीनों की जिंदगी’ में लेखिका ने नारी संवेदना को चित्रित किया है।

चतुर्थ उत्थान के अंतर्गत भारत को स्वतंत्रता मिलने का आनंद संपूर्ण भारतवासी मना रहे थे। नई कहानी का आंदोलन शुरु हो गया था। धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, हरिशंकर परसाई आदि कहानीकारों का यह दौर था। जैनेंद्र की कहानी ‘पाजेब’, अज्ञेय की ‘हजामत का साबुन’, ‘कलाकार की मुक्ति’, ‘नीली हँसी’, भैरव प्रसाद गुप्त की ‘इंसान’, ‘सितार के तार महफिल’, बलवंत सिंह की ‘हिन्दुस्तान हमारा’, ‘सुनहरा देश’, इन्तिजार हुसैन का कहानी संग्रह ‘गली-कूचे कंकरी’, भीष्म साहनी का कहानी संग्रह ‘भाग्यरेखा’, नलिन विलोचन शर्मा की ‘विष के दाँत और अन्य कहानियाँ’, अमृत राय का कहानी संग्रह- ‘प्याज के छिलके’, ‘मसान घाट’, ‘विलायती शराब’ आदि विभिन्न कहानीकारों ने अपने कहानी तथा कहानी संग्रह का प्रकाशन किया। भारत में बंदी न होने की

भावना इस समय के कहानीकारों के मन में थी। उन्होंने अपने देश प्रेम को खुलकर कागज पर उतारा।

पंचम उत्थान का समय कहानी जगत में नयी उम्मीद बनकर आया था। कहानी के विभिन्न आंदोलन का निर्माण इस समय के अंदर हुआ। नयी कहानी आंदोलन, अकहानी आंदोलन, सचेतन कहानी आंदोलन, समांतर कहानी आंदोलन, सक्रिय कहानी आंदोलन, जनवादी कहानी आंदोलन आदि का प्रादुर्भाव रहा। कहानी के स्वरूप का बदलता रूप चित्रित होने लगा। नारीवादी विचारधारा सामने आयी। अनेक महिला कहानीकारों की रचनाएँ स्त्री-चेतना को उजागर करने लगी। मन्नु भंडारी, मेहरुन्निसा परवेज, नासिरा शर्मा, कृष्णा सोबती, सुधा अरोड़ा आदि महिला लेखिकाओं ने कहानी के माध्यम से अपनी बात रखी। श्रीकांत वर्मा - 'शवयात्रा', ज्ञानरंजन- 'फेंस के इधर-उधर', महिप सिंह- 'उजाले का उल्लु', सुखवीर- 'दीवारें', कमलेश्वर- 'मानसरोवर का हंस', आशीष सिन्हा- 'आदमी', सुरेश सेठ- 'यंत्र पुरुष', धीरेन्द्र आस्थाना- 'लोग हाशिये पर', नवेन्दु- 'एक न एक दिन', असगर वजाहत- 'मछलियां', उदय प्रकाश- 'टेपचू', नमिता सिंह- 'काले अंधेरे की मौत', रमेश उपाध्याय- 'कल्प वृक्ष', शिवमूर्ति- 'कसाईबाड़ा', मार्कण्डेय- 'बीच के लोग' आदि कहानियाँ प्रकाशित हुई। प्रस्तुत कालावधि की कहानियाँ, कहानी जगत को एक नयी दिशा की ओर ले गई। साम्प्रदायिकता, पूंजीवाद, नारी शोषण की तीव्रता का प्रश्न खड़ा हो गया। कहानी का प्रत्येक दशक अपने आपसे कुछ अलग था। स्वातंत्र्यपूर्व कहानी तथा स्वातंत्र्योत्तर कहानी की पृष्ठभूमि में बदलाव का निर्माण हुआ। कहानी में विविधता को चित्रित किया गया। प्रत्येक कहानी अपने मूल तत्वों से उभरकर आ रही थी। शोषण, यौन उत्पीड़न, बाजारवाद, स्त्रीवादी धारणा, मध्यमवर्गीय की मौलिकता का खंडन आदि विविधताओं को कहानी की पृष्ठभूमि बनाकर कहानीकार कहानियों का निर्माण करने लगे। कहानीकार का समाज में चल रहे अनैतिकतावाद पर आक्रोश जाहिर होने लगा।

1.2.2 कहानी का अंतिम दशक (1990 ई. - 2000 ई.)

अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर निर्भर थी। कहानी जगत का यह मुख्य चरण था। आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिकता का दर्शन कहानी के माध्यम से सामान्य जन तक पहुँचाने का कार्य किया। वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में भारत बहुत आगे पहुँच चुका है। भूमंडलीकरण की वजह से देश के विकास के साथ-साथ देश में बेरोजगारी का परिमाण भी बढ़ गया। इन सबका परिणाम कहानी लेखन में भी देखा गया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाली कहानियों में सामाजिक व आर्थिक त्रासदी का चित्रण होने लगा। स्त्री-शोषण की पीड़ा का चित्रण होने लगा। विभिन्नता पूर्ण समाज का चित्रण विविध त्रासदियों से किया गया है। 'अंत में प्रार्थना' कहानी भी इसी त्रासदी का परिचय देती है। समाज में निर्मित आर्थिक समस्या एक परिवार को तोड़ देती है। उनकी भावना संवेदना सबको बिखेर देती है। प्रस्तुत उद्धरण उसी का उदाहरण है- "हम दोनों और हमारा परिवार धीरे-धीरे किसी गहरे कुएँ में उतर रहा है। हर कदम पर मृत्यु और असहायता का अंधकार घना होता जा रहा है। अपनी इन तीनों बेटियों की ओर देखो। यह उम्र ऐसा मरना और बदहवास चेहरा ढोने के लिए नहीं।"[1]

आधुनिकता का प्रभाव अधिक रहने की वजह से महानगरीय परिवेश की कहानियाँ इस दशक में अधिक लिखी गयी। 'हंस', 'मधुमती', 'वर्तमान साहित्य', 'भारतवाणी', 'कथन', 'कथादेश', 'वागर्थ', 'सारिका' आदि हिन्दी की प्रचलित पत्र-पत्रिकाओं में असंख्य कहानियाँ प्रकाशित हुई। कहानी आंदोलनों का प्रभाव कहीं न कहीं कम हो चुका था। पूंजीवाद का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। प्रेमचंद की कहानी की जो मुख्य पृष्ठभूमि थी वह आज बदल चुकी है। आज के प्रश्न कुछ अलग थे। अंतिम दशक के कहानीकारों ने कहानी की विषयवस्तु को मुख्यत: प्रदान किया। जिससे कहानी के मूल तत्वों को सही रेखांकित किया गया। इसी के साथ-साथ हिन्दी साहित्य जगत में उत्तर-आधुनिकता का प्रभाव भी जोर-शोर

[1] हंस पत्रिका (सितंबर 1992) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 61

से दिखने लगा। भूमंडलीकरण बढ़ने लगा। किसानों के हाथ की जगह विविध मशीनों ने ले ली। किसान वर्ग, मजदूर वर्ग बेरोजगारी के मार्ग पर उतर गया। डॉ. नीरज शर्मा का प्रस्तुत उद्धरण इसकी पुष्टि करता है- "भूमंडलीकरण के दौर में हर माल बिकाऊ बना। स्त्री सर्वाधिक बिकाऊ माल के रूप में सामने आई। तब न किसी को सर्वहारा की चिंता सताई और न मानवीय मूल्यों की रक्षा की। मूल्य तो हमेशा टूटते रहे किन्तु बनते भी रहे। आज बन रहे मूल्य केवल वर्ग-विशेष के रक्षक हैं।"[1] उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट होता है कि यह समय सभी स्त्री-पुरुष के लिए त्रासदी भरा था, जो मजदूर वर्ग से आते थे।

संवेदना एवं भाषा शैली के स्तर पर अंतिम दशक की कहानियाँ अपने प्रथम चरण में प्रवेश कर चुकी थी। अनेक रचनाकारों ने अपने विचार कहानी संग्रह में रखकर पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किये हैं। 'चक्रवात', 'तलछट का कोरस', 'खुली हुई नाव', 'कोसाफल', 'आदमी जात का आदमी', 'काला हांडी', 'कामरेड का कोट', 'घर-घर तथा अन्य कहानियाँ', 'समागम', 'नीली गाय की आँखें', 'धरातल', 'मैंने कुछ नहीं देखा', 'हिंगवा घाट में पानी रे', 'शामिल बाजा', 'निकम्मा लड़का', 'दरियाई घोड़ा', 'तिरिछ', 'वधस्थल', 'वह लड़की अभी जिंदा है', 'आखिर क्या हुआ', 'तंत्र तथा अन्य कहानियाँ', 'जंगलगाथा', 'खोज', 'तारीख का इंतजार', 'बीच रहेगी जिंदगी' आदि कहानियाँ।

कहानी के अंतिम दशक में सांप्रदायिकता का प्रभाव भी अधिक था। मानवीय संवेदनाओं को कोई महत्ता न देकर जातिवाद का युद्ध भीड़ हो चुका था। दलित, आदिवासी अपने स्थान के लिए, अपने हक के लिए साहित्य के माध्यम से लड़ते दिखाई देने लगे। विष्णु प्रभाकर ने 1994 में 'कर्फ्यू और आदमी' नामक कहानी का प्रकाशन किया। मानवतावादी विचारधारा से चलने वाले विष्णु प्रभाकर की कहानी सांप्रदायिकता पर सवाल खड़ा करने लगी। कमलेश्वर की कहानियाँ 'दालचीनी', 'इंतजार', 'कोहरा', 'शोक समारोह', 'सोलह

[1] अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प - डॉ. नीरज शर्मा, पृ.सं. 21

छतों का घर' आदि प्रकाशित हुई। कमलेश्वर की कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत थी। स्त्री-संवेदना, बाल संवेदना, राजनीतिक संवेदना ऐसे विभिन्न क्षेत्रों को कमलेश्वर ने कहानी में समेटा था। संवेदनाओं की सभी सीमाओं को तोड़ती कहानी 'डायन' भीष्म साहनी द्वारा 1998 में प्रकाशित हुई। भीष्म साहनी का यह कहानी संकलन अंधविश्वास के आधार पर रचा गया है। रामदरश मिश्र की कहानियाँ 'आज का दिन भी', 'एक कहानी लगातार' इनके स्वयं अनुभव या यूँ कहें उनके जीवन का भाग है। शैक्षणिक दौर के अपने अनुभवों को उन्होंने कहानी में उतारा है। कहानी के अंतिम दशक में ममता कालिया की कहानियाँ भी बहुचर्चित रही। ममता कालिया की कहानियाँ स्त्री को केन्द्र में रखकर रची गयी थीं। जैसे 'बोलने वाली औरत', 'उनके जाँच अभी जारी है' कहानियाँ मध्यमवर्गीय महिलाओं को केन्द्र में रखकर लिखी गयी थी। समाज में रहने वाला मनुष्य किस तरह अपनी जीवनी को बिताता है। शिक्षित स्त्री की मानसिकता का विवरण, दांपत्य जीवन का उल्लेख, इन सभी घटनाओं को कहानी में बांधा गया है। मेहरुन्निसा परवेज भी अंतिम दशक में कहानी लेखन के कार्य में सक्रिय थी। 'अम्मा', 'समर', 'रिश्ते', 'ढहता कुतुबमीनार' और 'बूँद' आदि कहानियों की रचना परवेज ने की थी। मेहरुन्निसा परवेज की कहानियों में आदिवासी समाज का दर्पण चित्रित होता है। स्त्री विधा की इनकी कहानियाँ प्रेरित करने वाली होती हैं। उदय प्रकाश की कहानी 'पाल गोमरा का स्कूटर' मानवतावाद का सटीक उदाहरण है। किस तरह मनुष्य अपनी उलझनों से बाहर न निकलकर वहीं पिसता रहता है। किस तरह समाज उसे अपने आपसे वंचित करता है, इसका मार्मिक चित्रण 'पाल गोमरा का स्कूटर' कहानी के अंतर्गत मिलता है।

कहानी मनुष्य जीवन का आईना है। जो कहानीकार के जरिए समाज का सही चित्र पाठक वर्ग को प्रस्तुत करता है। सन् 1900 से सन् 2000 तक कहानी जगत में अनेक बदलाव आए। प्रत्येक दशक में कुछ न कुछ नयापन था। सभी विद्वानों ने अपने-अपने विचार सामने

लाए। कहानियों के माध्यम से महान रचनाकारों के विचारों को समझने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रेमचंद की विचारधारा, जयशंकर प्रसाद का कहानी भाव, उदय प्रकाश का सामाजिक क्षेत्र, ममता कालिया का स्त्री-पक्ष आदि सभी से आत्मसात करने का अवसर आज की पीढ़ी को मिल पाया है। समाज में आए पिछले सौ वर्षों के कालावधि का समय मनुष्य को बहुत कुछ सिखला गया है। यथार्थ उकेरती यह कहानियाँ मानव जीवन का गहरा हिस्सा हैं, जिसे मनुष्य अपने आप से दूर नहीं हो सकता और वह दूर होना भी नहीं चाहता।

1.3 इक्कीसवीं सदी का कहानी जगत में पदार्पण (2001 ई. - 2010 ई.)

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानी उत्तर-आधुनिकता को लांघकर आगे बढ़ चुकी है। जैसे प्रत्येक दिन एक जैसा नहीं होता, वैसे ही कहानी की प्रत्येक सदी एक बराबर नहीं होती। मेरे शोध का विषय इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक है। इक्कीसवीं सदी में अनेक युवा विद्वानों ने अपनी रचना का प्रारंभ किया। भारतीय समाज अब विचारों से स्वतंत्र है। परंतु यह स्वतंत्रता मनुष्य किस तरह और कहाँ उपयोग करता है, इसमें मनुष्य पर कोई रोक नहीं। शायद इसीलिए आज इक्कीसवीं सदी में आकर भी दलित और आदिवासी के हक की लड़ाई जारी है। स्त्री-शोषण के किस्से आज भी हर रोज सुनने को मिलते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से आज मनुष्य मंगल तथा चाँद पर पहुँच गया है। परंतु धरती पर आज भी वह अंधविश्वास की जिंदगी गुजार रहा है। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ मनुष्य के प्रश्न को हर एक समय उकेरती दिखाई देती है। आज की कहानी स्वतंत्रता संग्राम की नहीं, जिसे देश की आजादी दिलानी है, बल्कि इसी देश में रह रहे मनुष्यता की स्वतंत्रता की कहानी है। जहाँ मनुष्य, मनुष्य में अंतर समझता है। जहाँ जातिवाद का बड़ा प्रश्न है। आज का मनुष्य अपने कर्मों से न जानकर उसकी जाति से जाना जाता है कि वह बड़ा है या छोटा। भारत देश को अंग्रेजों से स्वतंत्रता 1947 में ही मिल गयी। परंतु आज भी मनुष्य अपने मानसिक विचारों से स्वतंत्र नहीं हो पाया है।

अंतिम दशक की कहानियों में सांप्रदायिकता, जातिवाद, पूँजीवाद के जो प्रश्न खड़े थे, उनका उत्तर इक्कीसवीं सदी में आकर भी नहीं मिल पाया है। आज भी बाजारवाद के दुष्परिणाम सामान्य मनुष्य सह रहा है। इक्कीसवीं सदी का युग आधुनिकता के परे जाकर कहानियों में नवीनता का भाव कहीं-कहीं प्रस्तुत कर रहा है। इक्कीसवीं सदी में विमर्श के विविध आयामों को देखा गया। जैसे वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, मजदूर विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श आदि। अद्यतन समय की कहानी नयी पीढ़ी नयी सोच के साथ आगे बढ़ी। कहानी के अंतर्गत प्रतीक एवं बिंबों का प्रयोग सटीक रूप होने लगा। इक्कीसवीं सदी की कहानी की भाषा पाठक वर्ग को आकर्षित करने वाली थी। मुहावरे एवं लोकोक्तियों से पूर्ण कहानी पाठक को और पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। समयानुसार परिवर्तन आना आवश्यक है। कहानी जगत में भी यह परिवर्तन चित्रित होता है। कहानीकारों ने संपूर्ण पृष्ठभूमि को कहानी में समाहित किया है। कहानी के बदलते आयाम कहानी की एक नयी पहचान है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों की परिस्थितियाँ अंतिम दशक से अधिक भिन्न नहीं थी। उत्तर आधुनिकता के रहते, सभी क्षेत्रों में यंत्रीकरण होकर मजदूर वर्ग की परिस्थितियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। औद्योगीकरण, बाजारवाद, भूमंडलीकरण इन सबका प्रभाव मनुष्य के साथ-साथ साहित्य जगत पर भी हुआ। नयी-नयी टेक्नोलॉजी ने मनुष्य का काम आसान करते हुए समय का भी नियंत्रीकरण होने लगा। परंतु इन सबमें मजदूर वर्ग और अधिक पीछे हो गया। उनके रोजगार कम हो गये। प्रेमचंदयुगीन कहानी की जो पृष्ठभूमि थी उसका आगमन फिर से इक्कीसवीं सदी में होने लगा, ऐसा महसूस होने लगा।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में पाश्चात्य भाषाओं का प्रभाव भी अधिक देखने को मिला। अरबी, फारसी, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कहानी में कहीं-न-कहीं देखने को मिल ही जाता है। शिल्पगत विशिष्टता भी कहानी में प्रचलित हुई। समय के साथ-साथ समाज एवं संस्कृति में बदलाव होने लगता है। कहानी काल्पनिक एवं यथार्थ दोनों परिस्थितियों में रची

जाती है। पहले समय में 'पंचतंत्र' जैसे काल्पनिक कहानियों का युग आज का नहीं है। मनुष्य बहुत आगे बढ़ चुका है। वैज्ञानिक क्षेत्र में इस कारण कहानी की पृष्ठभूमि भी काल्पनिक से अधिक यथार्थ को छूने लगी। आज के समय का सत्य कहानी को अधिक तीव्र एवं आक्रोशजनक बनाने लगा। कहानीकार की भेदभाव के प्रति सोच शब्दों के जरिए बाहर आने लगी। मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलने लगी। एक तरफ स्त्रियाँ स्वावलंबी बनती दिखाई दी, तो दूसरी ओर स्त्री-शोषण, उत्पीड़न की कहानियाँ सामने आयी। जल-जंगल-जमीन तक सीमित न रहकर आदिवासी कहानीकार राजनैतिक स्तर पर अपना अधिकार मांगते हुए चित्रित हुए। मेहरुन्निसा परवेज का कहानी संग्रह 'मेरी बस्तर की कहानियाँ' में ऐसे ही राजनीति के क्षेत्र में बढ़ती स्त्री का चित्रण दिखाया गया है।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक विभिन्न प्रश्नों को लेकर पाठक के सामने आया है। दलित वर्ग की परिस्थितियों का आकलन बड़ा हो चुका है। सुशीला टाकभौरे का कहानी संग्रह 'संघर्ष', कविता का कहानी संग्रह 'उलटबाँसी', ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सलाम', 'घुसपैठिये' आदि कहानियों में आक्रोश भरी भावना को पाठक वर्ग आसानी से समझ सकता है। समाज का एक शोषित वर्ग जो सदियों से पानी के लिए लड़ रहा है, ऐसे समाज के हाथ में कलम आकर परिदृश्य ही बदल देता है। आज यह समाज पानी तथा नमक के लिए नहीं बल्कि अपने संवैधानिक हक के लिए लड़ता सामने आ रहा है।

इक्कीसवीं सदी में महिला कहानीकारों का प्रादुर्भाव अधिक रहा। मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'कठपुतलियाँ', कविता की 'मेरी नाप के कपड़े', अनिता गोपेश की 'कित्ता पानी', सूर्यबाला की 'गौरी गुनवंती', चित्रा मुद्गल की 'लपटें' आदि कहानी संग्रह में स्त्री के विभिन्न रूपों से पाठक वर्ग परिचित होता है। कामकाजी महिला के साथ-साथ दांपत्य जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री का चित्रण भी है। किसी कारणवश वेश्यावृत्ति करने की विवशता का चित्रण भी है। सामाजिक गतिविधियों के साथ-साथ राजनीति के घेरे में जाती स्त्री का भी चित्रण

कहानियों में किया गया है। पति विद्रोह करती महिलाएँ, अपने अस्तित्व की पहचान ढूँढती महिलाएँ आदि का चित्रण भी दिखाया गया है। इक्कीसवीं सदी के कहानी का परिदृश्य अभी इतना विस्तृत नहीं है, फिर भी प्रत्येक वर्ग की कहानी का समावेश प्रथम दशक में हुआ है। जागरुकता के कारण प्रथम दशक की कहानियों में अंधविश्वास, जादू-टोना, रूढ़ि, परंपरा आदि का प्रचलन पहले के परिमाण से आज के दशक में कम होता नजर आता है। उसी तरह भारतीय संस्कृति का कहीं-न-कहीं ह्रास होता भी चित्रित किया गया है। धर्म के आधार पर जीवन का मापदंड करना थोड़ा कम हुआ है। साहित्यकार जागृत हुआ है। उनकी रचनाओं में सदी की विशेषता का सुख प्राप्त होता है। कहानीकार का मूल उद्देश्य भले ही संपूर्ण होता दृश्यित होता हो, परंतु प्रथम दशक में कहीं-न-कहीं अधूरापन आज भी बाकी रह गया है।

1.3.1 इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की पृष्ठभूमि

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियाँ नये-नये प्रश्न को उकेरती हुई प्रस्तुत हुई है। प्रथम दशक तक आते-आते कहानी जगत में विभिन्न बदलाव हुए। कहानी की सीमाएँ बदल चुकी थी। कहानी के संवाद तथा कथावस्तु को प्रधानता प्राप्त हुई। इसी कारण कहानी अधिक मात्रा में प्रचलित होने लगी। इक्कीसवीं सदी की कहानी की परिस्थितियाँ अंतिम दशक से अलग है। परिवर्तित होती कहानी की पृष्ठभूमि में ही बदलाव होने लगा। प्रथम दशक की कहानियों में संवेदनाओं को वाणी प्राप्त हुई। सत्ताधारी, मजदूर, पूंजीवादी, किसान आदि सबका चित्रण कहानियों में अधिक होने लगा। जीवन के यथार्थ को कहानीकार कहानी में बांधने लगा। पुरानी रूढ़ियों, परंपराओं को तोड़कर रचनाकार ने अपनी रचना का निर्माण किया। पारिवारिक संबंधों के साथ-साथ समाज से मनुष्य को जोड़ने का कार्य इक्कीसवीं सदी की कहानी ने किया। कोई भी रचनाकार अपने जीवन में बदलाव इतनी आसानी और इतनी जल्दी नहीं ला सकता। परंतु उसी धैर्य के साथ प्रथम दशक के रचनाकारों ने अपनी रचनाएँ कीं। कहानी मानवी मन को व्यक्त करने की सरल विधा है। जिससे मनुष्य आसानी से जुड़ सकता है।

इक्कीसवीं सदी के कहानी के पात्र पहले की कहानी के समय से अधिक पढ़े-लिखे हैं। शिक्षा की श्रेणी का वर्चस्व अधिक बड़ा था। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष भिन्नता को इस दशक में देखा नहीं गया। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों की पृष्ठभूमि आसानी से समझने के लिए कहानियों को धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक माहौल में विभाजित किया गया है।

1.3.1.1 धार्मिक तथा सांप्रदायिक परिवेश

भारत विभिन्नता के लिए पूरे विश्व में जाना जाता है। यह विभिन्नता मनुष्य की भाषा के साथ-साथ उसके रहने के तरीके में तथा धर्म में भी होती है। बचपन से ही बच्चों को हिन्दू-मुस्लिम, सिख-ईसाई इन धर्मों में बाँटा गया है। यही धार्मिक आचरण उसके रहन-सहन में भी प्रतीत होता है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। फिर भी उसकी पहचान उसके नाम से ही होती है। बच्चा जिस धर्म में जन्म लेता है वही नाम उसे मिलता है। राजाराम भादू के अनुसार- "धर्म से व्यक्ति का विचलन एक पाप-बोध पैदा करता है। मनुष्य की चेतना की अपनी सीमा है। चूँकि धर्म से विचलन अर्थात सत्य, न्याय और पुण्य जैसी धारणाओं का अतिक्रमण कर मनुष्य भौतिक सुख-सुविधा तो अर्जित कर लेता है, किंतु मानसिक रूप से 'पाप बोध' या 'अपराध ग्रंथि' का शिकार हो जाता है।"[1] उपरोक्त वाक्य से यह समझ सकते हैं कि मनुष्य पाप तथा पुण्य की जटिलताओं के बीच फंसा हुआ है। उसकी मानसिकता उसे आगे बढ़ने नहीं देती तथा उसकी वैचारिकता को वहीं कहीं दबा देती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में धार्मिकता का विवरण भी जगह-जगह चित्रित किया गया है। सांप्रदायिकता का विश्लेषण करती हिन्दी कहानी धर्म के आधार को आगे लेकर बढ़ी है। सांप्रदायिकता दो मतों को बांटने का कार्य करती है। हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता का परिचय देती कहानी 'मैं हिन्दू हूँ' असगर वजाहत का कहानी संग्रह सटीक उदाहरण है।

[1] धर्म सत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति - राजा राम भादू, पृ.सं. 128

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज से मनुष्य का जुड़ाव सहज है। परंतु इसी समाज में मनुष्य को धर्म के नाम पर विभाजित किया जाए तो वह सही नहीं होगा। धर्म मनुष्य को जन्म से ही एक-दूसरे से अलग कर देता है। हिन्दू-मुस्लिम की भावना भारतवर्ष में सबसे अधिक भयावह है। सांप्रदायिकता मनुष्य को मनुष्य से दूर कर देती है। सांप्रदायिकता के संबंध में प्रो. मंजुला राणा का मत है- "अपने आप को सर्वश्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति कहीं-न-कहीं सांप्रदायिकता के लिए उर्वरा शक्ति का कार्य करती है। मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ, मेरा परिवार, मेरी जाति, मेरा संप्रदाय, मेरा समाज, मेरा राष्ट्र ही सर्वोत्तम है- यह भावना सांप्रदायिकता के केन्द्र में होती है। अपने आप को सर्वश्रेष्ठ तथा औरों को दीन-हीन-मलिन-नीच-पतित-नकारा-घृणास्पद मानना ही मोटे तौर पर सांप्रदाकियता है।"[1] धर्म मनुष्य को विभाजित करता है। धार्मिक वैचारिकता कहानीकार का परिवेश कभी नहीं होना चाहिए। उस वस्तु का क्या उपयोग जो एक-दूसरे को जोड़ने के बदले एक-दूसरे को तोड़ने का कार्य करे। धर्म एक ऐसी संकल्पना है जो धार्मिक आडम्बरों को मनुष्य के बीच बांटती है। पाप-पुण्य की परिभाषा देना, हमारा समाज अच्छे-बुरे का होश न रखकर अंधकार भरी दुनिया में आगे बढ़ता जाता है।

धार्मिकता के नाम पर बढ़ता व्यापार मनुष्य को अंधकार की तरफ खिंचता चला जा रहा है। धर्म के नाम पर होता व्यापारीकरण मनुष्य को सोचने समझने की बुद्धि प्रदान नहीं करता। परंपरावादी अपना देश मनुष्य की आत्मीय भावनाओं को न समझकर बाहरी आडम्बरों में फंसता जा रहा है। भारत देश का विभाजन मुख्य घटना थी, जिसने भारत-पाकिस्तान को विभाजित कर दिया। उसी से भारत में हिन्दू-मुस्लिम समाज की सोच बदलने लगी। मनुष्य को मनुष्य की भांति न समझकर एक-दूसरे का शत्रु समझने की शुरुआत हो गई। जो आज तक रूकी नहीं है। यह कहां तक का ज्ञान समझा जा सकता है जहाँ मनुष्य ही मनुष्य के जीवन पर हावी हो जाता है। भारत 1947 में अंग्रेजों से तो स्वतंत्र हो गया, परंतु वह अपनी

[1] दसवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में सांप्रदायिकता सौहार्द्र - प्रो. मंजुल राणा, पृ.सं. 73

विचारधारा का गुलाम बन गया। भारत विभाजन का भयावह परिणाम दोनों राष्ट्रों के निवासियों को भुगतना पड़ा। धर्म के आडम्बरों में फंसे कुछ लोगों की वजह से संपूर्ण राष्ट्र को उसका शिकार बनना पड़ता है। यह कोई एक धर्म का व्यक्ति नहीं बल्कि सभी धर्मधारी मनुष्य करते हैं। डॉ. शिवकुमार मिश्र के अनुसार- "सांप्रदायिकता वस्तुत: आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद का विरोध करते हुए जन्मी है, राजनीतिक सत्ता हथियाना जिसका लक्ष्य है।"[1] प्रस्तुत उद्धरण स्पष्ट करता है कि धार्मिक आड़म्बरों की सहायता लेकर सत्ताधारी मानव अपनी जरूरतों को पूर्ण करता है। धर्म और संप्रदाय के आंचल में ढके सत्ताधीश अपनी मानसिकता को बदल नहीं सकते। क्योंकि वह उस चीज के आदी हो जाते हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में ऐसे ही आडम्बरों का चित्रण जगह-जगह पाठक को मिलता है। धार्मिकता में फंसे मनुष्य की विचारशीलता कभी उसे आगे का सोचने नहीं देती, यही बड़ी विडम्बना है जो मनुष्य सही वक्त पर समझ नहीं पाता। धार्मिक माहौल में बड़े होते बच्चे अपने साथ धार्मिक विचारों का गठरा साथ में लेकर बड़े होते हैं। जो बाद में जाकर देश में जहर फैलाने का कार्य करते हैं।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में कहानी का विस्तृत स्वरूप सामने आया। आलोच्य युग में शिक्षा का प्रादुर्भाव होते हुए भी, जाने-अनजाने मनुष्य अपनी वैचारिकता को सोचने के बजाय दूसरे के गलत विचारों में भाग लेना अधिक महत्वपूर्ण समझता है। शायद यही प्रवृत्ति उसे आगे का सोचने नहीं देती। धार्मिक विचारधारा में फंसे लोग राजनीतिकरण और व्यावसायीकरण का व्यापार शुरू कर देते हैं। भोले-भाले मनुष्य को धर्म के नाम पर ठगकर पैसा कमाने की वृत्ति कहां तक सही हो सकती है। भारत देश में जितने प्रांत हैं उतने धर्म हैं। प्रत्येक धर्म का धर्म-गुरु अपना उल्लू सीधा करने के लिए बेचारी जनता को मूर्ख बनाता है। 'पेशावर एक्सप्रेस' कहानी के अंतर्गत उद्घारित यह संवाद- "नं. 2 प्लेटफार्म पर दूसरी गाड़ी

[1] कथाक्रम (जुलाई-सितंबर 2003) - डॉ. शिवकुमार मिश्र, पृ.सं. 68-69

खड़ी थी। ये अमृतसर से आई थी और इसमें मुसलमान शरणार्थी बंद थे। थोड़ी देर बाद मुस्लिम सेवक मेरे डिब्बे की तलाशी लेने आए। और गहने, रुपये और दूसरा कीमती सामान शरणार्थियों से ले लिया गया। .... और पचास मुस्लिम औरतों का अपहरण कर लिया गया था।"[1] प्रत्येक धर्म ने स्त्री को लाचार समझने का काम किया है। जो वह बिल्कुल नहीं है। कभी-कभी परिस्थिति ऐसी होती है जहाँ वह कुछ कर नहीं पाती। उस स्त्री की लाचारी कहाँ गयी। स्त्री कोई भी धर्म की भी हो उसे हमेशा हाथ की कठपुतली माना गया। जो हाथ में बंधे धागे से उसे कोई भी इस्तेमाल कर सकता है। स्त्री भी पुरुष की ही भाँति हाड़-मांस से बनी है। क्या उसके अंदर कोई अपनेपन की भावना का निर्माण नहीं कर सकता। धार्मिक धरातल पर ठहरी जोहर सती प्रथा बस औरतों के लिए ही क्यों बनाई गई। ऐसा कोई धार्मिक मानदंड पुरुषों के लिए क्यों नहीं बनाया गया। ऐसे ही असंख्य सवालों में उलझी स्त्री अपने आप में उत्तर ढूंढती रहती है।

धार्मिकता की जटिलता में फँसा हुआ मनुष्य दूर की सोच नहीं रख पाता। शायद इसलिए वह नीचे-नीचे धंसता चला जाता है। धार्मिक क्षेत्र में रची कहानियों का परिवेश मनुष्य की मानसिकता को अंदर ही अंदर खा जाता है। जिससे मनुष्य में सोचने की क्षमता बाकी नहीं रहती। सुधा अरोड़ा की कहानियाँ भी इन्हीं धार्मिक तथा सांप्रदायिक विडम्बनाओं में ग्रस्त हैं। पाठक वर्ग सोचने के लिए विवश होता है कि आखिर कौन से परिवेश में लेखक ने यह रचनाएँ रची होगी। सुधा अरोड़ा की कहानी 'काला शुक्रवार' इसी वैचारिकता को प्रस्तुत करती है। दंगों में फंसे साधारण मनुष्य की परिस्थिति कितनी विकट हो सकती है। उसे सोचने पर मजबूर कर देती है कि वह आज घर जिंदा जाएगा या फिर उसकी लाश। सांप्रदायिकता के दंगों ने मनुष्य को लाचार कर छोड़ा। सुधा अरोड़ा सांप्रदायिकता के दंगों के बारे में कहानी में खुले मन से लिखती हैं कि- "मुहल्ले में दहशत तो थी ही इस सारे खून-खराबे और दिन-दहाड़े

[1] विभाजन की कहानियाँ - सं. मुशर्रफ आलम ज़ौक़ी, पृ.सं. 114

चलती गोलियों और हथगोलों की आवाज का और उससे भी ज्यादा दहशत और सन्नाटे का असर मीराज़ के तीन साल के बेटे अली नवाज पर ऐसा पड़ा कि वह जिससे अपनी उम्र के लिहाज़ से वैसे भी देर से बोलना शुरू किया था, अचानक अपनी आवाज़ खो बैठा।"[1] दंगों ने बड़े-बूढ़ों के साथ-साथ छोटे बच्चों को भी नहीं छोड़ा। इस तरह धर्म मनुष्य के भीतर विष घोलने का कार्य करता है।

प्राचीन काल से भारतीय समाज में ईश्वर की उपासना की जाती है। उस समय नदी, पेड़, पत्थर आदि को ईश्वर का स्वरूप माना गया एवं उसकी पूजा अर्चना की जाने लगी। तब शायद अपने पूर्वजों का मुख्य ध्येय रहा होगा इन सबकी रक्षा करना। अर्थात पेड़ों को ईश्वर समझने के पश्चात उसे काट नहीं सकते। नदी को खराब नहीं कर सकते। परंतु आज के समय में यह पूर्णत: विपरीत होता दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी की पृष्ठभूमि ऐसी वैचारिकता को लेकर आगे बढ़ी है। हिन्दी कहानी जगत की यही विशेषता है कि परिस्थिति अच्छी हो या बुरी उसको लेकर आगे बढ़ना। धर्म के आडम्बरों ने धार्मिकता की परिभाषा ही बदल दी। जिसे आज की पीढ़ी मानना नहीं चाहेगी। अमानवीय विचारों से मनुष्य धर्म की कुरीतियों को आगे बढ़ाता है। कहानी की औपचारिकता है कि वह समाज की सच्चाई या यूँ कहें समाज के यथार्थ भाव को श्रोताओं से परिचित करवाती है। कहानी एक जरिया है जो मनुष्य के मन को पढ़ सके। उसकी विचारशीलता को समझ सके। मानवीय संवेदनाओं का परिचय देती हिन्दी कहानी अपने भीतर बहुत कुछ समेटकर बैठी है। महाश्वेता देवी का कहानी संग्रह 'आदिवासी कथा' भी धार्मिक आडम्बरों का जीता-जागता उदाहरण है। किस तरह से एक औरत को डायन बना दिया जाता है। बस क्यों, क्योंकि वह विधवा है। उसे समाज से बाहर कर दिया जाता है। उसको कहीं भी देख लेना शापित माना जाता है। महाश्वेता देवी ने स्त्री की विवशता

[1] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 18

को समाज धर्म के नाम पर किस तरह उसके मजे लूटता है उसका चित्रीकरण किया है। मनुष्य की सोच इस प्रकार छोटी भी हो सकती है इसका उदाहरण है 'आदिवासी कथा'।

सूरजपाल चौहान का कहानी संग्रह 'नया ब्राह्मण' की कहानियाँ भी जातिवाद को दर्शाती हैं। क्यों लेखक को कहानी का शीर्षक 'नया ब्राह्मण' देना पड़ा। इसका उत्तर मुझे कहानी पढ़ने के बाद पता चला। रूढ़ीवादी परंपरा ने मनुष्य के सच्चे और अच्छे विचारों को आगे न बढ़ाते हुए, जातिवाद के पिंजरे में मनुष्य को पकड़कर रखा है। मनुष्य सभी एक जैसे ही होते हैं। दो पैर, दो हाथ, आँख, नाक सब कुछ वही होता है, तो फिर क्यों जाति के नाम पर मनुष्य को बांटा जाता है। छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच आदि सभी क्यों बनाया गया। कहानी पाठक के मन में आक्रोश का परिवेश आसानी से निर्माण कर लेती है। अगर वह पाठक संवेदनशील हो तो ही। धार्मिक एवं सांप्रदायिक धरातल पर ठहरी इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ मनुष्य की वैचारिकता को अंदर ही अंदर खोखला बनाते जा रही है। धर्म का प्रचार करने वाले धर्मगुरु पर विश्वास न करके अपने अच्छे विचारों से मनुष्य अगर एक दूसरे को देखे तो यह धर्म का प्रचार करने वाले व्यक्ति किसी भी प्रकार से सामान्य जनता को धोखा नहीं दे सकते।

धार्मिक एवं सांप्रदायिक माहौल कहानी की परिधि को माप नहीं सकता। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक ऐसे विभिन्न प्रश्नों से जुड़ा है जहाँ मनुष्य-मनुष्य के भीतर विभिन्नता है। जहाँ मनुष्यता से पहले धर्म स्थान लेता है। धार्मिक आडम्बरों में फंसे मनुष्य को बाहर निकालना आसान नहीं। विडम्बनाओं में फंसा इंसान सोचने की विचारशीलता को खो बैठता है। इसीलिए धर्म के नाम पर पाखंडी अपना काम निकाल लेते हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें धर्म के नाम पर व्यावसायीकरण का कार्य किया जाता है।

1.3.1.2 सांस्कृतिक परिवेश

मनुष्य की पहचान उसकी संस्कृति से मानी जाती है। संस्कृति मनुष्य का आचरण है जो उसे जन्म से ही निभाना पड़ता है। संस्कृति का प्रभाव मनुष्य की मानसिकता पर भी पड़ता

है। प्रत्येक प्रांत की अपनी एक अलग संस्कृति होती है। भाषा, पहनावा, रहने का स्थान, आचार-विचार यह सभी घटक संस्कृति के अंतर्गत माने जाते हैं। संस्कृति ऊँच-नीच की भावना को नहीं मानती, बल्कि विविधता में एकता का भाव निर्माण करती है। संस्कृति के संबंध में समझाते हुए रमेश उपाध्याय और संज्ञा उपाध्याय लिखते हैं- "संस्कृति मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली और उसके जीवन को अर्थ देने वाली प्रक्रिया है। लेकिन आज की दुनिया में वह एक विराट उद्योग और भूमंडलीय व्यापार की वस्तु भी बन गयी है। सांस्कृतिक उत्पादन और उपभोग की प्रक्रियाएँ पहले धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, नैतिकता और जीवन-शैली से जुड़ी होती थी, लेकिन अब उनमें ऐसी व्यावसायिकता आ गयी है कि संस्कृति का सवाल उद्योग, व्यापार, राजनीति, अर्थव्यवस्था, नैतिकता और समाज-व्यवस्था के तमाम सवालों से जुड़कर अत्यंत महत्वपूर्ण और बड़ा सवाल बन गया है।"[1] इक्कीसवीं सदी का सांस्कृतिक परिवेश में कहानियों में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव अधिक तीव्र प्रतीत होता है। भाषा एवं व्यवहार से संस्कृति को समझा जाने लगा। कहानी में बाजारीवाद की भावना का प्रचलन होने लगा। पुष्पपाल सिंह की कहानी 'वैश्विक गाँव का आदमी' में तेजी से बढ़ता प्रचलन, जिसे हम स्टाइल के नाम से उल्लेखित करते हैं, उसके संबंध में चर्चा की है। शहरों में हर तरफ छा रहे सेन्ट्रल माल्स, सिटी माल्स के घेरे में सामान्य मनुष्य किस तरह आकर्षित होता जा रहा है, इसका मार्मिक चित्रण इन कहानियों में देखने को मिलता है। गाँव से बाहर आए छोटे-छोटे बच्चों को भी अभी माल्स की सैर करनी है। पाश्चात्य संस्कृति के रहते, भारतीय संस्कृति का ह्रास होता दिखाई देता है। राजकुमार गौतम का कहानी संग्रह 'कब्र तथा अन्य कहानियाँ' में भी बाजारीकरण का यही दृश्य देखने को मिलता है। किस तरह विदेशी चीजों को व्यापारीकरण अपने देश में करके अपने देश को हम खुद बेरोजगार बना रहे हैं, इसका सटीक उदाहरण यह कहानी संग्रह है। पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण में आकर हम

[1] संस्कृति और व्यावसायिकता - रमेश उपाध्याय, पृ.सं. 7

खुद का नुकसान कर रहे हैं, इसकी भावना सामान्य मनुष्य समझ नहीं पा रहा है। और वह अंधा बनकर उसी मार्ग पर आगे बढ़ता जा रहा है। जैसे वह खुद अपनी कब्र की ओर चलता जा रहा है। विदेशी वस्तुओं के रहते देशी बाजार पूरा बंद हो गया। विदेशी चीजें कम दाम पर और ज्यादा आकर्षित मिलने लगी। इसी का फायदा विदेशी कंपनियाँ देशी व्यापारों से लूटने लगी। देश का भला या बुरा सोचना हमारे खुद के हाथों में है, यह मनुष्य क्यों नहीं समझ पाता यही बड़ा सवाल कहानियों के माध्यम से रचनाकार पाठक वर्ग को बताना चाहते हैं। अपनी मिट्टी की खुशबू कुछ और ही होती है। क्यों कुत्ते की दुम की तरह विदेशी चीजों के आकर्षण में खुद का अस्तित्व भूल रहे हैं। कहानी अपने आप में एक बड़ी गाथा है। कहानी पाठक वर्ग तक किसी भी हाल में पहुँच सकती है। चाहे वह श्रावक कहानी हो या वाचक कहानी हो। वह अपने पाठक स्वयं ही ढूंढ़ लेती है।

संस्कृति सभ्यता की पहचान होती है। सभ्यता मानवतावाद का परिचय होता है। परंतु संस्कृति की पहचान ही बदलने लगे तो फिर मनुष्य को पहचानना ही मुश्किल हो जाएगा। एक राज्य से दूसरे राज्य में पैर रखते ही वहाँ की मिट्टी की अलग खुशबू, भिन्न पहनावा, भिन्न बातें इन सबसे मनुष्य आकर्षित होकर वहाँ की संस्कृति के बारे में जानने के लिए आतुर हो जाता है। परंतु जब इन्हीं संस्कृतियों का ह्रास अगर होने लगे तो यह भिन्नता हम कैसे देख पाएंगे। आधुनिक संस्कृति बाजारीकरण पर विश्वास करती है। फैशनेबल कपड़े पहनना, पाश्चात्य वैचारिकता का अनुकूलन करना ये कहीं-न-कहीं पूंजीवादी सत्ताधारियों की संस्कृति है। जो भारतीय संस्कृति को मिटाकर अपने नए वैचारिक मूल्यों पर आगे बढ़ रही है। ज्ञान प्रकाश विवेक का कहानी संग्रह 'शिकारगाह' इसी विवशता की पुष्टि करता है। भारत की राजधानी कहा जाने वाला शहर दिल्ली जो आज पाश्चात्य संस्कृति के नीचे पूर्णत: दब चुका है, बेरोजगारी के घेरे में स्त्री-पुरुष दोनों ही फंस गए हैं। अब दौर चल रहा है रात में चमकने वाले घरों का। जो बिजली इन बड़े-बड़े दुकानों में बर्बाद की जाती है ग्राहक को आकर्षित

करने के लिए, लेकिन उसके निर्माण के लिए कितनी सामान्य जनता को अपने खेत-खलिहान का त्याग करना पड़ रहा है। यह पूँजीवादी संस्कृति समझ नहीं पा रही, या यूँ कहें समझना नहीं चाहती है। ज्ञान प्रकाश विवेक का 'शिकारगाह' भारतीय संस्कृति-ह्रास को पाठक वर्ग के सामने लाता है। 'तमाशा', 'बंधुआ', 'इमारतें', 'शिकारगाह', 'शिखर पुरुष', 'रिफ्यूजी कैम्प' आदि कहानी बढ़ती पूंजीवादी संस्कृति का विश्लेषण करती है। कहानीकार अपने मन की तीव्र भावना से संस्कृति को कहीं-न-कहीं खत्म होते देख रहा है। इसलिए प्रस्तुत कहानियों में संस्कृति का बदलाव बाजारीकरण में किस तरह से हो रहा है, इसे मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है।

इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ यह सोचने पर मजबूर करती है कि क्या सच में हमें भारत की खूबसूरत संस्कृति का इस तरह से नाश होने देना चाहिए? खुद को मारकर जिंदा लाश की तरह जीवन व्यतीत करना क्या सही बात होगी? नासिरा शर्मा का कहानी संग्रह 'औरत के लिए औरत' में लेखिका ने दो पीढ़ियों के भीतर के द्वंद्व को रेखांकित किया है। स्वतंत्रता शब्द का दुरुपयोग हो रहा है। हमारी पुरानी पीढ़ी उनके आचार-विचार, संस्कृति पूर्णत: भिन्न थी। आज चकाचौंध भरी दुनिया से उनका कोई वास्ता नहीं है। यही टकराव नासिरा शर्मा की कहानियों में रेखांकित किया गया है। आज की पीढ़ी आसानी से अपने काम को निकालने में विश्वास करती है। मशीनीकरण के रहते घरेलू सभी कामों की सुविधा अधिक बढ़ा दी गई। कपड़ों के लिए वॉशिंग मशीन, रसोई घर के लिए ओवन, ग्राइंडर, बर्तनों के लिए डिश वॉशर जैसी सुविधाओं से समय की बचत होने लगी। परंतु इन्हीं सुविधाओं ने कहीं-न-कहीं काम की गुणवत्ता को कम कर दिया। और यही कारण भी बना आपसी मतभेदों का। आधुनिक संस्कृति ने रिश्ते के अर्थ को ही बदल डाला। अब एक-दूसरे से समय व्यतीत करने से अधिक सबकी दुनिया मोबाइल फोन बन चुकी है। मनुष्य हर वक्त समय के साथ आगे बढ़ता जाता है। बचपन-किशोरावस्था-वृद्धावस्था मनुष्य के जीवन का रचना क्रम है, जिसे

कोई बदल नहीं सकता है। परंतु संस्कृति इन अवस्थाओं के बीच में फूट डालने का कार्य करती है। आजकल हम देख रहे हैं सास-बहू की लड़ाई, माँ-बेटी की विसंगतियाँ, पिता-पुत्र के बीच टकराव- इन सबका कारण क्या हो सकता है। अगर इसपर विचार करें तो समझ सकते हैं कि पीढ़ियों के बीच आया यह अंतर विविध संस्कृति का प्रभाव है। आज की मॉडर्न दुनिया को कहीं-न-कहीं पुरानी पीढ़ी स्वीकार नहीं कर पाती।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कहानी संग्रह 'कठपुतलियाँ' की कहानियाँ 'प्रेत-कामना', 'कठपुतलियाँ', 'बिगड़ैल बच्चे', 'स्वाँग', 'भगोड़ा', 'परिभ्रांति' आदि कहानियाँ इक्कीसवीं सदी की कहानी का सांस्कृतिक माहौल पाठक के सामने प्रस्तुत करती हैं। आधुनिकतावादी विचारधारा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को बदल देती है। पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही संस्कृति का ह्रास होता पुरानी पीढ़ी नहीं देख सकती। आधुनिकीकरण ने मनुष्य को मजाक बनाकर रख दिया। आज की मॉडर्न सोसायटी में कोई भी व्यक्ति एक दूसरे की मदद नहीं करना चाहता। अगर किसी को चोट भी लगे तो उसपर हँसकर आगे बढ़ जाता है। यह हमारी भारतीय संस्कृति नहीं है। मानवीय मौलिकता को तहस-नहस करके छोड़ डाला है। जिसे देखकर दुख भी होता है। मनुष्य को मनुष्य की भांति देखना आवश्यक है, न कि उसका मजाक बनाकर अपनी कमियों को छुपाना। कहानी साहित्य में कहानीकारों ने इक्कीसवीं सदी का यथार्थ दर्शन पाठक वर्ग को करवाया है। उसी ये यह पता चलता है कि आज का युवा वर्ग सही मार्ग छोड़कर गलत मार्ग की ओर आगे बढ़ता चला जा रहा है। शायद उसका कारण आज की बेरोजगारी हो सकती है। यह मुमकीन नहीं कि प्रत्येक युवा नौकरी संपादित करे, परंतु जरूरतमंद युवाओं को यह अवसर मिलना चाहिए। आज की युवा पीढ़ी शिक्षित होकर भी बेरोजगार है। कोई शर्म के मारे छोटे बड़े कामों का चुनाव नहीं करता तो कोई अवसर न मिलने के कारण कुछ कर नहीं पाता। मानवीय नैतिक मूल्यों को पीछे छोड़ आज का युवा समाज अपराध के क्षेत्र में पाँव डालने जा रहा है।

पंखुरी सिन्हा का कहानी संग्रह 'किस्सा-ए-कोहिनूर' ऐसे ही शिक्षित युवा वर्ग की कहानी है। कहानी की नायिका अपने संस्कारों से पूर्ण है। उसके अंदर स्वावलंबी की भावना है। जो अपने समाज और संस्कृति को अधिक मानती है। जिसे स्वयं के देश का गौरव अधिक प्यारा है। कोहिनूर हीरे को जब अपने देश में न रखकर दूसरे देश में रखने का किस्सा शुरू होता है। अपने देश की शोभा अपने देश में ही होनी चाहिए। उसकी मौलिकता अपने देशवासियों को ही मिलनी चाहिए। ऐसे विचार करती जयन्ती महापात्र अपने विचार रखती है- " 'स्व' का वह बोध, व्यक्तिगत नहीं एक अद्भुत समष्टिगत बोध जो उस दिन जयन्ती महापात्र को हुआ, उसने उसमें एक नयी चेतना भर दी। अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपने लोग, अपनी मिट्टी, अपना हीरा .... इन सबका अर्थ जैसे उसने दुबारा समझा, जैसे उसने पहली बार असल में समझा। और इस नये समष्टिगत एहसास में जयन्ती महापात्र के निजीपन का समावेश हो गया और वह पूर्णत: इस कथा की नायिका बन गयी।"[1] देश के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करती कहानी की नायिका अपनी संस्कृति की पहचान भी करवाती है। मनुष्य के आचार व विचार सही रही तो किसी भी परिस्थिति में विचारों का ह्रास होना असंभव है। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक ऐसी विविध भावनाओं को रेखांकित कर रहा है। पंखुरी सिन्हा एक सुलझी हुई रचनाकार हैं। उनकी कहानी मानवीय मूल्यों को साथ में लेकर चलती है। दोनों पीढ़ियों को समानता के भाव से देखती है। पंखुरी सिन्हा की कहानी की कथावस्तु समाज को सामने रखकर रची गई है। इसलिए वह पाठक वर्ग को अधिक आकर्षित करती है।

सांस्कृतिक माहौल को समझने के लिए कहानी को अच्छे से समझने की आवश्यकता होती है। आज का सबसे बड़ा प्रश्न था संस्कृति को भूल जाना। धर्म एवं संस्कृति के नाम पर अर्थात ईश्वर के नाम पर हो रहा भ्रष्टाचार भी कहीं-न-कहीं इसका कारण है। सत्ता की लालसा रखने वाले राजनीतिक लोग वही थे। भ्रष्टाचार के जाल में फंसे हुए हैं। अपने

[1] किस्सा-ए-कोहिनूर - पंखुरी सिन्हा, पृ.सं. 140

अधिकारों का गलत फायदा उठाकर जनसामान्य को धोखा देते हैं। यहाँ मानवता को मार दिया जाता है। टी. विजय शेखर ने 'संग्रथन' पत्रिका में राजनीति को स्पष्ट करते हुए लिखा है- "राजनीतिक दलों तथा राजनीतिक नेताओं में नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है और स्वार्थ लालसा, अधिकार एवं धन लोलुपता, भ्रष्ट राजनीति, गुंडागर्दी आदि दिन-ब-दिन बढ़ते जा रहे हैं। परिणामत: समाज में नैतिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। साथ-ही-साथ देश के सर्वतोन्मुखी विकास का सपना अधूरा ही रह गया है।"[1] उपरोक्त वाक्य से स्पष्ट होता है कि सत्ताधारी नेताओं द्वारा अपने नैतिक मूल्यों का सही-सही उपयोग नहीं करने की वजह से भ्रष्टाचार अधिक क्षेत्रों में बढ़ रहा है। नैतिकता को चूर-चूर किया जा रहा है। इन सभी कारणों से संस्कृति की मौलिकता को भी नष्ट किया जा रहा है।

भूमंडलीकरण का प्रभाव देश के सभी कार्य क्षेत्रों में हुआ है। इससे कोई भी छुप या बच नहीं पाया है। दलित, आदिवासी या सवर्ण कोई भी इन जालों से बच नहीं पाया है। प्राचीन कालीन संस्कृति की रक्षा करते आ रहे आदिवासियों की परिस्थितियाँ भी अंधेरे में ही थी। जल-जंगल-जमीन के लिए लड़ने वाला आदिवासी समाज अब 'ग्लोबलाइजेशन' के घेरे में फंस चुका था। कंपनी की स्थापनाओं के लिए जंगलों को काटना पड़ा। मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी भी बेघर होने लगे। जंगल जहाँ खड़े रहते थे वहाँ अब बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी रहने लगी। इमारतों में रोशनी की चकाचौंध थी। परंतु आदिवासी बेघर हो चुका था। उसके लिए न जनसामान्य में जगह थी, न अब उसके पास जंगल का सहारा रहा। राजकुमारों के देश में कहानी के अंतर्गत ऐसी ही आदिवासी संस्कृति का ह्रास किस प्रकार से हो रहा था उसका मार्मिक चित्रण मिलता है- "सरकारी योजना कहें है आदिवासियों के लिए पर कहाँ कुछ होवे हैं? सब पैसा तो वही जंगली मानुस निगल जात है। थोड़ा-सा कहा सुना नहीं, उनके लठैत मारे-पीटे लगे हैं। अब तो बबुआ गाँव छोड़ने की सोचत है। सचमुच वे दुर्दिन के पल थे।

[1] संग्रथन (मार्च 2008) - टी. विजय शेखर, पृ.सं. 16

कोलियरी किनके लिए खुली थी, खेत-खलिहान किनके दबे थे, जंगली कंद-मूल, फल-फूल किनके बंद थे, सखुए के उन लहलहाते वनों का क्या हुआ था, उनकी जगह सागवान के पेड़ क्यों लगाए गए थे।"[1] ऐसे अनेक प्रश्नों के साथ आदिवासी समाज खड़ा है। जिसका उत्तर शायद कोई नहीं दे पाएगा।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक कहानियों के लिए नया था। उनकी संवेदना उनकी भावना मनुष्यता के परे होकर पूँजीवाद के हाथों में आ गयी थी।

1.3.1.3 राजनीतिक परिवेश

इक्कीसवीं सदी का राजनीतिक परिवेश आधुनिकता के मार्ग पर आगे बढ़ चुका था। राजसत्ता एक इतना बड़ा हथियार है, जो मानव समाज को चलाता है। राजनीति एक बड़े गहरे कुएँ की तरह है, जिसका मनुष्य ऊपर से अंदाजा नहीं लगा सकता कि वह अंदर से कितनी गहरी है। एक बार जो इसके अंदर फंस जाए तो बाहर निकलना बहुत ही कठिन है। आज की पीढ़ी शिक्षा से वंचित नहीं है। परंतु वह शिक्षा का सही उपयोग भी नहीं कर रही। राजनीतिक गतिविधियों को आसानी से चलाने के लिए जब सामान्य से मतभेद करना ठीक नहीं होता। लेकिन फिर भी अपनी सत्ता का इस्तेमाल कर सत्ताधारी कुछ भी और कैसे भी करने के लिए हमेशा तैयार होता है। इक्कीसवीं सदी में आकर भी वोट देने का सीधा-सीधा हक जनसामान्य को नहीं है। जहाँ पुलिस, सरकार अच्छे से अपना फर्ज निभा रही है वहाँ की बात अलग है। परंतु जहाँ आज भी बेरोजगारी और लाचारी पीछा नहीं छोड़ रही वहाँ की राजनीतिक परिस्थिति आज भी अच्छी नहीं है। भ्रष्टाचार के चलते पैसों से वोट को बेचा जाता है। मत देने वाले मनुष्य को समाज से संबंध नहीं बस आज के बारे में सोचकर वह अपना काम निकाल लेता है। आज के संदर्भ में अर्थात इक्कीसवीं सदी का वर्तमान समय बस धन की आशा कर अपने सारे कर्तव्यों का त्याग कर आगे बढ़ रहा है।

---

[1] आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी - रमणिका गुप्ता, पृ.सं. 164-165

राजनीति का प्रभाव बस सरकार पर नहीं होकर, सभी क्षेत्रों में देखा जाता है। चाहे वह कॉलेज हो, स्कूल, धान्य, दुकान, कारखाना, अस्पताल, सिनेमा घर, सब्जी मंडी आदि सभी क्षेत्रों में राजनीति चलाई जाती है। पहली कक्षा की भर्ती के लिए भी बड़े-बड़े सत्ताधीशों का 'रेकमंडेशन' आजकल जरूरी होता है। अस्पताल में भर्ती करवाने के लिए किसी बड़े सत्ताधारी की पहचान आवश्यक होती है, अपने अनाज को सही दाम दिलवाने के लिए किसी बड़े अधिकारी की जान-पहचान होना अनिवार्य होता है। ऐसे विभिन्न जगह सत्ता का प्रभाव बस चुका है। जिसे बाहर निकालना शायद इतना आसान न होगा। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में राजनीतिक परिवेश का चित्रण किया गया है। प्रभात रंजन जी की 'जानकी पुल' कहानी जिसमें सत्ता पर बैठे नेताओं की नासमझी किस तरह जनसामान्य को तोड़ देती है। इसका मार्मिक चित्रण हमें मिलता है। पिता-पुत्र का राजनीति में टकराव, युवा नेताओं के अपने अलग विचार, राजनीति में समाविष्ट कूटनीति आदि का चित्रण किया गया है। राजनीति बस सत्ता के लिए ही न होकर अपना भविष्य सुरक्षित करने के लिए भी की जाती है। सत्ता के रहते मनुष्य अपने संपूर्ण जीवन को खुशहाल कर सकता है। यह जनसामान्य सोचने के लिए विवश होता है। पाँच वर्ष के सत्ता समय में वह अपना संपूर्ण जीवन चला सके, ऐसे विपरीत विचारधाराओं से सत्ताधिकारी राजनीति में उतरते हैं। सत्ता को आगे परंपरागत आगे बढ़ाने के लिए पूंजीपतियों की मदद की आवश्यकता होती है। ऐसा कोई आधार मिल जाने के बाद राजनीति पूंजीवादियों के हाथ की कठपुतली बन जाती है। जैसे वह नचाएगा, वैसे सत्ताधिकारी नाचेगा। यह कहां तक सही होगा कि सामान्य जनता तक जो अधिकार पहुँचने चाहिए। वह भ्रष्टाचार के मार्ग से पूंजीवादी के बैंक खाते में पहुँच जाएं।

राजेश झरपुरे की कहानी 'सगारत' में भी राजनीति में षड्यंत्र का चित्रण किया गया है। गरीब-लाचार आदिवासी बड़ी आशा से चुनाव की तैयारी में जुट जाते हैं। उनकी मान्यता कि आदिवासी भी अभी शहरीकरण का हिस्सा बन सकते हैं। परंतु राजनीति सबका सपना चूर-

चूर करने के लिए ही बनी है। सत्ताधिकारी को सत्ता चाहिए अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए। गाँव की गरीब और अशिक्षित जनता का सरकार के ऊपर पूर्ण विश्वास था। राजनीति में किसी भाव या प्रेम का कोई स्थान नहीं। बस भ्रष्टाचार तथा एक-दूसरे के प्रति तिरस्कार यही उनका मूल कार्य होता है। आदिवासी जनता का समाज में कोई महत्व नहीं, परंतु उनके मत (वोट) का है। जब चुनाव का समय होता है, तब ये सत्ताधिकारी हाथ-पांव जोड़कर इन्हीं जनसाधारण के पास आते हैं। और जब सत्ता हाथ में आ जाती है तब उन्हें पहचाना भी नहीं जाता। प्रस्तुत कहानी में लेखक ने अपने भावों को शब्दों में उतारा है। चुनाव का मतलब एक नयी दुनिया की सैर होती है ऐसा लेखक का विचार है। अब चुनाव के पश्चात बस्ती पूरी तरह नयी बन जाएगी। नदी को पार करने के लिए पुल बनाए जाएंगे, मिट्टी वाली सड़कें बड़ी चौड़ी हो जाएगी। किसी तरह की परेशानी का मुकाबला करना नहीं होगा। स्कूल, अस्पताल, बस्ती में हर वक्त बिजली तथा पानी की सुविधा रहेगी, आदि सपनों को लेखक देख लेता है। परंतु असलियत में यह सभी होना नामुमकिन है। यह बात जब लेखक को पता चलती है तो वह आक्रोश जताता है। परंतु आक्रोश करके भी कोई काम तो होने वाला नहीं। इस चीज को भी वह समझ लेता है।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों ने भ्रष्टाचार के तले दबे राजनेताओं का पर्दाफाश किया है। इसी विवरण को पूर्णता देती प्रभात रंजन की 'जानकी पुल' कहानी, जो मानवतावाद शब्द से बहुत दूर है। जनता की आशा बहुत अधिक है परंतु उसे पूर्ण करने वाले हाथ बहुत कम। एक छोटा सा सुंदर गाँव- नाम मधुवन। नाम की तरह सुंदर गाँव जो एक नदी किनारे बसा हुआ है। नदी की दूसरी तरफ भारत की राजधानी दिल्ली है। परंतु नदी के उस पार जाने के लिए कोई साधन-सुविधा नहीं। अपनी रोज की दिनचर्या को पूर्ण करके आराम से रहने वाला गाँव था। गाँव वालों की कोई बड़ी आशा नहीं थी। कच्चे रास्ते और अपना घर इनके अंदर सीमित यह गाँव भी भूमंडलीकरण में जकड़ा गया। पक्का रास्ता बन गया। गाँव को शहर से जोड़ने के

लिए सरकार से पुल बनवाने की परमिशन मिल गयी। अब मधुवन गाँव भी बड़े-बड़े सपने बुनने लगा। शहर कैसा होता होगा, वहाँ के लोग कैसे होते होंगे इन सब प्रश्नों को खंगालने लगा।परंतु उनकी यह आशा पूर्ति नहीं हो पा रही थी। सब गाँव वाले ने अब जानकी पुल नहीं बनेगा इस निष्कर्ष तक पहुँच गए। इसी तरह राजनीति मनुष्य की आशा को बढ़ाकर उनको एक ही झटके में नीचे गिरा देती है। मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करता है, आशा-आकांक्षा के भरोसे। उसी को तोड़कर मनुष्य, मनुष्य से दूर हो जाता है। राजनीति मनुष्य के हृदय के साथ खेलती है। उसकी भावनाओं को तोड़ देती है।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक राजनीति की समस्याओं के साथ-साथ सांप्रदायिकता के प्रश्न को भी उठाता है। ऐसे ही राजनीति के जाल में फंसी चित्रा मुद्गल की कहानी ‘लपटें’ है। एक छोटा और सुखी परिवार जिसका किसी से कोई मतभेद नहीं था। ऐसे परिवार को भी समाज की राजनीति किस तरह अपने-आप में जकड़ लेती है। कहानी का नायक रघुनंदन यादव उसकी पत्नी तथा बच्चों के साथ रहता है, परंतु समाज की राजनीति उन्हें अपनी जिंदगी जीने का मौका ही नहीं देती। जातिवाद की समस्या यहाँ दिखाई गई है। राजकीय क्षेत्र के नेतागण अपनी-अपनी टोली बनाकर सामान्य जनता के पास पैसे जमा करती है, जिसे ‘चंदा’ नाम दिया गया। अगर किसी परिवार ने चंदा देने से मना किया तो नेतागण गुंडागर्दी पर उतर आते थे। मारने पिटने का काम शुरू करते थे। इसलिए पूरी बिरादरी ऐसे नेताओं और उनकी टोलियों से डर-डर कर अपना जीवन बिताती थी। इसी परिवारों में एक परिवार रघुनंदन यादव का था। कहानी का नायक और उनकी पत्नी दोनों ही इस गुंडागर्दी से डरते हैं, परंतु वह जरूरी भी है। उन्हें अपने अधिकारों का पता है। इसलिए वह इनका विरोध करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। राजनीति समाज में अपना बुरा प्रभाव छोड़ रही है। यह इस कहानी से बिल्कुल सार्थक होता है।

कहानियों में गुंडागर्दी, नेतागिरी, माफिया, आतंकवाद, सांप्रदायिकता ऐसे मुद्दों को भर-भर के उठाया गया है। जिससे पाठक वर्ग समझ पाये हम कौन-सी दुनिया में जी रहे हैं। हमें और कितना समझना है हमारे भारतीय राजनीति के पाखंड को। जो न ही मनुष्य को जीने दे रहा है न ही आसानी से अपने जीवन के महत्व को समझने दे रहा है। 'लपटें' कहानी की नायिका भी ऐसे ही दौर से गुजरती है। आखिर में वह सबका सामना करना चाहती है। वह समझ चुकी थी कि ऐसे ही हाथ-पर-हाथ धरे बैठने से कुछ न होगा। हमें आवाज उठानी ही होगी। कहानी में स्त्री आक्रोश की भावना भी बडे अच्छे ढंग से पाठक के सामने लायी गयी है।

जातिवाद की राजनीति में जहाँ एक-दूसरे को जान से मार डालना भी कोई छोटी बात नहीं होती है। ऐसी कहानी जो दो प्रांतों को आपस में जोड़ने के बजाय तोड़ने का काम करती है। अवधेश प्रीत के कहानी संग्रह 'हमजमीन' के अंतर्गत मनुष्य-मनुष्य का कितना बड़ा बैरी होता है उसका चित्रण हमें यहाँ देखने को मिलता है। 'हमजमीन' कहानी हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के बीच की कहानी है। राजनीति कहीं भी अपना घर बना लेती है। इसी प्रकार इस कहानी में भी वही दुविधा है। लेखक ने दोनों पात्रों की पृष्ठभूमि को समझना चाहा है। भूख मनुष्य की जाति को देखकर पैदा नहीं होती। गरीब ही भूख का शिकार हमेशा से बनता आया है और आगे भी बनता रहेगा। राजनीति के अंधकार में जातिवाद की परंपरा कुछ ज्यादा ही जोर-शोर से थी। हिन्दू के यहाँ कोई मुस्लिम काम न करेगा, और न ही किसी मुस्लिम के धर कोई हिन्दू काम करेगा। ऐसी लक्ष्मण रेखा को जातिवादी समाज ने खींच रखी थी। लेकिन इन्हीं जाति के पुजारियों को यह पता नहीं होता कि भूख पेट को लगती है और उसे मिटाने के लिए पैसा कमाना अनिवार्य है। भूख कभी देखती नहीं उसे हिन्दू के पेट में आना है या मुस्लिम के पेट में। अवधेश प्रीत की 'हमजमीन' कहानी मानवतावादी विचारशीलता को सोचने पर प्रेरित करती है।

इक्कीसवीं सदी का राजनैतिक माहौल और अधिक भयावह था, अंतिम दशक की पृष्ठभूमि से। समय के साथ-साथ सभी अच्छे बर्तनों का ह्रास होने लगा। मानव के पास समय नहीं, आज वो धन कमाने की ओड़ में अंधेरे में धंसता ही जा रहा है। वर्तमान समय में रिश्तों की कोई अहमियत नहीं बची। सब अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। किसी को एक-दूसरे के बारे में सोचने को इतना वक्त नहीं या यूँ कहें, किसी को कुछ पड़ी नहीं। बस खुद का काम निकल गया बस। धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर हो रही गुंडागर्दी न जाने हम कब रोक पाएंगे। शिक्षा हमें सिखाती है कि कभी एक-दूसरे से नफरत नहीं करनी चाहिए। सबको मिल जुलकर रहना चाहिए। लेकिन इन्हीं शिक्षा के मंदिरों में अर्थात कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी के बीच आपसी राजनीति होती रहती है। विद्यार्थी अपने-अपने राजनीतिक दलों का निर्माण करता है। जहाँ भी देखा जाए जातिवाद प्रथम मुद्दा तो होता ही है। इक्कीसवीं सदी की राजनीतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में अगर कहा जाए तो यह विडम्बना से पूर्ण प्रश्न होगा। आज भी जातिवाद राजनीति का प्रथम चरण है। आपस में लड़वाने के लिए इसी हथियार का इस्तेमाल प्रत्येक पार्टी करती है।

राजनीति के नेतागण जन सामान्य के साथ-साथ, अपने-आप के भी शत्रु होते हैं। सत्ता बस अपने ही घर में रहनी चाहिए। वह अपने घर के दायरे से बाहर नहीं निकलनी चाहिए। पिता-पुत्र-पोता ऐसे पीढ़ी को एक ही डोर में बांधकर आगे बढ़ाना चाहते हैं। इसलिए आपस में इनके मतभेद भी अधिक होते हैं। एक-दूसरे की जान लेने तक लेने से नहीं चूकते, इस राजनीति के चलते वर्तमान समय बहुत अधिक जटिल है। पूँजीवाद का आगमन जोर-शोर से होता आ रहा है। आज की परिस्थिति में गरीब और अधिक गरीब बनता जा रहा तो अमीर और अमीर बन रहा है। यहाँ किसी को रोक नहीं सकते। राजनीति आगे बढ़ने के लिए धर्म का सहारा लेती है। धार्मिक धरातल पर ठहरा हमारा देश धर्म, भ्रष्टाचार के बीच फंसा हुआ है। नेतागिरी करता समाज कहीं-कहीं मानवता की संकल्पना को ही भूल गया है। कहानी समाज

के यथार्थ को समाज के सामने ही प्रस्तुत करती है। उसे पढ़कर भी उसका अनुकरण करने का मन पाठक वर्ग को नहीं हो रहा है। साहित्य जगत की यही कल्पना है, ऐसे कह सकते हैं। यथार्थ को सुनकर या पढ़कर जीवन में आक्रोश का निर्माण होना स्वाभाविक है। यही स्वाभाविकता कहानीकार एवं पाठक दोनों के बीच निर्मित होती है। राजनीति का कुरूपता भरा माहौल देखने का मन नहीं होता। परंतु आज के समाज की सच्चाई क्या है, यह समझने के लिए कहानी को पढ़ना अनिवार्य है। आपसी कुंठा, द्वेष, तिरस्कार, एक दूसरे के प्रति नफरत की भावना यही सब सत्ताधारी नेतागण सामान्य जनता के बीच फैलाते हैं।

नीलाक्षी सिंह की कहानियाँ भी समाज को जागरुकता प्रदान करने का कार्य कर रही हैं। नीलाक्षी सिंह युवा पीढ़ी को अपने सामने रखकर कहानी की रचना करती है। इनकी कहानियों में ज्वलंत भावना होती है, जो पाठक वर्ग को सोचने के लिए विवश कर देती है। आखिर क्यों कहानीकार ने ऐसी समस्याओं से पूर्ण कहानी की रचनाएँ की हैं। 'परिंदे का इंतजार सा कुछ' नीलाक्षी सिंह की कहानी है। युवा-पीढ़ी की त्रासदी का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया गया है। राजनीति की कटु नीति में सांप्रदायिकता का समावेश करके शिक्षा के क्षेत्र में भी किस तरह शोषण हो रहा है, यह दिखाया गया है। सांप्रदायिकता का अर्थ खंडन करना। किस चीज का खंडन आज का समाज कर रहा है। हिन्दू भी मनुष्य है और मुस्लिम भी मनुष्य है। तो क्यों दोनों में विभाजन किया जाता है। शिक्षा के स्थान को हम एक पवित्र स्थल मानते हैं, तो क्या यह सही है कि ऐसे पवित्र स्थल को हम जातिवाद के नाम पर विभाजित करें। युवा पीढ़ी किसी भी मुद्दे को फट से अपने मन में उतार लेती है। लगभग सौ में से साठ अगर अच्छाई के बारे में सोचते हैं तो कहीं-न-कहीं चालीस विद्यार्थी तो बुराई के बारे में सोचते होंगे। ऐसे विद्यार्थी को राजनैतिक नेतागण अपने पक्ष में लेकर अपना मनचाहा कार्य करवा लेते हैं। वर्तमान समय में मनुष्य अंधीगली का रास्ता अपना रहा है। ऐसा कह सकते हैं

क्योंकि राजनीति मनुष्य के सोचने की स्थिति को ही मार डालती है। वह समझ नहीं पाता क्या सही और क्या गलत चल रहा है।

वर्तमान समय कहानी का है। राजनीतिक माहौल को समझाते हुए कहानीकार के अंतर्मन की स्थिति को भी हम महसूस कर सकते हैं। किस दिशा और दशा में कहानीकार कहानी की रचना करता है। यह सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार शोषण, अनैतिकता, आडंबर इन सबके बीच में रहकर कहानीकार अपनी रचना करता है। तो हम यह भी कह सकते हैं कि वह भी उस समय का शोषित वर्ग ही होगा। जो सब कुछ सहकर भी कुछ बोल नहीं पाता। और कलम की सहायता से समाज को बताता है कि वह किन-किन विपदाओं को झेलकर आगे बढ़ा। राजनीति की एक अलग ही परिभाषा होगी। मनुष्य राजनीति को नहीं बनाता बल्कि राजनीति मनुष्य का निर्माण करती है। यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात होगी कि शिक्षित होते हुए भी मनुष्य अनपढ़ है। क्योंकि वह अपने छोटे-छोटे नैतिक मूल्यों को ना समझकर अंधे की भांति आगे बढ़ता चला जा रहा है। शायद सभी जनसामान्य एक हो गए तो राजनीति जैसी कटु नीति को हम कहीं न कहीं रोक पाएं। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों का राजनीतिक धरातल भ्रष्टाचार एवं पाखंडों से भरी है। जो मनुष्य को एक-दूसरे से अलग कर रही है।

1.3.1.4 आर्थिक परिवेश

आर्थिक माहौल से अभिप्राय है आर्थिक व्यवस्था। इक्कीसवीं सदी की कहानियों के अंतर्गत विभिन्न परिस्थितियों का समालोचन किया गया है। इसी प्रकार आर्थिक धरातल पर कहानियों का प्रभाव कैसे रहा है यह देखेंगे। भारतीय आर्थिक व्यवस्था का लेखा-जोखा किस तरह काम करता है। यह देखना भी आवश्यक है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में पूंजीवाद का स्वरूप अधिक दिखाई देता है। आज का भारत इक्कीसवीं सदी की सांस ले रहा है। आज का युग पहले की तुलना में अलग है। आज का बालक माता-पिता के पास एक या दो रुपयों की मांग नहीं करता, बल्कि उसका आंकड़ा सौ-दो सौ में बदल चुका है। इससे हम सोच

सकते हैं कि आज का युग बहुत महंगा हो चुका है। आज के समय को बिताने का अर्थ है बड़ी-बड़ी चुनौतियों का सामना करना। आज का युग मनुष्य को प्रेम भावना नहीं सिखाता बल्कि बाजारीकरण सीखा रहा है। बचपन से देखते आ रहे हैं कि माँ घर में काम करती है और पिता घर से बाहर काम करता है। पिता को चिंता है अगर काम नहीं किया तो पैसे कहाँ से आएंगे। घर को कैसे संभालेंगे? अपनी रोजी रोटी का गुजारा कैसे करेंगे? इसका अर्थ तो यही निकाला जा सकता है कि पैसे के बिना मनुष्य कुछ भी नहीं है। जीवन व्यतीत करने के लिए पैसा जरूरी है। परंतु वर्तमान समय में अर्थ की व्यवस्था कुछ अलग ही है। आधुनिकीकरण के चलते फैशन ट्रेंड का चलन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय माता-पिता दोनों का है। आज दोनों घर से बाहर काम के लिए निकल जाते हैं। क्योंकि आज की परिस्थिति पहले से बहुत भिन्न है। मध्यमवर्गीय घर में घर चलाने के लिए कहीं-न-कहीं दोनों को काम करना अनिवार्य हो गया है।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है। पूँजीवादी विचारधारा का समाज अब पीछे नहीं देख सकता। वैश्विकरण ने भारत की संस्कृति को ही बदल डाला है। उसी तरह भारत में निर्मित हुई अनेक कंपनियाँ, कारखानों, इनमें काम करने वाला मजदूर वर्ग, यह भी हमेशा लड़ने की कगार पर होता है क्योंकि हमें पता है कि वेतन लेने वाले मजदूर को कितनी परेशानियों के बाद उसकी मजदूरी मिलती है। आर्थिक माहौल को दिखाती कुछ कहानियों को हम देखते हैं। स्वयं प्रकाश द्वारा रचित कहानी 'जंगल का दाह' में पूँजीवादी विचारधारा को चित्रित किया गया है। मनुष्य पैसे के लिए कभी मना नहीं करेगा। उसकी प्रवृत्ति ही वही है। आज के युग में जिंदा रहने के लिए पैसे चाहिए तथा मरने के लिए भी पैसे चाहिए। इसका अर्थ तो यही हुआ कि बिना धन मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। लालच से भरा मनुष्य का मन अपनी लालसा को कभी तृप्ति नहीं दे सकता। 'जंगल का दाह' कहानी में पेड़-पौधों, जीव-जंतु को भी नहीं छोड़ा गया है। जंगल के

अंदर काम कर रहे कर्मचारी चोरी से कैसे अपना काम निकाल लेते हैं, वह दिखाया गया है। चोरी से पेड़ों को बेच देना। जानवरों को सर्कस या पार्क में बेचना ऐसे घिनौने कार्य को लेखक रेखांकित करता है।

पंखुरी सिन्हा का कहानी संग्रह 'कोई भी दिन में' की कहानी 'तालाब कहो या पोखर' के अंतर्गत सृष्टि का भयावह स्वरूप दिखाया गया है। औद्योगीकरण के नाम पर जंगल को काटा गया। पेड़ों के बिना जंगल सुना हो गया। जंगल अधिकारी तथा कर्मचारी जंगल की रक्षा करने के बजाय पैसों के लालच में आकर चोरी से जंगल की लकड़ियाँ, जीव-जंतु को बेचने का काम शुरू हो गया था। आज का माहौल ऐसा है कि पशु-पक्षी जंगलों से अधिक चिड़ियाघर, पार्क, सर्कस आदि में अधिक दिखाई देते हैं। जंगल, नदी, भूमंडलीकरण का हिस्सा बन गए हैं। नदियों को रोका जा रहा है। उनका प्रवाह किसी गंदे नालों से या दूषित तालाबों से जोड़ा जा रहा है। कहानी के अंतर्गत ऐसी ही एक सृष्टि से निर्मित हुई विपदा का चित्रण किया गया है। नदी का पानी पूरे गाँव में फैल जाता है। घरों के भीतर पानी और बस पानी का ही दृश्य देखने को मिलता है। गाँव के लोग परेशान रहते हैं। तीन-चार दिन तक ऐसी स्थिति में ही वह अपना जीवन बिताते हैं। आखिर ऐसी परिस्थिति का निर्माण क्यों हुआ। सीधी सरल रास्ते जाने वाली पानी की लहर बस्ती की तरफ क्यों मुड़ी। प्रकृति ने जिसका निर्माण किया उसे नष्ट करने का अधिकार मनुष्य को नहीं है। मनुष्य इतना बदल चुका है कि उसे अपने फायदे के आगे और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा। क्या सिर्फ धन ही मनुष्य की सभी आशा-आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है तो शायद मेरा उत्तर रहेगा नहीं। संवेदना, भावना, आत्मीयता इन शब्दों का भी बड़ा मोल है। मनुष्य को सुख-सुविधाओं के साथ आत्मीय भावना की भी बहुत आवश्यकता है।

मनुष्य विकास की ओर उन्मुख हो रहा है। उसे आगे बढ़ने के लिए विविध उपकरणों की आवश्यकता है। परंतु यह कहाँ तक का ज्ञान माना जाएगा, जिससे हम प्रकृति को नष्ट

करके अपने साधनों का मार्ग प्रशस्त करते जा रहे हैं। कहानीकार पंकज सुबीर की कहानी ‘ईस्ट इंडिया कंपनी’ उदारीकरण के पक्ष को सामने लाती है। आज का शिक्षित वर्ग एक दूसरे की मदद करने के बजाय कार्यालय जैसे स्थलों पर उच्च पद और निम्न पद ऐसी दुविधा को लेकर आपस में टकराते हैं। राजनीति में धर्म के आडम्बर का बड़ा स्थान है। बड़ी-बड़ी कंपनियों में यंत्रीकरण की वजह से मजदूर वर्ग बेरोजगार हो गया है। रोटी को भी मोहताज हो गया है। मदद का हाथ मांगने गए तो पहचानने से भी मना कर देते हैं। इतनी दुविधाओं में लेखक सोचने को मजबूर है कि हम कौन सी दुनिया में साँस ले रहे हैं। जहाँ मनुष्य, मनुष्य की मदद नहीं कर पाता। इक्कीसवीं सदी का आर्थिक परिसर बहुत भयावह है। पैसे के लिए मनुष्य, मनुष्य का शत्रु बन गया है। पूँजीवादी व्यवस्था सामान्य मनुष्य को सामान्य जीवन जीने नहीं देती। आर्थिक व्यवस्था में चल रही कालाबाजारी जरूरतमंद चीजों को और अधिक महंगा करती जा रही है। मध्यमवर्गीय समाज का प्रश्न है कि वह अपने हर रोज इस्तेमाल करने की वस्तुओं के पीछे कितना पैसा खर्च करे। महंगाई आसमान छू रही है। सब कुछ महंगा होता जा रहा है। खाद्य सामानों का भंडार रखकर उसे आवश्यकतानुसार बाहर निकालकर बेचा जाता है, जिससे दुकानदारों को अधिक मुनाफा हो। सब तरफ बस भ्रष्टाचार-भ्रष्टाचार यही रह गया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी ‘पच्चीस चौका डेढ़ सौ’ मनुष्य की संवेदनाओं को तोड़ देती है। किस तरह गाँव का चौधरी गरीब अशिक्षित जनता को मूर्ख बनाता है, इसका मार्मिक चित्रण देख सकते हैं। जादू-टोने के नाम पर गरीबों के पैसे वसूले जाते हैं। जहाँ बस सौ रुपयों का खर्चा हुआ है वहाँ ब्याज के साथ ढाई सौ निकाले जा रहे हैं। अशिक्षित होना कितना बड़ा नुकसान है, यह इस कहानी से पता चलता है। इक्कीसवीं सदी अभी भी नैतिक मूल्यों में पीछे ही है। उस गरीब मनुष्य का बेटा अभी भी बड़ी विपदा में था। उसे समझ नहीं आ रहा था कि चौधरी उसके पिता के पास सौ के बदले डेढ़ सौ रुपये ब्याज में क्यों ले रहा है।

यह परिस्थितिवश इस एक कहानी तक ही सीमित नहीं है। भारत में ऐसे बहुत सारे छोटे-छोटे गाँव या बस्ती है जहाँ आज भी गरीबों को जादू-टोना, भूत-प्रेत के नाम से डराया जाता है। उनसे पैसे ठगे जाते हैं। इक्कीसवीं सदी में आकर भी आज हम प्राचीन काल का जीवन ही बिता रहे हैं। रिश्तों एवं भावनाओं का व्यापारीकरण कर रखा है। बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। थोड़े-थोड़े धन के लिए भी जनसाधारण गलत मार्ग को अपना रहा है। पूंजीवादी समाज में चल रही ठेकेदारों का वर्चस्व मजदूर को और अधिक लाचार बना रहा है। मानवता का ह्रास हो रहा है- "वित्तीय पूंजी का भूमंडलीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विश्व विजय अभियान मूल्यों के नाम पर केवल बाजार में माल के दाम को महत्व देता है। जो मनुष्य उनके माल का खरीददार बनने की आर्थिक क्षमता नहीं रखता, वह किसी काम का नहीं है और यह ध्यान देने की बात है। स्वचालन के इस युग में उत्पादन तक के लिए उन्हें मानवीय क्षमता की ज्यादा जरूरत नहीं रह गयी है। इसलिए यह विजय अभियान का पूंजीवाद मनुष्य की सर्वजनात्मकता और मानव मूल्यों का विरोधी है।"[1]

आर्थिक स्तर पर आज भारत की दशा पहले से ज्यादा ठीक नहीं है। स्त्री-पुरुष दोनों का काम करना मध्यमवर्ग के समाज में अनिवार्य है। तभी रोजी-रोटी निकल पाती है। आधुनिक युग की बेरोजगारी सभी क्षेत्रों में देखी गयी है। कहीं-कहीं ऐसा भी प्रतीत होता है कि शिक्षा यह बेरोजगारी को उत्पन्न कर रही है। अधिक शिक्षित उच्च पदों पर विराजमान होता है तो कम शिक्षित निम्न पदों पर। शिक्षा पूर्ति न होने का कारण उसकी सामाजिक परिस्थितियाँ भी हो सकती है, परंतु इन सबको कहीं देखा नहीं जाता। गरीब अपनी समस्याओं में और अधिक धंसता जा रहा है। पेट की भूख मनुष्य को कुछ भी करने के लिए विवश कर देती है। इक्कीसवीं सदी का समाज आधुनिकीकरण में आगे बढ़ा परंतु मानवीय मौलिकता में वह आगे बढ़ नहीं सका। क्योंकि वह मनुष्यता को महत्ता नहीं दे रहा, धन को महत्ता दे रहा है। परिस्थिति विकट होने तक बस इंतजार कर सकते हैं, और कुछ नहीं। इन सबका समाधान

---

[1] समय, समाज और मनुष्य - खगेन्द्र ठाकुर, पृ.सं. 31

तभी हो सकता है, जब मनुष्य खुद को सही पहचानकर सही राह पर आगे बढ़े, ना कि समाज की कूटनीति को आगे बढ़ाकर मानव मूल्यों को खत्म करे। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में ऐसी ही विभिन्न स्थितियों का वर्णन किया गया है।

राजेश झरपुरे की कहानी 'जैसा आप सोचें' मजदूरों की त्रासदी की कहानी है। कंपनी मैनेजमेंट अपने फायदे के लिए कंपनी में मशीनों की मात्रा बढ़ा देती है। अब मशीनें मजदूरों से अधिक और जल्दी काम करने लगीं। कंपनी के मालिक या कंपनी के व्यवस्थापकों को अब इंसानी मजदूरों की कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी। परंतु कंपनी सीधे-सीधे मजदूरों को काम से निकाल नहीं सकती। इसलिए कंपनी घाटे में चल रही है। मजदूरों को वेतन देना अभी संभव नहीं। ऐसे-तैसे कहकर कंपनी से मजदूरों को सेवानिवृत्ति दे दी गई। यह हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। अपना काम निकालने के लिए पूँजीवादी किसी भी हद तक जा सकते हैं। कंपनी व्यवस्था का मजदूर जीवन से कोई लेना-देना नहीं। वह अपनी समस्या का कहीं से भी समाधान ढूंढे, उससे कंपनी का कोई वास्ता नहीं। बड़ी-बड़ी कंपनियों, कारखाने में मजदूर दल बनाए हुए होते हैं। यहाँ भी वही स्थिति दिखाई गयी है। मजदूर दल एकत्रित होकर कंपनी व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं। यह लड़ाई कभी खत्म ही नहीं होती। कंपनी व्यवस्था के बल पर अपना काम सरकार से करवा लेती है और लड़ने वाले लड़ते रह जाते हैं।

'ललमुनिया मक्खी की छोटी सी कहानी' इक्कीसवीं सदी के परिदृश्य को दिखलाती एक भावात्मक कहानी है। उमाशंकर चौधरी ने अपनी इस कहानी में मनुष्य और मक्खी का पूँजीवादी समाज में कोई अंतर नहीं रह गया है, ऐसा रेखांकित किया गया है। आज के चमचमाते रोशनी से भरपूर मॉल्स की खुबसूरती इन सबसे एक मक्खी भी आकर्षित होती है। उस दुनिया से इस दुनिया में आने के लिए मक्खी का मन कलकलाह रहा है। उसी आशा में पानी के बोतल में छुपकर आना चाहती है। परंतु वह यह समझ नहीं पाती कि यह दुनिया उसकी नहीं। यहाँ राज बस धनवान, पूँजीपतियों का ही चलता है। आखिर वह मक्खी बोतल

में अपना दम तोड़ देती है। इसी तरह कंपनी की व्यवस्था भी जब-तक उसे मजदूर वर्ग की आवश्यकता है, तब तक ही उसे पास रखता है। बाद में निकाल बाहर फेंक देता है। यहाँ लेखक ने मजदूर एवं मक्खी का जीवन एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास किया है। क्या यह विचारधारा सही है। जो बस सत्ताधिकारी व्यवस्था को मानता है। जनसामान्य के लिए इनके पास कोई नीति नहीं। गरीबों के परिवार की कोई सुरक्षा नहीं। इसलिए शायद कभी-भी अलग वर्ग के लोग एक साथ मिलकर रह नहीं सकते। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक सभी कल्पनाओं को एक डोर में बांधकर आगे बढ़ता जा रहा है। कुंठा, तिरस्कार, ऊंच-नीच की भावना, विद्रोह, आक्रोश ऐसे सभी भावों का एकत्रीकरण है। इक्कीसवीं सदी का कहानी जगत विशाल है। इनमें गरीब से गरीब तथा अमीर से अमीर की गाथा लिखी है। आर्थिक माहौल को अगर देखा जाए तो आज समाज अधिक लाचार बन चुका है। प्राकृतिक विपदाएँ कभी भी, कहीं भी आ सकती है, उन्हें हम रोक नहीं सकते। उसी भांति आज का पूँजीवादी समाज गरीब जनता पर कभी भी और कैसी भी विपदा को डाल सकता है।

आर्थिक व्यवस्था के स्तर पर मनुष्य की आशा-आकांक्षा को तोड़ने वाली कहानी 'कानूनी और गैर कानूनी' है। वाङ्मय पत्रिका में प्रकाशित कहानी के कहानीकार राधाकृष्ण हैं। सभ्य समाज ने दलित और आदिवासी को कभी अपना भाग माना ही नहीं। इसलिए आज भी अपने अधिकार की लडाई लड़ते यह दोनों समाज हर तरफ दिखाई देते हैं। आदिवासी मुख्यत: जंगलों में रहते हैं। जंगल और जंगल की जमीन ही उनका घर है। भूमंडलीकरण से पहले किसी का ध्यान जंगल की जमीन की तरफ नहीं गया। लेकिन वैश्विकरण ने नदी, जंगल सबकी परिधि तोड़ दी। यह कहानी भी ऐसे ही आक्रोश भरी आदिवासी लड़की की कहानी है जो अपनी जमीन को बचाना चाहती है। काले कोयले की जमीन जमींदारों के लिए बहुत फायदे की है, परंतु इस बात से कहानी की नायिका अनजान है। वह खुले मन से कानूनी रूप से अपनी जमीन बेचकर कुछ करना चाहती है, परंतु वहाँ के जमींदार को यह मंजूर नहीं है। गैर कानूनी तरीके से वह जमीन

और उसके अंदर का कोयला दोनों को हड़प लेना चाहता है। कहानी की नायिका अपने बारे में न सोचकर अपने गाँव के बारे में सोचती है। और गाँव को विकास के मार्ग पर ले जाना चाहती है। लेकिन जमींदार अपनी तिजोरी भरना चाहता है। धन की चाह ने मनुष्य को पागल करके छोड़ा है। वह क्यों नहीं समझ पाता कि समाज सबको लेकर आगे बढ़ने का नाम है, न कि बस स्वयं का विचार कर आगे बढ़ना।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में आर्थिक माहौल को स्पष्ट किया जाए तो यह होगा कि भूमंडलीकरण, बाजारवाद, भ्रष्टाचार आदि प्रत्येक कहानी में एक आक्रोश का चित्रण है। पूँजीवादी समाज गरीबों को और गरीब बना रहा है। इसलिए शायद युवा गरीब पीढ़ी अपराध की तरफ बढ़ रही है। गलत रास्ता चुन रही है। भटकाव की ओर बढ़ते अपने मूल ध्येय को भूलता जा रहा है। आर्थिक परिवेश देश की मापदंड का मूल स्रोत होता है। आज कौन सा देश गरीब और कौन सा अमीर है, यह उसकी आर्थिक परिस्थिति पर निर्धारित किया जाता है। आज हम क्यों अमेरिका को विकसित देश और भारत को विकासशील देश कहते हैं। क्योंकि आज भी भारत का पूर्ण विकास नहीं हुआ है। इसका जिम्मेदार कहीं-न-कहीं पूँजीवादी वर्ग, भ्रष्टाचारी राजनीति, धार्मिकता के नाम पर फैलते जा रहे अंधविश्वास, ये सभी कारण भारत को आगे बढ़ने नहीं दे रहे। सब बस अपना पेट भरना चाहता है। दूसरों के बारे में सोचने के लिए किसी के पास भी वक्त नहीं है। यही आर्थिक भ्रष्टाचार आर्थिक माहौल को दिखाता है। वर्तमान समय में सब कुछ मशीन है। उसके आगे कुछ नहीं। वर्तमान समय की कहानी भी वही दर्शाती है। कहानी यथार्थ का स्वरूप है। आज की कहानी यही पाखंडी यथार्थ को पाठक के सामने रेखांकित कर रही है।

1.3.1.5 सामाजिक परिवेश

समाज मनुष्य से बनता है। मनुष्य परिवार से बनता है। इसका अर्थ यही निकाल सकते हैं कि मनुष्य और समाज एक दूसरे की उपज हैं। इक्कीसवीं सदी का सामाजिक माहौल

व्यवस्था, शोषण, परिवार, त्याग, शिक्षा आदि को चित्रित कर रहा है। मानव सभ्यता की सभी सीमाएँ लांघकर आगे बढ़ रहा है। अगर सोचा जाए तो क्या हो सकती है मनुष्य की सीमाएँ? एक-दूसरे को सम्मान देना, पति-पत्नी की समानता, स्त्री को मर्यादा देना, देश के प्रति सरल मन से दी हुई आत्मीयता, यह सभी अगर मनुष्य कर पाए तो शायद शोषण, भ्रष्टाचार, त्रासदी ऐसे शब्द हमें फिर सुनने को ना मिले। शायद यह हो पाना असंभव है। क्योंकि हाथ की पाँचों ऊंगलियाँ बराबर नहीं होती। मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। उसके भीतर अनगिनत भावनाएँ समाविष्ट हैं। आधुनिकीकरण ने समाज को ही बदल डाला है। इसका अर्थ मनुष्य बदल चुका है। उसकी भावनाएँ बदल चुकी हैं। उसकी वैचारिकता बदल चुकी है। इसलिए समाज बदल चुका है। आज रात के समय अकेले निकलना खतरों से कम नहीं। यह लडाई सब चीजों के लिए है। चाहे वह इंसान हो या जानवर। स्त्री-पुरुष मतभेद, जातिवाद की लड़ाई, दलित संघर्ष, आदिवासी संघर्ष, वृद्ध संघर्ष, किन्नर संघर्ष आदि। सबके लिए बस लड़ना ही है। न्याय के लिए झुकना ही है।

मानवीय संवेदनाओं का ह्रास हर क्षण हो रहा है। मनुष्य अंदर ही अंदर तिल-तिल मर रहा है। समाज में उभरी कूटनीति किसी को नहीं छोड़ती। जैसे शकुनी मामा ने दुर्योधन को नहीं छोड़ा। मनुष्य स्वार्थी आत्मा बन चुका है, जिसे आगे-पीछे कोई नहीं दिखाई देता। बस वह स्वयं के संबंध में सोचकर जीता है। आत्मीयता की भावना ने कहीं दम ही तोड़ डाला है। समाज आने वाली नयी पीढ़ी को गुमराह कर रहा है। अच्छी और सही दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रथमत: मनुष्य को अच्छा बनना पड़ेगा। इसलिए आस ही छोड़ देना ठीक है कि हमारा समाज कभी निर्मल और सरल बनेगा। उन्नति की ओर आगे बढ़ रहा समाज नैतिकता को आगे नहीं ले जा रहा। बस अपनी जरूरतों को समेटे आगे चल रहा है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों के अंतर्गत नगर-महानगर, स्त्री-पुरुष, जातिवाद, दलित, आदिवासी इन सबका वर्णन किया गया है। सामाजिक स्तर पर अगर कहानियों की बात की जाएं तो कहानियाँ बहुत

ही मर्मस्पर्शी हैं। जो यथार्थ से पाठक को रू-ब-रू करवाती हैं। अनेक समस्याओं का उल्लेख कहानियों में चित्रित है। इससे कहानी का सामाजिक परिवेश कौन सी दिशा में आगे बढ़ रहा है, देख सकते हैं। सामाजिक परिवेश समाज में घटित सभी समस्या एवं वेदनाओं के साथ चलता है। यही वेदना विमर्श का स्वरूप धारण करती है और फिर आपसी युद्ध शुरू हो जाते हैं। यह युद्ध समाप्ति की कोई कालावधि नहीं होती। ये बस महाभारत की तरह चलता ही जाता है, लेकिन हमें पता नहीं कि इस युद्ध का अंत सच्चाई का ही होगा या अंत में बुराई हाथ मार ले जाएगी। समाज हमें बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देता है। परंतु अंतहीन समय में हम चल रहे हैं। जिसका कोई स्वरूप नहीं है। और न ही कोई दिशा। अंधे बनकर बस आगे बढ़ते जाना है।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'मुक्ति' जो निर्दयी मनुष्यता का चित्रण करती है। एक जैसा दिखने वाला मनुष्य जाति से अलग कैसे हो सकता है। जाति से मनुष्य की पहचान की जाती है। इसी सभ्य समाज का एक समाज 'दलित समाज' जिसे सभ्य मनुष्य अपने समाज में गिनता भी नहीं। सभ्यता की परिभाषा की जाए तो वह निम्न जाति के वर्ग का समावेश नहीं करेगी। 'मुक्ति' कहानी का नायक दलित समाज का ही वासी है। उसे समाज ने एक दायरा दिया है। उसी के भीतर रहना आवश्यक है। यह दायरा उसके काम-व्यवसाय की परिधि को भी बनाता है। किसी भी सवर्ण के घर जाने की अनुमति उसे नहीं। मंदिर के अंदर प्रवेश वह नहीं कर सकता। दलित वर्ग सवर्ण के हाथ का खिलौना है। जब उसे खेलता है तब वह खेलेगा। यह ज्ञान सवर्ण समाज में बाँटा जाता है। कहानी का नायक 'नानकराम' और उसका बेटा 'चाँद' दोनों समाज के उलझन में फंसे हुए हैं। उनके पास और दूसरा कोई रास्ता भी नहीं है। चाँद साँड युद्ध में बलि चढ़ जाता है। और नानकराम समाज से बाहर कर दिया जाता है। यह समाज मनुष्यता को मर-मिटने पर आ चुका है। दलितों की परिस्थिति युगों-युगों से वहीं ठहरी हुई है। उसे अभी तक एक निश्चित स्थान मिल नहीं पाया है। दलित समाज में जन्म लेने की

त्रासदी बहुत कठोर है। समाज में अपने स्थान व अधिकार के लिए लड़ते रहना भी अनिवार्य है। यह लड़ाई कब तक चलेगी उसकी कोई सीमा नहीं या कोई कालावधि नहीं है। बस प्रवाह के साथ आगे बढ़ते चले जाना है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिये' भी मनुष्यता को तोड़ देने वाली कहानी है। अगर पाठक के मन में सच की भावना हो और अपने हृदय से समाज के बारे में सोचें तो वह घुसपैठिये पढ़कर अपने समाज को धिक्कारेगा। समाज में फैला जातिवाद मनुष्य को मनुष्य से अलग कर रहा है। 'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' यह कहानी भी जातिवाद की त्रासदी का आवरण है। जिसके अंतर्गत कहानी का नायक समाज में अपनी पहचान छुपाता है। उसे लगता है कि सवर्ण समाज उसे दलित होने के बाद स्वीकार नहीं करेगा। इसलिए वह अपनी सही पहचान सबसे छुपाता रहता है। जब उसके नाम के आगे शर्मा था, तब सब उसे सलाम, नमस्ते करते थे। सभ्य समाज का वह हिस्सा बन चुका था। वह सबमें आ-जा सकता था। मिलकर खाना खा सकता था। लेकिन जब उसकी सही पहचान सबके सामने आती है तब वह गंदी नाली का कीड़ा बन जाता है। समाज कितना निर्दयी है। मनुष्य की भावनाओं को न समझते हुए उसे जाति से पहचानता है। यहाँ मानवीय मूल्यों की कोई जगह नहीं है। यहाँ बस जाति के चरित्र का दिखावा है। समाज नयी पीढ़ी को अगर ऐसी राह दिखाएगा, तो नयी पीढ़ी कैसे तैयार होगी। उसके अंदर भी वही जातिवाद की भावना घर कर बैठेगी। जिसे बाहर निकालना बहुत मुश्किल होगा। इक्कीसवीं सदी का समाज जातिवाद के प्रसंग में बहुत पिछड़ा है। क्योंकि यहाँ मानवता का कहीं भी आवरण दिखाई नहीं देता। भेदभाव और ऊँच-नीच की रीति यहीं देख सकते हैं। वर्तमान समय सामाजिक क्षेत्र में बहुत पीछे है। यहाँ किसी भी समस्या का हल ढूँढना बहुत कठिनाई भरा कार्य है। जिसे कोई करना भी नहीं चाहता। और जातिवाद के कुएँ में भी गिरना नहीं चाहता।

इक्कीसवीं सदी की पृष्ठभूमि को देखा जाए तो यहाँ आदिवासी समाज की भी बड़ी समस्याएँ हैं। अपने अस्तित्व को ढूंढता यह समाज आज के जगत में कहीं गायब होता जा रहा है। आदिवासी समाज आज शहरीकरण की ओड़ में चलता जा रहा है। थोड़े मन से आगे बढ़ रहे हैं, थोड़े मजबूरी से आगे जा रहे हैं। जंगल को अभी देखने मात्र के लिए ही रह गए हैं। शायद यह भी एक वजह है कि आदिवासी जंगल छोड़ शहर में बसने लगे हैं। आदिवासी का सामाजिक परिवेश बिल्कुल अलग होता है। जंगल में रहने की वजह से वह सामान्य मनुष्य के विचारों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। प्रकृति पर वह अपना पूरा जीवन व्यतीत कर सकते हैं। पेड़-पौधे, पत्थर यह उनके भगवान हैं। जिनको आदिवासी कभी दुखी नहीं करना चाहता। आज का औद्योगिक समाज पेड़-पौधों को काट कर गिरा रहा है। ऐसे में आदिवासी शहर की चकाचौंध को आकर्षित होकर यहाँ आना चाहता है। परंतु जिसे सभ्य समाज कहा जाता है, वह समाज अपनी सभ्य संस्कृति में आदिवासियों को आने देना नहीं चाहता। शहरी चकाचौंध में फंसकर आदिवासी भटक गया है। आदिवासी स्त्रियाँ अंधकार में फंस गयी है। वस्तु को जैसे पैसों में खरीदा-बेचा जाता है, वही परिस्थिति अब आदिवासी स्त्रियों की हो रही है। वेश्यावृत्ति पर उतरी आदिवासी महिलाओं की त्रासदी ही कुछ और है। कोई अपने मन से इस धंधे में उतरी है तो कोई विवशता के मारे वेश्यावृत्ति के अंधकार में ढकेली गयी है।

तरुण भटनागर की कहानियाँ इक्कीसवी सदी के सामाजिक परिवेश का चित्रण करती है। 'गुणा-भाग' कहानी सपेरों के जीवन पर आधारित कहानी है। सपेरों की दुनिया अलग ही होती है। साँप जैसे जंतु को वो अपना पालतु जानवर बनाकर उससे पैसे कमाते हैं। यह कहानी भी कुछ ऐसी ही है। समाज में जीने के लिए पैसा कमाना जरूरी है। वह पैसा कैसे और कहाँ से आएगा, यह प्रश्न अलग है। इसलिए आदिवासी जनता जो उनको समझ आए और जिससे वह कुछ धन प्राप्त कर सके ऐसी राह को चुनती हैं। आदिवासी सपेरों का समाज साँपों को भगवान मानता है। अगर साँप ने काट लिया तो वह स्वर्ग पहुँच जाते हैं। ऐसी इनकी धारणा है।

इसी धारणा को सभ्य समाज ने अपना हथियार बना लिया। और साँपों के डंसने से अगर कोई मृत्यु हो गई तो उसे पचास हजार का ईनाम मिलने की घोषणा करवा दी गई। यह अचंभा है मौत के बाद पैसे मिलना। यह सत्ताधारियों का षड्यंत्र है। जिससे वह आदिवासी समाज को अपने हाथ में रखना चाहता है और अपना राज्य चलाना चाहता है। क्योंकि मतदान किस व्यक्ति ने किया यह जरूरी नहीं। मत मिलना जरूरी होता है। मतदान कोई भी कर सकता है। चाहे वह दलित हो या आदिवासी। मतदान के लिए तो सभी सत्ताधारी सभी आदिवासियों को उस समय तक अपना लेते हैं, जब तक उनकी जरूरत है। परंतु आदिवासी क्यों नहीं समझ पा रहा इस षड्यंत्र को, यही एक बड़ा सवाल है। शायद उन्हें जीवन की सुख सुविधा मिलेगी यही आशापूर्ति के लिए वह अपना मन काटकर सब कुछ सह लेते हैं।

परंपरा से आदिवासी समाज को देखा जाए तो वह अपनी पहचान ढूंढता आज भी नजर आ रहा है। विस्थापन का दर्द आदिवासी पहले से ही सहता आ रहा है। विस्थापन भी आदिवासी जीवन का एक महत्वपूर्ण घटक बन चुका है। एक जगह से दूसरी जगह तक घूमते रहना यही उनके जीवन में शेष रह गया है। इसे हम पलायन नहीं कह सकते। यह उनके जीवन की आवश्यकता है। जंगल के पेड़-पौधे ही काट दोगे तो आदिवासी अपना जीवन कैसे बिताएगा। जंगल की लकड़ी भेज वह अपना गुजारा कर लेते थे। पर जब जंगल ही नहीं, तब आदिवासी किस आधार पर जीएं। इसी को स्पष्ट करती 'कोमल' लेखिका की एक कहानी 'साहूकार की मछली'। जिसमें साहूकार आदिवासियों की भूमि तथा उनकी चीजों पर अपना वर्चस्व दिखाने की कोशिश करता है। जहाँ एक छोटी नदी है और उस नदी पर बाँध। साहूकार ने वह बाँध अपनी ओर ले लिया है। अर्थात अब बाँध पर साहूकार का अधिकार रहेगा, बाकी किसी का नहीं। कहानी में एक आदिवासी पति-पत्नी है, जिन्हें मछली खाने का मन कर रहा है। परंतु वह मछली नहीं खा सकते क्योंकि बाँध पर अधिकार साहूकार का है। यहाँ आदिवासी औरत अपने आक्रोश को भी जाहिर करती है। उसका मानना है कि नदी और नदी

की मछली यह सब के लिए है। यह किसी एक के अधिकार में कैसे हो सकती है। ऐसी बहुत सी परेशानियों को आदिवासी समाज को झेलना पड़ रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं। उन्हें बस उसी परेशानी में जीना है।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में बहुत सी अलग-अलग समस्याओं को दिखाया गया है। जहाँ स्त्री-पुरुष संबंध, वृद्ध अवस्था में उनकी ओर अलग विपदाएँ ऐसे बहुत से प्रश्नों का उत्तर देती इस सदी की कहानियाँ हैं। समाज की सामाजिकता का विवरण अगर देखा जाए तो यहाँ की रीति है। वृद्ध यानि बूढ़े माता-पिता को वृद्धाश्रम में डालना। जब तक मनुष्य अच्छी तरह घूमता-फिरता है। चल पाता है तभी तक उसकी जिंदगी स्वर्ग होती है। जब वह लाठी का सहारा लेने लगता है तब से उसकी जिंदगी नर्क का रास्ता पकड़ लेती है। क्योंकि सभी बच्चे अपने बूढ़े माँ-बाप की लाठी बनना नहीं चाहते। उनमें से कुछ हो भी सकते हैं। लेकिन सभी तो नहीं बनते। यही विपदा वृद्धा अवस्था की है, जो हमारे समाज में फैली है। और भी बहुत सी समस्याएँ अपने समाज में है। जैसे शादी, विधवा, दहेज, यौन शोषण, अशिक्षित समाज, रूढ़िवादी परंपराएँ आदि। आधुनिकीकरण ने दुनिया बदल डाली है। दुनिया में रहने वाले मनुष्य की सोच बदल डाली है। अब मनुष्य धन कमाने का यंत्र बन चुका है। जिसे चार्जिंग या रिचार्ज की कोई आवश्यकता नहीं। यह चौबीस घंटे तत्पर रहता है धन कमाने की होड़ में। प्रथम दशक की कहानियों में ऐसे बहुत से चित्र हैं, जिनमें मनुष्य एक सामाजिक प्राणी न होकर स्वयं को नियंत्रित करने वाला यंत्र बन चुका है। इसकी झाँकी हमें कहानियों में देखने को मिलती है। ऐसी कहानियाँ प्रेरित करती है समाज को और नजदीक से जानने के लिए। मनुष्य इक्कीसवीं सदी में आकर यंत्र बन चुका है, जो भावनाहीन है।

"वर्तमान के हमारे समाज को किस रूप में देखें? नया सूचना समाज, विश्व स्तर के पूँजीवादी विकास में शरीक हो जाने की उत्तेजक चाह रखने वाला समाज, ग्लोबल इकोनॉमी पर आधारित समाज, प्रौद्योगिकी की दौड़ में होड़ लगाता समाज, उत्तर आधुनिकता के नए

सांस्कृतिक वशीकरण में डूबा समाज, विचारधारा और मूल्यों के प्रति टूटती प्रतिबद्धता वाला समाज या फिर दलित, शोषित, वंचित, उत्पीड़ित समाज।"[1] यहाँ बहुत बड़ा प्रश्न पूछा गया है। आखिर हम समाज किसको कहें। जो नैतिकता को छोड़कर रूढ़ी-परंपराओं की बेड़ी में जकड़ा हुआ है क्या उसे हम समाज कहें। अगर समाज पहले से ही बेड़ियों में जकड़ा है तो उसे सामाजिकता का महत्व कहाँ से दिखाई देगा। आज की कहानियों में चित्रित समाज अपने आपका ही स्वयं शत्रु है। जो अंधेरी गलियों में अपनी राह ढूंढ़ रहा है। भौतिक स्तर पर अगर देखा जाए तो बहुत सी सुख-सुविधाओं में हम अपना जीवन बिता रहे हैं। परंतु यही सुविधाएँ मनुष्य को एक-दूसरे से अलग कर रही है। बाईक पर बैठने का मजा कभी-भी कार में नहीं आ सकता। उसी प्रकार जीवन की छोटी-छोटी चीजें मन को खुश कर जाती है। परंतु वहीं दूसरी ओर सुविधाएँ मनुष्य का मन मार रही है। आज वर्तमान समय का मनुष्य घर में रहकर भी अकेला है। घर में सभी रहकर भी एक-दूसरे से अनजान है। यह बदलाव 'इम्पोर्टेड' सुख-सुविधाओं के कारण हो रहा है। चिट्ठी पढ़ने का मजा और उसका इंतजार करने की आतुरता आज के फोन-मोबाइल खत्म कर दी है।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक सामाजिक स्तर पर व्यवसायीकरण में बंध चुका है। महानगरों की चकाचौंध गाँव की खुबसूरती को मिटा रही है। आज हर छोटा-बड़ा बच्चा मॉल्स में घूमना चाहता है। महंगे-महंगे खिलौनों से खेलना चाहता है। अपनी जरूरतों को किसी भी हाल में पूरा करने के लिए मनुष्य किसी भी हद तक गिर सकता है। यहाँ समाज स्वयं के बारे में सोचकर जीवन व्यतीत कर रहा है। उसे दूसरों की मुसीबतों से कोई वास्ता नहीं। वह अपना जीवन सुखमय बनाएं बस। समाज विकसित होने की डगर पर है, परंतु वह अपनी मौलिकता को मानवता को काटकर आगे बढ़ रहा है। यही त्रासदी समाज में फैली हुई है। मनुष्य, मनुष्य के प्राण हरने को भी तैयार है। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ हमें मनुष्य की

---

[1] नई सदी बाजार समाज और शिक्षा - दिनेश भट्ट, पृ.सं. 9

प्रत्येक समस्याओं से अवगत कराती है। आज का साहित्य सभी को लेकर आगे बढ़ रहा है जिससे पाठक वर्ग समाज के प्रत्येक क्षेत्र को जान पा रहा है। कहानी की विशेषता यही है कि कहानी पाठन के समय पाठक अपने आपको कहानी के अंतर्गत पाता है। वह स्वयं पर यह प्रयोग करने लगता है। सामाजिक माहौल का यहाँ सही चित्रण होगा कि हम दकियानूसी रूढ़ी-परंपराओं को न मानकर मनुष्य को मनुष्य जैसा समझकर आगे बढ़ें। हम सब एक हैं, हमारा समाज एक है। हमारी नीति एक है। तभी हम सुखमय भारत को आगे देख सकते हैं।

निष्कर्ष

हिन्दी कहानी का वर्तमान समय अधिक विस्तृत है। साहित्य जगत में कहानी ने अपनी एक पहचान बना ली है। कहानी कल्पनाओं से उतरकर यथार्थ पर ठहर गयी। मानवीय मूल्यों का परिचय कहानी करवाती है। समाज में घटित तत्वों का सजीव चित्रण कहानी के माध्यम हो रहा है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत कहानी की इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक को रेखांकित किया गया है। कहानी के स्वरूप तथा अर्थ को विश्लेषित कर कहानी की परिभाषाएँ दी गयी है। संक्षिप्त में कहानी का विकास क्रम किस तरह से शुरू हुआ उसे चित्रित किया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के अंत तक के विकास क्रम पर प्रकाश डाला गया है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में कहानी का पदार्पण कैसे हुआ, उसे रेखांकित किया गया है। इक्कीसवीं सदी का परिदृश्य कैसा था, यह विश्लेषित किया गया। प्रथम दशक में कहानी का माहौल कैसा था, उसे धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चरणों में विस्तृत रूप में बताया गया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ अनेक जटिलताओं से बाहर आयी है। इक्कीसवीं सदी के युवा रचनाकारों की युवा सोच कहानी के माध्यम से पाठक तक पहुँच जाती है।

कहानी की इक्कीसवीं सदी वैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत प्रगति कर चुकी है। भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण इन सभी घटकों की वजह से मनुष्य सभी भौतिक सुख-

सुविधाओं को देख पा रहा है। आज का समाज मशीनी समाज है। सभी काम झटकों में पार हो जाते हैं। परंतु इन्हीं सुख-सुविधाओं के कारण कहीं-न-कहीं मनुष्य-मनुष्य से दूर होता जा रहा है। आत्मीय भावना समाप्त हो चुकी है। एक-दूसरे के सुख-दुख को समझने के लिए समय नहीं है। पारिवारिक समस्याओं की बढ़ोत्तरी इक्कीसवीं सदी में देखी जा सकती है। कहानी समाज का दर्पण है। इसलिए इन सभी घटनाओं का साक्ष्य कहानी बनती है। कहानी जीवन का यथार्थ शब्दों के माध्यम से जन सामान्य तक पहुँच रही है। कहानी समाज में हो रहे सभी ज्वलंत मुद्दों को उठाकर रची जाती है। इसलिए कहानी भी मनुष्य जीवन का हिस्सा बन चुकी है। मानवीय संवेदनाओं के कहानी जीवंत उदाहरण है। जिससे संवेदनाओं के विविध भावों का ज्ञान हमें होता है। प्रथम दशक के मनुष्य के साथ-साथ चल रही है। कहानी का भाषा-शिल्प, कथावस्तु कहानी को पूर्ण बनाता है। कहानी में विभिन्न प्रयोग उसकी भाषा तथा शिल्प पर किए जाते हैं। जिससे कहानी और आकर्षक बनती जाती है। इक्कीसवीं सदी की कहानी का समय भी कुछ ऐसा ही है। कहीं द्वेष, तो कहीं प्रेम, कहीं अत्याचार, भ्रष्टाचार, तो कहीं अपनेपन की भावना इन सब मूल्यों ने कहानी को अधिक उत्कृष्ट बनाया है। कहानी का सामाजिक परिदृश्य कहानी की विशेषता को बताता है। किस स्थिति या परिस्थिति में कहानी की रचना की गई होगी उसका यथार्थ स्वरूप देखने को मिलता है। कहानी का पाठक वर्ग हमेशा बदलती दुनिया का नजारा देखने के लिए या यूँ कहें पढ़ने के लिए तैयार होता है। कहानी का यथार्थ स्वरूप ही कहानी को उच्च स्तर पर पहुँचा देता है। कहानी किसी एक पक्ष पर आधारित नहीं होती। कहानी समाज की होती है। समाज मनुष्य बनाता है। यह अच्छा समाज बनेगा या बुरा, यह भी मनुष्य ही तय कर सकता है।

*****

द्वितीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कहानीकार: सामान्य परिचय और रचनाएँ

2.1 भूमिका

2.1.1 जयप्रकाश कर्दम

2.1.2 विनोद कालरा

2.1.3 यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

2.1.4 एस. आर. हरनोट

2.1.5 कविता

2.1.6 पंखुरी सिन्हा

2.1.7 जया जादवानी

2.1.8 सुशीला टाकभौरे

2.1.9 चित्रा मुदगल

2.1.10 मेहरून्निसा परवेज

2.1.11 उर्मिला शिरिष

2.1.12 चंद्रकांता

2.1.13 ओमप्रकाश वाल्मीकि

2.1.14 असगर वजाहत

2.1.15 अल्पना मिश्र

2.1.16 अंजु दुआ जैमिनी

2.1.17 अनिता गोपेश

2.1.18 सुधा अरोड़ा

2.1.19 सूरजपाल चौहान

2.1.20 सूर्यबाला

2.1.21 नासिरा शर्मा

2.1.22 मैत्रेयी पुष्पा

2.1.23 उदय प्रकाश

2.1.24 रत्नकुमार सांभरिया

2.1.25 ममता कालिया

2.1.26 भगवानदास मोरवाल

2.1.27 चंद्रकिरण सौनरेक्सा

2.1.28 इंदुबाली

2.1.29 संजीव

2.1.30 अमरीक सिंह 'दीप'

2.1.31 दीपक शर्मा

2.1.32 गीतांजली श्री

2.1.33 कुणाल सिंह

2.1.34 नीलाक्षी सिंह

2.1.35 दूधनाथ सिंह

2.1.36 प्रत्यक्षा

2.1.37 मनीषा कुलश्रेष्ठ

2.1.38 वंदना राग

2.1.39 ज्ञानप्रकाश विवेक

2.1.40 शर्मिला बोहरा जालान

2.1.41 अखिलेश

2.1.42 मीरा कांत

2.1.43. अजय नावरिया

2.1.44 सुषमा जगमोहन

2.1.45 तरूण भटनागर

2.1.46 क्षमा शर्मा

2.1.47 बानो सरताज

2.1.48 नमिता सिंह

2.1.49 पंकज मित्र

2.1.50 सुदर्शन वशिष्ठ

2.2 निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कहानीकार : सामान्य परिचय और रचनाएँ

2.1 भूमिका

साहित्य की प्रत्येक सदी अपने आपमें कुछ नयापन दिखाती है। साहित्य की सभी विधाएँ चाहे वह उपन्यास, नाटक, कहानी या लघु कथा हो अपने-अपने समय का मूल्यांकन करते हुए अपनी विशेषता पाठक के सामने रखते हैं। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक (2001-2010) अनेक अनुभवों को लेकर आगे बढ़ा है। बहुत से नए-नए लेखकों ने इस समय में पदार्पण किया। नयी सोच की उजागरता इक्कीसवीं सदी में हुई है। आलोच्य युग के कथाकारों ने संवेदनाओं के हर एक क्षेत्र को छुआ है। चाहे वह दलित संवेदना हो, स्त्री संवेदना या आदिवासी संवेदना, ऐसे विभिन्न क्षेत्रों को वर्तमान समय के साहित्यकारों ने समाज के सामने रखा है। इक्कीसवीं सदी के लेखनी में दलितों की आक्रोश भावना, स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार, उत्पीड़न उसी के साथ स्त्री-सशक्तिकरण की भावना भी पाठक के सामने ला रखी है। आलोच्य युग की कहानियों में लेखक ने संवेदनाओं के साथ शब्द की विविधता का ध्यान भी रखा है। इक्कीसवीं सदी के साहित्य में कहानी एक मुख्य विधा के रूप में सामने आयी है। पुस्तक के कुछ पन्नों में ही लेखक पाठक के सामने वर्तमान परिदृश्य को रख देता है। कहानी चुनने का कार्य मुझे थोड़ा समस्या प्रधान लगा, क्योंकि मुझे दिया गया समय इक्कीसवीं सदी में पदार्पण करता पहला दशक है। प्रथमत: मुझे लगा कि यह समय-सीमा अंतिम दशक जैसी होगी। परंतु इसमें बहुत सी विभिन्नता का सामना मुझे करना पड़ा। कहानीकारों के आक्रोश, उनकी भावनाएँ, नयी पीढ़ी की नयी सोच इन सबका एकत्रीकरण इक्कीसवीं सदी के प्रथम चरण में हमें देखने को मिलता है। प्रस्तुत अध्याय में मैंने कुछ कहानीकारों का परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख किया है, जिससे उन कहानीकारों का संक्षिप्त परिचय हमें मिल जाए।

2.1.1 जयप्रकाश कर्दम

दलित साहित्य को सशक्त बनाकर हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की पहचान बनाने वाले एक कथाकार (जयप्रकाश कर्दम) विविध भाषा तथा संस्कृति से रचा गया हिन्दी साहित्य, दलित साहित्य की शृंखला को अपने समाज में जोड़ता आया है। दलित वर्ग जो अपने हक और अधिकार के लिए पहले से अब तक लड़ता आ रहा है। ऐसे ही समाज में जन्म लेने वाले एक बड़े विख्यात कथाकार जयप्रकाश कर्दम हैं। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद के निकट इंदरगड़ी नामक गाँव में 5 जुलाई 1958 को हुआ। आपने उत्तर प्रदेश के एक गरीब दलित परिवार में जन्म लिया था। दलित परिवार में जन्म लेने की त्रासदी ने आपको साहित्य की तरफ खींचा। इतने कष्टों के पश्चात भी आपने पीएच.डी. तक शिक्षा प्राप्त की। बचपन से जो आपने सहा है और जिस त्रासदी भरी जीवन की रेखा आपने देखी थी वही सभी आपकी लेखनी का निमित्त बनी। आपके लेखन कार्य को हिन्दी साहित्य में बड़ा नाम मिला। आपको अनेकों सम्मान और पुरस्कारों से अलंकृत किया गया। जैसे- भारतीय दलित साहित्य द्वारा 'संत रैदास सम्मान', हिन्दी अकादमी, नई दिल्ली द्वारा 'वरिष्ठ योगदान सम्मान' बहुजन अन्याय एक्शन समिति, अमरावती द्वारा सम्मान आदि। दलित समाज की वस्तुगत सच्चाइयाँ समाज के सामने लाने के लिए इन्होंने कविता, कहानी और उपन्यास विधाओं का चुनाव किया। उपन्यास 'छप्पर और करुणा', कविता संग्रह 'गूँगा नहीं था मैं', 'तिनका-तिनका आग', कहानी संग्रह 'तलाश' (2005), 'खरोंच' आदि प्रकाशित हुए हैं। दलित समाज के सामाजिक मूल्यों का तिरस्कार 'तलाश' कहानी संग्रह में प्रस्तुत किया गया है। जयप्रकाश कर्दम जी को समानता से पूर्ण समाज की तलाश है। जहाँ कोई भेदभाव, विषमता और तिरस्कार की भावना न हो। 'नो बार' कहानी जो बहुचर्चित रही, एक पिता अपनी बेटी के लिए रिश्ता ढूँढता है। जिसे जाति की कोई परवाह नहीं। परंतु अंत में जब शादी निश्चित होने का समय आता है, तब पिता अपनी बेटी से पूछता है- लड़का कौन-सी जाति का

है। वैचारिक विषमता को यहाँ दिखाया गया है। 'कामरेड का घर' एक मार्क्सवादी ढोंगी कहानी का पात्र। जिसके कहने और करने में जमीन-आसमान का अंतर है। 'शीतलहर' कहानी में कर्दम जी ने समाज में चल रहे जातिवाद को चित्रित किया है। रहने के लिए एक फ्लैट लेना भी सवर्ण समाज में इसी विपदा का चित्रण बड़े ही मार्मिक स्वरूप में किया गया है। आपकी अन्य रचनाएँ बाल साहित्य- बुद्ध का समय, महान बौद्ध चालाक, डॉ. अम्बेडकर का बचपन, आदिवासी देव कथा-लिंगो आदि। बाल उपन्यास- श्मशान का रहस्य है। आलोचना- वर्तमान दलित आंदोलन, हिन्दुत्व और दलित : कुछ प्रश्न और धर्म विचार, डॉ.अम्बेडकरवादी : दलित और बौद्ध आदि। ऐसी अनेक रचनाओं द्वारा आपने दलित साहित्य को पाठकों के समक्ष रखा है।

2.1.2 विनोद कालरा

पंजाब एक ऐसा राज्य जाना जाता है जहाँ स्त्री हो या पुरुष अपने वतन के लिए जान न्यौछावर करता है। इसी पंजाब शहर में जन्मी विनोद कालरा हिन्दी साहित्य जगत की एक प्रख्यात लेखिका हैं। इनका जन्म पंजाब के जालंधर शहर में 16 जनवरी, 1966 को हुआ। इन्होंने अपने लेखनी में स्त्री जीवन का परिचय दिया है। उनके काल समय में इन्होंने देखी हुई स्त्री समस्या, उत्पीड़न को लेखनी के माध्यम से इन्होंने पाठक के सामने रखा है। 'सच सिर्फ इतना सा' इनका कहानी संग्रह है। इनकी एक कहानी फैसला में स्त्री कठिनाइयों को दिखाया गया है। स्त्री जन्म कितना बड़ा पाप है, जो कन्या भ्रूण हत्या जैसे कुरीति को जन्म देता है। यह लेखिका ने बताया है। नारी पर हो रहे विभिन्न प्रकार के अत्याचार यौन शोषण जैसे विविध पहलुओं को लेखिका ने सामने लाने का प्रयत्न किया है। और एक तरफ लेखिका स्त्री सशक्तिकरण को महत्व देते हुए स्त्री का रौद्र रूप भी सामने लाती है। जो अपनी बेटी के साथ अन्याय से लड़ना जानती है। 'तुम यही कहीं हो' - कविता संग्रह, अवधारणा एवं अनुप्रयोग प्रविधि- आलोचना यह संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

2.1.3 यादवेन्द शर्मा 'चन्द्र'

15 अगस्त, 1932 को बीकानेर (राजस्थान) में आपका जन्म हुआ है। राजस्थान के एक विशेष साहित्यकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। आपकी साहित्य की सभी विधाओं में कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। राजस्थानी परिवेश को अपनी लेखनी के माध्यम से आपने पाठक के सामने रखा है। साहित्य अकादमी, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, राजस्थान अकादमी, राजस्थानी भाषा, राजस्थानी पत्रिका कहानी पुरस्कार, फणीश्वरनाथ रेणु ऐसे अनेक पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया है। डॉ. राहुल साकृत्यायन सम्मान, पंडित झाबरमल शर्मा सम्मान, साहित्य महोपाध्याय, विद्यावाचस्पति, साहित्य श्री, साहित्य मनीषी आदि सम्मान आपको प्राप्त हुए हैं। आपने लगभग सात फिल्मों का लेखन कार्य किया है। 'तेरा-मेरा उसका सच', 'आँखें सब देखती हैं' - कविता संग्रह है। 'नज़र एक चेहरे अनेक' - संस्मरण। आपने लगभग पचास से अधिक बाल साहित्य की पुस्तकें लिखी हैं। आपके आठ नाटक- 'आखिरी मंजिल', 'चुप हो जाओ पीटर', 'तीन नाटक', 'जीमूतवाहन', 'चार अजूबे', 'मैं अश्वत्थामा' प्रकाशित हो चुके हैं। 'संन्यासी और सुन्दरी', 'एक और मुख्यमंत्री', 'हजार घोड़ों का सवार', 'चाँदा सेठानी', 'जनानी ड्योढ़ी', 'आदमी में मगरमच्छ', 'पाँव में आंख वाले', 'सूखा मरुस्थल', 'देह गाथा माधवी की', 'सती-महासती', 'प्रजाराम', 'कुर्सी गायब हो गयी', 'खून का टीका' आदि लगभग साठ उपन्यास। राजस्थान की पहली रंगीन फिल्म जो स्त्री त्रासदी को दर्शाती है- 'लाज राखौ राणी सती' प्रकाशित हो चुकी हैं- मेरी प्रिय कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ, विशिष्ट कहानियाँ, दो हिस्सों में बँटी औरत, श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानियाँ, तपता समन्दर, इक्यावन कहानियाँ, वाह किन्नी वाह, तेरह कहानियाँ, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ आदि प्रकाशित हो चुकी हैं। राजस्थानी नारी जीवन को अपने बड़े ही मार्मिक रूप से पाठक के सामने रखा है। कहानी 'सच का दायरा' में लेखक ने नारी के असमंजस को प्रस्तुत किया है- "हम कितने बरसों के बाद गाँव लौट रहे हैं? मुझे तो बरस याद

ही नहीं रहते।"[1] आपने समाज के सभी पहलुओं को कागज पर उतारा है। प्रेमकथा लिखने के समय जो भावना आपके मन में आयी वह विशेष है- "मैं जानता हूँ- इस यांत्रिक व भौतिक युग में जब अधिकांश कहानियाँ स्त्री-पुरुषों के संबंधों, वृद्धजनों की घिसटती-दुखती स्थितियों व मनोभावों और कभी-कभी स्त्री की सैक्स के मामले में बोल्डनेस दिखाकर लेखकीय दुस्साहस प्रकट करने के मध्य यह कहानी कितना प्रभाव छोड़गी, यह तो पाठक ही जानें।"[2] ऐसी विभिन्न भावनाओं से आपने अपना लेखन कार्य पाठक को सौंपा है।

2.1.4 एस.आर. हरनोट

हिन्दी साहित्य जगत के एक प्रख्यात एवं चर्चित कहानीकार एस.आर. हरनोट हैं। आपका जन्म दुनिया की सबसे सुंदर जगहों में से एक हिमाचल प्रदेश के शिमला जिले में हुआ। आपका जन्म एक छोटे से पहाड़ी गाँव पिछड़ी पंचायत, गाँव चनावग में सन् 22 जनवरी 1955 को हुआ है। आपकी शिक्षा एम.ए. तक हुई है। 'दारोश तथा अन्य कहानियाँ' पुस्तक के लिए 2003 का अंतर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान तथा 2007 में हिमाचल राज्य अकादमी पुरस्कार आदि पुरस्कारों से आप सम्मानित हैं। आपकी रचित 'दारोश' कहानी पर दिल्ली दूरदर्शन द्वारा फिल्म का निर्माण किया गया है। पहाड़ी जीवन की शीतलता को आपने पाठक के सामने किया गया है। आपकी कहानियों में पहाड़ी जीवन शैली, वहाँ की संस्कृति, पहाड़ी रीति रिवाज आदि का परिचय हमें मिलता है। आपकी कहानियों का अनुवाद विविध भाषाओं में हुआ है। जैसे- मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड और पंजाबी। आपकी भाषा बहुत ही सरल एवं सटीक है। जिससे पाठक को अधिक कष्ट नहीं होता, कहानी को आत्मसात करने के लिए। 'हिडम्ब तथा माफिया' जनता ने बहुत पसंद किया। आपके इस उपन्यास और कहानी का अंग्रेजी भाषा का अनुवाद प्रकाशित है। हिमाचल के मंदिर और उनसे जुड़ी लोक कथाएँ, हिमाचल एट ए ग्लांस, हिमाचल की कहानी, पंजाब, आकाशबेल, पीठ पर पहाड़,

---

[1] वाह किन्नी ! वाह, यादवेंद्र शर्मा चंद्र, पृ- 102

[2] वाह किन्नी ! वाह, यादवेंद्र शर्मा चंद्र, पृ- 114

दारोश, मिट्टी के लोग, जीनकाठी तथा अन्य कहानियों में आपने पहाड़ी जीवन का परिचय दिया है। पहाड़ी लोक संस्कृति के विभिन्न अंगों से लेखक ने पाठक वर्ग को अवगत कराया है। 'माँ पढ़ती है' कहानी में आपने एक स्त्री में पढ़ने की कितनी जिज्ञासा होती है, यह आपने बताया है। 'जीनकाठी' कहानी में भुण्डा : पहाड़ी समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है। यहाँ भी दलित, छुआछूत की भावना किस तरह से छोटे-बड़े की भावना का निर्माण करती है। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की प्रताड़ना ये सभी आपकी कहानी संग्रह में दर्शाया गया है। 'मिट्टी के लोग', 'चीखें' कहानी में स्त्री विपदा का चित्रण आपने किया है। पुत्र प्रेम में अंधविश्वासी समाज एक स्त्री को कितने कष्टों से जुझाता है, इसका मार्मिक चित्रण आपकी कहानियों में पाठक वर्ग को प्रस्तुत होता है।

2.1.5 कविता

इक्कीसवीं सदी की कहानीकारों में हम कविता जी का नाम भी बड़े सम्मान से लेते हैं। आपका जन्म मुजफ्फरपुर, बिहार में सन् 15 अगस्त, 1973 को हुआ। 'अमृतलाल नागर कहानी प्रतियोगिता पुरस्कार' आपको 2003 में मिला। 'प्रेमचंद कथा सम्मान' हेतु आपकी कहानी चयनित हुई। आपका संपादन एवं संयोजन कार्य- 'मैं हंस नहीं पढ़ता' (लेख), 'जवाब दो विक्रमादित्य' (साक्षात्कार), 'अब वे वहाँ नहीं रहते' (राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर और नामवर सिंह का पत्राचार) आदि पर आपने संपादन एवं संयोजन कार्य को पूर्ण किया है। कविता की कहानियों में धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश का चित्रण किया गया है। आपके 'उलटबाँसी' कहानी संग्रह में आपने स्त्री जीवन की अनेकों त्रासदियों का चित्रण किया है। 'उलटबाँसी' कथा संग्रह जीवन मूल्यों में हो रहे बदलाव के भीतर का एक ऐसा प्रस्तुतीकरण है। जिसमें आत्मनिर्भरता के विश्वास को रेखांकित किया गया है। आज की तेज रफ्तार वाली दुनिया में किस तरह स्त्री-मुक्ति समांतर भावना की नींव बुनती है, इसका मार्मिक चित्रण हुआ है। 'विरह: एक प्रेमकथा' के अंतर्गत लेखिका ने आज के युग के एक

प्रेमी जोड़े के बारे में लिखा है। जो साथ रहकर भी साथ एक-दूसरे से अलग है। उनकी विचारधारा अलग है। आज वर्तमान की उनकी सोच एक-दूसरे के साथ कैसे और क्यों नहीं रहने देती इसका चित्रण बड़ी ही सरलता से किया गया है। 'बिन्दी री बिन्दी' कहानी में धर्म पर आधारित समाज का विश्लेषण किया गया है। मुस्लिम समाज और एक नारी की भावना को किस तरह से रौंदा गया है, यह लिखा गया है। कविता की कहानियाँ आज के युग में नारी की क्या भावना है और वह समाज में अपना स्थान कैसे पाना चाहती है। इन सबका मेल कविता की कहानियों में मिलता है। स्त्री-सशक्तिकरण के मार्ग पर चलती आधुनिक नारियों को दर्शाया गया है। 'मेरी नाप के कपड़े' (2006) कहानी संग्रह में भी कविता ने युवा-स्त्री की मानसिकता को दर्शाया है। संघर्ष करती स्त्री का चित्रण हुआ है जो सामाजिक और नैतिक स्तरों पर आगे बढ़ती जा रही है।

2.1.6 पंखुरी सिन्हा

बिहार जैसे राज्य से बाहर आयी इक्कीसवीं सदी की एक युवा कथाकार पंखुरी सिन्हा, जो बहुत कम समय में अपनी लेखनी के जरिए समकालीन समाज के सामने आयी। आपका जन्म मुजफ्फरपुर में 18 जून, 1975 को हुआ। पत्रकारिता में आपने अपनी एम.ए. की शिक्षा पूर्ण की है। आपने दो वर्षों तक एक प्राइवेट टेलीविजन चैनल के समाचार विभाग में कार्य किया। 1995 में हिन्दी की सर्वोच्च रचनात्मक प्रतिभा का 'गिरिजा कुमार माथुर पुरस्कार' आपको प्राप्त हुआ। जानकी देवी महाविद्यालय में कहानी लेखन में आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया। किरोड़ीमल कॉलेज में काव्य-पाठ प्रतियोगिता में भी आपने प्रथम स्थान ग्रहण किया। आपका पहला कहानी संग्रह 'कोई भी दिन' (2006) और आपका दूसरा कहानी संग्रह 'किस्सा-ए-कोहिनूर' (2008) में प्रकाशित हुआ है। आपने अपनी लेखनी में स्त्री को अधिक महत्व दिया है। आपकी कहानी में राष्ट्रभाव की चेतना, देश के प्रति अपनी जागरूकता, देशप्रेम ऐसे विविध पहलुओं को दर्शाया गया है। 'कोई भी दिन' कहानी संग्रह में

आपने राष्ट्र प्रेम, बाल शिक्षा, स्त्री चेतना, व्यवसायीकरण ऐसी बहुत सी कड़ियों को रखा है। परिवार में चल रहे बंधनों को किस तरह से एक स्त्री संजोग कर आगे चलती है और सामाजिक स्तर पर अपने प्रश्नों का उत्तर ढूँढती दर्शाती होती हैं। आपकी एक कविता 'एक नया मौन - एक नया उद्घोष' के लिए आपको पुरस्कार मिला है। यह कविता प्रकाशित भी हुई है। आपकी कविताएँ, कहानियाँ भारत के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। जैसे नया ज्ञानोदय, पहल, साक्षात्कार, हंस, कथाक्रम आदि।

2.1.7 जया जादवानी

हिन्दी साहित्य जगत में जया जादवानी एक कथाकार के रूप में बहुत विख्यात हैं। जया जादवानी का जन्म 1 मई, 1959 को कोतमा जिला, मध्य प्रदेश में हुआ है। आप एक खुले विचारों की लेखिका हैं। आपके लेखनी में स्त्री पक्ष को अधिक दर्शाया है। आपका उपन्यास 'तत्वमसि' कविता संग्रह- 'मैं शब्द हूँ', 'अनंत संभावनाओं के बाद भी' प्रकाशित है। आपके कहानी संग्रह 'मुझे ही होना है बार-बार' (2000), 'उससे पूछो' (2008), 'मैं अपनी मिट्टी में खड़ी हूँ काँधे पे अपना हल लिये' (2009), 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' (2002) प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी लेखनी में पुरुष प्रधान समाज का विरोधी दृश्य होता है। नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को पाठक के सामने आपने रखा है। धर्म के नाम पर होता कुकर्म, पाखण्ड और स्त्री के प्रति पुरुष की मानसिकता का वर्णन आपने किया है।

आपकी कहानियाँ नारी के यथार्थ जीवन को दर्शाती है। आपकी कहानी की पात्र सशक्त भी हैं और अशक्त भी। 'अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है' कहानी संग्रह स्त्री-पुरुष संबंधों के उलझते रिश्तों की माला है। काफी समय से हिन्दी साहित्य में साहित्यकारों ने स्त्री-पुरुष संबंधें के बारे में लिखा है। आज भी उसकी आवश्यकता क्यों है? इस कहानी संग्रह में यह चित्रित किया है। इस कहानी संग्रह की 20 कहानियाँ में औरतों की 20 अलग-अलग गूँज है। जो प्रत्येक कहानी से अपना अलग एक संदेश समाज को दे रही है। परिदृश्य कहानी

पितृसत्ता का आईना दिखाती है। पितृसत्ता की वजह से स्त्री कैसे और क्यों आगे बढ़ने के लिए डर रही है, उसका विवरण दिया गया है। प्रस्तुत कहानी संग्रह का नाम ही इसका डरावना है कि हम सोच सकते हैं। अंदर जो कहानियाँ हैं वह स्त्री की त्रासदी को कितनी दर्शाती होगी?

2.1.8 सुशीला टाकभौरे

दलित साहित्य की महान महिला कथाकार सुशीला टाकभौरे। आपका जन्म होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में सन् 4 मार्च, 1954 को हुआ। बहुत सी कठिनाइयाँ, बाधाओं, अवरोधों के पश्चात भी आप अपनी जिद न छोड़कर लेखन कार्य करती गयी। आपने अपने साहित्य में दलित जीवन की त्रासदी जो आपने भोगी है, उसका चित्रण किया गया है। साहित्य जगत में आप एक कवयित्री और कहानीकार रूप में हैं। आपने कहानी लेखन का कार्य आपकी आठवीं कक्षा से ही प्रारंभ कर दिया था। आपका पहला कहानी संग्रह 'अनुभूति के घेरे' (1997) प्रकाशित है। आपने साहित्य की अनेक विधाओं को अपनी लेखन कार्य में सम्मिलित किया है। आपने कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, वैचारिक लेख, निबंध, आत्मकथा आदि के माध्यम से दलित उत्पीड़न का चित्रण किया है। आपका वैचारिक लेख 'हाशिए का विमर्श' (निबंध), 'वह लड़की' (कविता संग्रह), 'यह तुम भी जानो', 'हमारे हिस्से का सूरज', 'स्वाति बूंद और खारे मोती', 'तुमने उसे कब पहचाना', 'नीला आकाश' (उपन्यास), 'शिकंजे का दर्द' (आत्मकथा), 'हिंदी साहित्य के इतिहास में नारी' (विवरण), 'परिवर्तन जरूरी है' (लेख), 'दलित साहित्य : एक आलोचना दृष्टि' (आलोचना पुस्तक) आदि आपकी रचनाएँ प्रकाशित हैं। आपकी अम्बेडकरवादी विचारधारा आपके साहित्य में झलकती है। 'अनुभूति के घेरे', 'टूटता वहम' और 'संघर्ष' कहानी संग्रह हैं। आपका आरंभिक लेखन कार्य संघर्ष भरा रहा है। 'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह प्रेम भावना को व्यक्त करता है। 'भूख' कहानी और 'दिल की लगी' कहानी में प्रेम से भरा जीवन का चित्रण दर्शाया गया है। आपका दूसरा कहानी संग्रह 'टूटता वहम' जातिवादी विचारधारा को दर्शाता है।

आपकी 'संघर्ष' कहानी (2006) में प्रकाशित हुई। दलित उत्पीड़न से ओतप्रोत 'संघर्ष' कहानी संग्रह दलितों की आवाज है जो अपने हक और अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। 'जन्मदिन' कहानी में अम्बेडकरवादी विचारधारा का संघर्ष दर्शाया गया है। कहानी 'छौआ माँ' के अंतर्गत एक दलित नारी, जो अपने स्वाभिमान के लिए कुछ भी कर सकती है और अपने आत्मसम्मान का रक्षण भी करना जानती है। स्त्री सशक्तिकरण की व्याख्या 'संघर्ष' कहानी संग्रह में प्रस्तुत की गई है। सुशीला टाकभौरे जी के विचार दलित समाज को एक नयी सूरज की रोशनी प्रदान करने वाला है।

2.1.9 चित्रा मुद्गल

हिन्दी साहित्य जगत की प्रख्यात वरिष्ठ कथा लेखिका चित्रा मुद्गल है। आपका जन्म 10 दिसम्बर, 1944 को चेन्नई में हुआ। आपका बहुचर्चित उपन्यास 'एक जमीन अपनी' के लिए सहकारी विकास संगठन मुंबई द्वारा 'फणीश्वरनाथ रेणु सम्मान', हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा 1996 के 'साहित्यकार सम्मान', 'आवां' उपन्यास के लिए सन् 2000 में यू.के. कथा सम्मान, 2018 में कृति 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203- नाला सोपारा' पर 'साहित्य अकादमी सम्मान' आदि सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित हैं। आपकी पहली कहानी स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित थी जो 1955 में प्रकाशित हुई थी। आपके लगभग 13 कहानी संग्रह अभी तक प्रकाशित हुए हैं। 'भूख', 'जहर ठहरा हुआ', 'केंचुल', 'मामला आगे बढ़ेगा', 'लाक्षागृह', 'अपनी वापसी', 'जिनावर', 'लपटें', 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं', 'ग्यारह लंबी कहानियाँ' आदि कहानी संग्रह। आपके तीन उपन्यास 'आवां', 'गिलिगडु', 'और एक जमीन अपनी'। बाल उपन्यास 'माधवी कन्नगी', 'जीवक', मणिमेख नवसाक्षरों के लिए जंगल'। आपका लेख 'बयार उनकी मुट्ठी में' प्रकाशित है। नाटकों का रूपांतर 'पंच परमेश्वर' तथा अन्य नाटक 'सद्गति' तथा अन्य नाटक 'बूढ़ी काकी' तथा अन्य नाटक। बालकथा संग्रह 'दूर के ढोल', 'देश-देश की लोककथाएँ', 'सूझ-बूझ'। लघुकथा संकलन 'बयान' है। आदि और बहुत सी

आपकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। विविध पत्र-पत्रिकाओं में आपके आलेख प्रकाशित हुए हैं। आपका मानना है कि साहित्यकार को कभी समझौता नहीं करना चाहिए। आपका 'लपटें' कहानी संग्रह 2002 में प्रकाशित हुआ। निश्चित ही यह कहानी संग्रह इक्कीसवीं सदी की विचारधारा को आगे बढ़ाता रहा है। 'लपटें' कहानी संग्रह में पुरुष-प्रधान समाज का आपने चित्रण किया है। अपने अस्तित्व के लिए लड़ती आ रही नारी का चित्रण, भ्रष्टाचार, जातिवाद के विरूद्ध आवाज, देश में चल रही नेतागिरी आदि समस्याओं को आपने प्रस्तुत किया है। चित्रा मुद्गल एक सफल कथाकार के रूप में आगे आयी हैं।

2.1.10 मेहरुन्निसा परवेज

आदिवासी समाज में पली-बढ़ी लेखिका मेहरुन्निसा परवेज जी का जन्म 10 दिसम्बर 1944 को मध्य प्रदेश के बालाघाट के बहाल गाँव में हुआ। आदिवासी जीवन एवं स्त्री-जीवन आपके लेखन कार्य के मुख्य विषय हैं। आपकी प्रथम कहानी 1963 को धर्मयुग में प्रकाशित हुई। आपको 'साहित्य भूषण सम्मान', 'महाराणा वीर सिंह जूदेव पुरस्कार', 'सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कारों' से सम्मानित किया गया है। वर्ष 2005 में 'पद्मश्री' से सम्मानित किया गया है। ऐसे अनेकों सम्मान एवं पुरस्कार आपको मिले हैं। आपके लेखनी की मुख्य विधा कहानी और उपन्यास है। आपके प्रकाशित उपन्यास हैं- 'आँखों की दहलीज', 'अकेला पलाश', 'उसका घर', 'कोरजा', 'मुहर', 'पासंग', 'समरांगण'। आपकी कथा-संग्रह 'मेरी बस्तर की कहानियाँ', 'अम्मा', 'समर', 'ढहता कुतुबमीनार', 'कोई नहीं', 'कानी बाट', 'एक और सैलाब', 'अयोध्या से वापसी', 'आदम और हव्वा', 'टहनियों पर धूप', 'गलत पुरुष', 'फाल्गुनी', 'अंतिम पढ़ाई', 'सोने का बेसर' आदि प्रकाशित हैं। मेहरुन्निसा परवेज का जीवन आदिवासियों के बीच गुजरा है। इसलिए आदिवासी समाज से इतने निकट का रिश्ता रखती हैं। आपका मानना है कि आदिवासी भले ही पैसे से गरीब हो, परंतु अपने इतिहास और संस्कृति से वह धनवान है। 'मेरी बस्तर की कहानियाँ' (2006) में प्रकाशित हुई

है। यह कहानी संग्रह बस्ती में बीते आपके जीवन का चित्रण करता है। आदिवासी संस्कृति, उनकी परंपरा, उनकी भावनाओं को आपने नजदीक से महसूस किया है। आप जातिवाद विचारधारा को नहीं मानती। मनुष्य को मनुष्य, मनुष्य समझे यही आपकी अवधारणा रही है।

2.1.11 उर्मिला शिरीष

कहानियों के माध्यम से समकालीन जीवन का परिचय देती कहानीकार उर्मिला शिरीष हैं। आपका जन्म मध्य प्रदेश में 9 अप्रैल, 1959 को हुआ। आपने पीएच.डी. और डी.लिट की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की है। आपने लगभग 25 से अधिक किताबों का संपादन कार्य किया है। आपकी कहानियों का उर्दू, अंग्रेजी, पंजाबी, ओड़िया तथा सिंधी भाषा में अनुवाद हुआ है। 'समर स्मृति साहित्य पुरस्कार', 'रत्न भारती पुरस्कार', 'शब्द शिल्पी सम्मान', 'काशी बाई मेहता पुरस्कार' आदि सम्मान और पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया है। 'शहर में अकेली लड़की', 'रंगमंच', 'निर्वासन', 'पुनरागमन', 'केंचुली', 'सहमा हुआ कल', 'मुआवजा', 'वे कौन थे' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उर्मिला शिरीष के कहानी के पात्र काल्पनिक न होकर उनके परिवेश में रहने वाले लोग हैं। संघर्ष करता मनुष्य जीवन में कभी हार नहीं मान सकता। यह कहानी लेखिका अपने समाज के विभिन्न भावनाओं को कहानी में संगठित करती है। आपके कहानी के पात्र, जीवन में मिली हार को भी जीत की तरफ ले जाते हैं। 'चीख' कहानी की नायिका एक खिलाड़ी लड़की है। खेल में वह लड़कों को भी हरा देती है। उसका बलात्कार किया जाता है। मानसिक और शारीरिक दोनों तरफ से टूट जाती है। समाज में मिलने वाली गालियाँ, अपमान, निंदा इन सबसे वह बेहद परेशान होकर टूट जाती है। अंत में समाज को पीछे छोड़ वह फिर से खेल में प्रतिभागिता लेती है। आपके कहानी के पात्र आत्मविश्वासी तथा समाज की कुरीतियों का विराध करते प्रतीत होते हैं। 'पत्थर की लकीर' कहानी में आपने नारी का रौद्र रूप दिखाया है। स्त्री-शक्ति को बढ़ावा देते समाज में आगे बढ़ते नारी का चित्रण प्रस्तुत किया है।

2.1.12 चंद्रकांता

हिन्दी की विख्यात एवं वरिष्ठ कथाकार चंद्रकांता, आपका जन्म 3 सितंबर, 1938 को श्रीनगर, कश्मीर में हुआ। आपने एक शिक्षित परिवार में जन्म लिया था। आपके पिताजी प्रो. रामचंद्र पंडित अंग्रेजी के शिक्षक थे। आपकी रचनाओं के लिए प्रतिष्ठित 'व्यास सम्मान' के अलावा 'हिन्दी अकादमी दिल्ली', 'हरियाणा साहित्य अकादमी', 'रामचंद्र शुक्ल संस्थान वाराणसी', 'वाग्देवी पुरस्कार', 'महात्मा गांधी सम्मान', 'बाबू बाल मुकुंद गुप्त सम्मान' आदि पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया है। आपने बहुत सी रचनाओं को लिखा है। आपके चौदह कहानी संग्रह, सात उपन्यास, सात कथा संकलन, 'यहीं कहीं आसपास' (कहानी संग्रह), 'हाशिये की इबारतें' (आत्मकथात्मक संस्मरण), 'प्रश्नों के दायरे में' (साक्षात्कार) आदि प्रकाशित हुए हैं। 'अब्बू ने कहा था' (2005), 'पोशनूल की वापसी', 'गलत लोगों के बीच', 'बदलते हालात में', 'काली बर्फ', 'सूरज उगने तक', 'ओ सोन किसरी' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। कश्मीर में पली-बढ़ी चंद्रकांता जी के साहित्य में कश्मीर में हो रहे अत्याचारों का दर्शन हमें मिलता है। कश्मीर में रहने का दर्द उनके लेखनी में भी झलकता है। समाज में चल रहे आडम्बरों का चित्रण आपकी कहानियों में किया गया है। 'अब्बू ने कहा था' कहानी संग्रह में पितृसत्तात्मक समाज को चित्रित किया है। चंद्रकांता की कहानियों में स्त्री विवशता के साथ-साथ समाज में फैले हुए जातिवादीयता की धारणा को भी पाठक के सामने रखा है। सामाजिक, राजनीतिक, आतंकवाद का गहरा चित्रण आपकी 'पोशगूल की वापसी' में दीन-धर्म कहानियों में दिखाया गया है। समय की ज्वलंत समस्याओं की अभिव्यक्ति आपके लेखन कार्य में पाठक वर्ग को महसूस होती है।

2.1.13 ओमप्रकाश वाल्मीकि

दलित साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान करने वाले प्रख्यात कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, 1950 को बरला, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपने

हिन्दी साहित्य में एम.ए. की शिक्षा प्राप्त की है। 'डॉ. अम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार', 'परिवेश सम्मान', 'साहित्य भूषण पुरस्कार', 'जयश्री सम्मान', 'विश्व हिन्दी सम्मेलन 8वाँ', 'कथाक्रम सम्मान', 'न्यूयार्क, अमेरिका सम्मान', 'उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का सम्मान' आदि सम्मान और पुरस्कारों से आपको नवाजा गया है। आपने लगभग 60 से भी अधिक नाटकों में अभिनय एवं निर्देशन का कार्य किया है। 'जूठन' आत्मकथा ने हिन्दी साहित्य में अपनी अनमोल पहचान बनाई है। दलित समाज की त्रासदी का चित्रण आपने बड़े ही यथार्थ रूप में पाठकों के सामने रखा है। आपने अनेक कविताओं का अनुवाद किया है। आपके कविता संग्रह- 'सदियों का संताप', 'बस्स! बहुत हो चुका', 'अब और नहीं', 'शब्द झूठ नहीं बोलते' आदि। आत्मकथा 'जूठन', आलोचना 'दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र', 'मुख्यधारा और दलित साहित्य', 'सफाई देवता', नाटक- 'दो चेहरे' के लिए उन्हें 'वीर चक्र' मिला था। कहानी संग्रह 'सलाम', 'घुसपैठिए', 'अम्मा एंड अदर स्टोरीज, 'छतरी' आदि आपकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। दलित समाज की व्यथा को साहित्य की विभिन्न विधाओं में आपने संजोया है। 'सलाम' और 'घुसपैठिये' कहानी संग्रह में दलितों की छटपटाहट, जीवन संघर्ष, व्यवस्था के प्रति आक्रोश की भावना, धर्म के नाम पर चल रही कुरीतियाँ, इन सबका मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण कहानियों में मिलता है।

2.1.14 असगर वजाहत

असगर वजाहत हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ कथाकार हैं। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के एक शहर फतेहपुर में 5 जुलाई, 1946 को हुआ। साहित्य के साथ-साथ आपने अनेक फिल्मों के पटकथा लेखन कार्य भी किया है। आपने शैक्षणिक स्तर पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। आपको विभिन्न सम्मानों एवं पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। 'बेस्ट प्ले राइट ऑफ द ईयर', 'वनमाली अवार्ड फॉर फ्रिक्शन', 'कथाक्रम सम्मान', 'संस्कृति सम्मान', 'साहित्यकार सम्मान' आदि पुरस्कारों से आप अलंकृत हैं। आपने नाटककार, कथाकार,

पत्रकार जैसी बहुत सी भूमिकाएँ निभायी हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, यात्रावृत्त, आलोचना इन सभी विधाओं के साथ फिल्म और पटकथा लेखन कार्य भी किया। पत्रकारिता में आप हमेशा सतर्क और जागरूक पत्रकार के रूप में हैं। आपके हजारों से अधिक लेख समाचार पत्र में छपकर आये हैं। आपने लगभग दुनिया के सभी देशों का परिभ्रमण किया है। आपके यात्रावृत्त में इसकी झलक हमें मिलती है। हिन्दी साहित्य में आपकी प्रकाशित कृतियाँ सभी विधाओं में है। उपन्यास 'सात आसमान', 'कैसी आगी लगाई', 'रात में जागने वाले', 'पहर दोपहर' आदि। नाटक- 'सबसे सस्ता गोश्त', 'पाँच नाटक', 'ओ जन्म्या ई नई', 'इन्ना की आवाज', 'वीरगति', 'फिरंगी लौट आये' आदि। आलोचनात्मक ग्रंथ हिन्दी कहानी पुनर्मूल्यांकन, हिन्दी उर्दू की प्रगतिशील कविता आदि यात्रावृत्त चलता तो अच्छा था। कहानी संग्रह- 'अंधेरे से', 'दिल्ली पहुँचना है', 'स्विमिंग पुल', 'सब कहाँ कुछ', 'और मैं हिन्दू हूँ' (2006) आदि प्रकाशित हुए हैं। असगर वजाहत जी ने अपनी लेखन शैली से मुस्लिम समाज को उनकी व्यथाओं, परेशानियों एवं मुस्लिम धर्म में भारत में जन्म लेना कितना दर्दनाक है, यह पाठक को बताया है। 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी संग्रह में मुस्लिम स्त्री-पुरुष संवेदनाओं का आकलन किया गया है। साथ-साथ समाज में चल रहे दंगे, सांप्रदायिकता, विभाजन की त्रासदी, कुटिल राजनीति आदि के संबंध में लेखक अपने विचार कहानियों के माध्यम से पाठक के सामने प्रस्तुत किये हैं।

2.1.15 अल्पना मिश्र

हिंदी कथा साहित्य का एक सुपरिचित नाम अल्पना मिश्र है। आपका जन्म 18 मई, 1969 को उत्तर प्रदेश में हुआ है। आप बचपन से ही किताबों में पली-बढ़ी है। एक शिक्षित परिवार में आपका जन्म हुआ। पी-एच.डी. की उपाधि आपने प्राप्त की है। आपको 'शैलेश मटियानी स्मृति सम्मान', 'परिवेश सम्मान', 'वनमाली कथा सम्मान', 'प्रेमचंद स्मृति कथा सम्मान', 'शक्ति सम्मान' आदि से सम्मानित किया गया है। पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख

प्रकाशित हुए हैं। आपकी रचनाओं का अनुवाद पंजाबी, जापानी, रूसी, मलयालम, अंग्रेजी, कन्नड़, बांग्ला आदि भाषाओं में हुआ है। आप बोलने से अधिक करने में विश्वास रखती हैं। अल्पना मिश्र जो बात कह नहीं सकती, वह कलम के सहारे कागज पर उतारने का प्रयत्न करती हैं। आपकी प्रकाशित रचनाएँ- 'अन्हियारे तलछट में चमका' (उपन्यास), 'भीतर का वक्त' (2006), 'छावनी से बेघर' (2008), 'कब्र भी कैद और जंजीरे भी',, 'स्याही में सुरखाब के पंख' अल्पना मिश्र की चुनी हुई कहानियाँ आदि हैं। 'भीतर का वक्त' कहानी के अंतर्गत समाज के भीतर व्यापक सच्चाई को दर्शाया गया है। सरल भाषा से आपने कहानियों की संरचना की है। आपकी भाषा की ताजगी कहानियों के पात्रों का मार्मिक चित्रण करती है। स्त्री के मन में हो रहे परिवर्तन का, समाज की लक्ष्मण रेखा का चित्रण आपकी कहानी में मिलता है। स्त्री-स्वतंत्रता की मांग, स्त्री सम्मान की बात, स्त्री कोई पालतु चीज न होकर जिंदा प्राणी है। ऐसे विभिन्न एहसासों को आपने अपनी कहानियों में रचा है। कामकाजी महिला किस तरह से समाज का सामना करती है। बाहर वालों के साथ-साथ घर के लोगों के साथ का व्यवहार आपने चित्रित किया है। नैतिक-अनैतिक संकल्पनाओं के भयावह दृश्य आपकी कहानियों में प्रस्तुत हैं।

2.1.16 अंजु दुआ जैमिनी

आज हिन्दी साहित्य जगत में विशेषकर कहानी के क्षेत्र में अंजु दुआ जैमिनी एक सुपरिचित नाम है। आपका जन्म सोनीपत जिला, हरियाणा में हुआ है। आप दिल्ली में आयकर विभाग में कार्यरत हैं। आपके लेख, कविताएँ, लघु कथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। आप 'कथा सागर' की उपसंपादक तथा 'दोस्त' पत्रिका की संपादक रह चुकी हैं। आपको अनेक सम्मान तथा पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। साहित्यकार संसद, समस्तीपुर द्वारा 'यशपाल स्मृति राष्ट्रीय शिखर सम्मान' से आप सम्मानित हैं। आपकी प्रकाशित रचनाएँ- कविता संग्रह 'सदियों तक शायद : दर्द की स्याही', आलेख- 'मोर्चे पर

स्त्री', कहानी संग्रह- 'क्या गुनाह किया' (2007), सुलगती जिंदगी के धुएं (2006), 'सीली दीवार' (2002), 'इस द्वार से उस द्वार' (2004) आदि हैं। 'क्या गुनाह किया' कहानी संग्रह में लेखिका ने मनुष्य संबंधों की बात की है। यह कहानी संग्रह मध्यम वर्ग के समाज का आईना है। अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए मध्यमवर्गीय जो कष्ट करता है, उन प्रयत्नों को समाज, कानून गुनाह मानता है। 'इस द्वार से उस द्वार' कहानी संग्रह के अंतर्गत कामकाजी महिलाओं का चित्रण किया गया है। आपकी कहानियों के स्त्री पात्र सशक्त हैं। प्रत्येक कहानी में स्त्री-सशक्तिकरण की भावना हमें दृष्टिगत होती है।

2.1.17 अनिता गोपेश

अनिता गोपेश जी का जन्म 24 अगस्त, 1954 को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ। आप प्रतिष्ठित रंग संस्थान 'इलाहाबाद आर्टिस्ट एसोसिएशन' की सक्रिय सदस्य रही है। आपने कई नाटकों में अभिनय का कार्य भी किया है। आपने कविता से शुरुआत की। बाद में साहित्य लेखन की अन्य विधाओं का भी उपयोग किया। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं लेख प्रकाशित हुए। आपका पहला कहानी संग्रह कित्ता पानी 2009 में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत कहानी संग्रह में मध्यवर्गीय समाज का जीवन चित्रित किया गया है। समकालीन समाज में स्त्री की विविधता का चित्रण किया गया है। अनिता गोपेश की कहानी की महत्ता है कि वह बस स्त्री को ही प्रधानता नहीं देती। अपनी कहानी में लेखिका स्त्री-पुरुष दोनों के समानता के बारे में लिखती है। कित्ता पानी संग्रह में परिवार, स्त्री अस्तित्व, समाज की विविधता, आर्थिक सुरक्षा से जुड़ी समस्याओं का संघर्ष इन सभी पहलुओं को रेखांकित किया गया है। 'बोल मेरी मछली कित्ता पानी' में पितृसत्तात्मक समाज के वर्चस्व को तोड़ती स्त्री का परिचय दिया है। स्त्री संदर्भ की विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। उत्तर आधुनिकता युवा पीढ़ी पर किस तरह गहरा प्रभाव छोड़ रही है। नए विचारों के साथ आज की पीढ़ी कैसे बदलाव लाना चाहती है। उन सभी प्रश्नों के जवाब देते 'कित्ता पानी' कहानी

संग्रह में हमारे सामने रखे गए हैं। अनिता गोपेश की भाषा शैली अनलंकृत होने के बावजूद भी उनकी भावनाएं बड़े ही अच्छे ढंग से कहानी के रूप ढली गयी हैं।

2.1.18 सुधा अरोड़ा

हिन्दी साहित्य की प्रख्यात लेखिका सुधा अरोड़ा जी का जन्म लाहौर के मोची दरवाजे इलाके के एक पंजाबी परिवार में 4 अक्टूबर, 1946 में हुआ। अविभाजित भारत में जन्म हुआ सुधा अरोड़ा जी का। आपने अपना लेखन कार्य साठोत्तरी दशक से ही कर दिया था। आपकी पहली कहानी 'मरी हुई चीज' 1965 में प्रकाशित हुई थी। आपके रचना साहित्य के लिए आपको अनेकों सम्मान एवं पुरस्कारों से नवाज़ा गया। आपको उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कार, प्रियदर्शिनी सम्मान, मीरा स्मृति सम्मान, महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार, मुंशी प्रेमचंद कथा सम्मान आदि सम्मानों से सम्मानित किया गया है। आपने पटकथा लेखन का कार्य भी किया। आपकी संपादित किताबें- 'औरत की कहानी', 'करतूते मरदा', 'मन्नू भंडारी की चुनी हुई कहानियाँ', 'कम से कम एक दरवाजा' आदि प्रकाशित हुई हैं। आपके प्रकाशित कहानी संग्रह- 'बगैर तराशे हुए', 'महानगर की मैथिली', 'रहोगी तुम वही', 'युद्ध विराम', '21 श्रेष्ठ कहानियाँ', 'एक औरत तीन बटा चार', 'प्रतिनिधि कहानियाँ', 'बहुत जब बोलते हैं', 'चुनी हुई कहानियाँ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'काला शुक्रवार', 'काँसे का गिलास', 'रहोगी तुम वही' आदि हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित हुए हैं। आपकी कहानियों का अनुवाद जर्मनी, जापान, स्पैनिश, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि विविध भाषाओं में हुआ है। आपके लेखन कार्य का केन्द्र बिन्दु स्त्री को कह सकते हैं। क्योंकि आपकी प्रत्येक कहानी नारी संदर्भ से होती है। सामाजिक स्तर पर स्त्री के विभिन्न अधिकारों का परिचय देती है। समाज में स्त्री को आगे बढ़ना है तो उसका आर्थिक स्तर पर बलशाली होना आवश्यक है। ये आपकी कहानी में चित्रित हुआ है। समाज में नारी को स्थान पाना है तो वह आत्मनिर्भर बने। ऐसे विभिन्न स्त्री-पात्रों से स्त्री सशक्तिकरण का

उदाहरण आप देती हैं। आपके साहित्य में स्त्री जीवन की प्रत्येक सच्चाई का बोलबाला पाठक के सामने आता है।

2.1.19 सूरजपाल चौहान

सूरजपाल चौहान प्रतिभावान कथाकार हैं। आपका जन्म 20 अप्रैल 1955 को फुसावली ग्राम, जनपद, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपने दलित साहित्य में एक बड़ा समक्ष कीर्तिमान रचा है। आपने दलित साहित्य को अपने लेखन कार्य के लिए चुना। क्योंकि आपका बचपन बड़ा त्रासदीमयी और संघर्षमयी गुजरा है। बंधुआ त्रासदी को आपने महसूस किया है। स्कूल जाने की उम्र में ही आपकी साहित्य के प्रति रुचि दिखने लगी। आपने 'नुक्कड़ कविताएँ' स्कूल समय से लिखनी आरंभ कर दी थी। आपको 'हिन्दी सेवी सम्मान', 'डॉ. अम्बेडकर मिशन सोसायटी द्वारा सम्मान', 'हिन्दी साहित्य परिषद सम्मान', 'रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार' आदि से सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ कहानी संग्रह- 'हैरी कब आएगा', 'नया ब्राह्मण', आत्मकथा- 'संतप्त', 'तिरस्कृत', कविता संग्रह- 'प्रयास', 'क्यों विश्वास करूँ', 'कब होगी वह भोर', जीवनी- 'मातादीन' आदि हुई हैं। 'हैरी कब आएगा' कहानी संग्रह दलित समाज की आक्रोश भरी रचना है। मनुवादी व्यवस्था के खिलाफ किया गया विद्रोह चित्रित होता है। सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्तर पर किया गया भेदभाव, दलित अस्मिता का बचाव, दलित स्त्रियों की पुकार ऐसे विविध मुद्दों को आपने एक कहानी संग्रह में समग्रित किया है। 'नया ब्राह्मण' कहानी संग्रह में समाज में पनप रही कुरीतियों का चित्रण किया गया है। मनुष्य-मनुष्य में जाति के नाम पर हो रहा भेदभाव, ऊँच-नीच की त्रासदी, उत्पीड़न, जैसे विभिन्न मुद्दों को उठाया गया है। चमार और भंगी जातिगत कमियों का विवरण देख सकते हैं। आपके लेखन में राष्ट्रीय भावना के साथ दलित समाज के प्रति आपका प्रेम भी झलकता है।

2.1.20 सूर्यबाला

साठोत्तरी महिला कथाकारों में सूर्यबाला जी का एक महत्वपूर्ण स्थान है। आपका जन्म साहित्यकारों के बीच हुआ है। आपकी माता तथा बड़ी बहन दोनों ही साहित्य से जुड़ी हुई थीं। आपके लेखन कार्य में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान झलकता है। बड़े ही खुले विचारों से आपने अपनी रचनाएँ लिखी हैं। आपकी लेखनी में वर्तमान समाज का चित्रण प्रस्तुत है। आपके अनेकों लेखों का प्रकाशन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ है। आपको साहित्य में योगदान के लिए 'प्रियदर्शिनी पुरस्कार', काशी नागरी प्रचारिणी, मुंबई विद्यापीठ आरोही, दक्षिण प्रचार सभा, सतपुड़ा संस्कृति परिषद, अखिल भारतीय कायस्थ महासभा आदि सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आपने साहित्य की विभिन्न विधाओं में काम किया है। जिसमें उपन्यास- 'अग्निपंखी', 'मेरे संधिपत्र', 'सुबह के इंतजार तक', 'यामिनी कथा', 'दीक्षांत', हास्य व्यंग्य - 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देश सेवा में अखाड़े में', 'झगड़ा निपटाकर दफ्तर', कहानी संग्रह- 'इंद्रधनुष', 'दिशाहीन', 'थाली भर चाँद', 'मुँडेर पर', 'गृह प्रवेश', 'कात्यायनी संवाद', 'साँझवाती', 'इक्कीस कहानियाँ' (2002), 'पाँच लम्बी कहानियाँ', 'मानुष गंध' रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। 'मानुष गंध' कहानी में लेखिका ने समाज की मानसिकता, मनोवैज्ञानिक स्तर पर कितने आगे तक जा सकती है, इसका चित्रण किया है। कहानी के पात्र पारिवारिक ममता, बेरोजगारी, रिश्तों में अनचाहे समझौते जैसी विभिन्न घटनाओं से कहानियों को सींचा गया है। 'गौरा गुणवंती' कहानी के अंतर्गत नारी त्रासदी का चित्रण है। शिक्षित समाज से होते हुए भी विभिन्न त्रासदियों का सम्मान किस तरह से एक स्त्री करती है। इसका मार्मिक प्रस्तुतीकरण पाठक के सामने रखा गया है। आपके खुले विचार आपकी लेखनी में झलकते हैं। आपकी भाषा सरल एवं पाठक को आकर्षित करने वाली है। आपकी कहानी तथा उपन्यास को टेलीविजन में धारावाहिक की शृंखला में दिखाया गया है।

2.1.21 नासिरा शर्मा

हिन्दी साहित्य जगत की एक प्रख्यात वरिष्ठ लेखिका नासिरा शर्मा का जन्म 1948 ई. में इलाहाबाद जिले के मुस्तफाबाद गाँव, उत्तर प्रदेश के सैय्यद परिवार में हुआ है। आपने एक साहित्यकार के घर में जन्म लिया। बचपन से ही आपका परिवेश पत्र-पत्रिकाओं और किताबों से भरा हुआ था। आपने मुस्लिम धर्म में जन्म लेकर भी एक हिन्दू व्यक्ति से विवाह किया। यह दिखाता है कि आप जातिवादी भावना को बिल्कुल नहीं मानती। हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों परिवारों का आपको साथ मिला। इस कारण दोनों संस्कृति को आपको महसूस करने का तथा उसे जीने का मौका मिला। यह प्रभाव आपके लेखन कार्य में भली-भांति देखने को मिलता है। आपके लेखन में क्रांति की भावना थी। आपने साहित्यिक रूप से अपने विचारों को कागज पर उतारा है। आपने उपन्यास, कहानी संग्रह, लेख, अनुवाद आदि विधाओं में लिखा है। आपकी रचनाएँ उपन्यास- 'सात नदियाँ : एक समंदर', 'शाल्मली', 'ठीकरे की मंगनी', 'जिंदा मुहावरे', 'कुइयांजान', 'अक्षयवट', अनुवाद- 'शाहनामा-ए-फिरदौसी', 'गुलिस्तान-ए-सादी', 'बर्निंग फायर', 'इकोज ऑफ ईरानियन रेवोलूशन : प्रोटेस्ट पोइट्री', 'किस्सा जाम का', 'काली छोटी मछली', 'फारसी की रोचक कहानियाँ', कहानी संग्रह- 'शामी कागज पत्थर गली', 'इब्ने मरियम', 'संगसार', 'सबीना के चालीस चोर', 'गूंगा आसमान', 'दूसरा ताजमहल' (2007), 'बुतखाना' (2002), 'खुदा की वापसी', 'इंसानी नस्ल' आदि रचनाएँ प्रकाशित हैं। इनके अलावा और विविध मुद्दों पर आपके लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। टेलीविजन फिल्म धारावाहिक में आपकी रचनाओं का उपयोग किया गया है। आपको अनगिनत सम्मान और पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। जैसे कि 'गजानन मुक्तिबोध नेशनल अवार्ड', 'वाग्मणि सम्मान', 'इन्दु शर्मा कथा सम्मान', 'बाल साहित्य सम्मान', 'महादेवी वर्मा पुरस्कार' आदि। ऐसे और भी बहुत से पुरस्कारों से आपको हिन्दी साहित्य में योगदान के लिए नवाजा गया। अपनी भीतरी संवेदनाओं को आपने

कागज पर उतारा है। आप जिस परिवेश में पली-बढ़ीं, उसकी झाँकी आपकी लेखनी में व्यक्त होती है। आप एक निडर व्यक्तित्व, साहसी मानसिकता से पूर्ण स्त्री हैं। आपकी कहानियों के पात्रों में भी वही निडरता दृष्टिगोचर होती है।

2.1.22 मैत्रेयी पुष्पा

महिला कथाकारों में मैत्रेयी पुष्पा महत्वपूर्ण लेखिका हैं। आपका जन्म 30 नवम्बर 1944 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले के सिकुरी गाँव में हुआ था। आपको बचपन से ही संगीत में रुचि थी। आप गायन में रुचि रखती थी। आपने बी.ए. तक शिक्षा प्राप्त की है। सामाजिक परिवेश का परिणाम क्या होता है, यह आपकी रचनाओं में आपने उल्लेखित किया है। एक स्वतंत्र समाज की क्या विशेषता होती है। समाज में स्त्री एवं पुरुष के भेदभाव भरी तीक्ष्ण नजरिये को आपने चित्रित किया है। आपके रचित साहित्य को 'हिन्दी अकादमी साहित्य कृति सम्मान', 'कथा पुरस्कार', 'प्रेमचंद सम्मान', 'आथर्स गिल्ड पुरस्कार', 'सार्क लिटरेरी अवार्ड', 'वीर सिंह देव पुरस्कार' आदि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार, सम्मान से आपको सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित कृतियाँ उपन्यास- 'स्मृति दंश', 'बेतवा बहती रही', 'अल्मा कबूतरी', 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'चाक', 'इदन्नमम', 'झूला नट', 'विजन', 'अगनपाखी', 'कहीं ईसुरी फाग', 'त्रियाहठ' आदि। कहानी संग्रह- 'चिन्हार' (2009), 'ललमानियाँ', 'गोमा हँसती है', 'आक्षेप', 'अब फूल नहीं खिलते', 'रिजक', 'सिस्टर' आदि। कविता संग्रह- 'लकीरें', 'राह सुगम' आदि हैं। इसके अतिरिक्त भी नाटक, विमर्श, विभिन्न लेख प्रकाशित हुए हैं। आपके लेखनी की भाषा पारदर्शी है। बड़ी ही सूक्ष्मता और पूर्ण तरह से आपने वाक्य रचनाएँ की हैं। 'चिन्हार' कहानी में आपने ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है। एक ग्रामीण स्त्री कितने संघर्षों के साथ अपना जीवन व्यतीत करती है। घर एवं खेत यही दुनिया उसकी रह जाती है। उसकी कोई आशा, आकांक्षा का महत्व नहीं है। बस एक काम करने की मशीन जो बिना वेतन की होती है। ऐसे मार्मिक यथार्थवादी विचारों से

आपने कहानी संग्रह को पूर्ण बनाया है। आपकी कहानियों में समकालीन समाज का विवरण चित्रित है। सामाजिक स्तर पर स्त्री एवं पुरुष की जो अवधारणाएँ हैं, वह बड़े ही कुशल तरीके से दर्शायी गयी हैं। आप मुक्त विचारों वाली साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने लेखनी में स्वच्छंदतावादी विचारों का समावेश किया है।

2.1.23 उदय प्रकाश

हिन्दी कथा साहित्य में उदय प्रकाश नाम हमेशा उजागर रहेगा। जीवन में उतार-चढ़ाव के संघर्षपूर्ण समय में भी आपने लेखन का कार्य जारी रखा है। आपका जन्म 1 जनवरी, 1952 को मध्य प्रदेश के एक छोटे से गाँव सीतापुर में हुआ। गाँव में पले-बढ़े होने की वजह से आपकी गाँव के प्रति अधिक प्रेमभावना थी। आपको लेखन कार्य की प्रेरणा भी गाँव की मिट्टी से मिली। आप मानते हैं कि अच्छा साहित्य ही मनुष्य मुक्ति का साधन होता है। आपकी विचारधारा बाकी साहित्यकारों से भिन्न है। शायद इसी वजह से हिन्दी के कुछ साहित्यकार आपका तिरस्कार करते हैं। आपने कभी भी साहित्य एवं राजनीति दोनों को अलग रूपों में नहीं देखा। ऐसे विभिन्न मुद्दों से आपका रचनाकाल गुजरा है। आपका व्यक्तित्व बहुआयामी है। आपको विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। 'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार', 'श्रीकांत वर्मा स्मृति पुरस्कार', 'गजानन माधव मुक्तिबोध पुरस्कार', 'ओमप्रकाश साहित्य पुरस्कार', 'कथाक्रम सम्मान', 'विजदेव सम्मान', 'पुदिकन सम्मान' आदि सम्मानों से आप अलंकृत हैं। आपकी प्रकाशित रचनाएँ विभिन्न विधाओं में हैं। कहानी संग्रह- 'दरियाई घोड़ा', '.... और अंत में प्रार्थना', 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'तिरिछ', 'दत्तात्रेय के दुख' (2002), 'पीली छतरी वाली लड़की' (2001), 'मोहनदास', 'मेंगोसिल' (2006), कविता संग्रह- 'सुनी करीगर', 'अबूतर-कबूतर', 'रात में हारमोनियम', 'एक भाषा हुआ करती है' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। आलोचना, निबंध, अनुवाद, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख आदि प्रकाशित हुए हैं। उदय प्रकाश सामाजिक लेखक हैं। इसलिए आपको सामाजिक

साहित्य के अंतर्गत महत्वपूर्ण रचनाकार मानते हैं। 'पीली छतरी वाली लड़की' एक लम्बी कहानी है। जिसके अंतर्गत सवर्णवादी विचारधारा का यथार्थ स्वरूप चित्रित किया है। 'दत्तात्रेय का दुख' में मार्क्सवादी विचारशैली का स्वरूप दिखाई पड़ता है। गाँव के प्रति आपकी भावना का विश्लेषण इन कहानियों में आपने स्वीकारा है।

2.1.24 रत्नकुमार सांभरिया

रत्नकुमार सांभरिया जी का जन्म 6 जनवरी, 1956 में हरियाणा के भाड़ावास गाँव में हुआ। आप दलित रचनाकार के रूप में इक्कीसवीं शताब्दी के चर्चित लेखक हैं। आपके जीवन की दलित त्रासदी ही आपके लेखन का कारण बनी। मार्क्सवादी एवं अम्बेडकरवादी विचारों का आप पर अधिक प्रभाव था। ग्रामीण परिवेश में पले-बढ़े आपने गाँव की सामाजिक कुरीतियों को नजदीक से देखा है। गाँव में हो रहे दलित उत्पीड़न, दलित मजदूर वर्ग की त्रासदी, आर्थिक स्तर पर हो रहे मजदूरों का ह्रास आदि सभी मुद्दों को आपने रचना का स्वरूप देकर कागज़ पर उतारा है। आपकी रचनाओं के लिए 'नवज्योति कथा सम्मान', 'राजस्थान पत्रिका सृजनात्मक पुरस्कार', 'कथादेश अखिल भारतीय हिन्दी कहानी प्रतियोगिता प्रथम पुरस्कार' आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित कृतियाँ, 'नाटक वीमा', 'उजारू', एकांगी संग्रह- 'समाज की नाक', लघुकथा संग्रह- 'प्रतिनिधि लघुकथा शतक', 'बांग और अन्य लघुकथाएँ', कहानी संग्रह- 'हुकम की दुग्गी', 'काल तथा अन्य कहानियाँ' (2004), 'खेत तथा अन्य कहानियाँ' (2010), 'दलित समाज की कहानियाँ' आदि हैं। 'खेत तथा अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह की मुख्य पृष्ठभूमि ग्रामीण जमीन है। जिसके लिए दलित वर्ग संघर्ष कर रहा है। इस कहानी संग्रह की सभी कहानियों के पात्र किसी-न-किसी त्रासदी के शिकार हैं। अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। दलित अस्मिता का रक्षण कर रहे हैं। 'काल तथा अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह में दलित उत्पीड़न, अस्पृश्यता, जातिवादी भावना, छुआछूत की त्रासदी आदि विभिन्न एवं अनगिनत अन्यायी

भावनाओं का वर्णन किया गया है। जातिवाद का अजनबीपन आपके साहित्य में स्पष्ट होता है। रूढ़ी-परंपराओं में जकड़ा समाज क्यों नहीं मनुष्य भाव को समझता, इसका मार्मिक चित्रण आपकी रचनाओं में किया गया है। शोषित वर्ग की अज्ञानता के कारण सवर्णों से हो रही त्रासदी का चित्रण देख सकते हैं।

2.1.25 ममता कालिया

साहित्य की सभी विधाओं में कलम चलाने वाली ममता कालिया जी का जन्म 2 नवम्बर, 1940 को वृंदावन में हुआ है। साठोत्तरी युग की लेखिका का इक्कीसवीं सदी के युग तक आने के पश्चात लेखन की विचारधारा बदलती है या नहीं, यह आपकी रचनाओं से पाठक के सामने आया है। अपने जीवन के यथार्थ को आपने कहानी में रचा है। स्त्री की संवेदनशीलता की अनुभूति करवाती आपकी रचनाएँ हैं। साहित्यिक परिवेश में आपका बचपन बिता है। पारिवारिक प्रेरणा आपके लेखन कार्य को हमेशा प्राप्त हुई है। आपकी कहानी में मथुरा शहर झलकता है। मुंबई तथा मथुरा को आप अपनी लेखनी का प्रेरणास्थान मानती हैं। आपकी रचनाओं के लिए मिले पुरस्कारों की कोई गिनती नहीं है। ‘कहानीकार एवं कहानी पुरस्कार’, ‘सावित्रीबाई फुले पुरस्कार’, ‘लमही पुरस्कार’, ‘महादेवी वर्मा अनुशंसा सम्मान’ आदि सम्मान एवं पुरस्कारों से सम्मानित हैं। आपकी प्रकाशित रचनाएँ हैं- उपन्यास- ‘बेघर’, ‘नरक दर नरक’, ‘प्रेम कहानी’, ‘एक पत्नी के नोट्स’, ‘दौड़’, ‘दुक्खम-सुक्खम’ आदि। कहानी संग्रह- ‘मुखौटा’, ‘निर्मोही’, ‘छुटकारा’, ‘सीट नंबर छह’, ‘प्रतिदिन’, ‘बोलने वाली औरत’, ‘थियेटर रोड के कौवे’, ‘उसका यौवन’, ‘काके दी हट्टी’, ‘पचीस साल की लड़की’, ‘एक अदद औरत’ आदि। नाटक- ‘आत्मा अठन्नी का नाम है’, ‘यहाँ रोना मना है’, ‘आप न बदलेंगे’। कविता संग्रह- ‘खाँटी घरेलु औरत’, ‘एक ट्रिब्यूट टु पापा एंड पोएम्स’ आदि। आपकी कहानियों में स्त्रियों के साथ सामाजिक स्तर पर हो रहे भेदभाव, घरेलु एवं कामकाजी महिलाओं को देखने का समाज का नजरिया ऐसे विभिन्न पहलुओं से पाठक को

रूबरू कराता है। शिक्षित नारी पर हो रही त्रासदी, कामकाजी महिलाओं की समस्या, पति-पत्नी के रिश्ते की दोराह ऐसी अनेक समस्याओं से ग्रहित प्रश्नों का उत्तर ढूंढती आपकी रचनाएँ हैं। स्त्री-पुरुष मानसिकता का चित्रण पाठक वर्ग महसूस कर सकता है।

2.1.26 भगवान दास मोरवाल

हरियाणवी संस्कृति को अपने साहित्य में झलकाते कथाकार भगवान दास मोरवाल जी का जन्म 23 जनवरी, 1960 को हरियाणा के छोटे से कस्बे नगीना में हुआ। आपने साहित्य की उपन्यास विधा को अत्यंत पसंद किया। आपने उपन्यास से अधिक कहानियों की रचना की है। फिर भी आपको एक विख्यात उपन्यासकार के नाम से जाना जाता है। छोटे से कस्बे में जन्म लेकर भी आप आगे बढ़े। आपने हरियाणा की संस्कृति में विविधता के पक्ष पाठक को बताए। आपकी सरल भाषा और सटीक प्रस्तुतीकरण की वजह से आपके उपन्यासों को संस्कृति की सही राह मिली। एक मजदूर परिवार में जन्म लेकर साहित्यिक रुचि की तरफ बढ़ना बहुत बड़ी बात होती है। आपके त्रासदी एवं कष्टों का परिफलन आपकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है। इसी परिश्रम को मिले सम्मान को आपने ग्रहण किया है। 'प्रभादत्त स्मारक पुरस्कार', 'शोभना पुरस्कार', 'साहित्यिक कृति पुरस्कार' आदि सम्मान एवं पुरस्कारों से आपको नवाजा गया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ उपन्यास- 'काला पहाड़', 'बाबल तेरा देस में', 'रेत', 'नरक मसीहा', 'हलाला', कहानी संग्रह- 'सिला हुआ आदमी', 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ', 'सीढ़ियों', 'माँ और उसका देवता', 'अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार', 'सूर्यास्त से पहले', कविता संग्रह- 'दोपहरी चुप है', संस्मरण- 'पकी जेठ का गुलमोहर' आदि। आपकी रचना में स्त्री सशक्तिकरण की प्राथमिकता की अनुभूति होती है। कस्बे में रहने वाली स्त्रियों को जहाँ सीधा सा मान नहीं मिलता, इन्हीं स्त्रियों को आप समाज में एक बड़ा स्थान दिलाते हों। राजनीति जैसे बड़े स्तर पर आप स्त्री को खड़ा करते हैं।

2.1.27 चन्द्रकिरण सौनरेकसा

अविभाजित भारत की मिट्टी में आपका जन्म 19 अक्टूबर, 1920 को पेशावर छावनी (पाकिस्तान) में हुआ है। वर्ष 2001 में हिन्दी साहित्य जगत का 'सर्वश्रेष्ठ हिन्दी लेखिका' की उपाधि से दिल्ली हिन्दी अकादमी द्वारा आपको सम्मानित किया गया। आप हिन्दी जगत की एकमात्र रचनाकार ऐसी हैं जिनकी कहानियों का सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया गया है। आज भी आपकी कहानियाँ हिन्दी पाठ्यक्रम के अंतर्गत ऑक्सफोर्ड और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। साहित्यकार को साहित्य रचने की प्रेरणा उसके परिवेश से मिलती है। समाज साहित्य का आईना है। इसी प्रकार साहित्यकार भी समकालीन परिस्थितियों को ग्रहण कर रचना करता है। आपने जीवन का सबसे बड़ा इतिहास देखा है। वह है भारत-पाकिस्तान का विभाजन जो 15 अगस्त 1947 को हुआ। आपकी रचनाओं में इन सभी घटनाओं का चित्रण कहीं कहीं दिखाई पड़ता है। आपकी रचनाएँ एवं पुरस्कार जिनकी गिनती नहीं कर सकते। ऐसे विभिन्न पुरस्कारों की आप विजेता हैं। उनमें कुछ प्रकाशित रचनाएँ, उपन्यास- 'चंदन चाँदनी' और 'दिया जलता रहा', 'कहीं से कहीं नहीं', 'वंचिता', कहानी संग्रह- 'ए क्लास का कैदी', 'वे भेड़िए', 'हिरणी', 'दूसरा बच्चा', 'सौदामिनी', 'खुदा की देन', 'नासमझ', 'आधा कमरा', 'उधार का सुख', कविताएँ- 'ज्योत्सना', 'छाया', आत्मकथा- 'पिंजरे की मैना' आदि। 'सौदामिनी' (कहानी संग्रह) 2007 में प्रकाशित हुआ है। पितृसत्ता का वर्चस्व किस तरह से नारी को तोड़कर रख देता है, इसका भयावह चित्रण हमें देखने को मिलता है। स्त्री चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित उसकी विपदा का निवारण समाज में ढूंढ़ पाना शायद मुश्किल ही है। आपकी कहानियाँ रोंगटे खड़े कर देती हैं।

2.1.28 इन्दु बाली

वर्ममान समय में हिन्दी साहित्य जगत की महान एवं महत्वपूर्ण कथाकारों में इन्दु बाली का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। आपका जन्म 15 नवम्बर 1932 को लाहौर में

हुआ। मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण आपकी लेखन कला आपके साहित्य में झलकती है। आपकी कहानियों में पांच दशक की महिलाओं का चित्रण मिलता है। आपने स्त्री को अपने लेखन का केन्द्र बिन्दु बनाया। आत्मविश्वास से नारी आगे बढ़ना चाहती है, परंतु उसे कितनी विपदाओं का सामना करना पड़ रहा है, यह पाठक को रचना के द्वारा पता चलता है। आपको 'राष्ट्रीय पुरस्कार', 'अखिल भारतीय साहित्य पुरस्कार', 'सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार', 'मोहयाल गौरव अवार्ड', 'अदीब इंटरनेशनल अवार्ड' और बहुत से पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आपकी रचनाएँ- उपन्यास- 'बाँसुरिया बज उठी', 'अमर बेली स्पर्श', 'सोये प्यार की अनुभूति', कहानी संग्रह- 'मन रो दिया', 'दो हाथ', 'मेरी तीन मौतें', 'बिना छत का मकान', 'बिखरती आकृतियाँ', 'टूटती जुड़ती', 'अंधेरे की लहर', 'चुभन', 'पाँचवाँ युग', 'मानो न मानो', 'नहीं माँ नहीं' तथा 'अन्य श्रेष्ठ कहानियाँ', 'एक सोचती हुई औरत' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। साहित्यिक स्तर पर आपकी कहानियों ने पाठक वर्ग को अधिक प्रभावी किया है। आपकी भाषा संरचना बहुत सरल और सीधे पाठक के हृदय में उतरने वाली है। इसीलिए आपके साहित्य को हिन्दी साहित्य जगत में इतना सराहा गया।

2.1.29 संजीव

संघर्षशीलता एवं आत्मविश्वास से आगे बढ़ने वाले कथाकार संजीव का जन्म 6 जुलाई, 1947 को हुआ है। यह तारीख कितनी सच है यह कथाकार संजीव को भी नहीं पता। स्कूल में भर्ती के समय एक तारीख देनी होती है, जो स्कूल के हेडमास्टर ने दे दी। गरीब परिवार से आए संजीव को जीवन में बहुत से कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सभी त्रासदियों को पीछे छोड़ आप आगे बढ़ने लगे। इसी शक्ति से आपने रचनाओं को तैयार किया है। आपको 'इंदु शर्मा अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान', 'पहल कथा सम्मान', 'सुधा-कथा सम्मान', 'अखिल भारतीय भाषा कथा प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार', 'भिखारी ठाकुर लोक सम्मान' आदि से सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ, उपन्यास- 'किसनगढ़

के अहेरी', 'सर्कस', 'सावधान! नीचे आग है', 'धार', 'पाँव तले की दुब', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'सूत्रधार', 'आकाश चम्पा', कहानी संग्रह- 'तीन साल का सफरनामा', 'आप यहाँ हैं', 'भूमिका और अन्य कहानियाँ', 'दुनियाँ की सबसे हसीन औरत', 'प्रेतमुक्ति', 'प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ', 'ब्लैक होल', 'डायन और अन्य कहानियाँ', 'खोज', 'गली के मोड़ पर सूना पर सूना सा कोई दरवाजा' (2008), 'झूठी है तेतरी दादी' आदि, यात्रा साहित्य- 'सात समंदर पार', नाटक- 'आपरेशन जोनाकी' आदि प्रकाशित हुई हैं। आपकी रचनाओं पर फिल्मों का निर्माण भी किया गया है। संजीव का साहित्य उनके जीवनी का आईना है। जो आपने सहा, वही आपकी रचना बोलती है। आपके कहानी के पात्र समकालीन समाज की कटुता सामने लाते हैं। यथार्थवादी धारणा से पूर्ण आपकी कहानियाँ पाठकों को आकर्षित करती हैं।

2.1.30 अमरीक सिंह 'दीप'

अमरीक सिंह 'दीप' का जन्म उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में 5 अगस्त, 1942 को हुआ। सांप्रदायिकतावादी समाज जिसके अंतर्गत मनुष्य को जातीयता के नाम पर बाँटा गया। युवकों की बेरोजगारी, शिक्षित वर्ग की लाचारी, भ्रष्टाचारी विचारधारा, जातिवाद, एक-दूसरे के प्रति तिरस्कार, देश में आतंकवाद की भावना ऐसे विभिन्न मुद्दों को लेकर आपने अपनी रचनाएँ लिखी हैं। आपको अखिल भारतीय सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता में 'बेस्ट वर्कर' कहानी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आपकी प्रकाशित रचनाएँ कहानी संग्रह- 'कहाँ जाएगा सिद्धार्थ', 'काला हांडी', 'चांदनी हूँ मैं', 'सिर फोड़ती चिड़िया', 'आजादी की फसल', 'काली बिल्ली', 'एक कोई और' आदि, लेख संग्रह- 'कड़े पानी वाला शहर', लघु कथा संग्रह- 'मैं आजादी की फसल' आदि। आपकी कहानियों में पुलिस भ्रष्टाचार, पितृसत्ता का वर्चस्व, स्त्री सशक्तिकरण के अंतर्गत स्त्री की मानसिक एवं भावनात्मक स्थिति का

चित्रण, शिक्षित स्त्री की त्रासदी, सामाजिक भेदभाव से दूर होती मनुष्यता की भावना ऐसी घटनाओं को आपने अपनी रचनाओं में चित्रित किया है।

2.1.31 दीपक शर्मा

हिन्दी साहित्य की जानी-मानी कथाकार दीपक शर्मा जी का जन्म 30 नवम्बर 1946 को पंजाब में हुआ। नए-नए विषयों के साथ बढ़ना साहित्यकारों से छूट गया है, उन अनछुए पहलुओं उभारकर नयी रचना बनाना यह आपकी विशेषता है। आपकी विलक्षणी नजर उपेक्षित समाज की कटुता को पाठक के सामने लाती है। नारी एक जरिया एवं साधन नहीं पुरुष को आगे बढ़ाना अपितु वह अपना कर्तव्य एवं पुरुष के प्रति अपनी निष्फल भावना को निभाती है। ऐसी विभिन्न घटनाओं की रचना से आपने कहानी की महत्ता बताई है। आपकी रचनाएँ- 'हिंसाभास', 'दुर्ग-भेद', 'रण-मार्ग', 'आपद-धर्म', 'रथ-क्षोभ', 'तल-घर', 'परख-काल', 'उत्तर जीवी', 'घोड़ा एक पैर' (2009), 'बवंडर', 'दूसरे दौर में' (2008), 'लचीले फीते', 'आतिशी शीशा', 'चाबुक सवार', 'अनचीता', 'ऊँची बोली', 'बाँकी', 'स्पर्श रेखाएँ', 'उपच्छाया' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी लगभग 200 से अधिक कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। स्त्री संवेदना की सामाजिक धरातल की कहानी, जिसके अंतर्गत स्त्री-पक्ष के विभिन्न समस्याओं का विवरण किया गया है। आपकी अधिकतर कहानियाँ स्त्री की सामाजिक विसंगतियों को दर्शाती हैं। अंतिम तीन दशक के हिन्दी साहित्य में स्त्री की कहानियों की लंबी शृंखला आपके कहानियों में प्रस्तुत होती है। पुरुष प्रधान समाज जो पितृसत्ता को मान्यता देता स्त्री भावना को रौंदता आ रहा है। उसका मार्मिक चित्रण आपकी इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित होता है। छोटे से गाँव, कस्बे से लेकर शहर में रहने वाले शिक्षित स्त्री का विवरण आपकी कहानियों में हैं। आपकी छोटी-छोटी कहानियाँ विश्व की बड़ी-बड़ी मार्मिकता को चित्रित करती हैं।

2.1.32 गीतांजलि श्री

प्रभावशाली व्यक्तित्व रखने वाली हिन्दी साहित्य की जानी मानी कथाकार गीतांजलि श्री का जन्म 12 जून, 1957 को मैनपुरी जिला, उत्तर प्रदेश में हुआ था। गीतांजलि अपना जीवन भारत के विभिन्न शहरों में व्यतीत किया। इसलिए आपकी रचनाओं में किसी एक ही की प्रांत या समाज का दर्शन नहीं होता। आपने विविध सूत्रों को लेखनी के जरिए जोड़ा है। जिस परिवेश में साहित्यकार अपना समय व्यतीत करता है, उसी का स्वरूप उसकी रचना में मिलता है। भारतीय समाज में स्त्री को अनेक परंपराओं के ढाँचे में रखने का प्रयत्न किया गया है। उन दीवारों के पार की दुनिया गीतांजलि श्री की कहानियों में दिखाई गयी है। समय की प्रासंगिकता को आपने भली-भाँति अपनी रचनाओं में समग्रित किया है। स्त्री-विमर्श के साथ आपने नैसर्गिक प्रकृति चित्रण भी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। इन्हीं रचनाओं के लिए आपको सम्मानित भी किया गया है। 'यू.के. कथा सम्मान', ' साहित्यकार सम्मान', 'कथा सम्मान', 'विजदेव सम्मान' आदि सम्मानों से आपको सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ उपन्यास- 'माई', 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित', 'खाली जगह', 'रेत समाधि' आदि है। आपके प्रकाशित कहानी संग्रह- 'वैराग्य', 'अनुगूँज' (2001) और 'यहाँ हाथी रहते थे' (2012) है। आपका अनुगूँज कहानी संग्रह नारी जीवन के यथार्थ को दर्शाता है। वैयक्तिक स्तर पर, पारिवारिक स्तर पर, कामकाजी स्तर पर, आर्थिक व्यवस्था के स्तर पर आदि विभिन्न स्तर पर हो रही नारी की त्रासदी का मार्मिक चित्रण इन कहानियों में किया गया है। स्त्री मानसिकता किन त्रासदियों से, उत्पीड़न से अपना निर्वाह कर रही है। इसका सटीक उदाहरण आपकी कहानियों में प्रतीत होता है। स्त्री सशक्तिकरण की भावनाओं का आकलन जगह-जगह कहानी में महसूस होता है।

2.1.33 कुणाल सिंह

नयी सोच व नयी धारा की पृष्ठभूमि पर जन्म लेने वाले कुणाल सिंह जी का जन्म 22 फरवरी, 1980 को हुगली, पश्चिम बंगाल में हुआ। आपकी रचनाओं में नवीनता है। नयी सोच

से समाज की तरफ देखने वाले कुणाल सिंह की रचनाओं में विविधता देखने को मिलती है। समाज में रहने वाले मनुष्य की पारिवारिक समस्या किस तरह से समाज से जुड़ी है, ये आपने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। साहित्य में आपके इतने कम समय में भी आपके अपनी रचनाओं की विशिष्टता के लिए आपको पुरस्कारों से नवाजा गया। 'साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार', 'भारतीय भाषा परिषद युवा पुरस्कार', 'भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार', 'कृष्ण बलदेव वेद फैलोशिप', 'कथा अवार्ड' ऐसे विविध पुरस्कारों से आपको सम्मानित किया गया है। भाषा सेतु और कुणाल टॉकीज में आपके ब्लॉग भी प्रकाशित होते हैं। आपकी प्रकाशित रचनाएँ उपन्यास- 'आदिग्राम', 'उपाख्यान', अनुवाद- 'देवदास', कहानी संग्रह- 'रोमियो जूलियट और अंधेरा', 'इतवार नहीं', 'सनातन बाबू का दांपत्य'। आपकी कहानियाँ पाठक में उत्साह जगा देती है कि आगे और क्या होगा। 'रोमियो जूलियट' और 'अंधेरा' कहानी संग्रह स्त्री-पुरुष संबंधों का कथन है, जो बस दोनों से ही ना जुड़कर उसमें समाज का भी बड़ा भाग है। पुरुष मानसिकता जो आज भी पितृसत्ता के घेरे में खड़ी है उसका सही उदाहरण हमें आपकी कहानियों में मिलता है। आपने स्त्री-पुरुष संबंधों के माध्यम से रिश्तों का सामाजिकरण किस तरह से होता है, यह पाठक को बताया है। कहानी एक जरिया होती है जो पाठक और लेखक को एक दूसरे से जोड़ती है। कहानी लेखक के परिवेश का भाग होती है। आपकी कहानियों से मनुष्य की मानसिकता सामाजिक एवं राजनीतिक स्वरूप में कैसी होती है, इसका यथार्थ स्पष्ट होता है।

2.1.34 नीलाक्षी सिंह

हिन्दी साहित्य की युवा कथाकार नीलाक्षी सिंह का जन्म 17 मार्च, 1978 को हाजीपुर, बिहार में हुआ। आपने आपकी शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से पूर्ण की। आप स्टेट बैंक ऑफ इंडिया में अभी कार्यरत हैं। छोटी सी उम्र में ही आपने साहित्य अकादमी पुरस्कार को अपने नाम किया है। आप रमाकांत स्मृति पुरस्कार साहित्य अकादमी का 'स्वर्ण

जयंती युवा लेखक सम्मान' और कथा पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ उपन्यास- 'शुद्धि पत्र', कहानी संग्रह- 'जिनकी मुट्ठियों में सुराख था', 'जिसे जहाँ नहीं होना था', 'परिंदे के इंतजार-सा कुछ', 'प्रतियोगी', 'रंगमहल', 'साया कोई', 'ऐसा ही... कुछ भी', 'लम्स बाकी' आदि। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हुए हैं। समकालीन युवा रचनाकार नीलाक्षी सिंह की विचारधारा अंतिम दशक के साहित्यकारों से भिन्न है। आप आज की पीढ़ी की सामाजिकता को और उनकी मानसिकता को समझकर रचनाएँ कर रही हैं। आपकी सोच आज की पीढ़ी को धैर्य देती है। संघर्ष एवं चुनौतियों से भरा आज का युग युवकों को कैसे यथार्थ के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है, यह प्रस्तुत किया गया है। आपका कहानी संग्रह 'परिंदे का इंतजार' सा-कुछ ऐसे यथार्थ से पाठक को परिचित करवाता है। पितृसत्ता का वर्चस्व, भूमंडलीकरण, सांप्रदायिकता का तिरस्कार, स्त्री की मनोव्याख्या, यथार्थ के धरातल पर ठहरे हुए विविध प्रश्न, जातिवादी, सामाजिकता ऐसे विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देती यह कहानियाँ हैं। जो पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि आज सच में युवाओं के भीतर चल रहे उथल-पुथल को कैसे रोक पायें। नीलाक्षी की रचनाएँ ऐसे विविधता पूर्ण यथार्थ का सामना करते आगे बढ़ रही हैं। प्रकृति सौंदर्य, प्रेम, मानवीय संवेदना इन सबसे आपकी रचनाएँ ओत-प्रोत है।

2.1.35 दूधनाथ सिंह

हिन्दी साहित्य जगत के वरिष्ठ साहित्यकार दूधनाथ सिंह जी का जन्म 17 अक्टूबर, 1936 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हुआ। साहित्य जगत में आप एक महान कहानीकार तथा आलोचक हैं। हिन्दी साहित्य के चार स्तंभों में से एक आप हैं। काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, ज्ञानरंजन और रविन्द्र कालिया आप चार बहुत नजदीकी मित्रगण थे। आप चारों के विचारों ने हिन्दी साहित्य को नई धारणाओं से अवगत कराया। राजनीतिक क्षेत्र में भी आप हमेशा आगे रहते थे। समाज के यथार्थ का सामना करने के लिए समाज के प्रश्नों

को सुलझाना महत्वपूर्ण है। ऐसे ही सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर समाज में हो रही घटनाओं का चित्रण आपने अपनी कहानियों में किया है। बाबरी मस्जिद में जो कोलाहल एवं ध्वंसात्मक कार्य 1992 में हुआ था, उसके ऊपर आपका रचित उपन्यास- 'आखिरी कलाम' पाठकों के रोंगटे खड़ा कर देता है। जातिवादी त्रासदी की जीती-जागती सच्चाई को पाठक पढ़ते-पढ़ते महसूस कर सकता है। मानवीय संवेदनाओं को छन्नी कर देता है आपका यह उपन्यास। आपको 'कथाक्रम सम्मान', 'भारतेंदु सम्मान', 'साहित्य भूषण सम्मान', 'शरद जोशी स्मृति सम्मान' आदि सम्मानों से सम्मानित किया गया है। आपने 'पक्षधर' पत्रिका का संपादन कार्य किया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ नाटक- 'यमगाथा', उपन्यास- 'आखिरी कलाम', 'नको अंधकारम', 'निष्कासन', कहानी संग्रह- 'प्रेमकथा का अंत न कोई', 'कथा समग्र', 'तू फू', 'माई का शोकगीत', 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र', कविता संग्रह- 'अगली शताब्दी के नाम', 'युवा खुशबू', 'सुरंग से लौटते हुए', 'एक और भी आदमी है' आदि हैं। 'धर्मक्षेत्र कुरूक्षेत्रे' कहानी संग्रह 2001 में प्रकाशित हुई है। दूधनाथ सिंह जी अपनी रचनाओं में दोहरापन निर्माण नहीं करते, इसलिए पाठक को उनकी प्रत्येक रचना पढ़ने का उत्साह अलग होता है। उसी तरह प्रस्तुत कहानी संग्रह भी सांप्रदायिकता के नीचे दबे समाज का चित्रण करता है।

2.1.36 प्रत्यक्षा

इक्कीसवीं सदी के उभरते कथाकारों में एक प्रत्यक्षा का जन्म 26 अक्टूबर, 1963 को गया, बिहार में हुआ है। नयी पीढ़ी नयी सोच से आगे बढ़ रहे युवा रचनाकार की लेखनी, भाषा में विभिन्नता पाठक देख सकता है। इक्कीसवीं सदी का समय रचनाकारों के लिए इतना कठिनाई भरा नहीं है। स्त्री, दलित, आदिवासी और बहुत कुछ प्रश्न आज भी हैं। परंतु उन प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने के लिए आज उपकरणों की या साधनों की कमी नहीं है। इसलिए युवा रचनाकारों में विविधता पूर्ण रचनाएँ पाठक देख सकते हैं। प्रत्यक्षा की भाषा और वाक्य की

सरल रचना पाठक का ध्यान आकर्षित करती है। आपकी कहानी की भाषा अत्यंत सरल है। जिसमें कोई भी हड़बड़ाहट नहीं है। धैर्य और स्थिरता आपकी रचनाओं में है। अपनी रचनाओं के लिए 'हंस कथा सम्मान', 'सोनभद्र कथा सम्मान', 'इंडो नॉर्वेजियन पुरस्कार' से आप अलंकृत हैं। आपकी प्रकाशित रचनाएँ कहानी संग्रह- 'पहर दोपहर ठुमरी', 'जंगल का जादू तिल-तिल' (2009), उपन्यास- 'बारिशगर' आदि कृतियाँ हैं। 'जंगल का जादू तिल-तिल' कहानी संग्रह है। इक्कीसवीं सदी की कहानी का संघर्ष नया है, कहानी पात्रों की त्रासदी भिन्न है, उनकी समस्याएँ अलग हैं। इन सभी विशेषताओं तथा प्रश्नों के उत्तर पाठक आपके कहानी संग्रह में ढूंढता है। यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत करने वाला कथाकार अपने परिवेश को समझाते आगे चलता जाता है। आप भी इन्हीं में से एक हैं। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष घटनाओं को अपनी कहानियों में आपने समग्रित किया है।

2.1.37 मनीषा कुलश्रेष्ठ

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य में नये-नये रचनाकार उभरकर आए हैं। उनमें सर्वचर्चित मनीषा कुलश्रेष्ठ का जन्म 26 अगस्त, 1967 को जोधपुर, राजस्थान में हुआ। हिन्दी का कथा साहित्य भारत की पार्श्वभूमि को दर्शाता है। यथार्थ साहित्य का वर्णन पाठक को जानने के लिए उस परिवेश में उसे जीना पड़ता है। उसकी मानसिकता उस परिवेश में ढालनी पड़ती है। मनीषा कुलश्रेष्ठ अपने लेखनी को रचना लेखन की केवल भाषा न मानकर मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति मानती है। जो जीवन का सही पहलू सार्थक करती है। आपने अपने अनुभव की व्यापकता को कहानी में चित्रित किया है। 'कृष्ण प्रताप कथा सम्मान', 'रजा फाउंडेशन फैलोशिप', 'रांगेय राघव पुरस्कार',, 'कृष्ण बलदेव वेद फैलोशिप' आदि सम्मानों से आपको सम्मानित किया गया है। आपकी प्रकाशित रचनाएँ उपन्यास- 'शिगाफ', 'शालभंजिका', 'पंचकन्या', कहानी संग्रह- 'कठपुतलियाँ', 'बौनी होती परछाई', 'केयर ऑफ स्वात घाटी', 'कुछ भी तो रुमानी नहीं', 'अनामा', 'गंधर्वगाथा', अनुवाद-

'वाय केज्ड बर्ड सिंग', 'माया एंजलू की आत्मकथा', 'बोर्हेस की कहानियों का अनुवाद' आदि कृतियाँ हैं। आपकी 'कठपुतलियाँ' कहानी हमेशा चर्चित रही है। कहानी संग्रह की विशेषता कहानियों का नयापन है। आप 'कठपुतलियाँ' कहानी को अपनी प्रतिनिधि कहानी के रूप में मानती है। जैसे 'गोदान' को कोई प्रेमचंद नाम से दूर नहीं कर सकता वैसे ही आपको यानी मनीषा कुलश्रेष्ठ को 'कठपुतलियाँ' नाम से दूर नहीं कर सकते। राजस्थान आपके रग-रग में बसा है। राजस्थान के प्रति आपके प्रेम को पाठक वर्ग कहानी के अंतर्गत विभिन्न अंगों में महसूस कर सकता है। आपकी कहानियाँ पाठक वर्ग से रूबरू होकर उनके अंतर्मन में प्रवेश करती हैं।

2.1.38 वंदना राग

युवा लेखिका वंदना राग का जन्म इंदौर में 10 मार्च, 1967 को हुआ। एक प्रयत्नशील लेखिका जिन्होंने बहुत अधिक प्रयत्न के पश्चात आज कहानी जगत में अपना नाम बना लिया है। आपने हिन्दी साहित्य जगत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेख व कहानियाँ प्रकाशित करवायी हैं। 'यूटोपिया' कहानी ने आपकी लेखन जगत के परिश्रम को फल दिलवाया। 2010 में छपी यह कहानी सांप्रदायिकता जैसे सूक्ष्म विषय से संबंधित है। यहाँ रिश्तों का कोई महत्व नहीं। प्रेम, वात्सल्य यह सभी सांप्रदायिकता के समक्ष कुछ नहीं। 'यूटोपिया' कहानी जीवन के नये पहलुओं को पाठक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत करती है। खुशमिजाज स्वभाव की वंदना राग की जिंदादिली उनकी कहानियों में झलकती है। उसी के साथ आलोच्य समय के अंतर्गत होने वाली विडम्बनाओं का भी मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। कहानी के साथ-साथ अनुवाद कार्य में भी आप तत्पर रही हैं। आपको कहानीकार के साथ-साथ उपन्यासकार भी कहा जाता है। आपका पहला उपन्यास 'बिसात पर जुगनू' का सबको इंतजार है। आप कहती हैं साहित्य आपके जीवन की दशा और दिशा दोनों है। आपकी कहानी सामाजिक तत्वों का भी अनुशीलन करती प्रस्तुत होती है। आपको 'कृष्ण प्रताप

स्मृति पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। 'यूटोपिया', 'हिजरत से पहले', 'ख्यालनामा' आदि आपके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं। आप मानवतावादी मूल्यों से आगे बढ़ना पसंद करती हैं। जिसमें कोई छल कपट और कोई दोराह न हो।

2.1.39 ज्ञानप्रकाश विवेक

बहुचर्चित रचनाकार ज्ञानप्रकाश विवेक जी का जन्म 30 जनवरी, 1949 को बहादुरगढ़, हरियाणा में हुआ। आप कहानी के साथ गजलों में भी रुचि रखते हैं। गजलकार, कहानीकार ज्ञानप्रकाश विवेक का गजल की दुनिया में बहुत बड़ा नाम है। गजलों के लिए आपको दुष्यंत कुमार के साथ देखा जाता है। आपका गजल संग्रह- 'धूप के हस्ताक्षर', 'आँखों में आसमान तथा इस मुश्किल वक्त में', कविता संग्रह- 'दीवार से झाँकती रोशनी', उपन्यास- 'गली नंबर तेरह', 'दिल्ली दरवाजा', 'अस्तित्व', कहानी संग्रह- 'शिकारगाह' (2003), 'सेवानगर कहाँ है', 'पिताजी चुप रहते हैं', 'इक्कीस कहानियाँ', 'उसकी जमीन', 'शहर गवाह है', 'अलग-अलग दिशाएँ', 'आलोचना', 'हिंदी गजल की विकासयात्रा' आदि आपकी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। 'शिकारगाह' कहानी संग्रह सामाजिक अनुबंधनों से दूर होते जा रहे अपने समाज की मार्मिकता को चित्रित करता है। आपके कहानी के पात्र बेचैनी से अपने प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ते प्रतीत होते हैं। मनुष्य को अपने अस्तित्व की रक्षा करना स्वयं धर्म है। जो मनुष्य खुद के सवाल सुलझा नहीं सकता वह समाज की क्या मदद करेगा। ऐसे विविध प्रश्नों से घिरे आपकी कहानियसों के पात्र समाजवादी दृष्टिकोण का उदाहरण देते हैं। आपके लेखनी की भाषा बेहद सरल है, जो पाठक के हृदय में घर कर लेती है। आपको अपनी इसी संवेदनशील भावना से रचित कहानियों के योगदान के लिए हरियाणा साहित्य अकादमी ने तीन बार सम्मानित किया है।

2.1.40 शर्मिला बोहरा जालान

युवा लेखकों की लिस्ट में और एक बड़ा चर्चित नाम शर्मिला बोहरा जालान है। आपका जन्म 7 जुलाई, 1973, दरभंगा, बिहार में हुआ है। निबंध, कहानी, संस्मरण, उपन्यास

आदि विधाओं में आपने रचनाएँ रची हैं। आपकी लेखनी को एक ठोस वैचारिक पृष्ठभूमि होती है। आपकी लेखनी का सूत्रधार स्त्री विषय है। आपने स्त्री को सीता स्वरूप में सम्मान दिया तथा राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के रूप में सम्मान दिया है। आपकी रचनाओं से पता चलता है कि आप लड़कियों के कपड़े पर उनकी गुणवत्ता का मापन नहीं करती। लड़की जींस में हो या साड़ी में स्त्री, स्त्री ही होती है। समाज को उसका मजाक उड़ाने का अधिकार नहीं। आप अपने बोल्ड व्यक्तित्व के लिए पहचानी जाती हैं। आपका मानना है कि स्त्री हो या पुरुष इन्हें किसी सीमाओं में बांधना सही नहीं हो सकता। आपकी निडर विचारशैली ने हिन्दी साहित्य जगत को नयी राह दिखाई है। आपकी रचनाएँ निबंध- 'अर्थ प्रेम का', 'महानगर और मॉल', संस्मरण- 'मैं जिन अशोक जी को जानती थी', उपन्यास- 'शादी से पेशतर', कहानी संग्रह- 'राग-विराग और अन्य कहानियाँ', 'बूढ़ा चाँद' (2008) आदि आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। 'बूढ़ा चाँद' कहानी संग्रह में आपने नारी के सभी वयोगट के बारे में लिखा है। जैसे उसकी बालिका उम्र से किशोरावस्था और बाद में एक युवती के रूप में। स्त्री की चंचलता का मार्मिक चित्रण है। गाँव में रहने वाली ग्रामीण लड़कियों से शहर के मॉल में घूमने वाली मॉडर्न लड़कियों तक के विविध सफर के बारे में आपने लिखा है। आपकी पात्र एक सीधी-सादी लड़की है और एक सशक्त स्त्री जो अपने फैसले स्वयं ले सकती है, ऐसी भी हैं। आपने कहानियों के सभी उतार-चढ़ाव को पाठक वर्ग के सामने बड़े ही मार्मिक रूप में उतारा है। आपके इन्हीं रचनाओं के लिए 'युवा पुरस्कार', 'राजश्री स्मृति न्यास पुरस्कार', 'कन्हैयालाल सेठिया सारस्वत सम्मान' से अलंकृत किया गया है।

2.1.41 अखिलेश

हिन्दी साहित्य के कथाकार अखिलेश जी का जन्म 6 जून, 1960 को सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ है। आपने एम.ए. तक की शिक्षा पूर्ण की है। आपकी लेखन शैली बाकी साहित्यकारों से भिन्न है। आप आपकी कहानियों में कहीं-न-कहीं पाठक वर्ग से रूबरू होते

प्रतीत होते हैं। आपकी भाषा साहित्यिक न होते हुए सीधी सरल जो किसी भी वर्ग का पाठक हो आसानी से कहानी को ग्रहण या यूँ कहें उसे आत्मसात करने में किसी बाधा का सामना नहीं करना पड़ता। आप जन विचारों को ध्यान में रखकर रचना करते हैं, आपकी यही शैली पाठक वर्ग की रोचकता बढ़ा देती है। यथार्थ का चित्रण सही समय कब और कहाँ दर्शाना है यह पाठक वर्ग पढ़ते-पढ़ते आत्मसात करता है। आपकी कृतियाँ उपन्यास- 'अन्वेषण', 'निर्वासन', संस्मरण- 'वह जो यथार्थ था', संपादन- 'एक किताब एक कहानी', 'तद्भव', 'दस बेमिसाल प्रेम कहानियाँ', कहानी संग्रह- 'आदमी नहीं टूटता', 'मुक्ति', 'अँधेरा', 'शापग्रस्त' आदि आपकी रचनाएँ प्रकाशित हैं। आपको 'वनमाली कथा पुरस्कार', 'इंदु शर्मा कथा सम्मान', 'श्रीकांत वर्मा पुरस्कार', 'स्पंदन सृजनात्मक पुरस्कार', 'कसप मनोहर श्याम जोशी पुरस्कार' आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। आपका कहानी संग्रह 'अँधेरा' जो 2007 में प्रकाशित हुआ है। वह आपकी गहरी सोच, आपके समाज के प्रति दृष्टिकोण का आईना है। आपकी नयेपन की उत्सुकता पाठक को हमेशा लेखन में नजर आयी है। बस चार कहानी का यह संग्रह हमेशा पाठक वर्ग के लिए चर्चा का विषय रहा है। सटीक समय पर प्रयोग होते आपके सटीक विचार कहानी की प्रासंगिकता बढ़ा देते हैं।

2.1.42 मीरा कांत

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की एक बहुचर्चित साहित्यकार, जो हिन्दी साहित्य जगत में नाटककार के नाम से प्रसिद्ध हुई मीरा कांत। आपका जन्म 1958 जुलाई में श्रीनगर में स्थित एक ब्राह्मण परिवार में हुआ है। आपको बचपन से ही पुस्तक वाचन तथा पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने का शौक था। आपके इसी शौक ने आपके हाथ में कलम पकड़वायी। विभिन्न देश-विदेश का परिभ्रमण आपने किया है। साहित्यकार अपने जीवन के अनुभवों को साहित्य में उतारता है। आपके अलौकिक विचारों को आपने नाटक, उपन्यास, कहानी तथा कविता में ढाला है। इसके लिए आपको कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। 'सर्वश्रेष्ठ कथानक पुरस्कार',

'साहित्यकार अकादमी सम्मान', 'डॉ. गोकुलचंद गांगुली पुरस्कार', 'सर्वश्रेष्ठ लेखक सम्मान', 'नटसम्राट सम्मान', 'मोहन राकेश पुरस्कार' आदि अनगिनत सम्मान एवं पुरस्कारों से आप अलंकृत हैं। आपकी रचनाएँ उपन्यास- 'तत: किम उर्फ हिटलर',, 'हम आवाज दिल्लियाँ', 'एक कोई या कहीं नहीं-सा', नाटक- 'हुमा को उड़ जाने दो', 'कंधे पर बैठा था शाप', 'ईहामृग', 'नेपथ्य राग', 'अंत हाजिर हो', 'उत्तर प्रश्न', कविता संग्रह- 'तुम क्या निर्वस्त्र करोगे मुझे', कहानी संग्रह- 'गली दुल्हन वाली' (2009), 'कागजी बुर्ज' (2008), 'हाइफन' (1998), 'प्रेम संबंधों की कहानियाँ' आदि आपकी कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। इसके साथ-साथ भारत की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपके मौलिक लेख भी प्रकाशित हुए हैं। 'कागजी बुर्ज' कहानी संग्रह में आतंक निर्माण करने वाले विचारों का चित्रण है। देश की खोखली परंपराओं का मार्मिक चित्रण है जो स्त्री धारणा के विरोध में स्वर उठाते हैं। लेखिका के विचारों ने कहानी का स्वरूप लेकर पाठक वर्ग के दिल में एक आक्रोश भरे समय का वर्णन किया है।

2.1.43 अजय नावरिया

चर्चित कहानीकार अजय नावरिया का जन्म 6 जून, 1972 को कोटला (मुबारकपुर), दिल्ली में हुआ। आप जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं। आपका साहित्य विश्व की विभिन्न भाषाओं- जर्मन, फ्रेंच, चीनी, जापानी, इतालवी में अनुवाद हुआ है। आप भारतीय दलित संघ के अध्यक्ष पद पर भी कार्यरत हैं। आपने दलित सक्रिय आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया है। आपका कहानी संग्रह- 'पटकथा और अन्य कहानियाँ' वर्ष 2006 में प्रकाशित हुई है। आपका उपन्यास 'उधर के लोग' का भी प्रकाशन हो चुका है। आपको दिल्ली का 'साहित्यिक कृति सम्मान', 'सुधा स्मृति साहित्य सम्मान', 'हिंदी अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। आपका कहानी संग्रह 'पटकथा और अन्य कहानियाँ' आपके सपनों की एक रचनात्मक कृति है जो

कलम के सहारे कागज पर आपने उतारी है। धर्म के आडम्बरों में जकड़ा अपना समाज जो सामान्य-असामान्य में अंतर करना नहीं जानता, उसकी त्रासदी का वर्णन आपने किया है। दलित वर्ग की त्रासदी को सटीक उदाहरणों के जरिए पाठक वर्ग के सामने लाया गया है। अम्बेडकरवादी विचारधारा के स्वरूप को कहानी का मुख्य पात्र किस तरह से आत्मग्रहण करके अपने प्रश्नों का उत्तर ढूंढने के लिए तत्पर हो जाता है, उसका मार्मिक चित्रण प्रस्तुत है। मार्क्सवाद एवं अम्बेडकरवाद के बारे में सपनों की एक विविधता का चित्रण अँधेरा की कहानियाँ हैं।

2.1.44 सुषमा जगमोहन

हिन्दी जगत की संवेदनशील कहानीकार सुषमा जगमोहन जी का जन्म 1 नवम्बर 1953 में हुआ। आपका एक कहानी संग्रह 'कोई मेरा अपना' कहानी संग्रह जो आपका पहला कहानी संग्रह है। 2008 में यह संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। पत्र-पत्रिकाओं में आपकी अनेक कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। 'जिंदगी ई-मेल' नामक उपन्यास भी प्रकाशित हैं। 'कोई मेरा अपना' कहानी संग्रह के अंतर्गत 12 कहानियाँ हैं। इसके अंतर्गत कहानीकार ने पात्रों की विविधता को बड़ी ही संवेदनशीलता से कहानी में उतारा है। मध्यमवर्गीय समाज जो किसी से लड़ना नहीं चाहता। जो है, जितना है उसी में खुश रहे। पात्रों की विवशता जो उन्हें परिस्थिति के मारे करना पड़ रहा है, उसका चित्रण यहाँ देख सकते हैं। आपने कहानियों में किसी युद्ध से नहीं बल्कि प्रेम से भी वही कार्य कर सकते हैं, यह विश्लेषित किया। अपनी संवेदनात्मक रचना को ही कहानी का स्वरूप आपने दिया है।

2.1.45 तरुण भटनागर

हिन्दी साहित्य के अंतर्गत सभी लेखकों का स्वागत हंसते हुए नहीं किया गया। उनमें से एक नाम तरुण भटनागर है। आपका जन्म रायपुर, छत्तीसगढ़ में 24 सितंबर, 1968 को हुआ है। आपका साहित्य की विधा कविता और कहानी में काम करते हुए देख सकते हैं।

आपका कहानी संग्रह- 'गुल मेंहदी की झाड़ियाँ' वर्ष 2008 में प्रकाशित हुआ है। एक युवा कथाकार की युवा सोच पाठक को आकर्षित करती है। कहानी में तथ्य-मिथक दोनों का संगम देख सकते हैं। सपेरों की दंतकथा से, उनकी पारंपरिक रीति-रिवाज का यथार्थ स्वरूप दिखाया गया है। परंतु कहीं-कहीं यह कहानी मिथक के ढाँचे में ढलती भी दिखाई देती है। अफगानी शरणार्थियों की व्यथा का मार्मिक ढंग से चित्रण, उनकी पीड़ा का चित्रण, सत्य तथा असत्य का चित्रण आदि विविध विचारों को एक कहानी के अंतर्गत कथाकार ने सांचा है। कहानी जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है, पाठक की आतुरता जवाब दे देती है। यथार्थ एवं मिथक का एकत्रीकरण प्रस्तुत कहानी में चित्रित है। आपकी रचनाओं को 'वागीश्वरी पुरस्कार' तथा 'शैलेश मटियानी कथा पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है।

2.1.46 क्षमा शर्मा

वरिष्ठ बाल साहित्यकार के नाम से मशहूर क्षमा शर्मा जी का जन्म अक्टूबर, 1955 को आगरा में हुआ। बचपन से ही आपको लेखन में रुचि थी। आपने पत्रकारिता में पीएच.डी. उपाधि प्राप्त की है। आपने साहित्य की सभी विधाओं में रचनाएँ लिखी हैं। आपकी रचनाओं ने स्त्री के जीवन के प्रत्येक क्षण को रेखांकित किया है। नारी-जीवन की कठिनाइयाँ, घर-परिवार में चलती छोटी-बड़ी नोक-झोंक, स्त्री-अस्मिता की लड़ाई, स्त्री उत्पीड़न की त्रासदी ऐसे विभिन्न मुद्दों को आपने अपनी रचनाओं में संघर्षित किया है। आपने बहुत सी रचनाओं का लेखन कार्य किया है। जिसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, बाल साहित्य इन सबका समावेश है। आपके उपन्यास 'मोबाइल', 'परछाई', 'अन्नपूर्णा', 'शस्य का पता', 'दूसरा पाठ', 'भाई साहब', 'बादल की बात', 'राजा बदल गया' आदि, कहानी संग्रह- 'परी खरीदनी थी', 'इक्कीसवीं सदी का लड़का', 'काला कानून', 'लव स्टोरीज', 'कस्बे की लड़की', 'लड़की जो देखती पलटकर', 'नेम प्लेट', 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' आदि, संस्मरण- 'औरतें और आवाजें', 'बंद गलियों के विरूद्ध', 'स्त्रीत्ववादी विमर्श-समाज और साहित्य', 'बाजार ने

पहनाया बारबी को बुर्का' आदि ऐसी अनगिनत रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। बहुत सी बाल कहानी संग्रह आपने लिखे हैं। आपकी कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। आपका कहानी संग्रह 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' के अंतर्गत कुल 41 छोटी-छोटी कहानियाँ हैं। स्त्री जीवन का परिचय देती यह कहानियाँ समाज के यथार्थ को सामने रखती हैं। यह कहानियाँ प्रश्न कर रही हैं, क्यों आखिर स्त्री को ही सीमा में बांधा गया है? क्यों वह घर के बाहर नहीं निकल सकती? क्यों स्त्री के आत्मसम्मान को बार-बार रौंदा जाता है? ऐसे विभिन्न प्रश्नों का उत्तर खोजती यह कहानियाँ हैं। 'नेमप्लेट' कहानी संग्रह पुरुषवादी वर्चस्व से संबंधित है। पुरुष सत्तात्मक अपना समाज किस तरह से अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता है, इसका मार्मिक चित्र दर्शाया गया है। दूरदर्शन राष्ट्रीय पुरस्कार, हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित, आपकी कहानियाँ दूरदर्शन, आकाशवाणी पर प्रसारित की गयी है।

2.1.47 बानो सरताज

हिन्दी तथा उर्दू भाषा में लेखन करवाने वाली कथाकार बानो सरताज का जन्म 17 जुलाई, 1945 को यवतमाल, जिला महाराष्ट्र में हुआ। आप साहित्य के साथ-साथ बाल साहित्य में भी रुचि रखती है। आपने अपनी कहानियों में मुस्लिम समाज को चित्रित किया है। मुस्लिम समाज के परिवेश में स्त्री का क्या स्थान है, यह आपने बताया है। पुरुषसत्तात्मक विचारधारा को समझाते हुए, उनके अंतर्गत हो रही विभिन्न त्रासदी का चित्रण किया गया है। आपकी प्रकाशित रचनाओं के कुछ नाम इस प्रकार है। 'चलो, अब मर जायें!' (2010), 'एक घूंट जहर', 'रास्ते के मुसाफिर', 'हिना के रंग', 'भीख तथा अन्य कहानियाँ' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपने बहुत सी बाल कथाओं की रचनाएँ भी की है। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपकी बाल रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी कहानियाँ स्त्री-वेदनाओं का ऐसा चित्रण है, जो यथार्थ से पाठक को जोड़ता है। इसी के अंतर्गत स्त्री-सशक्तिकरण का उल्लेख भी आप करती हैं। नारी जो पत्नी, पुत्र, ससुर इन सबसे हार चुकी है।

स्त्री विवशता का मार्मिक चित्रण आपकी कहानी में प्रस्तुत है। बाल साहित्य के लिए आपको 'भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। साहित्य अकादमी से 'बाल साहित्य पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

2.1.48 नमिता सिंह

हिन्दी की वरिष्ठ कथाकार नमिता सिंह का जन्म लखनऊ में 4 अक्टूबर, 1944 को हुआ। महाकवि सुमित्रानंदन पंत जी आपके दादाजी जिनसे आपको लेखन की प्रेरणा मिली। आपके लेखन का विषय मुख्यत: साम्प्रदायिकता रहा। स्त्री-विमर्श को भी आपने अपनी लेखनी में शामिल किया। सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियों की झलक आपकी कहानी एवं उपन्यास में प्रतीत होती है। आपके प्रकाशित कहानी संग्रह- 'खुले आकाश के नीचे', 'राजा की चौक', 'नीलगाय की आँखें', 'जंगल गाथा', 'निकम्मा लड़का', 'मिशन जंगल और गिनीपिग' (2007), 'उत्सव के रंग', 'कर्फ्यू तथा अन्य कहानियाँ', 'नमिता सिंह की कहानियाँ' आदि। उपन्यास- 'अपनी सलीबे', 'लेडीज क्लब' आदि रचनाएँ प्रकाशित हैं। आपकी कहानियों में नारी उत्पीड़न की त्रासदी, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री का स्थान, साम्प्रदायिकता की विडम्बना, राजनीतिक स्तर पर हो रही स्त्री की असमानता, जो उसे राजनीति में भाग लेने नहीं देती, ऐसे विभिन्न मुद्दों के साथ आपने कहानियाँ लिखी हैं। जो पाठक वर्ग को सोचने के लिए विवश करती हैं कि आखिर क्यों यह दोगलापन स्त्री के साथ ही होता है? स्त्री-पुरुष समानता को मानने वाली आप हमेशा सामाजिक कार्य के लिए तत्पर रही हैं। आपको 'राही मासूम रजा साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया है।

2.1.49 पंकज मित्र

हिन्दी साहित्य जगत के बहुचर्चित कथाकार पंकज मित्र हैं। आपका जन्म झारखंड, राँची में 15 जनवरी, 1965 को हुआ। नब्बे के दशक के चर्चित कहानीकारों में आप एक हैं। आपकी भाषा सीधे पाठक के हृदय में प्रवेश करने वाली होती है। आप कहानी लिखने का ही

नहीं, बल्कि कहानी वाचन का भी कार्य करते हैं। आपके कहानी वाचन की पद्धति श्रोताओं को आतुर कर देती है, आगे क्या होगा, यह सोचने के लिए। कहानी के माध्यम से आप समाज की कूटनीति, एक-दूसरे के प्रति द्रोह, स्त्री-पुरुष असमानता ऐसे जटिल मुद्दों पर आपकी कहानी का केन्द्र बिन्दु होता है। आप आज के पीढ़ी के एक समर्थ रचनाकार हैं। आपका मुख्य उद्देश्य जो समाज कहीं खो गया है, जिसका कहीं जिक्र नहीं या जो दमन होता जा रहा है। ऐसे दलित या यूँ कहें मध्यम वर्गीय समाज को आप आगे लाना चाहते हैं। आपकी प्रकाशित कहानियाँ 'हुड़कलुल्लु' (2008), 'क्विजमास्टर', 'जिद्दी रेडियो' आदि हैं। 'इसरायल सम्मान', 'युवा सम्मान', 'प्रथम मीरा स्मृति पुरस्कार', 'युवा लेखन का प्रथम पुरस्कार' आदि सम्मानों से आप सम्मानित हैं। आपका कहानी संग्रह 'हुड़कलुल्लु' समाज का यथार्थ जीवन पाठक के सामने लाता है। नैतिक बोध में जकड़ा समाज, जो मानवीय विडम्बनाओं का बुना हुआ जाल है। जो मनुष्य को मनुष्य से दूर करता है। जिसकी विचारशीलता बस स्त्री या पुरुष पर न लादते हुए दोनों के साथ आगे बढ़ती है। आपकी कहानियों में विविध बोलियाँ, बोलने के विविध टोन, मुहावरे, आपकी वैविध्यपूर्ण भाषा शैली इनका जोड़ बंधा है। आपकी कहानी समाज को समाज का सही स्वरूप दिखलाती है। आपकी विचारशीलता भाषा की पकड़ के साथ पाठक के मन में भी घर कर जाती है।

2.1.50 सुदर्शन वशिष्ठ

हिन्दी साहित्य जगत के वरिष्ठ एवं बहुचर्चित साहित्यकार सुदर्शन वशिष्ठ जी का जन्म 24 सितम्बर, 1949, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश में हुआ है। आप स्वच्छंद लेखनी के रचनाकार हैं। आपने साहित्य की सभी विधाओं में रचनाएँ की हैं। उपन्यास, कहानी, कविता आदि आपकी लेखनी की विधाएँ हैं। आपने लगभग सत्तर से अधिक पुस्तकों का संपादन कार्य किया है। हिमाचल में पले-बढ़े आप, आपकी रचनाओं में हिमाचली संस्कृति को महसूस किया जा सकता है। आपने कथा साहित्य का एक बड़ा समय पार किया है। भारत की

प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। आपकी लेखन शैली में स्थिरता है। इतने लंबे समय के पश्चात भी पाठक को कभी दोराह सोचना नहीं पड़ता। यथार्थवादी विचारधारा के आप, आपकी रचनाओं में भी वही गुण झलकता है। आपको कई पुरस्कार एवं सम्मान से अलंकृत किया गया है। उनमें से कुछ यह है- 'डॉ. परमार पुरस्कार', हिमाचल अकादमी द्वारा 'कविता पुरस्कार', 'शिखर सम्मान', ऑल इंडिया आर्टिस्ट एसोसिएशन द्वारा 'पीपुल्स अवार्ड' आदि। आपकी प्रकाशित रचनाएँ- कविता संग्रह 'अनकहा', 'जो देख रहा हूँ', 'वशिष्ठ', 'सिंदूरी साँझ', 'युग परिवर्तन', 'खामोश' आदि, नाटक- 'नदी और रेत', 'अर्धरात्रि का सूर्य', उपन्यास- 'सुबह की नींद', 'आतंक' आदि। कहानी संग्रह- 'वसीयत' (2006), 'अंतरालों में घटता समय', 'संता पुराण', 'कतरनें', 'पहाड़ पर कटहल', 'सेमल के फूल', 'मानस गंध', 'गेट संस्कृति' आदि है। 'वसीयत' कहानी संग्रह आधुनिक काल की समाज की मानसिकता का विवरण है। जो मनुष्य मन का विवेचन करता है। सांप्रदायिकता के घेरे में घिरा समाज एक-दूसरे से किस तरह से संपत्ति के लिए जुड़ा है। इसका मार्मिक चित्रण पाठक के सामने आपने रखा है।

निष्कर्ष

प्रत्येक सदी अपने परिवेश का परिचय पाठक वर्ग को देती है। कहानीकार पाठक और लेखक के बीच जोड़ा जाने वाला सेतु है। कहानीकार जो महसूस करता है, उसे कलम के सहारे कागज पर उतारता है। समाज में हो रही घटनाओं को या यूँ कहें अपने सामाजिक विचारों को लेखक कहानी का स्वरूप देता है। इक्कीसवीं सदी भी ऐसी विभिन्न घटनाओं का एक संघ है। प्रत्येक दशक अपने आप में कुछ अलग होता है। कहानीकार के विचार या उनके लेखन के प्रति सोचने का नजरिया कहीं-कहीं बदलता रहता है। समय-समय पर बदलाव आना जरूरी भी है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों की संरचना अंतिम दशक से अधिक भिन्न नहीं थी। समाज में आए कुछ नये विषयों, नये भावों को इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपनी

कहानी में संकलित किया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक बदलाव को कहानीकारों ने अपनी कहानियों में रेखांकित किया है।

इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपने विचारों की सीमा को बड़ा करके सोचा है। आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, स्त्री ऐसे विभिन्न विषयों का चित्रण इन कहानियों में चित्रित किया गया है। जयप्रकाश कर्दम, मीराकांत, मेहरुन्निसा परवेज, सुशीला टाकभौरे, उदय प्रकाश, ओमप्रकाश वाल्मीकि, यादवेन्द्र शर्मा चंद्र आदि वरिष्ठ कथाकारों की रचनाओं में विविधता हम पाठक वर्ग देख सकते हैं। अंतिम दशक से चलते आ रहे विमर्शों का विश्लेषीकरण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। वंदना राग, मनीषा कुलश्रेष्ठ, नीलाक्षी सिंह, पंखुरी सिन्हा, पंकज मित्र आदि नये दशक के उभरते कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में नयी पीढ़ी की समझ और इनके नये विचार, जिससे कहानी का एक नयी राह प्राप्त हुई है। आज भी स्त्री, दलित, आदिवासी, किन्नर ऐसे विभिन्न साहित्य की धाराओं में आज भी उत्पीड़न, अस्मिता के प्रश्न पूछते नए पीढ़ी के कहानीकार दिखते हैं। कहानी की सदियाँ बदलते जाती है। परंतु उनमें भाव, अपनापन पाठक के हृदय में एक बड़ा स्थान रखकर जाते हैं।

*****

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानी संवेदना के : विविध धरातल

3.0 भूमिका

3.1 संवेदना शब्द विश्लेषण

3.1.1 संवेदना शब्द का अर्थ

3.1.2 संवेदना का स्वरूप

3.1.3 संवेदना की परिभाषा

3.1.4 संवेदना की विशेषता

3.2 संवेदना का साहित्यिक महत्व

3.3 मानवीय संवेदना के विविध स्तर

3.3.1 प्रेम संवेदना

3.3.2 सुखात्मक संवेदना

3.3.3 दुखात्मक संवेदना

3.3.4 करुणात्मक संवेदना

3.3.5 अहंकारात्मक संवेदना

3.3.6 घृणात्मक संवेदना

3.3.7 प्राकृतिक संवेदना

3.3.8 राष्ट्रीय संवेदना

3.4 हिन्दी कहानी : संवेदना के विविध धरातल

3.4.1 आदिवासी सेवेदना

3.4.1.1 विस्थापन की समस्या

3.4.1.2 समाज में शिक्षा का अभाव

3.4.1.3 समाज में फैली अंधश्रद्धा

3.4.1.4 नारी का स्थान

3.4.1.5 प्रकृति के प्रति भावना

3.4.1.6 आर्थिक परिस्थिति

3.4.1.7 नशे की आदत

3.4.1.8 आदिवासी आक्रोश

3.4.1.9 आदिवासी संस्कृति का भाव

3.4.1.10 आदिवासी मान्यताएँ

3.4.2 दलित संवेदना

3.4.2.1 अस्तित्व का प्रश्न

3.4.2.2 छुआछूत व जातिवाद की त्रासदी

3.4.2.3 शिक्षा की त्रासदी

3.4.2.4 भ्रष्टाचार तथा धार्मिक धारणा

3.4.2.5 दलित स्त्री उत्पीड़न

3.4.2.6 दलित चेतना का विकास

3.4.2.7 दलित आंदोलन

3.4.2.8 दलितों की आर्थिक व्यथा

3.4.2.9 सामाजिक विषमता

3.2.4.10 राजनीति और दलित

3.4.3 स्त्री संवेदना

3.4.3.1 अस्मिता व सम्मान के लिए लड़ती नारी

3.4.3.2 कामकाजी महिला की विवशता

3.4.3.3 रूढ़ि, परंपरा में जकड़ी स्त्री

3.4.3.4 पारिवारिक बंधनों में बंधी हुई स्त्री

3.4.3.5 स्त्री उत्पीड़न तथा यौन शोषण

3.4.3.6 प्रेम संबंध में स्त्री दृष्टिकोण

3.4.3.7 महिला सशक्तिकरण

3.4.3.8 अंधश्रद्धा में फंसी स्त्री की मान्यता

3.4.3.9 स्त्री की आर्थिक परिस्थिति

3.4.3.10 स्त्री अत्याचार व अकेलापन

3.4.4 वृद्ध संवेदना

3.4.4.1 वृद्ध मानसिक व सामाजिक वेदना

3.4.4.2 वृद्धावस्था की स्वास्थ्य रक्षा

3.4.4.3 दो पीढ़ियों के बीच अंतरभेद

3.4.4.4 वृद्धावस्था में समय गुजारने के बहाने

3.4.4.5 वृद्धावस्था में आर्थिक बाध्यता

3.4.4.6 वृद्धावस्था में सुख शांति भावना

3.4.4.7 सेवानिवृत्ति का भाव

3.4.4.8 दूसरे पर निर्भर रहने की ग्लानि

3.4.4.9 अकेलेपन की भावना

3.4.4.10 अंतिम क्षण का इंतजार

3.4.5 अल्पसंख्यक संवेदना

3.4.5.1 विभाजन की त्रासदी

3.4.5.2 मुस्लिम समाज का धार्मिक विश्वास

3.4.5.3 समाज में जातिवाद की समस्या

3.4.5.4 आर्थिक विवशता

3.4.5.5 मुस्लिम समाज की सामाजिक धारणा

3.4.6 किन्नर संवेदना

3.4.6.1 किन्नर कौन है

3.4.6.2 अपमान भावना की त्रासदी

3.4.6.3 किन्नर समाज की आर्थिक परिस्थिति

3.4.6.4 किन्नर का सामाजिक परिवेश

3.4.6.5 किन्नर का समाज में स्थान

3.4.7 भूमंडलीकरण की संवेदना

3.4.7.1 भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद

3.4.7.2 भूमंडलीकरण का स्त्री पर प्रभाव

3.4.7.3 भूमंडलीकरण का आदिवासियों पर प्रभाव

3.4.7.4 भूमंडलीकरण का समाज पर प्रभाव

3.4.7.5 भारतीय व्यापार पर भूमंडलीकरण का असर

3.4.8 मजदूर संवेदना

3.4.8.1 बाल मजदूरी की वेदना

3.4.8.2 सरकारी असुविधा

3.4.8.3 मजदूर वर्ग का आर्थिक जीवन

3.4.8.4 स्त्री मजदूर की त्रासदी

3.4.8.5 भूख की समस्या का एहसास

3.5 निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानी : संवेदना के विविध धरातल

3.0 भूमिका

समाज विभिन्नता से बना है। मनुष्य समाज को बनाता है। भिन्न-भिन्न मनुष्य की भिन्न-भिन्न धारणा होती है। धारणाओं की व्युत्पत्ति मन से होती है। यही मन विभिन्न भावों से तैयार हुआ है। मनुष्य के इन्हीं विभिन्न भावों को संवेदना कहा जाता है। संवेदना मन तथा हृदय को एक साथ लेकर चलती है। अपेक्षित व अनपेक्षित घटनाओं को देख हृदय भावनाओं की संवेदनाओं का निर्माण करता है। संवेदना मनुष्य के ज्ञान प्राप्ति की पहली सीढ़ी है। जिसे मनुष्य धीरे-धीरे मनुष्य जीवन से मनुष्य अंत तक चढ़ने का कार्य करता है। संवेदना मानसिक प्रक्रिया है, जो मनुष्य को सभी भावों से अवगत कराती है। संवेदना सहानुभूति का सच्चा भाव है। सहनशीलता से ही मनुष्य की सही पहचान होती है। संवेदना मनुष्य की संवेदनशीलता की पहचान बन जाती है।

साहित्य व संवेदना दोनों का एक-दूसरे से बहुत ही नजदीक का रिश्ता है। मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। साहित्य मनुष्य के अंतर्भाव की भावना है, जिसे वह पन्नों के सहारे एकत्रित करता है। साहित्यकार के विभिन्न भावों की संवेदना से साहित्य बना है। परिवर्तन समाज का मुख्य घटक है। जिस तरह हर दिन अपने-आप में अलग होता है, कैलेंडर की तारीखें रोज बदलती हैं, ऐसे ही जीवन में रोज बदलाव आना निश्चित है। यही बदलाव जीवन मूल्यों से मनुष्य को अवगत कराता है। संवेदना भी मनुष्य के साथ ही आगे बढ़ती है। मनुष्य गुस्से में है तो आक्रोश की संवेदना, मनुष्य के जीवन में खुशी आई तो खुशी की संवेदना आदि से संवेदना मनुष्य के भीतर जन्म लेती है। साहित्यकार के भीतर निर्मित होती यही संवेदना साहित्य बनकर पाठक के सामने आती है। साहित्यकार की भावों से उनकी रचना से वह किन परिस्थितियों में रची होगी उससे पाठक आत्मसात कर सकता है। संवेदना

साहित्यकार की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसलिए संवेदना को मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया कहा जाता है। संवेदना मनुष्य की अंतर्मन की प्रक्रिया होते हुए भी उसका संबंध मनुष्य के बाह्य जीवन से भी होता है। लेखक अपनी रचना करते समय बाहरी जीवन से प्रभावित होता है। अर्थात लेखक का सामाजिक परिवेश उसके लेखन का मुख्य भाग होता है। साहित्यकार की बौद्धिक क्षमता और समाज के प्रति उसका दृष्टिकोण साहित्य रचना की पहली सीढ़ी है।

संवेदना कहानी के प्रत्येक परिवेश में दृष्टिगत होती है। चाहे वह कहानी की राजनैतिक जटिलता हो, आर्थिक सार्थकता हो, प्राकृतिक चित्रण हो, धार्मिक तथा सामाजिक स्तर पर मनुष्य की मानसिकता हो, आदि प्रत्येक स्तर पर संवेदना होती है। संवेदना कहानी की अनुभूति होती है, जिसे वह किसी भी व्यक्ति से जोड़ती है, घटना की प्रक्रिया से अवगत करती है। साहित्यकार की स्थिति का अवलोकन करती है। संवेदना ऐसी अनुभूति है जिसे साहित्यकार समाज के परिवेश में रहकर उसे महसूस करके साहित्य में रूपाकार प्रदान करता है। संवेदना मनुष्य जीवन की चेतना का भाव है। संवेदना साहित्यकार की मनोस्थिति को बयान करती है। संवेदना के जरिए कहानीकार अपनी अनुभूति को पाठक वर्ग के साथ रेखांकित कर सकता है।

संवेदना एक भाव है जो मानव हृदय से निर्मित होता है। मनुष्य की भावना विविध रूप से प्रकट होती है। इसलिए मनुष्य को संवेदनशील प्राणी भी कहते हैं। या हम यूँ भी कह सकते हैं कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। मनुष्य अपने विचारों को कागज पर उतारने के लिए कलम की सहायता लेता है। लेखक की यही भावना या सोच-विचार कलम बनकर कागज पर उतरती है। वह मनुष्य की संवेदना होती है। प्रत्येक मनुष्य, साहित्यकार-कथाकार की अपनी एक शैली होती है, उसकी एक अलग-अलग कल्पना, भावना, वैचारिक क्षमता ऐसे विविध भाव हैं, जो संवेदना का रूप धारण करते हैं। सुख-दुख की भावना जो एक-दूसरे के प्रति हम महसूस करते हैं। साहित्य और समीक्षा दोनों का यह भी ऐसे ही साहित्यकार के विभिन्न भावों

से निर्माण रचना है, जिसके अंतर्गत मानवीय संवेदना जैसे करुणात्मक, सुखात्मक, दुखात्मक, प्रेम, घृणात्मक, प्राकृतिक, अहंकारात्मक आदि संवेदनाओं के भेद निर्मित होते हैं।

हिन्दी साहित्य के अनुसार- "साधारणत: संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है, मूलत: वेदना या संवेदना का अर्थ ज्ञान या ज्ञानेन्द्रियों का अनुभव है। मनोविज्ञान में इसका यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसके अनुसार संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है, जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है।"[1] प्रस्तुत कथन से हम यह समझ सकते हैं कि संवेदना एक भावना है, जो मानवीय मन या ज्ञानेन्द्रियों से समझा जाने वाला भाव या विचार है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में इसी विविधता को देखा गया है। कहानी का समय इक्कीसवीं सदी है जो आधुनिकता के मार्ग पर चलता समय है। आज की विचारधारा पहले दशक से थोड़ी भिन्न दर्शित होती है। कहानी के पात्र अधिक शिक्षित, समझदारी से निर्णय लेते तथा अपने आक्रोश भरे विचारों को पाठक वर्ग को दिखाई देते हैं। मैंने कहानी की 2001 से 2010 तक का समय सीमांकन चुना है। यह समय युवा कथाकारों से पूर्ण है। नयी सोच, नया समाज, नया आक्रोश आदि विविधताओं को हम इक्कीसवीं सदी की कहानियों में देख सकते हैं। संवेदनाओं को मैंने विभाजित करने के लिए अर्थात प्रस्तुत कहानियों की संवेदनाओं को समझने के लिए मैंने आदिवासी संवेदना, दलित संवेदना, स्त्री संवेदना, अल्पसंख्यक संवेदना, वृद्ध संवेदना, मजदूर संवेदना आदि में विभाजित किया है। जिससे हम इक्कीसवीं सदी की कहानियों को अच्छे से समझकर उनका विश्लेषण कर सकें।

3.1 संवेदना शब्द विश्लेषण

संवेदना मनुष्य के भीतर की चेतना है। मनुष्य की चेतना परिस्थिति, परिवेश को देखकर बदलती रहती है। जिस परिवेश में मनुष्य प्रस्तुत होता है वहीं चेतना उसके अंतर्मन से

[1] हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1) - संपादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं. 863

बाहर उभरती है। संवेदना को मूलत: समझने के लिए संवेदना से एकाग्र होना आवश्यक है। संवेदना मनुष्य मन की गहरी अनुभूति है। चेतना इसी अनुभूति को प्रबल बनाती है। संवेदना साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान होती है। हिन्दी साहित्य में कहानी गतिशीलता से आगे बढ़ती जा रही है। कहानी का परिवेश संवेदना से पूर्ण है। संवेदनात्मक कहानीकार अपनी भावनाओं से कहानी की रचना करता है। कहानी लिखित तथा कथित दोनों रूपों में अभिहित की जाती है। संवेदना का मूल परिचय पाठक को कहानी पाठन के समय ही पता चल जाता है। इसी प्रकार जब श्रोताओं के सामने कहानी पठन का तरीका आजमाया जाता है तब श्रोताओं को संवेदना के विविध स्तर कहानी के माध्यम से ज्ञात होते हैं। संवेदना कहानीकार के मन में उत्पन्न होने वाली एक जागृत अभिव्यक्ति है। संवेदना साहित्यकार की जटिलताओं को एकत्रित करके भावों का स्वरूप लेकर साहित्य बनकर निखरती है। इन संवेदनाओं का रूप प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक विधा, प्रत्येक भाग में अलग-अलग होता है। ग्रामीण समाज पर रचित लेखन की संवेदना ग्रामीण मनुष्य का चित्रण करती है। महानगरीय क्षेत्रों का साहित्य वहाँ के परिदृश्य का बयान करते हैं। समाज और मनुष्य इन दोनों से संवेदना का एक अटूट रिश्ता है। जो एक-दूसरे को साथ लेकर आगे बढ़ता है।

इक्कीसवीं सदी की कहानी परिवर्तन के स्तर पर बहुत आगे बढ़ चुकी थी। इसलिए संवेदनाओं का बदलना भी अनिवार्य था। संवेदना कहानी की आत्मा होती है। मानसिक एवं बौद्धिक दोनों स्तरों पर संवेदना कहानी के अंतर्गत समाविष्ट होती है। संवेदना का समावेश प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों घटकों में पाया जाता है। संवेदना कहानी के अंतर्गत पात्रों की मानसिकता का चित्रण करती है। इसी से कथाकार का मुख्य उद्देश्य का पाठक तक पहुँचने के लिए आसानी होती है। संवेदना मनुष्य के निर्णय का कारण बनती है क्योंकि किसी भी क्षेत्र या विधा के अंतर्गत निर्णायक प्रवृत्ति का होना अनिश्चित है। वही प्रवृत्ति साहित्यकार के भीतर भी होती है, जिससे वह अपनी रचना को कहीं एक ओर से पूर्णता प्रदान करने का निर्णय लेता है

और अपनी विवेकपूर्ण धारणाओं से रचना का निर्माण करता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में यही धारणाएँ बार-बार रेखांकित की गयी हैं। संवेदना का मूल तत्व मनुष्य मन से शुरू होकर समाज तक आकर ठहरता है। संवेदना की यही विशेषताएँ संवेदनाओं को महत्वपूर्ण बनाती हैं।

संवेदना की अनुभूति मनुष्य को ज्ञानेन्द्रियों से होती है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि मनुष्य के संवेदनशील प्राणी होने का परिचय देती है। आँखों से देखकर साहित्यकार शब्दों के माध्यम से अपनी भावनाओं को मिलता है। इससे दृष्टि संवेदना का अनुभव होता है। किसी वस्तु के स्पर्श से मन में होने वाली अनुभूति को हम स्पर्श संवेदना कह सकते हैं। उसी भाँति स्वाद, घ्राण, संवेदनाएँ भी मनुष्य के वैचारिक वातावरण को स्पष्ट करती है। समाज में घटित नयी-नयी घटनाओं को देखकर मनुष्य आकर्षित होता है। साहित्यकार उन्हीं घटनाओं को अपनी संवेदन शैली से समझकर साहित्य की रचना करता है। इसलिए कहते हैं कि मनुष्य तथा संवेदना इन दोनों का आपस में बड़ा गहरा रिश्ता है। संवेदनशील मनुष्य अपनी वैचारिकता को स्पष्ट करने के लिए साहित्य का आधार लेता है। सामान्य जनता एवं साहित्यकार इन दोनों में का मुख्य अंतर शायद यही संवेदनशीलता है। साहित्यकार की विभिन्न भावनाएँ लेखन के जरिए बाहर आती है। लेखक की यही भावनाएँ पाठक वर्ग को समझाती हैं कि वह संवेदनाओं से पूर्ण व्यक्ति है।

3.1.1 संवेदना का अर्थ

संवेदना मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय में निर्माण होने वाला भाव है। मनुष्य की भावनाओं की कोई सीमा नहीं। जहाँ तक मनुष्य के विचार जा सकते हैं, वहाँ तक मनुष्य की संवेदना का आकलन किया जा सकता है। संवेदना मनुष्य को स्थिति, परिस्थिति तथा घटनाओं से जोड़ने में मदद करती है। संवेदना का विचार बहुत विस्तृत है। संवेदना को मनुष्य अपने भीतरी मन से महसूस करता है। संवेदना का महत्व मनुष्य जीवन में बहुत अधिक है।

मनुष्य की एकाग्र बुद्धि को समझने में संवेदना मदद करती है। पृथ्वी के प्रत्येक क्षण में संवेदना मौजूद होती है। छोटे बच्चे को भी अगर प्यार से पास बुलाया जाए वह प्रेम संवेदना है। संवेदना की अभिव्यक्ति बहुत विस्तृत है। संवेदना का संबंध सीधे-सीधे मन तक पहुँचता है। इसीलिए संवेदना को मनुष्य जीवन का मुख्य अस्त्र मानते हैं। संवेदना मनुष्य की परिकल्पनाओं का आधार है। मनुष्य के जीवन में प्रत्येक क्षण उसे कुछ-न-कुछ सीखाता है। यही सब संवेदनाओं से भरपूर होते हैं। संवेदना मनुष्य का विचार है, जिससे मनुष्य की प्रत्येक घटना अवलंबित होती है। संवेदनाओं को परिस्थिति से जोड़ा जाए तो प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। वह मनुष्य की मानसिक स्थिति होती है। जिससे मनुष्य को ज्ञात होता है। वह जो कर रहा है वह सही है या गलत है। संवेदना शब्द का अंग्रेजी अर्थ समझा जा सकता है सनसेशन, फिल, सिमपथी, कनडोलेन्स आदि। इसका अर्थ स्पष्ट होता है कि संवेदना एक ऐसी भावना है जिसे मनुष्य महसूस करता है। महसूस करना अर्थात हृदय से भावना का निर्माण होना। संवेदना मानवीय हृदय में तैयार होने वाली वह प्रक्रिया है, जिससे मनुष्य स्वयं को पूर्ण मानता है क्योंकि भावनाएँ निर्माण तो मनुष्य में ही होती है, पत्थरों में नहीं। इससे स्पष्ट है कि संवेदना और मनुष्य एक ही है। दोनों का जन्म व मृत्यु एक ही साथ तय होता है। संसार में जितने व्यक्ति हैं, सबकी अपनी एक भावना अपने एक विचार होते हैं, मनुष्य के यही विचार संवेदना है। संवेदना का निर्माण होने के लिए मनुष्य अंगों की आवश्यकता है। इसलिए संवेदना ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न हुई भावना है ऐसा भी कहा जाता है। संवेदना मनुष्य को स्वयं से मिलाने का कार्य करती है। संवेदनहीन मनुष्य के भीतर उत्पन्न होने वाली भावना को भी संवेदना ही कहेंगे। जितने मनुष्य उतनी संस्कृति उतने विचार एक दूसरे का मेल कहीं नहीं होता। उसी तरह संवेदना भी प्रत्येक मनुष्य की भिन्न होती है। मनुष्य मस्तिष्क के भीतर बहुत सी कल्पनाएँ दौड़ती रहती हैं। दौड़ती कल्पनाओं स्थिरता संवेदना देती है। संवेदना उन कल्पनाओं को जो मस्तिष्क में तैयार हुई, उसे हृदय तक पहुँचाने का कार्य करती है। मनुष्य जीता है आशा-

आकांक्षाओं पर, यही आशा संवेदना का स्वरूप लेकर मनुष्य को प्रेरित करती है वह आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति प्रदान करने के लिए तथा उसे संपन्न बनाने के लिए। संवेदना का अर्थ समझने की मनुष्य को आवश्यकता है। क्योंकि संवेदना मनुष्य के भीतर आत्मा का काम करती है। आत्मा जो शरीर से कभी अलग नहीं हो सकती। वैसे ही संवेदना भी मनुष्य से कभी अलग नहीं हो सकती। संवेदना मूल्य मनुष्य जगत सर्वाधिक है, इसी से कहते हैं कि यह व्यक्ति क्रूर है, यह व्यक्ति अच्छा है, यह बुरा है, यह कंजूस है। यह सब संवेदना का खेल है। जो मनुष्य से खिलवाती है। मनुष्य का व्यवहार भी उसकी संवेदना ही है। किसी के मन को जानना है तो उसका व्यवहार पता होना चाहिए। व्यवहार अर्थात मनुष्य की मानसिकता है। मनुष्य की सोचने व विचार करने की शक्ति ही मनुष्य के भीतर का व्यवहार है। जिसे संवेदना अपने अंदर समाविष्ट कर लेती है। संवेदना का अर्थ प्रत्येक व्यक्ति अपने मतानुसार बताना चाहता है। संवेदना को समझने का यह मेरा तरीका है जिसे मैं इतना ही समझ पायी हूँ। संवेदना को पूर्ण बनाते हैं उसके सारे भाव, मानवीय सार तथा साहित्यिक पहलू। साहित्य के आधार पर संवेदना को समझना मतलब सागर में छलांग मारने जैसा होगा। जैसे सागर का कोई अंत नहीं, वैसे ही संवेदना का भी कोई अंत नहीं। संवेदना प्रचंड आकार वाली स्मृति है। जिसे मनुष्य अपने भीतर ही तैयार कर लेता है। संवेदना मनुष्य का पूर्ण अर्थ है।

3.1.2 संवेदना का स्वरूप

मनुष्य को संवेदनशील प्राणी कहा जाता है। संवेदनशीलता का एक अर्थ विचारशीलता भी कह सकते हैं। अर्थात मनुष्य विचार करने वाला प्राणी है। यह विचार विभिन्न क्षेत्र, परिवार, जगह या परिवेश से निर्माण हुए होते हैं। प्रत्येक पक्ष का अपना एक वर्चस्व होता है। वैसे ही संवेदना का वर्चस्व भी मनुष्य जीवन में है। संवेदना का निर्माण होना विभिन्न घटनाओं पर निर्भर होता है। आनंद की संवेदना, दुख की संवेदना, प्रेम की संवेदना, घृणा की संवेदना, अहंकार की संवेदना, राष्ट्रीय संवेदना, प्राकृतिक संवेदना आदि संवेदनाओं

को विविध स्तरों पर देख सकते हैं। यही विविध भाव विविधता का निर्माण करते हैं। संवेदना का स्वरूप मनुष्य की क्रियाओं पर अवलंबित होता है। मनुष्य जिस प्रकार की क्रिया करता है उस प्रकार के भाव या संवेदना का निर्माण होता है। संवेदना को मनुष्य की मानसिकता से जोड़ा जाता है। मनुष्य समाज में रहता है। समाज का प्रत्येक घटक मनुष्य के जीवन का एक भाग होता है। यह सभी भागों में संकलित संवेदना होती है। सामाजिक स्तर पर होने वाली मुठभेड़, आर्थिक स्थिति, राजनैतिक पहलू, सांस्कृतिक दृष्टिकोण आदि से जब संवेदना का मिलन होता है तब उसे सामाजिक संवेदना, आर्थिक संवेदना, राजनीतिक संवेदना, सांस्कृतिक संवेदना आदि कहा जाएगा। संवेदनाओं को समझने के लिए मानवीय स्तर बनाए गये। जिससे मनुष्य के कण-कण से संवेदना जुड़ पाती है। मनुष्य तथा संवेदना का यही जुड़ाव संवेदना के स्वरूप को बयान करता है। मनुष्य मस्तिष्क में संवेदनाओं के विविध स्तरों को बनाया गया है। या यूँ कहें यह मानवीय संवेदना के वह स्तर है जिसमें मनुष्य पूर्ण रूप से समाविष्ट होता है। मानवीय संवेदना के ये स्तर हैं तनाव, अलगाव, परिवर्तन, शील, आश्चर्य, हंसना, क्षमा, संत्रास, ऊब, शांति, उपेक्षा, भक्ति, आदर, सम्मान, चिढ़ना, स्मरण, प्रेम आदि भाव जो मनुष्य तन-मन से उत्पन्न होते हैं। संवेदना की संकल्पना बहुत विशिष्ट है जो मनुष्य को तथा उसके मस्तिष्क को एकाग्र करने का हमेशा प्रयत्न करती रहती है। संवेदना की परिकल्पना करना मुख्य हो जाता है जब मनुष्य किसी भाव में बंध जाता है। संवेदना का विचार भी बहुत बड़ा है। जिस मन से वह विचार बाहर आते हैं , उस व्यक्ति का व्यक्तित्व बाहर आता है। अर्थात कोई गुस्सैल भाव वाले होते हैं। कोई हंसमुख होते हैं। ऐसे ही संवेदना उस व्यक्ति का मूल परिचय दिखाने में मदद करती है। संवेदना का भाव सबमें बसता है। इसीलिए उसे समझ पाना आसान बन जाता है। संवेदना की मुख्यता तब बढ़ जाती है जब वह मनुष्य के खरे रूप से समाज को मिलवाती है। संवेदना मन की हर जटिलता को सुधारती है। मनुष्य के भीतर कितनी भी कठिनाइयों का पहाड़ हो, संवेदना उसे समझने का प्रयास करती

है। संवेदना का यही प्रयास मानवतावाद का निर्माण करता है। संवेदना कण-कण का एहसास है जिसे मनुष्य अनुभव करता है। यह अनुभव उसके हृदय का एक भास है जिससे वह सब कुछ सोच सकता है। मनुष्य की धारणा है कि वह सर्वश्रेष्ठ एवं बुद्धि के स्तर पर सबसे तेज है। यह ज्ञान जो मनुष्य स्वयं के बारे में सोच रहा है। यह सोच भी संवेदना की ही देन है। अर्थात संवेदना ही स्पष्ट करती है कि मनुष्य अपने रास्ते पर सही है या गलत। उसकी धारणा उसकी मन:स्थिति पूर्ण रूप से अवलंबित होती है संवेदना के प्रभाव पर। कौन सा व्यक्ति कितना संवेदनशील है यह मनुष्य आसानी से समझ सकता है। संवेदना का स्वरूप व्यापक है। उसकी सहनशीलता का श्रेय भी बहुत बड़ा है। संवेदना अपने स्थान पर हमेशा सही मानी गयी है। संवेदना का उपयोग बलात्मक नहीं बल्कि विचारात्मक है। इससे समझ सकते हैं कि संवेदना ही सर्वस्व है। मनुष्य के रग-रग से संवेदना का मिलन निश्चित है। इसी वजह से मानवीय विविध स्तरों पर संवेदनाओं को समझाया जाता है। संवेदना बदलना या न बदलना यह कह नहीं सकते। क्योंकि वह एक भाव है, जिसे मनुष्य स्पर्श नहीं कर सकता। परंतु उसी में अपना सारा जीवन व्यतीत करता है।

3.1.3 संवेदना की परिभाषा

संवेदना के प्रति अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। अपनी एक विशिष्ट परिभाषा दी है उनमें से कुछ विद्वानों के मत तथा उनकी परिभाषाएँ-

1. "**रसेल** के अनुसार संवेदना की परिभाषाएँ इस प्रकार है -
   - वे सब जिनका कारण भौतिक हों और प्रभाव मानसिक हो, उन सबको हम संवेदनाओं के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।
   - हमारी बोधवृत्ति (perception) के स्मृति रहित (Non-memoric), तत्व (element) संवेदनाएँ हैं।

- मानसिक जगत और भौतिक जगत जहाँ एक-दूसरे से मिलते हैं, वहाँ संवेदनाएँ होती हैं।"[1]

2. डेविड ह्यूम के अनुसार "हमारा हर विचार (Idea) हमारा किसी-न-किसी पूर्व भाव संस्कार मात्र है। जो लोग यह कहेंगे कि यह तर्क सर्वत्र सत्य अथवा निरपवाद नहीं है उनसे खंडन के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऐसा एक भी उदाहरण प्रस्तुत करें जो यह निर्दिष्ट करे कि हमारे विचार (Idea) पूर्वानुभूति से (अर्थात संस्कारों से) प्रादुर्भूत नहीं है। उस स्थिति में यह भार हम पर होगा कि अपने सिद्धांत को दृढ़ करने के लिए हम ऐसे संस्कार (Impression) अथवा सजीव प्रत्यक्ष उपस्थित करे जिनसे कि उनका निर्माण हुआ हो।"[2]

3. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 "संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह-रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है, जिसमें हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है। यथा- हरी वस्तु हरे रंग को देखने की संवेदना मात्र है। उत्तेजना का हमारे मन-मस्तिष्क तथा नाड़ी तंतुओं द्वारा प्रभाव पड़ने पर ही हमें उसकी संवेदना होती है।

- संवेदना हमारे मन की चेतना की वह कूटस्थ अवस्था है जिसमें हमें विश्व की वस्तु विशेष का बोध न होकर उसके गुणों का बोध होता है।"[3]

4. श्री डी.वाई. देशपांडे के अनुसार- "मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि थकान, ऐंठन, दांत का दर्द और ऊबकाई की संवेदनाएँ तथा विशेष-विषय इंद्रियों के संवेदन- एक ही जाति की दो उपजातियां हैं। दूसरे शब्दों में जैसे थकान, ऐंठन, दांत का दर्द, ऊबकाई आदि अनुभव है अथवा उसकी अनुभूति होती है वैसे ही विशेष-विषय इंद्रियों के संवेदन भी अनुभव हैं अथवा उनके घटने की अनुभूति होती है।"[4]

---

[1] भाव उद्वेग और संवेदना - राजमल बोरा, पृ.सं. 116

[2] भाव उद्वेग और संवेदना - राजमल बोरा, पृ.सं. 120

[3] अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प - डॉ. नीरज शर्मा, पृ.सं. 29

[4] भाव उद्वेग और संवेदना - राजमल बोरा, पृ.सं. 8

5. श्री सुरेश कुमार थोरात के अनुसार - "थकान की संवेदना तथा ठंडक की संवेदना या मिठास की संवेदना का तार्किक व्यापार एक स्तर पर समान (Parallel) है अर्थात थकान, ठंडक, मिठास अनुभूतियाँ ही हैं लेकिन अन्य स्तर पर थकान की संवेदना तथा ठंडक की संवेदना का तार्किक व्यापार असमान (unparallel) है। थकान की संवेदना प्रत्यक्षगत संवेदना नहीं है जबकि मिठास की संवेदना या ठंडा की संवेदना प्रत्यक्षगत संवेदनाएँ हैं।"[1]

6. डॉ. नामवर सिंह के अनुसार - "संवेदना एक नैतिक दायित्व है, जिसके अनुसार आज के उपेक्षितों और कल के अपेक्षितों के लिए साहित्य रचने की आवश्यकता है।"[2]

7. मानक हिन्दी कोश खंड-5 - "संवेदना-स्त्री. (सं. संवेदन+टाप) 1. मन में होने वाला अनुभव या बोध/अनुभूति। 2. किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दु:ख। किसी की वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना सहानुभूति (सिम्पेथी) 3. उक्त प्रकार का दु:ख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया या भाव (कन्डोलेन्स)।"[3]

3.1.4 संवेदना की विशेषता

मनुष्य के हृदय पटल की पहली अनुभूति संवेदना होती है। मनुष्य जीवन में संवेदना की विशेषता महत्वपूर्ण है। क्योंकि संवेदना मनुष्य की परछाई या यूँ कहें छाया है। मनुष्य और छाया अलग नहीं हो सकते। उसी तरह संवेदना को मनुष्य से अलग देखा नहीं जा सकता है। संवेदना विशेष है। क्योंकि संवेदना प्रत्येक भाव का नियम निर्धारित करती है। संवेदना का महत्व मनुष्य जीवन में जितना है उतना ही समाज में संवेदना का भाव मुख्य है। देश में हो रही प्रत्येक घटना के पीछे कोई-न-कोई कारण तो जरूर होता है। विशेष उस घटना की अनुभूति संवेदना मनुष्य से करवाती है। समाज विकास के बारे में सोचते हुए जैसे समाज को ध्यान में

---

[1] भाव उद्वेग और संवेदना - राजमल बोरा, पृ.सं. 9

[2] कहानी नयी कहानी - डॉ. नामवर सिंह, पृ.सं. 50

[3] मानक हिन्दी कोश - खंड 5 - सं. रामचंद्र वर्मा, पृ.सं. 237

रखना चाहिए उसी प्रकार मनुष्य जीवन की जब बात चलती है तब वहाँ संवेदना का मुख्य चरण दिखाई देता है। संवेदनाओं को मानवीय दृष्टिकोण से देखा जाता है। इसीलिए साहित्यकारों की रचित रचनाओं में विशिष्ट अनुभूति का प्रमाण मिल सकता है। संवेदना से भरे लेखन की पुष्टि पाठक वर्ग पढ़कर तुरंत कर सकता है। संवेदना की विशेषता मनुष्य जीवन के साथ ही साथ साहित्य जगत में भी विशेष है। संवेदना का आकलन प्रत्येक रचनाकार तथा प्रत्येक मनुष्य कर पाता है। अपनी भावनाएँ तथा अपनी विशिष्टता को समझ पाता है। संवेदना का कोई विशिष्ट मापदंड नहीं जिससे कहा जाए कि संवेदना अच्छी है या बुरी। संवेदना सर्वत्र प्रभावित होती है। बिना संवेदना मनुष्य जीवन ही नहीं है। तो हम कैसे संवेदनाओं को कम या अधिक स्तर पर देख सकते हैं। संवेदना की विशिष्टता है कि भावों से पूर्ण विचारों की भावना हमें प्रदान करता है। संवेदना क्षण-क्षण बदल सकती है। पल में रोना या पल में हँसना यह संवेदना का ही भाव है। जो मस्तिष्क से तैयार होकर हृदय तक पहुँचता है। संवेदना जीवन की ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिस पर मनुष्य का जीवन निर्भर होकर बैठा है। मनुष्य और मशीन दोनों में अंतर देखा जाए तो मुख्य अंतर तो संवेदना ही होगी। क्योंकि बिना प्राण साधनों के सहारे मशीनें चल फिर तो सकती है परंतु वैचारिक स्तर पर देखा जाए तो उनमें संवेदनाएं नहीं होती हैं। इस प्रकार देखा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य संवेदनाओं से भरपूर है। जीवन के अंदर बहुत सी भावनाओं का कंपन एक ही बार भी हो सकता है। जिससे मनुष्य के टूटने की भी आशंका हो सकती है। संवेदना की विशेषता प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक मनुष्य के भीतर होती है। उसे अलग करके देखा नहीं जा सकता। मनुष्य कौन सी सीमा तक विचार कर सकता है वहाँ तक संवेदना संचार कर लेती है। मनुष्य के बिना संवेदना नहीं, संवेदना के बिना मनुष्य नहीं। संवेदना में इतनी ताकत होती है कि अपने विभिन्न भावों से मनुष्य को अवगत करा सकती है कि क्या सच है और क्या झूठ है। क्या गलत है और क्या सही है। मनुष्य-मनुष्य का बैरी जब बनता है तब उन दोनों के विचार आपस में मेल ना खाते हो। एक धारा का व्यक्ति

हमेशा दोस्त बनकर रहते हैं। और जिनके विचार नहीं मिलते वह अलग-अलग रहते हैं। संवेदना मनुष्य का ज्ञान करवाती है कि कौन-सा रास्ता सही और कौन-सा रास्ता गलत। क्योंकि संवेदना मनुष्य की वह मानसिक प्रक्रिया है। जिसमें मनुष्य के सभी भावोगति वेग लेकर आगे ही आगे बढ़ते जाते हैं। संवेदना की विशेषता प्रत्येक जगह होती है। मानवीय जीवन हो सामाजिक जीवन, संवेदना अपना काम दोनों दिशाओं में करती है। संवेदना की विशेषता प्रत्येक जगह है घर, परिवार, समाज, राजनीति, शैक्षणिक, बौद्धिक, प्रत्येक स्थल जहाँ मनुष्य है वहाँ संवेदना की विशेषता जरूर पायी जाएगी। संवेदना मन का प्रमुख भाव है जो सबको एक दूसरे से जोड़ता भी है और सबको एक दूसरे से मिलता मिलाता भी है। संवेदना विशिष्ट है, विशेष है। संवेदना मनुष्य का प्रतिबिंब है जिससे वह इस पृथ्वी पर अपनी यात्रा निर्धारित करती है।

3.2 संवेदना का साहित्यिक महत्व

मन के अंदर उत्पन्न होती भावनाओं की उत्पत्ति संवेदना है। भावनाओं की अनुभूति चेतन मन से होती है। अर्थात संवेदना भी चेतना का एक भाग है। मनुष्य की चेतना और संवेदना दोनों का स्वरूप साथ ही साथ चलता है। साहित्यकार अपनी रचना का प्रारंभ करते समय साहित्यकार के मन-मस्तिष्क में अनेक भावों का संकलन बनता जाता है। साहित्यकार की रचना रचते समय की मनस्थिति को पाठक रचना में उत्पन्न हुई संवेदना से समझ सकता है। इसीलिए साहित्य में संवेदना का महत्व सर्वाधिक है। कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक आदि सभी मनुष्य जीवन का भाग है। यथार्थ के धरातल पर रचे जाने वाला साहित्य संवेदनापूर्ण होता है। उसके प्रत्येक शब्द समक्ष व्यक्ति को कुछ-न-कुछ संदेश देते हैं। अथवा पाठक को कुछ कहना चाहते हैं। संवेदना का सीधा परिचय लेखक की मनोवृत्ति से हो पाता है। जैसे स्त्री विमर्श के कुछ रचनाओं का पठन करने के पश्चात स्त्री की समाज में स्थिति उसकी दशा और उसके व्यक्तित्व के बारे में समझ सकते हैं। महाश्वेता देवी की कहानियों में

स्त्री के दोनों रूपों का चित्रण रेखांकित है। महाश्वेता देवी के पात्र आक्रोश से अपना अधिकार पाने वाले भी हैं और समाज में चल रही विडम्बना में घिरी हुई स्त्री का चित्रण भी है। 'डायन' कहानी जो स्त्री के प्रति अवहेलना का प्रतीक है। समाज मनुष्य को डायन का नाम देकर अपनों से दूर कर डालता है। दलित संवेदना पर आधारित साहित्य दलितों की मनस्थिति को बयान करता है। प्राचीन युग से वर्तमान समय तक दलितों पर हो रहे अन्याय, उनकी त्रासदी तथा दलित चेतना का ग्रहण कर रहे समाज का चित्रण दलित साहित्य में देख सकते हैं। जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सुशीला टाकभौरे, रत्नकुमार सांभरिया ऐसे बहुत से साहित्यकारों ने अपने मन की बात रखी है। जिससे दलित समाज का प्रत्यक्ष चित्रण पाठक वर्ग समझ सकता है। 'घुसपैठिए', 'सलाम', 'तलाश' जैसी कहानियों ने साहित्य जगत में खलबली मचा दी है। क्योंकि दलित समाज सह रहा इतनी त्रासदी को उसे जवाब भी जरूर ही देना ही होगा ना। संवेदना का महत्व प्रत्येक क्षण प्रत्येक जगह अवश्य होता है। इसीलिए कहानियाँ भाव यथार्थ को जागृत करती हैं। संवेदना का स्वरूप प्रत्येक पहलू में समझा गया है। वृद्धावस्था का साहित्य आज मनुष्य की भावनाओं को समझा रहा कि प्रत्येक वयोवृद्ध मनुष्य अपने-अपने तरह से जी सकता है। वृद्ध संवेदना मन को विचलित सी करती है। वृद्धावस्था पर चित्रित कहानियों में वृद्धों को होती परेशानी, अब जीवन संध्या के आखिरी छोर पर हो रही है। मनुष्य को मनुष्य बोझ बनता जा रहा है इसीलिए वृद्धाश्रम आज सब तरफ भरे से दिखाई देते हैं। वृद्ध साहित्य रचने की जरूरत क्यों आई होगी यह वृद्ध साहित्य पढ़ने के पश्चात समझ में आता है। वृद्ध संवेदना का संबंध सीधे हृदय से है। अपने जीवन के आखिरी पड़ाव में इतनी यातना सह रहा यह वर्ग अपनी अनुभूति प्रकट रहा है। यह वेदना 'संघर्ष' कहानी की नानी में देख सकते हैं। 'प्रेतकामना' कहानी के पिता में देख सकते हैं। साहित्य सच पर आधारित है। अगर सच इतना भयावह होता है तो सच से तो झूठ अच्छा होगा। किन्नर साहित्य पर इक्कीसवीं सदी में बहुत चर्चा हो रही है। आज यह समुदाय अपने अधिकारों के लिए किस

तरह लड़ रहा है और अपना एक मुकाम पा चुका है। यह सब साहित्य के माध्यम से पाठक जान पाता है। किन्नर संवेदना की व्यथा ही अलग है। स्त्री किन्नर हो या पुरुष किन्नर दोनों ही अपने-अपने स्तर पर प्रयास कर रहे हैं। किन्नरों को आज शिक्षा का सहारा मिल गया है। इसीलिए अपने अधिकारों की पहचान वह कर रहे हैं। संवेदना प्रत्येक वस्तु में महसूस होती है। संवेदना मनुष्य की मनस्थिति को समझाने का प्रयत्न करती है। किन्नर की मनस्थिति भी कितनी बेबस बना दी है समाज ने वह पाठक साहित्य पढ़ने के बाद समझ सकता है। सूरज बडत्या की कहानी 'कबीरन' ने इसका पूर्ण स्पष्टीकरण मिल जाता है। किन-किन बाधाओं को पीछे छोड़कर आज वह आगे बढ़ने की सोच रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक नयी सोच से आगे बढ़ा है। साहित्य के नये-नये पहलू से पाठक रूबरू हो पाया है। साहित्य में संवेदना का महत्व प्रत्येक स्तर पर दिखाया गया है। मनुष्य की मानसिक वृत्ति उसकी परिकल्पना का एकत्रीकरण साहित्य में किया जाता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में समाज के प्रत्येक घटक को पाया जाता है। यह घटक समय का परिचय देता है। अर्थात किस समय और कौन से विचारों से कहानी की रचना की गई होगी इसका पता चलता है। संवेदना का साहित्यिक स्वरूप विस्तृत है। समाज में रोजमर्रा का व्यवहार बहुत बड़ा है। इसीलिए साहित्य में देखा जा सकता है कि किस परिवेश में रचना का काम किया गया होगा। उदय प्रकाश की कहानियाँ पाठक को समाज की दूसरी दुनिया में ले जाती हैं। उदय प्रकाश की भावनाओं को उनकी कहानी के माध्यम से अच्छी तरह समझ सकते हैं। 'पॉल गोमरा का स्कूटर' एक ऐसी अभिव्यक्ति है जो मनुष्य के अंतर्मन को बयान करती है। 'जिंदगी का सफर' लेखक ने यहाँ एक स्कूटर से जोड़ा है। जिस तरह स्कूटर रास्ते पर अपने आप नहीं चल सकती उसे दो हाथों की आवश्यकता लगती है, उसी प्रकार मनुष्य की गाड़ी भी अकेले सफर नहीं कर सकती। उसे भी अपनों की आवश्यकता है। जया जादवानी की कहानी 'अंदर के पानियों में सपना कांपता है' कहानी कल्पनाओं के परे है। लेखिका की

संवेदना को यहाँ पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। कितनी आत्मीयता का अनुभव है यहाँ। एक स्त्री का माँ बनना विश्व का सबसे अधिक सुखद क्षण है। उन क्षणों को लेखिका ने अपने सटीक शब्दजालों से रेखांकित किया है। माँ बनने की यह विधा कितनी अनोखी है यह हम जान सकते हैं। माँ की भावना हमेशा सर्वश्रेष्ठ होती है। वह पहला स्पर्श जब माँ की गोद में बच्चा आता है वह जगत का सर्वसुख एकत्रित कर माँ की आँखों में बस जाता है। क्षमा शर्मा की कहानियाँ आज के समाज की स्त्री जो आत्मनिर्भर है। अपना भला-बुरा स्वयं सोच सकती है। अपनी आप बीती बर्ताव अपने विचारों को साझा करती है। कहानी यथार्थ का वह चित्रण है जिसमें पाठक अपने आपको भूल जाता है। और कहानी की दुनिया में चला जाता है। यह सब कुछ कहानी की संवेदना की वजह से मुमकीन हो जाता है। रूपसिंह राठौड़ का कहानी संग्रह 'कोई है' भारत का एक कोना जहाँ भारत की संस्कृति की पहचान राजस्थानी नाम से होती है, उसका चित्रण देखा जा सकता है। उनकी विशिष्ट भाषा कहानी को आकर्षक बना देती है। उनकी छोटी-छोटी कहानियाँ समाज को बड़ा संदेश देकर चली जाती है। कहानियाँ के भाव सब चीजों से पूर्ण है। कहानी में सभी घटकों का संकलन है। स्त्री-पुरुष, बच्चे, पर्यावरण सभी का संकलन इस कहानी संग्रह में मिल जाता है। नासिरा शर्मा की कहानियाँ स्त्री तथा पुरुष के संबंधों पर चित्रित है। स्त्री तथा पुरुष एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं। जो एक दूसरे के सिवाय आगे बढ़ नहीं सकते हैं। नासिरा शर्मा की कहानियों में मार्मिक भाव होते हैं जो स्त्री के भीतर स्त्रीत्व का निर्माण करते हैं। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक ऐसी बहुत सी विविधताओं से पूर्ण है जहाँ कहानियाँ जन्म देती हैं। कहानी यथार्थ की होती है। वहाँ संवेदनाओं का चित्रण प्रत्येक क्षण से व्यतीत होता है। संवेदनाओं को समझना ही पाठक का मूल कार्य बन जाता है। जिस मानसिकता से कहानीकार अपनी रचना को आकार देता है, वह मौलिक है। क्योंकि समाज के प्रति अपनी क्या सोच है, और लेखक को किस रूप में उसे पाठक के सामने प्रस्तुत करना है, यह सब कुछ सोचकर ही कहानीकार कहानी लिखता है।

संवेदना साहित्य में महत्वपूर्ण बन जाती है, क्योंकि साहित्य की रचना ही हम संवेदना के बल पर करते हैं। संवेदना से लेखक की मानसिकता को बयान करने में मदद करती है। साहित्य की यह संवेदना लेखक की मानसिकता को पाठक के समक्ष लाकर रख देती है।

3.3 मानवीय संवेदना के विविध स्तर

संवेदना मन का एहसास है। वह एहसास जो हमें अच्छे और बुरे से अवगत कराता है। संवेदना का भाव मनुष्य के अंतर्भाव में से उत्पन्न होता है। मानव की प्रत्येक क्रिया के पीछे कुछ-न-कुछ भाव अवश्य होते हैं। मनुष्य की भावनाएं मनुष्य के हाथ में नहीं होती। वह परिस्थितिजन्य होती है। जिस प्रकार का परिवेश या स्थिति होती है, उसी प्रकार की भावना वहाँ उत्पन्न होती है। साहित्यिक नजरिये से मानवीय संवेदनाओं को अगर देखा जाए तो वह असाहित्यकार मनुष्य से भिन्न होती है। साहित्यकार अपने विचारों को दूर-दूर तक लेकर जा सकता है। यह एक प्रकार से साहित्यकार की शक्ति है जो ऐसा कह सकते हैं। साहित्यकार का विचार आकाश के पार भी जा सकता है। अपनी कल्पनाओं से वह एक अलग ही दुनिया का निर्माण कर सकता है। यही वह गुण जो सामान्य मनुष्य और एक साहित्यकार के बीच अंतर का निर्माण करता है। संवेदना एक प्रकार का शस्त्र है जिसे साहित्यकार अपने साहित्य में उपयोग करता है। साहित्यकार अपनी विभिन्न विचारधाराओं को एकसूत्र में बांधता है। कहानी लेखन का कार्य भी कहानीकार अपने विचारों के सूत्रों को एक जगह बांधकर उन्हें पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। जिससे पाठक तथा लेखक दोनों के विचारों का आदान-प्रदान हो सकता है। कहानीकार की सभी बातें सही होती है, यह पाठक नहीं मान सकता। क्योंकि साहित्य जगत की संवेदना और सामान्य मनुष्य की संवेदना दोनों में बहुत अंतर है। इसी से पता चलता है कि सबके विचार और सबकी संवेदनाएँ एक जैसी नहीं होती। मानवीय स्तर पर अगर संवेदना का विचार किया जाए तो मनुष्य विविध भावों का भण्डार है। क्षण-प्रतिक्षण में उसके भाव बदलते रहते हैं। यह मानवीय प्रकृति है जिसे मनुष्य कभी बदल नहीं

सकता। प्रेम संवेदना मनुष्य का सबसे अच्छा भाव है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है। प्रेम वात्सल्य है। पति से प्रेम, माँ से प्रेम, बेटी से प्रेम, पिता से प्रेम सबकी प्रेम भावना अलग होती है। सुखात्मक संवेदनाअर्थात ऐसी अभिव्यक्ति जिससे मन में शांति जैसा भाव का निर्माण हो। जो अंतर्मन में सुख की प्रेरणा का निर्माण करे। सुखात्मक भाव मन की बेचैनी को कम करके उसे एकाग्र करता है। दुखात्मक संवेदना मनुष्य के हृदय को ठेस पहुँचाने वाली होती है। किसी भी वस्तु या घटना से मन को होने वाला दुखद एहसास है। करुणात्मक संवेदना करुणा भाव को चित्रित करती है। करुणा भाव जो सजीव व निर्जीव दोनों घटकों के लिए निर्माण होने वाला भाव है। अहंकारात्मक संवेदना मनुष्य के अहंकार को चित्रित करती है। किसी वस्तु का गर्व या उस पर अहंकार का भाव सामान्य जीवन के रोजमर्रा की जिंदगी में अच्छा नहीं माना जाता। घृणात्मक संवेदना मनुष्य के भीतर विरोधी भावों का निर्माण करती है। जिससे अच्छी वस्तुएं भी बुरी लगने लगती हैं। प्राकृतिक संवेदना के अंतर्गत मनुष्य अपनी प्रकृति के बारे में अर्थात नैसर्गिक वस्तुओं के संबंध में अपने विचार प्रकट करता है। यह विचार प्रकृति की सुंदरता तथा उसकी कुरुपता दोनों का संबंध बताती है। राष्ट्रीय संवेदना अपने राष्ट्र के प्रति अपनी क्या विचारधाराएं हैं। हम अपने राष्ट्र को कैसे और कहाँ देखते हैं। इसका विवरण इसके अंतर्गत दिया जाता है। मानवीय संवेदना पूर्ण विश्व को मनुष्य से जोड़ पाती है। विश्व में चल रही सभी छोटी-बड़ी घटनाएं संबंध न चाहते हुए भी मनुष्य से ही जुड़ जाता है। विश्व के प्रति मनुष्य का यही जुड़ाव उसकी संवेदना की विविधता है। मानवीय संवेदना मनुष्य नामक पुस्तक को विश्व के सामने खोलकर पढ़ सकती है।

3.3.1 प्रेम संवेदना

सबसे नजदीक आत्मीयता की भावना प्रेम है। प्रेम मनुष्य को एक-दूसरे से आदर करवाना सिखाता है। प्रेम की अभिव्यक्ति प्रत्येक मनुष्य के अंदर होती है। जिससे प्रेम भावना एक पवित्र भावना है। जिससे मनुष्य एक-दूसरे से त्वरित ही जुड़ पाता है। प्रेम प्रत्येक क्षण-क्षण

में समाविष्ट होता है। यह प्रेम किसी से भी हो सकता है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, दोस्त-सहेली आदि। यह भावना मन को विचलित करने की बजाय उसमें एक स्थिरता का निर्माण करवाती है। प्रेम भावना का अंतरजाल बड़ा विस्तृत है जिससे मनुष्य कभी छूट नहीं पाता है। प्रेम संवेदना के संदर्भ में कहानीकार भी अपने विचार रखते हैं। प्रेम संवेदना से रचा साहित्य पाठक वर्ग को एक सुखद भावना का अनुभव कराता है। यह भावना किसी भी विषय को लेकर बनाई गई होती है। क्षमा शर्मा की कहानी 'न्यूड का बच्चा' प्रेम पर आधारित कहानी है। जिसमें प्रत्येक पात्र के अपने अपने विचार प्रेम को लेकर है। कहानी की नायिका वीनू को एक लड़के से अर्थात रणवीर से प्यार हुआ है। परंतु वीनू की माँ को आशंका है रणवीर पर कि वह उसकी बेटी को कभी सुखी नहीं रखा पायेगा। रणवीर को बस वीनू की दौलत पर प्रेम है। वीनू से उसका कोई लेना देना नहीं। वीनू अपनी जान देने की कोशिश करके हॉस्पिटल पहुँच जाती है। माँ को डर है कि कहीं रणीवर न आ जाय- "लेकिन माँ एक पल के लिए भी वहाँ से नहीं हटी। वह एक कुशल चौकीदार की भूमिका निभा रही थी। तुम कितनी महान हो माँ। अपनी लड़की का जीवन बचाने के लिए कुछ भी कर सकती हो। वह गलत रास्ते पर न चली जाए, इसकी जानकारी पाते ही कोई भी कुर्बानी दे सकती हो। तुम धन्य हो।"[1] माँ अपने बच्चे से कभी झूठा प्रेम नहीं कर सकती। वह सदैव चाहती है कि उसके बच्चे हमेशा सही सलामत रहे। परंतु आज की पीढ़ी अपने माता-पिता को समझ नहीं पाती। और गलत राह चुनकर उस पर आगे बढ़ते जाती है। यहाँ भी ऐसी ही घटना का चित्रण किया गया है। वीनू की माँ को बस वीनू की चिंता है। उसे पता है कि अपनी बेटी ने गलत राह चुनी है। परंतु वीनू मानने को तैयार नहीं होती। और अपनी मनमर्जी करके अपनी जान खतरे में डाल देती है। प्रेम संवेदना कभी-कभी मनुष्य के हृदय को गलत राह भी दिखा देती है। यह भावना तो पवित्र है परंतु सबके विचार एक जैसे हो यह तो नहीं होगा ना। प्रेम मनुष्यता का प्रतीक है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर प्रेम की भावना

[1] नेम प्लेट - क्षमा शर्मा, पृ.सं. 31

होती तो है, परंतु उन भावनाओं में वह मनुष्य किस दिशा से देखता है, इसका जवाब किसी के पास नहीं होता। प्रेम भावना मनुष्य में आदर निर्माण करने वाली होती है, परंतु भक्षक मनुष्य की विचारणा ही अलग होती है। जिसे एक-दूसरे से जोड़ा नहीं जा सकता। प्रेम सांत्वना है जो माँ अपने बच्चे को करती है। प्रेम वह भाव है, जहाँ मनुष्यता का सही निर्माण होता है। जहाँ कोई देश, राग या अहंकार नहीं होता वहाँ प्रेम होता है। प्रेम की भावना सर्वोपरि है। प्रेम को मनुष्य से अलग किया तो नहीं जा सकता, परंतु मनुष्य की गलत मानसिकता को बदला भी नहीं जा सकता। प्रेम दो हृदयों को जोड़ती है। प्रेम वह सेतु है जो साहित्यकार एवं पाठक दोनों के भीतर प्रेम का फैलाव करती है। प्रेम सबमें बहुत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक घटक है।

3.3.2 सुखात्मक संवेदना

सुख की भावना मनुष्य के मन को शांति प्रदान करने वाली होती है। सुख का अनुभव मनुष्य के मन को आराम देने वाला सूत्र है। जिससे मनुष्य अपनी वैचारिकता का प्रदर्शन भी करता है। सुख की अनुभूति सभी तरफ सकारात्मक परिवेश का निर्माण करती है जिससे मनुष्य सुख की नदी में बहता चला जाता है। यह बहाव बहुत आगे तक चलता ही जाता है। सुखात्मक संवेदना मनुष्य की सभी आकांक्षाओं की पूर्ति पर होती है या किसी क्षणिक घटी घटना जिससे मुख पर एक कली सी खिल जाती है। उससे सुख का प्रभाव मनुष्य को पता चलता है। सुख बहुत आवश्यक हो जाता है। मनुष्य को उसकी रोजमर्रा की थकान में एक पल की खुशी उसके मुख पर लाने के लिए। अजय नावरिया की कहानी 'एस धम्म सनतनो' इसमें छोटे-छोटे बच्चे जो समाज में जातिवाद की त्रासदी में हैं। परंतु यह समाज उनकी छोटी-छोटी खुशियों को पूरा तो नहीं कर सकता, परंतु उनकी आशाएँ तोड़ने को तैयार बैठा हुआ होता है। बच्चों का सुख छोटी-छोटी चीजों से भी पूरा हो सकता है। उनकी आशाएं बहुत थोड़ी होती है। उन आशाओं को भी हम पूरा नहीं कर पाते। बस जातिवाद के नाम पर जिल्लत की जिंदगी उन्हें देते हैं। परंतु यह बच्चे अपना सुख कहीं भी ढूंढ लेते हैं- ''बस्ती से थोड़ा दूर एक नाला

था और पार खेत-ही-खेत थे। हम सब दोस्त दोपहर भर नाला टापते रहते थे। गुलेल बनाकर कबूतर-फाख्ते मारते थे। वहाँ सूखी झाड़ियाँ जलाकर उन्हें भूनकर खा जाते थे। हममें से ही एक लड़का घर से नमक और माचिस की तीलियाँ चुराकर लाता था। फिर कूड़ेदान से माचिस का खोका ढूँढ़ा जाता, आग जलाई जाती। नमक बुरककर हमें भूने माँस को खाते मेरा मन खाने को बिल्कुल न करता था।"[1] छोटी-छोटी खुशियों से अपना मन सुखी कर लेते हैं यह छोटे बच्चे। यही वह सच्ची सुखात्मक संवेदना है जहाँ अपने मन को पूर्ण तृप्ति मिलकर, मन शांत हो जाता है। सुखात्मक संवेदना का यह भाव कहानीकारों ने अपनी कहानियों में जगह-जगह चित्रित किया है। जिससे कहानी का मूल सार जैसा भी हो, बस कुछ क्षण ही सही लेकिन सुख की अनुभूति तो होती है। सुख का मूल भाव मनुष्य के मन तथा मस्ष्कि को शांत करना ही है। यह शांति की भावना किसी भी समय किसी भी वस्तु से मिल सकती है। सुख कब आयेगा या कब जायेगा यह कहना आसान नहीं होगा। प्रत्येक मनुष्य की सुख की अनुभूति अलग-अलग होती है। कौन सा मनुष्य किस तरह सोचता है, यह भी निर्भर होता है। यह निर्भरता अवलंबित होती है समय, क्षण या उस घटना पर जिस पर वह सुखात्मक की भावना को महसूस करता है। यह सुख की भावना किसी भी वस्तु या घटना पर हो सकती है। जैसे बच्चों को जंगल में लकड़ी पर मांस खाने की अनुभूति, यह सुखात्मक भावना का निर्माण करती है। यह भावनाएँ किसी भी व्यक्ति के मन में निर्माण हो सकती है। साहित्यकार को सुख मिलता है जब उसकी रचनाओं को पाठक द्वारा वाहवाही मिलती है। उसकी चर्चा साहित्य जगत में होती है। यही लेखक की सुखात्मक संवेदना है।

3.3.3 दुखात्मक संवेदना

दुख की भावना कभी किसी भी मनुष्य को नहीं भाती है। परंतु सुख व दुख साईकिल के वे दो पहिये हैं जो एक बिना एक चल ही नहीं सकते हैं। जहाँ सुख है वहाँ कभी-न-कभी

[1] पटकथा और अन्य कहानियाँ - अजय नावरिया, पृ.सं. 15

दुख भी अवश्य आता है। दुखात्मक संवेदना मन को दुखाती है। कुछ सोचने समझने की शक्ति नहीं देती है। दुखात्मक भाव कब और कैसे निर्माण होता है, यह कहना थोड़ा आसान न होगा। क्योंकि संवेदना क्षणों में बदलती रहती है। तो कैसे बताया जाए कि यह सही है या नहीं। साहित्यकारों को अपनी रचनाओं में यथार्थ चित्रण करना हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि वहाँ सत्य घटित भावों को चित्रित किया जाए। बिना दुख भाव के जीवन की पूर्ति मानना सही नहीं हो सकता। कविता की कहानी 'उलटबाँसी' ऐसे ही दुख की यातना का चित्रण है। नायिका की माँ अपने जीवन को अकेला मानती है। बेटी-बेटा सब है पूरा परिवार है। नाती-पोती है, भरा-पूरा परिवार है। परंतु वह सब अपने जीवन में व्यस्त है। किसी को समय नहीं अपनी बूढ़ी माँ के पास जाने के लिए, उससे अपने मन में चल रही विपदा को संभालता है। इसीलिए वह माँ फैसला करती है कि वह शादी करेगी। सब सुनकर हैरान होते हैं। परंतु कोई सोचता नहीं आखिर माँ ने ऐसा फैसला किया तो क्यों किया। अपर्णा जो इनकी बेटी है वह माँ के संदर्भ में कहती है- "मेरी आँखों में आँसू कौंधे थे, पलकों की ओट में मैंने उन्हें चुपके से पोंछा या किसी दूसरे मुसाफिर ने अगर देख लिया तो क्या सोचेगा? ... माँ स्वस्थ हो बस। उसके बिसरे हुए सुख, उनकी भूली हुई खुशियाँ, उससे किए गये, अपने सारे वायदे मैं लौटाऊँगी उन्हें।"[1] यहाँ बेटी अपनी माँ का दर्द समझ रही है। क्योंकि वह भी एक औरत है। अकेलापन मनुष्य को भीतर से खोखला बना देता है और उसकी मानसिकता को बदल देता है। यहाँ भी वही दुख की अनुभूति बेटी को अपनी माँ के प्रति होती है। दुख की संवेदना बड़ी डरावनी होती है। उसे कब तक झेल सकते हैं। दुखात्मक भाव के संदर्भ में कहानीकार सोचता है तो उसके सामने कहानी के ढेरों पात्र सामने आ जाते हैं। जिससे वह समझ पाता है कि आगे की क्या घटना हो सकती है। कहानीकारों के विचार बहुत दूर के होते हैं। वह अंदाजा लगा लेते हैं कि कहानी में आगे क्या भाव आ सकते हैं। दुखात्मक संवेदनाएँ परिस्थितियों को

[1] उलटबाँसी - कविता, पृ.सं. 13

देखकर समझ सकते हैं। कहानियों में चित्रित विभिन्न दुखभरी बातों का सीधा संबंध समाज से जा मिलता है। यही संबंध उन्हें भावनाओं का ज्ञान दिलाते हैं। कौन-सी भावना कब और कहाँ उत्पन्न होती है यह पाठक तो कह नहीं सकता। क्योंकि यह कहानीकार के दिमाग का खेल होता है। दुखात्मक भाव हृदय से निर्माण होने वाला भाव है। इसी वजह से यथार्थ को हम महसूस कर सकते हैं। कहानी की वेदना समझना आसान होता है जब कहानीकार ने अपने सटीक शब्दों का प्रयोग कर सही जगह सही भावना को रेखांकित किया हो।

3.3.4 करुणात्मक संवेदना

करुणा शब्द मन:शाती का स्वरूप है। करुणा भाव मनुष्य की उदारता को दर्शाता है। करुणामय व्यक्ति द्वेष, ईर्ष्या इन सबकी उलझनों में फंसा नहीं रहता। वह करुणामयी होता है। जैसे कोई ऋषि अपनी साधना में लीन होकर समाज की भलाई के बारे में सोचता है। वही करुण भाव है। करुणामयी हृदय हमेशा दूसरे के हित के बारे में सोचता रहता है। उसके मन में कभी किसी विषय को लेकर खटास निर्माण नहीं होती। वह हमेशा सत्य मार्ग का राही होता है। करुणामयी हृदय अपने-आप में समाज को आसानी से अच्छी राह दिखाने का कार्य करता है। करुणा मनुष्य की ऐसी आशा है, जिसमें व्यक्ति अपने-आप समाविष्ट होते जाता है। करुणा का भाव बहुत सरल है, जिससे मनुष्य को एकाग्र बनाने में अधिक कठिनाई नहीं होती। साहित्य जगत में करुणाभाव का यथार्थ साहित्यकारों की रचनाओं में प्रतीत होता है। सूर्यबाला की कहानी 'गौरा गुणवन्ती' में करुणा भाव या करुणा संवेदना का चित्रण जगह-जगह दिखाई देता है। दादी अपनी पोती गौरा को बहुत प्यार करती है। गौरा का स्वभाव उसकी आत्मीयता के प्रति दादी हमेशा अचंभित रहती है। एक ऐसी बच्ची जिसके माता-पिता कोई नहीं। बस दादी और भैय्या के सहारे अपना जीवन व्यतीत करती है। गौरा की मासूमियत पर हमेशा दादी को प्यार आता है। दादी हमेशा अपने मुँह से गौरा को आशीष ही देती रहती है-

"गौरा लेके उड़बौं अरे गौरा लेके पड़वौं

गौरा लेके चढ़बौं अका ऽऽऽ स ....

अझसने तपसिया के नाहीं गौरा बिआहब

बरु गौरा रहिहैं कुआँ ऽऽ र ....

(गौरी को लेकर बन-बन बिचरूँगी, आकाश पाताल थहाउँगी, पर ऐसे भुंजुगी तपसी के हाथ में उसका हाथ न दूँगी, इससे तो अच्छा है कि वह कुँवारी ही रहे।"[1]) यहाँ दादी के शब्दों में कितनी करुणा तथा प्रेम का भाव पता चलता है। दादी अपने गौरा के लिए सब कुछ अच्छा होना सोच रही है। दादी का यह भाव करुणात्मक संवेदना को दर्शाता है। करुणा भाव कहानी की मार्मिकता को चित्रित करता है। भावनाओं का जो सैलाब मन में घुमता रहता है करुणा उन भावों को शांत करने का काम करती है। करुणा भाव वाला व्यक्ति हमेशा सबकी नजरों में आदरमयी व्यक्ति होता है। जिसका सब सम्मान करते हैं। करुणा भावों से मन शुद्धि की अनुभूति प्रतीत होती है। करुणात्मक संवेदना का स्वरूप कहानी की प्राथमिकता को बढ़ा देता है। जैसे माँ जब अपने बच्चे को डाँट देती है तब बच्चा दुखी हो जाता है। और जब अपनी करुणामयी आवाज से फिर से अपने बच्चे को पास बुलाकर प्यार करती है, तब बच्चे के करुणामयी स्वरों को माँ के कान सुनते हैं। यही वह भाव है, जो सारी गलतियों को भुलाकर मनुष्य एक-दूसरे से नजदीक आ जाते हैं। यही शक्ति करुणा में होती है। जो कितनी भी मुश्किलें आ जाए मुँह पर एक छोटी-सी हँसी तो निर्माण करके ही जाती है।

3.3.5 अहंकारात्मक संवेदना

मनुष्य अगर सर्वगुण संपन्न है। उसमें इतनी प्रतिभा है कि वह सभी कठिनाइयों का निवारण ढूंढ सके, और समाज की मदद कर सके। परंतु अगर यही गुण उस व्यक्ति के अंदर अहं निर्माण कर दे कि उससे श्रेष्ठ कोई नहीं। वही सबसे श्रेष्ठ और ज्ञानी है। इसे अहंकारात्मक संवेदना कहेंगे। अहंकार मनुष्य को सबके सामने छोटा बना देता है। अहंकार मनुष्य में

[1] गौरा गुणवन्ती - सूर्यबाला, पृ.सं. 17

नकारात्मक शक्ति का निर्माण करता है। जिससे वह व्यक्ति अपने आप समाज से दूर होता जाता है। अहंकार अच्छी बात नहीं होती। अहंकारी मनुष्य को दूसरों के प्रति तिरस्कार निर्माण करने का कार्य करता है। वह कभी मनुष्य से मनुष्य को अच्छे भावनाओं से मिलने नहीं देता। किसी भी वस्तु का अहंकार उसके व्यक्तित्व की श्रेणी को कम करता जाता है। पंखुरी सिन्हा की कहानी 'कोई भी दिन' एक पात्र पण्डित जी की पत्नी जो हमेशा अपने आप में ही रहती है। उसे समाज से कोई लेना देना नहीं। फिर भी ऐसी एक औरत जिसे समाज से कुछ संबंध नहीं, फिर भी उसे अहंकार है कि उसने एक बेटे को जन्म दिया है- "बेटी पर और कम ध्यान देती है, बेटी कहीं आए-जाए कोई मतलब नहीं, बेटे को एक मिनट अपने सामने से हिलने नहीं देगी, दिन-भर गोद में लटकाये फिरती है, बेटे से कहेगी तुम मेरे पालनहार हो, रखवाले हो...।"[1] पण्डिताईन यह अहंकार है, जो बेटी को दूर करके बस बेटे को अपने पास रखती है। क्योंकि बेटी पराया धन है। आज न कल उसे जाना ही है, परंतु बेटा हमेशा उसका ही बना रहेगा। यह माँ का एक अहंकार है जो बेटा और बेटी में अंतर निर्माण करता है। बेटा हो या बेटी दोनों तो उसी कोख से जन्म लेते हैं। जब माँ की कोख उनमें अंतर नहीं करती तो मनुष्य को वह अंतर क्यों करना चाहिए। यह अहंकार माँ के शब्दों का है। अहंकारात्मक संवेदना कहानियों में प्रत्येक क्षण चित्रित होती है। राजनीति पूंजीवादी अपने को बड़ा समझ बाकी सब जनता को छोटा समझते हैं। यह उनका अहंकार ही है। संवेदना की विशिष्ट भावनाओं को मनुष्य ने अपनी सुविधानुसार उनको नाम दिया है। यह शाब्दिक नाम सीधे शब्द के अर्थ तक पाठक तक पहुँचाते हैं। जैसे अहंकारात्मक संवेदना का सीधा शब्द अहंकार, स्पष्ट होता है कि अहंकार भावना को चित्रित कर रहा है। अहंकारी मनुष्य हमेशा अपने-आप में ही फंसा होता है। समाज से उसका कोई नाता नहीं होता। क्योंकि उसे बस अपने श्रेष्ठत्व को सबको दिखाना है। यही श्रेष्ठत्व उसे सबकी नजरों में भी गिरा देता है। अहंकारी भावना मनुष्य को एक-दूसरे से जोड़ नहीं पाती। अहंकार मनुष्य की

---

[1] कोई भी दिन - पंखुरी सिन्हा, पृ.सं. 137-138

मानसिकता का एक विकसित रूप है। जिससे वह अपने आपको सबसे बड़ा व श्रेष्ठ समझकर यथार्थ में सबसे छोटा बन जाता है। अहंकारपरक मनुष्य की भावनाएँ भी अहंकारी ही होती है। जैसे 'बदन दबना' कहानी का 'हलकासिंग'। उसे अहंकार है अपने रुतबे और अपने पैसों पर। उसे लगता है कि गाँव में उससे बड़ा व्यक्ति कोई नहीं है। यही अहंकारात्मक संवेदना का भाव है।

3.3.6 घृणात्मक संवेदना

घृणा, ईर्ष्या मनुष्य की विकसित प्रकृति है जिसमें वह मनुष्य तथा समाज को हमेशा घृणा या ईर्ष्या के भाव से देखता है। अहंकार एवं घृणा दोनों का प्रवाह एक ही दिशा में घूमता है। परंतु घृणा मनुष्य को हमेशा नकारात्मक भावों में ही रखती है। वह कभी भी सामने आए व्यक्ति पर प्रेम नहीं बल्कि घृणा से देखता है। घृणात्मक संवेदना मानसिक अवस्था है मनुष्य की, जो मनुष्य के कार्य को देखकर निर्मित होती है। किसी भी वस्तु तथा मनुष्य पर घृणा का भाव निर्माण हो सकता है। घृणात्मक भावना यह उसके विपरीत होने वाली घटनाओं से निर्माण होती है। घृणा का कारण कुछ भी हो सकता है। अपने मन के विरूद्ध होने वाले कार्य को देखकर भी घृणा का निर्माण होता है। जैसे सुधा अरोड़ा की कहानी 'सत्ता-संवाद'। इसमें एक महिला पात्र है और एक पुरुष पात्र है। जो रिश्ते में पति-पत्नी हैं। पति का व्यवहार पत्नी को बिल्कुल नहीं भाता। इसलिए वह हमेशा अपने पति पर चिल्लाती रहती है। क्योंकि वह कोई काम नहीं करता बस किताबों में फंसा हुआ रहता है- "यह लो, एक और प्रेम पत्र। इस उम्र में भी तुम्हारी जेब से प्रेम पत्र ही निकलते हैं। भूखे भजन हो न हो, इश्कबाजी तो हो ही सकती है। बेटा शादी की उम्र पर आ रहा है और इश्क बाप को चढ़ा है। पता नहीं, ये तुमसे आधी उम्र की लड़कियाँ क्या देखती हैं तुममें। सब अव्वल दर्जे की बेवकूफ होती हैं। मरती है तुम्हारी हवाई कविताओं पर। उन्हें क्या मालूम कि इन कविताओं को गूँथकर दो वक्त की रोटी नहीं पकाई जा सकती। तुम्हारे झोले और दाढ़ी पर मरती हैं। तुम्हारे साथ रहकर देखें। दो

दिन में आटे-दाल का भाव न पता चल गया तो कहना। बड़ी हवा में उड़ती फिरती हैं....।"[1] पति के प्रति अपनी घृणा को व्यक्त कर रही है। यहाँ घृणा इस बात की नहीं कि उसके पति को ऐसे पत्र आ रहे हैं। बल्कि घृणा इस बात की है कि घर में खाने को एक दाना नहीं है और उसका पति बस कागज कलम लेकर बैठा है। इसी वजह से उस घृणा का जन्म हुआ। अगर वह पति काम करता पैसे कमाता और तब ये पत्र आते, तो उनका मूल्य अलग रहता। तब उसमें घृणा का नहीं बल्कि अहंकार की भावना होगी। मेरा पति इतना प्रसिद्ध है कि उससे आधी उम्र की लड़कियाँ उन्हें पत्र लिख रही हैं। इससे पता चल जाता है कि संवेदना क्षणिक होती है। संवेदना को देखने का समय और उसकी क्षमता अलग ही होती है। घृणात्मक संवेदना समय पर निर्भर होती है। यह भाव प्रत्येक क्षण निर्माण ही होता है, ऐसा नहीं होता। अपने साथ रहने वाली व्यक्ति की मनोस्थिति तथा समय का वार्तालाप उस पर घृणात्मक संवेदना का निर्माण होता है। यह संवेदना मनुष्य हृदय से निर्माण होने वाला भाव है। जो प्रत्येक क्षण एक ही जैसा होगा यह कह नहीं सकते। वह समयानुसार बदलता रहता है।

3.3.7 प्राकृतिक संवेदना

प्रकृति के प्रति निर्माण होने वाला मनुष्य का भाव प्राकृतिक संवेदना होता है। प्रकृति के बारे में मनुष्य के विचारों को एक साहित्यकार ही अपनी रचना में कैद कर सकता है। प्राकृतिक सौंदर्य अपने आप में मन को शांति निर्माण करने वाला भाव है। मनुष्य कितनी ही त्रासदी में क्यों न हो, परंतु जब वह प्रकृति का सौंदर्य देख पाता है, तब उसका मन अपने आप सकारात्मक भावों की तरफ ले जाता है। प्राकृतिक सौंदर्य धरती के ऊपर हर जगह फैला हुआ है। एक कवि अपने विभिन्न भावों से शब्दों को एक लय देता है। जिससे कविता का निर्माण होता है। प्रकृति से संबंधित कोई भी साहित्य हो वह मन को सुकून ही देता है। जैसे 'गहरा लाल सूरज', 'हरी-हरी पत्तियाँ', 'आकाश का नीलापन' आदि। ऐसा ही एक उदाहरण जया जादवानी अपनी

[1] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 109

कहानी 'राज' में करती है- "भाग कर आई है अपने घोंसले से यह चिड़िया। टेरा करती थी वहीं से चोंच बाहर निकाले समूची प्रकृति को। हवा चलती पत्ते झरते, नन्हीं-सी चोंच से टकराकर धरती पर गिरते जाते। अपनी ही जड़ों के पास तनी छोटी चोंच, इतने सारे पत्तों... सारा वक्त वह सिहरती रहती। एक बार टिका रह गया एक सूखा पत्ता चोंच पर पल भर। अरे, बड़ी हो गई चोंच उसकी? चोंच खोलकर उसने एक बार फिर टेरा।"[1] कितना सुंदर वर्णन है प्रकृति का यहाँ। जो सब कुछ अपने में समा लेती है। प्रकृति बहुत नायाब चीज है, जो मनुष्य के हर दुख में उसे सुकून का एहसास करवा सकती है। प्रकृति की अपनी एक अलग ही पहचान होती है। जो मनुष्य अपने आप से नाराज हो, वह प्रकृति के सानिध्य में थोड़ी देर रहने से भी, उसकी सारी वेदनाओं को भूल सकता है। यही प्राकृतिक संवेदना है। जहाँ सुखमयी भावनाओं का आचरण अधिक होता है और दुखों का आचरण कम होता है। प्रकृति मनुष्य का अपना घर है जहाँ वह अपनी सारी परेशानियों को एकत्रित बोध कर रखता है और समय आने पर उसे बाहर निकालता है। अर्थात् ऐसा तो नहीं हो सकता कि हमेशा सुख ही अपने पास हो और दुख नहीं। सभी संवेदना मनुष्य के मन का प्रतीक होती है। वह सब समय पर निर्भर होता है। किस समय किस संवेदना का आकलन होना चाहिए। प्राकृतिक सौंदर्य देखकर मन एक ही बार में शांत हो सकता है। वैसे ही प्रकृति का विकृत रूप देखकर मनुष्य को गुस्सा भी आ जाता है। नदी, पेड़, पौधे, पशु, पक्षी, पानी, सारे रंग, सारे सुगंध, सारे रास्ते यह सभी प्राकृतिक संवेदना ही है। जिससे मनुष्य एक ही बार में प्रकृति से जुड़ जाता है और अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर पृथ्वी की गोद में अपने सारे दुख-दर्द समा देता है। आराम और चैन की सांस मनुष्य बस प्रकृति की गोद में ही ले सकता है।

3.3.8 राष्ट्रीय संवेदना

अपने राष्ट्र के प्रति अपने भाव प्रकट करना राष्ट्रीय संवेदना है। प्रत्येक भारतवासी को अपने राष्ट्र के प्रति एक विशिष्ट भाव होता है। राष्ट्रीय चेतना का भाव मन में राष्ट्र के प्रति

[1] उससे पूछो - जया जादवानी, पृ.सं. 132

आदर का भाव निर्माण करता है। राष्ट्रीय संवेदना मनुष्य के रग-रग में समाई है। अपने देश का वर्चस्व बढ़ाना यह हम देशवासियों के हाथ में ही है। देश में चल रहे सभी आतंक तथा दंगे मनुष्य के मन में भय का स्थान निर्माण कर देते हैं। राष्ट्रीय भावना को समझते हुए उसमें क्या-क्या अच्छे बदलावों को हम ला सकते हैं, यह हमें देखना होगा। राष्ट्र की उन्नति उस राष्ट्र के नागरिकों पर निर्भर होती है। अपने राष्ट्र के प्रति अपने भाव सदैव नैतिक होने चाहिए। जिससे कभी राष्ट्र को अपने व्यक्ति से धोखा न मिल सके। आज का समय बहुत भयावह है। राष्ट्र में घुसकर आतंकवादी जनता के मन में आतंक का निर्माण करके चले जा रहे हैं। अपना राष्ट्र अच्छा एवं भ्रष्टाचार मुक्त बनाने के लिए हमें आगे बढ़ना होगा। शिक्षा का सहारा लेकर हम यह कर सकते हैं। जिससे राष्ट्र शिक्षित होकर उसकी सभी जनता जागृत बन सकती है। शर्मिला बोहरा जालान की कहानी 'विकसित मैं' के अंतर्गत लेखिका शिक्षा का महत्व बताते हुए कहती हैं कि- "वे जो दुर्भाग्य से स्कूल-कॉलेज नहीं जा सके हैं और इसके लिए कभी अपने माता-पिता को तो कभी हिन्दुस्तान की सरकार को गाली देते हैं। उन्हें कम से कम यहाँ तो नाराज होने के बजाय खुश हो लेना चाहिए। हिन्दुस्तान में प्राय: हर घर में भक्ति-रस की धारा प्रवाहित होती रहती है।"[1] लेखिका का यहाँ शिक्षा का संबंध हिन्दुस्तान की सरकार से जोड़ रही है। हिन्दुस्तान की सरकार अगर अपने सारे काम समय और निष्ठा से करे तो शायद भ्रष्टाचार नामक राक्षस हमारे यहाँ राज नहीं कर पायेगा। परंतु अगर अपनी ही जनता भ्रष्टाचारी हुई तो राष्ट्र का संरक्षण कौन कर पायेगा। हमें ही आगे बढ़कर अपनी सही राह चुननी होगी। जिससे देश तथा देशवासी दोनों का भला हो सके। राष्ट्र की अच्छी नीति से आगे लाने का काम हम जनता का ही है।

मानवीय संवेदना के स्तरों से विविध भावों का परिचय पाठक को मिलता है। कहानी रचने की लंबी तार का प्रमुख हिस्सा संवेदना ही है। संवेदना की मदद से कहानीकार के मन में

[1] बूढ़ा चाँद - शर्मिला बोहरा जालान, पृ.सं. 102

विविध भाव उत्पन्न होकर कहानी की बनती है। जो बहुत मूल्यवान है। कहानी मानवीय संवेदनाओं का भंडार जिसमें संवेदना की सभी धाराओं को एकत्रित किया गया है। मनुष्य की यही विविधता उसे बड़ा बना देती है। संवेदना का प्रत्येक स्तर अपनी एक अलग गाथा से बना है। जिसका अर्थ व स्वरूप दोनों अलग बन जाते हैं। किसी का संबंध एक-दूसरे से बनता ही नहीं। यही विशिष्टता हिन्दी साहित्य सामान्य जनता को दिखाता है। साहित्यिक समाज बहुत बड़ा है। इसमें संवेदनाओं का प्रयोग भी अधिक रूप में किया गया है। संवेदना मनुष्य तथा साहित्य दोनों में सर्वोपरि होती है।

3.4 हिन्दी कहानी : संवेदना के विविध धरातल

संवेदना मन की एक अनुभूति है जो हमें यथार्थ से मिलवाती है। संवेदना मनुष्य के अंतर्मन का गहरा विचार है। संवेदना मनुष्य को जीना सीखाती है। संवेदना के अनेकों भेदों से संवेदना की भिन्नता को समझ सकते हैं। हिन्दी कहानी जगत बहुत विस्तृत है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में कुल कितनी कहानियाँ प्रकाशित हुईं इसकी मेरे समक्ष कोई गिनती नहीं है। लेकिन एक अंदाजा लगभग तीन हजार के ऊपर तो कहानियाँ प्रकाशित हुई होंगी। प्रत्येक कहानी की अपनी एक विशेषता तथा भिन्नता है। किसी कहानी को भी एक-दूसरे के साथ जोड़ नहीं सकते। प्रत्येक कहानी पाठक वर्ग को कोई न कोई संदेश जरूर देती है जिसे पाठक वर्ग को समझने की आवश्यकता है। कहानी जिस समय की होती है वह समय पाठक पढ़ते-पढ़ते जी लेता है। कहानी प्रेम भाव की होती है, देश भक्ति की होती है, स्त्री पर आधारित होती है, विज्ञान पर आधारित होती है। विविध विषयों को लेकर कहानीकार अपनी कहानी लिखता है। प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध धरातल पर चर्चा की है। आदिवासी संवेदना के अंतर्गत आदिवासियों की मनोस्थिति का वर्णन है। वर्तमान समय में भी आदिवासी कितना भटका हुआ है। उसके अधिकार उससे छिन लिए जा रहे हैं। आज भी वह लड़ रहा है अपने जंगलों के लिए अपने

घर के लिए। दलित संवेदना के अंतर्गत मानवता खत्म हो चुकी है, यह देख सकते हैं। इक्कीसवीं सदी का समय भी जातिवाद, छुआछूत के जालों में फंसा हुआ है। रास्ते पर चल रहे जानवरों की भांति दलितों को देखा जाता है जिससे उनके मन-मस्तिष्क में समाज के खिलाफ आक्रोश फैलना तो जायज ही होगा ना। स्त्री संवेदना अपनी अस्मिता के लिए स्त्री का चित्रण है। स्त्री कोई भी जाति या वर्ण की हो, उसे तो हमेशा अपमान ही सहना है। हमेशा पुरुष प्रधान समाज में उनकी दासी बनकर जीना है। भारत अभी इतना संपन्न देश नहीं हुआ जहाँ प्रत्येक स्त्री को सम्मान और आदर प्राप्त होता हो। वृद्ध संवेदना एक मार्मिक विषय है ऐसा कहना गलत ना होगा। क्योंकि वृद्धावस्था जीवन संध्या की आखिरी बेला है। सब पत्ते झड़ चुके हैं। फूलों से महक अब इनमें नहीं है। सुख के चार पल अच्छे से जीकर खुशी से आँख बंद हो जाए बस इतनी ही आशा होती है। जो आज का नया आधुनिक समाज उन्हें वह भी नहीं दे सकता। अल्पसंख्यक संवेदना के अंतर्गत भारतीय अल्पसंख्यक श्रेणी में आने वाले मुस्लिम समाज का चित्रण है। प्रत्येक धर्म तथा वर्ग की अपनी एक अलग पहचान व अपनी एक अलग संस्कृति होती है। मुस्लिम समाज की भी अपनी एक अलग धारणा है। अपनी अलग मान्यताएं हैं। किन्नर संवेदना जो तृतीय लोगों की भावनाओं को रेखांकित करता है। किन्नर समुदाय की त्रासदी का तो कोई अंत ही नहीं है। जहाँ जाए बस गाली-गलौज और धिक्कार बस यही उनके नाम लिखा गया। अपने जीवन के प्रत्येक कठिनाइयों को किन्नर समुदाय हँस के पार कर लेता है, क्योंकि उन्हें पता है, उनका रखवाला कोई नहीं है। भूमंडलीकरण की संवेदना ने भारत को बदल दिया है। आज का भारत मशीनी भारत है। जो मनुष्य से अधिक मशीनों पर भरोसा करता है। भूमंडलीकरण ने भारत की रूपरेखा ही बदल दी है। अमीर और अमीर बनता गया। गरीब और गरीब बनता गया। मजदूर संवेदना मजदूरों की गाथा बताता है। मजदूरों पर आए विभिन्न संकटों से अपना जीवन कैसे बिता रहे हैं, उसके जीवन में हो रहे उतार-चढ़ाव को किस तरह हौसले से बोध रहा है, इसका चित्रण कहानियों के

माध्यम से पाठक तक पहुँचता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों का मूल स्वरूप कहीं खुशी झलकाता है, तो कहीं दुख दिलाता है। कहानियों में समाज का यथार्थ छुपा हुआ होता है। कहानी मनुष्य जीवन का पूर्ण हिस्सा है, क्योंकि सुबह से उठकर रात तक की बात जब हम किसी को बताते हैं तो उसका रूपांतरण कहानी में ही हो जाता है। मनुष्य संवेदनशील प्राणी है, उसका जीवन संवेदनाओं से भरा हुआ है। संवेदना और मनुष्य दोनों के सहयोग से रची गयी कहानी की मौलिकता ही भिन्न होती है।

3.4.1 आदिवासी संवेदना

आदिवासी शब्द से ही पता चल जाता है जो आदि से 'वास' करता आया है। वह आदिवासी है। आदिवास शब्द का मूल अर्थ जो पहले निवास करता आया हो, अर्थात 'आदिवास' अर्थ 'निवास' होता है। आदिवासी समाज पहले से ही शहरी समाज से दूर रहता आया है। या यूँ कहें सभ्य समाज ने उन्हें कभी अपने समाज में शामिल ही नहीं किया है। आदिवासी समाज जंगल का रक्षक है। आदिकाल से उनके जीवन में जंगल ही उनका देवता रहा है। आदिवासी समाज की संस्कृति सवर्ण समाज से बहुत ही अलग होती है। आदिवासी का खान-पान, रहन-सहन, उनके त्यौहार यह सब भिन्न-भिन्न होते हैं। इसी विविधता के लिए आदिवासी पहचाने जाते हैं। पूर्ण भारतवर्ष में आदिवासियों की बहुत-सी उपजातियाँ हैं। जैसें खोंड, डाफला, खासी, गारो, भेरिया, वाली, कोटा, थारू, नागा, कऊँबा, गुरूंग, लेपचा, गोंड, बंजारा, कबूतरा, उरांव, गाड़िया, करनट, मल्लाह, महरा, नट, कालबेलिया, हलबा आदि है। आदिवासी लोकगीत, लोककथाएँ, लोक संस्कृति, लोक पर्व, आदिवासी लोक साहित्य इन सब विशेषताओं से आदिवासी समाज संपूर्ण है। हमारे महापुराणों में आदिवासी समाज का जिक्र है। अर्थात हम यह समझ सकते हैं कि आदिवासी सदियों से जंगल, नदी की रक्षा करने वाला समाज है जो विभिन्न प्रकृति से बनने वाली वस्तुओं पर अपना जीवन व्यतीत करता है। आदिवासी कभी भी बिना जंगल, पेड़-पौधों या नदियों के बिना रह नहीं सकता है। भारत के

सभी राज्यों में आदिवासी रहते हैं। उनके रहने का स्थान जंगल होता है। परंतु आदिवासी जिस राज्य में रहते हैं, उसी राज्य का प्रभाव वहाँ के आदिवासियों पर दिखाई देता है। इसलिए संपूर्ण भारत के आदिवासी एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। आदिवासियों की बोली उनकी मुख्य पहचान है। प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी एक भाषा और अपनी एक शैली होती है, जो उन्हें एक-दूसरे से भिन्न बनाती है। पेड़-पौधे, नदी, पत्थर, पहाड़, चाँद-सूरज इन सबको आदिवासी अपना देवता मानते हैं। आदिवासी धर्म उनका जंगल ही होता है। केदार प्रसाद मीणा के अनुसार- "आदिवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य इनकी बड़ी महत्वपूर्ण देन है। अपनी सहज रूप से विकसित होती समझ से इन्होंने एक ऐसा समाज और सांस्कृतिक मूल्य विकसित किये हैं जिनमें मनुष्य मात्र को जगह प्राप्त है। दुनिया भर में सामाजिक-सांस्कृतिक आडंबर की सबसे बड़ी वजह धर्म इनके यहाँ प्रकृति से जुड़ा रहा है। अर्थात जो मनुष्य के लिए प्रतिदिन के जीवन में उपयोगी है, उसे बेहतर बनाता है, किसी दूसरे को कोई कष्ट नहीं देता है, वह धर्म है और इनकी नजर में ऐसा तत्व प्रकृति ही है। चाँद और सूरज बारी-बारी मनुष्य के जीवन में दिन-रात के रूप में आते हैं। इसलिए ये इनके सबसे बड़े देवता हैं- सिंगबोंगा, चांदबोंगा।"[1]

हिन्दी साहित्य में आदिवासी समाज ने अपना एक गहरा नाता बना लिया है जो लाठीमार आंदोलनों से नहीं हुआ वह कहीं-न-कहीं लेखनी अपना काम बखूबी निभा रही है। साहित्य मनुष्य को जागृत कर देता है। यही जागरूकता आदिवासी साहित्य के माध्यम से जन सामान्य तक पहुँच रही है। आदिवासी संवेदना को चूर-चूर करती सवर्णों की दुनिया भूल जाती है कि आदिवासी भी सामान्य मनुष्य ही हैं। उसके मन में भी भावनाएँ जन्म लेती हैं। वह भी संवेदनशील हैं। आदिवासी वर्तमान समय में बहुत खतरे की जिंदगी बिता रहा है। आज आदिवासी के सामने विस्थापन, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, स्त्री शोषण, संस्कृति का ह्रास ऐसे

[1] आदिवासी कहानियाँ - सं. केदार प्रसाद मीणा, पृ.सं. 5

विभिन्न प्रश्न खड़े हो गए हैं। जिसका कारण शायद भारत में फैली उत्तर आधुनिकता, भूमंडलीकरण, वैश्वीकरण आदि हो सकता है। इस नए समाज में भारत का पुरातन प्राचीन समाज कहीं खो सा गया है। आज आदिवासी बहुत से प्रश्नों से घिरा है। उसका उत्तर ढूंढ़ पाना शायद नामुमकिन है। अंधश्रद्धा में फंसा हुआ यह समाज नशे के कारण कहीं गुम होता जा रहा है। अपनी संस्कृति को पीछे छोड़ शहरीकरण के जाल में फंस रहा है। शहर की चकाचौंध ने आदिवासियों की आँखों पर चमचमाती रोशनी की पट्टी बांध दी है, जिसे अब यह समाज बाहर निकालना नहीं चाहता। सवर्ण समाज के अंदर यह भी डूब जाना चाहता है। बेरोजगारी के मारे स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति पर उतर गयी है। आदिवासियों के बच्चे शहर में होटलों के अंदर काम करते, रास्तों पर कार साफ करते, जूते साफ करते दिखाई देते हैं। यहाँ तक कि आदिवासी स्त्रियाँ एवं बच्चों को गुनाह के रास्तों पर भी उतारा जाता है। आज के दृश्य में आदिवासी संस्कृति कहीं लुप्त हो जा रही हैं। इसे लुप्त करवाने का गलत काम हम भी कहीं कर रहे हैं।

3.4.1.1 विस्थापन की समस्या

शुरुआत से जंगल में रहने वाला आदिवासी समाज आज भटक गया है। आज उसकी खुद की ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वह खुले आसमान के नीचे खुल कर साँस ले सके। वर्तमान समय में आदिवासी लड़ रहा है- ‘जल-जंगल-जमीन’ के लिए। आखिर ऐसी विपदा आदिवासियों पर क्यों आयी होगी? इसका उत्तर अगर ढूंढने जाएँ तो पता चलेगा कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतवर्ष को पूर्णत: अपने काबू में कर लिया है। पूंजीपतियों ने अपनी जेबें भरने के लिए आदिवासी को उजाड़ डाला है। जंगल कटकर मॉल्स बन रहे हैं। सिनेमा घर बन रहे हैं। बड़ी-बड़ी ड्यूपलेक्स इमारतें बन रही है। तो ये आदिवासी आखिर जाएँ तो जाएँ कहाँ। विस्थापन की घनी आंधी ने आदिवासियों को कहीं दूर फेंक दिया है। भूमण्डलीकरण की वजह से निर्माण हुई अनेक समस्याओं में आदिवासी सबसे ज्यादा पिस रहे थे। विस्थापन

के चलते आदिवासी बेरोजगारी के मार्ग पर उतर चुके थे। क्योंकि जंगल से ही उनकी कमाई होती थी। जंगल के फल-फूल बेचना, लकड़ियाँ बेचना, महुआ के फूलों से शराब बनाकर बेचना, यही उनका मुख्य काम होता था। परंतु अब जंगल ही उनके पास नहीं तो वह क्या कर सकते हैं। बहुत से आंदोलन चल रहे हैं तथा बहुत से आंदोलन हो भी चुके हैं। परंतु इन आदिवासियों को कहाँ तक न्याय मिल पाया है यह बता नहीं सकते। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भी आदिवासियों की इसी विपदा का चित्रण हुआ है।

राकेश कुमार सिंह की कहानी 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' में 'बागुन मुण्डा' की विविध समस्याओं को चित्रित किया गया है। किस तरह सरकारी नौकर अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए आदिवासियों की जमीन पर अपना राज चलाते हैं। अशिक्षित आदिवासी कागजों की भाषा समझता नहीं इसलिए उसे हर तरफ से फंसाया जाता है। प्रस्तुत कहानी की गाथा भी कुछ ऐसी ही है। बागुन मुण्डा को मरा घोषित कर उसकी जमीन बद्री मिसिर और जंगल बाबू दोनों हथिया लेते हैं। बागुन मुण्डा कुछ समझ नहीं पाता और देखते रहता है। पैसे का लालच, शराब का लालच, गरीबी को सुहाना लगता है। यही नीति सरकार आदिवासियों के साथ अपनाती है। पहले तो बहला-फुसला कर अपना काम करवाती है, न मानने पर सरकारी कागज लाते हैं। प्रस्तुत उदाहरण उपरोक्त वाक्य को स्पष्ट करता है- "बद्री मिसिर और जंगल साहब एक बोतल के यार थे। एक के बदले चार रुख काटे जा रहे थे। लाह, गोंद, चिरौंजी, कत्था, गोलोचन, वंशलोचन, मधु और इंधन ...। सपना होने लगे थे सब! जंगल या तो जीवन था, जीने के सहारे थे। जंगली पदार्थों की बिक्री से नमक-भात चलता था। टेंट में चाप पैसे रहते थे। जंगलों में बसे गाँव अब नंगे हो रहे थे। और साफ जमीन पर गड़े जा रहे थे बद्री मिसिर के खेत। मिसिर ने जादिक मुण्डा को लुभाया था। अपनी जमीन हमें दे दो जादिक! बदले में जंगल किनारे दुगनी जमीन दे देंगे।"[1] यहाँ स्पष्ट चित्र दिया है लेखक ने

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश कुमार सिंह, पृ.सं. 122

विस्थापन का। किस तरह समाज आदिवासी को अपना जन्म सिद्ध अधिकार छोड़ने को कहता है। उसे बेघर करना चाहता है। आदिवासी अब जंगल से बाहर हो रहे हैं। उन्हें जंगल से निकाला जा रहा है। या यूँ कहें जंगल में अब कुछ बचा ही नहीं जीवन व्यतीत करने के लिए।

वर्तमान समय में बहुत सी आदिवासी जातियाँ लुप्त हो गयी हैं। शहरों की तरफ मुड़े आदिवासी अब शहर की चकाचौंध में आदिवासी जीवन भूल चुके हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों का नया सुख, नयी धारणाओं से आगे बढ़ा है। उस धारणा में आदिवासी आंदोलन आदिवासी विमर्श जैसी बातें हो रही हैं। लेकिन उनको लागू नहीं किया जा रहा, या जहाँ लागू हो रहे हैं, वहाँ उसकी प्रामाणिकता उतनी नहीं है। विस्थापित होता आदिवासी अपनी समस्याओं को लेकर जहाँ जगह मिले वहाँ चलता जा रहा है। आदिवासी भी अब पूंजीपतियों की जाल में धंसता जा रहा है। थोड़े से धन के लिए वह अपनी संस्कृति को पीछे छोड़ आगे जा रहा है। कहानी की इक्कीसवीं सदी ऐसे विविध उदाहरणों से परिपूर्ण है, जहाँ आदिवासी कहानी आदिवासी गाथा का बयान करती है। आदिवासियों की विस्थापन की त्रासदी उनका अस्तित्व मिटा रही है। जंगल में रहने वाला आदिवासी जब शहर पहुँचा तब उसके साथ कोई नहीं, कोई पेड़-पौधे, फल-फूल कुछ नहीं आया। सब कहीं गुम हो चुके हैं। जिन्हें शायद अब ढूंढ़ा भी नहीं जा सकता।

3.4.1.2 समाज में शिक्षा का अभाव

आदिवासी समाज की दुनिया सवर्ण समाज से अलग है। सवर्ण समाज के वर्तमान समय में देखा जाए तो उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी शिक्षा के मार्ग पर होती है। यही अभाव आदिवासियों का मूलत था। शिक्षा के मार्ग पर अभी-अभी वर्तमान पीढ़ी दिखाई दे रही है। यह पहले से नहीं था। शायद इसी वजह से आज भी आदिवासी कुरीतियों पर चल रहा है। शिक्षा जैसे उन्हें सिंगबोंगा चांदबोंगा का श्राप लगता है। आदिवासी में जागरुकता की कमी अशिक्षा की वजह से है जो उन्हें आगे बढ़ने नहीं देती। अशिक्षा की वजह से ही उनके जल-जंगल-

जमीन को छीना गया। शिक्षा के मार्ग पर अगर वह पहले से ही अपना पाँव धर देते तो आज जिस स्थिति पर आदिवासी हैं, वह अपना एक सुनहरा भविष्य बना पाते। मगर इस अवसर से आदिवासी चूक चुके हैं। आदिवासियों के मन में शिक्षा के प्रति यह तिरस्कार भावना क्यों है, यह शायद कोई समझ ही ना पाये। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'जंगली हिरणी' के अंतर्गत शिक्षा के इसी अभाव को रेखांकित किया गया है। कहानी के अंतर्गत दर्शाया गया है कि शहर से एक शहरी बाबू आया है जो दिखने में बहुत सुंदर है। कहानी की नायिका लच्छो को पसंद भी आ जाता है। परंतु जब लच्छो को पता चलता है कि वह स्कूल टीचर था। बस्ती में पढ़ाने के लिए आया था, तब लच्छो के मन से शहरी बाबू उतर गया। शिक्षा का महत्व क्या होता है यह लच्छो को समझाता है, परंतु वह मानने का नाम नहीं लेती। प्रस्तुत संदर्भ में लेखिका दोनों का संवाद इस प्रकार प्रस्तुत करती है-

"मैं दूर शहर से आया हूँ स्कूल खोलने।"

"पर, परदेसी, इनका धर्म बिगाड़कर क्या करोगे?"

"पगली, धर्म नहीं बिगड़ता पढ़ने से, मैं इन्हें बड़ा आदमी बनाना चाहता हूँ"

"बिल्कुल तुम्हारे महाराजा की तरह।"

"हाय दइया, महाराज की तरह? नहीं परदेसी नहीं। यह पाप है।"

"तुम मेरी बात अभी नहीं, पढ़ने के बाद समझोगी।"[1]

अशिक्षा मनुष्य को अपने बारे में भला बुरा सोचने का मौका नहीं देती। इसीलिए यह समझ नहीं पाता कि वह किस राह पर आगे बढ़ रहा है। आदिवासी समाज की भी यही त्रासदी है। शिक्षा के अभाव से वह आज दौड़ती दुनिया में पीछे रह गए हैं। आदिवासी समाज का कोई भी काम आज बिना लड़ाई या आंदोलन के आगे नहीं बढ़ रहा। शायद यह अशिक्षा की वजह से है। वर्तमान पीढ़ी शिक्षा का महत्व जानने लगी है और धीरे-धीरे अपना सही मार्ग चुनने की

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 232

दिशा में आदिवासी आगे बढ़ रहा है। यह नया मार्ग आदिवासियों के लिए कांटों भरा है। क्योंकि उनके लिए ये नयी शुरुआत है। शिक्षा से आदिवासियों को अपने अधिकार प्राप्ति के लिए मदद मिल सकती है। वह अपने हक की लड़ाई सरकारी तरीके से लड़ सकते हैं। शिक्षा संबंधी आदिवासियों को जागृत करना आवश्यक है। इक्कीसवीं सदी तक आज आदिवासी पहुँच गया है। परंतु आज भी आधे से ज्यादा समाज अशिक्षित है। शिक्षा का मार्ग इन्होंने अपनाया जरूर है। और उसके फायदे भी वह समझ पा रहा है। शिक्षा मनुष्य को पूर्ण बनाने का काम करती है। हिन्दी कहानियों में जागृत आदिवासी का चित्रण भी दिखाई देता है। जो शिक्षा को अपना औजार बनाकर लड़ने के लिए तैयार हो रहा है। आदिवासी समाज शिक्षा को प्राप्त करके विकास के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है। आदिवासी महिलायें भी आज शिक्षा को अपनाकर आगे बढ़ रही है। शिक्षा का अभाव जीवन को पीछे का रास्ता दिखाता है। भविष्य का यह आदिवासी समझ रहा है। मान-सम्मान का अधिकारी हो रहा था। “इन लोगों की दीगा की नही, जरा ज्यादा ही इज्जत थी, क्योंकि वह उँगलियों पर गिनकर, पूरे चार दिन विधि मुक्त शिक्षा-कार्यक्रम की क्लास में शामिल हुआ था।”[1] आदिवासी समाज को अब रोकने वाला कोई नहीं। अगर उन्होंने ठान लिया कि उन्हें शिक्षा प्राप्ति करके समाज में सबके सामने इज्जत से और अपने पूरे अधिकारों के साथ रहना है, तो उन्हें रोकने वाला कोई न होगा।

3.4.1.3 समाज में फैली अंधश्रद्धा

मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। अपने आस-पास होने वाली प्रत्येक घटना पर मनुष्य का अंतर्मन कुछ न कुछ सलाह जरूर देना चाहता है। अंधश्रद्धा भी उसी संवेदना की एक पहेली है जिसे मनुष्य समझ नहीं पाता। यह सच है या झूठ। आदिवासी समाज भी इसी घेरे में घिरा हुआ है। इनकी अपनी कुछ अलग मान्यताएँ हैं। रीति-रिवाज है जो जिसको संजोगकर आदिवासी आगे बढ़ रहा है। इक्कीसवीं सदी की आदिवासी कहानियों में इनका रेखांकन बहुत अच्छे ढंग

[1] आदिवासी कथा - महाश्वेता देवी, पृ.सं. 139

से किया गया है। पाठक वर्ग आकर्षित होता है इन नयी-नयी घटनाओं से रू-ब-रू होने के लिए। अंधश्रद्धा का सबसे घिनौना रूप हम महाश्वेता देवी की 'डायन' कहानी में देख सकते हैं। कहानी की नायिका एक डायन है जिसे डायन उसी के समाज ने बनाया है। डायन सबके बीच नहीं रह सकती। अगर उसकी परछाई भी किसी को छू ले तो वह मर जाएगा। डायन का नाम चण्डी है। जो 'कच्ची उम्र के बच्चे' अर्थात पाँच वर्ष से छोटे बच्चों की मौत हो जाए तो उसे दफनाने का काम वह करती थी। अंधश्रद्धा मनुष्य को कुछ भी करवा सकती है। यह कहानी उसका जीता-जागता उदाहरण है। गाँव वाले चण्डी को रात में अकेले वड़ के पेड़ के पीछे लालटेन पकड़े देखते हैं। वह जमीन में कुछ खोद रही होती है। उसे देख सभी गाँव वाले वह डायन है। ऐसा घोषित कर देते हैं। कहानी बहुत विस्तृत है। परंतु उसका सार समझा जाए तो एक ही शब्द कहूंगी 'अंधश्रद्धा'। डायन का बेटा भगीरथ डायन क्या होती है जानना चाहता है। इस पर मलिन्दर जो डायन का पति है, उत्तर देता है- "अँधियारे में डरपत है बेचारी! जो औरत अँधियारे से खौफ खाती थी, उसे ही विधाता ने डायन बता दिया? अब तो उसे मौत ही आ जाए, तभी उसे शांति मिलेगी। लेकिन वह ठहरी डायन! डायन जब तक खुद अपना परान न छोड़े, दूसरा कोई उसकी जान नहीं ले सकता। समझे, मुनुवा? बेहद दु:खी न हो, तो मलिन्दर इतनी सारी बातें नहीं करता। "मानस को डायन कौन बनाता है, बप्पा?" "विधाता"[1]।

आदिवासी समाज अंधविश्वास को अधिक मान्यता देता है। आदिवासी अपने-आप को सच्चाई के स्तर पर कहीं-न-कहीं पीछे छोड़ रहा था। जो भी समाज में चल रहा है उसे बंद आँखों से आगे बढ़ाता रहता है। यही अंधविश्वास भी उनके विकसित न होने का एक कारण है। अंधविश्वास में जीता यह समाज अपनी अगली पीढ़ी तक भी यही संदेश आगे पहुँचाता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में आदिवासी अंधश्रद्धा का रूप अलग-अलग तरीके से

[1] आदिवासी कथा - महाश्वेता देवी, पृ.सं. 27

दर्शाया गया है। जैसे टोना उतारने के लिए मुर्गे की बलि देना, बच्चा अगर नहीं हुआ तो बड़ के पेड़ पर एक डोली बनाकर बाँध देना। अपनी समस्याओं का निवारण ढूँढने के लिए और अगर किसी ने टोना-टोटका किया है तो उसे देखने के लिए चावल से देखना आदि। विभिन्न धारणाएँ आदिवासी समाज में बनाई रखी है। जिसे शायद इतनी आसानी से तोड़ पाना मुश्किल होगा। आदिवासी कहानियाँ आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण देती है। जिससे पाठक सोचने को विवश होता है कि आखिर किस स्थिति में कहानीकार ने कहानियाँ रची होंगी। अंधश्रद्धा मनुष्य को अंधा और गूंगा बना देती है। जिससे वह सही व गलत में अंतर नहीं कर सकता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ अभी भी प्राचीन काल से चल रही प्रथाओं का, रीतियों का चित्रण करती दृष्टिगत होती हैं। अंधश्रद्धा आदिवासी की मूल पहचान बन चुका है। जैसे वह अपनी भिन्न संस्कृति के लिए जाना जाता है। वैसे ही वह अंधश्रद्धा के लिए भी जाना जाता है। अंधश्रद्धा से आदिवासी अपने अच्छे और बुरे कर्मों को छिपाना चाहता है। अंधश्रद्धा को कम करने के बजाय आज भी उसी स्तर पर आदिवासी समाज दिखाई देता है। आज एक शिक्षित आदिवासी भी कहीं-न-कहीं अंधविश्वास के घेरे में घिरा हुआ है। आदिवासी की बहुत धार्मिक मान्यताएँ हैं, जिनमें से ज्यादा से ज्यादा अंधविश्वास से भरी हुई है।

3.4.1.4 नारी का स्थान

आदिवासी समाज को अधिकतर मातृसत्तात्मक माना जाता है। आदिवासी स्त्री एवं पुरुष में काम के क्षेत्र पर अधिक अंतर नहीं माना जाता। आदिवासी स्त्री-पुरुष दोनों ही सभी काम मिल-जुलकर कर लेते हैं। जितना काम पुरुष करता, वही औरत भी कर सकती थी। आदिवासी स्त्री घर और बाहर का काम दोनों को अच्छे से संभाल पाती है। इतना सब कुछ करके भी उसे जो स्थान घर में मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। मातृसत्ता का जो मूल अर्थ है वह खरा नहीं उतरता। आज भी आदिवासी स्त्री शोषण, प्रताड़ना और अस्तित्व की जंग लड़

रही है। यह खत्म कब होगी इसका कोई उत्तर नहीं। आदिवासी स्त्री की व्यथा इक्कीसवीं सदी की प्रत्येक आदिवासी कहानी में रेखांकित की गई है। वर्तमान समय में वह शिक्षित हो रही है। फिर भी उसे उसका मान-सम्मान पूरा नहीं मिल पाता, जैसे 'अर्जुन' कहानी में दीगा को मिला था। 'भूख से बढ़कर कोई पढ़ाई नहीं होती' कहानी में 'चुन्नी कोटल' जो आदिवासी की पहली लड़की थी जो अनेक कठिनाइयों का सामना करके अपनी बी.ए. की डिग्री पूर्ण कर चुकी थी। लेकिन किसी भी औरत के लिए समाज में आगे बढ़ना इतनी आसान बात नहीं होती। यही विपदा का सामना करती चुन्नी कोरल आगे की पढ़ाई करना चाहती थी लेकिन सवर्ण समाज के यह गले नहीं उतरा और किसी तरह वह चुन्नी की पढ़ाई रोकना चाहते थे। इसीलिए उस पर आरोप करते हुए कहते हैं- "हॉस्टल की अधीक्षिका के पद पर काम करने वाली वह पिछड़ी जाति की पहली औरत थी। सरा दिन, चौबीसों घंटे काम में जुटी रहती। एक बार इसका बीमार पिता और एक बार जख्मी भाई हॉस्टल में आकर ठहर गये। बस चुन्नी के माथे पर 'चरित्रहीन', 'मर्दों से नाजायज रिश्ता' रखने का इल्जाम गढ़ दिया गया।"[1]

आखिर कब और कैसे आदिवासी स्त्री की यह त्रासदी का निवारण हो सकेगा। आदिवासी स्त्री कभी भी घर में बैठकर नहीं खाती। क्योंकि उसे बैठकर खिलाने वाला कोई नहीं होता। घर से बाहर का काम करके भी वह अपना घर भी संभालती है। क्या कभी किसी के मन में यह प्रश्न उठता होगा कि स्त्री ही क्यों हमेशा आटे की तरह समाज के चक्की में पिसती रहती है। इसका उत्तर शायद स्त्री के पास भी न हो। समाज की रचना ही ऐसी की गई है, जिसमें स्त्री को पहले से ही दोयम दर्जे का स्थान दिया गया है। वह पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भी काम करे, लेकिन फिर भी उसका स्थान हमेशा पैरों तले ही माना गया। यही दुविधा स्त्री झेलती आ रही है। वह समझ नहीं पाती कि किस स्थान पर वह गलत रही है। प्यार की भावना होते हुए भी पटेल जो 'टोना' कहानी का नायक है अपनी पत्नी के बारे में

[1] औरत की कहानी - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 17

औरों से गलत बातें सुनकर शक करता है। शक का कभी कोई इलाज नहीं होता। तिरस्कार की भावना से पटेल अपनी पत्नी को कहता है- “आज जगदलपुर से आ रहा हूं, वहाँ महल से सामने सरकारी सनीमा दिखा रहे थे, मैं भी देखने गया था, साथ के लोग भी गए थे, उसमें तेरी फोटो भी थी, हँसते हुए, पान खाते हुए, ठिठोली करते हुए, बोल तू खम्हार गाँव बाली देखने गई थी कि सरकारी सनीमा में काम करने गई थी? उसी बाबू के साथ रात-भर तू रही भी न, मँझली सब बता रही थी, अब उस बाबू का बच्चा मेरे सिर मढ़ना चाहती है? बोल, हरामजादी बोल....।”[1] खोड़ी का अपने पति पटेल के प्रति सच्चा प्रेम था। फिर भी वह अपनी दूसरी पत्नी की बात सुनकर खोड़ी पर शक करता है। उसके पेट पर लात मारके चला जाता है। यह कहाँ तक सही माना जाएगा कि अपनी पवित्रता साबित करने के लिए औरत को किसी मापदंड में मापा जाए। स्त्री के प्रति अविश्वास की भावना यहाँ स्पष्ट होती है। यह अविश्वास उसे समाज में चैन की सांस लेने नहीं देता। वह कितना भी कर ले आखिर उसे रहना पुरुष के पीछे ही है। इन सब वेदनाओं को देखकर आज अनेक आदिवासी महिला कथाकार साहित्य जगत में पदार्पण कर चुकी हैं।

3.4.1.5 प्रकृति के प्रति भावना

आदिवासी शब्द लेते ही जंगल शब्द फटाक से सामने आ जाता है, क्योंकि आदिवासी ही जंगल है और जंगल ही आदिवासी है। सदियों से जंगल की रक्षा करता आ रहा आदिवासी समाज वर्तमान समय में उसे उजड़ता देख रहा है। यह आदिवासी की बहुत बड़ी हार है। पर इस हार को जीत में बदलने की कोशिश भी वह सदियों से करता आ रहा है। एक न एक दिन वह सूरज फिर से उगेगा जहाँ हरियाली नाचती है। नीले आकाश की छांव के नीचे महकती यह हरियाली सब का मन लोभ लेती है इसीलिए सबकी नजर इस पर होती है। आज

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 35

आदिवासी बिना जंगल नंगा घुम रहा है। यहाँ 'डूब' उपन्यास जो वीरेन्द्र जैन द्वारा लिखित है, उसकी कुछ पंक्तियाँ जो आदिवासी गाँव के बालक गाते दिखाई देते हैं-

"जमाना बदल गया है। कलयुग आ गया है, कलयुग।
इस माने की रीति उल्टी। इस युग की नीति उल्टी।
पहले राजा को पानी की दरकार है थी सो गाँव बसाया था।
अब राज्य को पानी की दरकार है सो गाँव उजाड़ रहा है।"[1]

गाँव की प्राकृतिक वस्तुओं को मिटाकर अपनी मनचाही पूर्ण करके सरकार सब कुछ गँवा रही है। बाढ़ से आदिवासी पूरा गाँव डूब चुका है। आखिर प्रकृति अपना प्रकोप कहीं-न-कहीं जरूर दिखाती है।

आदिवासी समाज का मूल व्यवसाय शुरुआत से ही जंगल पर निर्भर रहा है। आज यही जंगल मिटने की कगार पर है। आदिवासी जंगल को, या अपनी बस्ती को बच्चों की तरह संभाल कर रखना चाहता है, परंतु उसका ध्येय कब तक पूरा हो सकता है, इसका जवाब शायद किसी के पास न हो। प्रकृति बहुत सुंदर है। वह फल और फूलों से हमेशा नयी दुल्हन की तरह लहराती रहती है। उसका यही लहराना सबको भाता है। प्राकृतिक सौंदर्य अर्थात जंगल की खुबसूरती मन प्रसन्न करने वाली होती है। वह अपने-आप में पूर्ण है। हरी-हरी डालियों पर लटकते बसंत के फूल दिल को खुशनुमा कर देते हैं। कहानीकार प्रत्यक्षा अपनी कहानी 'जंगल का जादू तिल-तिल' में अपनी बस्ती तथा जंगल का वर्णन करती दिखाई गयी है- "मंगलवार हाट का दिन था। लाल मुरम की जमीन रात की बरसा से भीगी थी। सागवान के पत्ते से पानी अब भी टपटप चू रहा था। नीली चिमचिमी को रस्सी से बाँधकर थोड़ा आड़ बना दुकानें सज रहीं थीं। पेड़ के तने से लाल चीटों की मोटी कतार व्यस्त सिपाहियों-सी मुस्तैदी से काली लकीर खींचती थीं। नीचे जमीन पर भुरभुरी मिट्टी के टीले में फिर अचानक से

---

[1] समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श - डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु खराटे, पृ.सं. 148

बिला भी जातीं। किसी के पाँव पर चढ़ गये तो छिल-मिलाकर उछलने का औचक नृत्य भी दिख जाता।"[1] यहाँ लेखिका ने बड़े ही सुंदर शब्दों में प्रकृति वर्णन किया है। इतनी सुंदर प्रकृति को उजाड़ने के लिए तैयार हो गया है मनुष्य। जो ह्रास पृथ्वी को जंगल खोने का है वही दुख माँ को अपना बच्चा खोने का होता है। इतनी सुंदर पृथ्वी को उजाड़ रहा है। इंसान अपनी जरूरतों के लिए, ये जरूरतें बस पेट भरने की नहीं, बल्कि अपने शौक पूरे करने की होती है। उसी के लिए जंगल को बरबाद कर रहे हैं। सदियों से बसता आ रहा यह जंगल अब कहीं खो सा गया है। अब इस जंगल को फिर से ढूंढ पाना इतना आसान न होगा। जंगल फिर से खड़ा करने के लिए सदियाँ बीत जाएंगी। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में आदिवासी समाज का वर्तमान बहुत अच्छी तरह से चित्रांकित किया गया है। जंगल उजड़ा, प्रकृति उजड़ी, साथ ही साथ मनुष्य भी उजड़ गया।

3.4.1.6 आर्थिक परिस्थिति

महुआ की शराब, जंगल की छोटी-मोटी लकड़ी, फल, रंग-बिरंगे फूल इन सबको हाट में बेचकर आदिवासी अपनी रोजी रोटी का गुजारा करते हैं। आदिवासी स्त्री-पुरुष दोनों का भी घना नाता था, जैसे धरती से सूरज का होता है। पर अब सूरज धरती से दूर जाता नजर आ रहा है। अर्थात जंगल खत्म होते नजर आ रहे हैं। बेरोजगारी बहुत हो चुकी है। आदिवासियों के पास अब अपना कोई काम नहीं रहा करने के लिए। इसीलिए तो अब आदिवासी शहरों की तरफ भाग रहे हैं। काम की तलाश में और शहर में छोटे-मोटे काम करके अपना जीवन बिता रहे हैं। अगर वह जंगल से कुछ बची-खुची लकड़ी या फल-फूल निकालने जाए तो उन्हें अब ठेकेदार या सरकारी की परमिशन लेनी पड़ती थी। सब कुछ बदल चुका था। अब पहले जैसे कुछ नहीं रहा। बागुन मुण्डा अपनी व्यथा को जाहिर करना चाहता है- "एक जंगल कट रहा था। पेड़ों का जंगल। एक जंगल उग रहा था। बेरोजगारी का, भूख का, विपन्नता का और

[1] जंगल का जादू तिल-तिल - प्रत्यक्षा, पृ.सं. 50

अंतत: बंधुआ मजदूरी का। अब जंगल बाबू जंगल में घुसने नहीं देता था। जंगल में जाने का रुपया मांगता था। बात-बात का पैसा ठेकेदार का परमिट। जंगल डिपाट का परमिट।"[1]

बेरोजगारी ने आदिवासी समाज को अंधा बना डाला था। इसीलिए वह अब भला-बुरा सब भूल चुके थे। अब एक काम था पैसा कमाना। जीने के लिए खाना जरूरी है और खाने के लिए पैसा। इसी वजह से आदिवासियों को नक्सली के रूप में भी देखा जाता है। अच्छे-भले मनुष्य को नक्सली की उपाधि देकर उसे गुनहगार बना डाला। आदिवासी के छोटे-छोटे बच्चे बाल मजदूरी का शिकार बन गए। महिलाएँ वेश्यावृत्ति पर आ गई। समस्याओं का पहाड़ आदिवासियों के सर पर खड़ा था। जिसके साथ आदिवासी चल भी नहीं पा रहा था या उसे उठा भी नहीं पा रहा था। बस वह बंधुआ मजदूर की तरह बंध चुका था।

मेहरुन्निसा परवेज़ की कहानी 'पांचवीं कब्र' पाठक के अंतर्मन को छलनी-छलनी कर देता है। कहानी का नायक रहमान कब्रिस्तान में काम करता था। उसे हमेशा इंतजार रहता आज किसी की तो कब्र जरूर आएगी। क्योंकि रहमान का पेट ही कब्र में आने वाली लाशों से भरता था। अर्थात अंतिम क्रिया करने के बाद जो पैसे मिलते थे उससे वह अपना और अपने परिवार का गुजारा करता था। कब्र पर ढंके कपड़ों से वह अपने परिवार के लिए सलवार कमीज़ सिलाता। रहमान की बेटी की शादी रूकी थी, क्योंकि कोई मर नहीं रहा था। कोई कब्रिस्तान में नहीं आ रहा था। इस पर पति-पत्नी में कहा सुनी होती है- "देखो जी, मुझे न कहो, तुम ही तो पैसे नहीं जुटाते।" "अरे, यह भी अच्छी रही, लोग मरते नहीं तो घर पर जाकर मारुँ क्या? एक जमाना था जब लोग धड़ाधड़ मरते थे, मगर अब तो अचानक मर गए तो ठीक, नहीं तो धरे रहो। कम-से-कम पाँच मौत हो जाएँ तो बेड़ा पार लगे।"[2] आर्थिक परिस्थिति ने आदिवासियों की जिंदगी कुचल दी है। कहाँ-कहाँ से आकर शहर में बस रहे हैं।

---

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश मोहन सिंह, पृ.सं. 123

[2] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 212

काम मिला तो ठीक नहीं तो अनजान गलियों में कहीं गुम भी जाए इन्हें ढूंढने वाला कोई नहीं होता। आदिवासी आर्थिक तंगी से अब दर-बदर भटक गए हैं। उन्हें फिर से सही राह मिलना, कब मुमकीन होगा पता नहीं। आदिवासी बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, लाचारी में जकड़ा जा चुका है। उसे बाहर निकलना अब संभव नहीं हो पा रहा है। भारत सरकार नए-नए आयोजन, विधियाँ बनाती हैं। पर वह गरीब आदिवासी तक पहुँचने से पहले ही बीच का कोई ठेकेदार पैसे भी लूट चुका होता है।

3.4.1.7 नशे की आदत

दारू, ताड़ी, बीड़ी यह सभी चीजें आदिवासी की जरूरत है। संभवत: सभी आदिवासी स्त्री-पुरुष नशे के आदी होते हैं। जंगल के फूल महुआ के दारू की दुर्गंध आदिवासी को भगवान के सामने चढ़ाने वाली अगरबत्ती की तरह लगती है। आदिवासी स्त्री हो या पुरुष यहाँ तक कि छोटे बच्चों को भी पिलाया जाता है। किसी का टोना-टोटका बच्चे पर चढ़ा हो तो उसे शांत करने के लिए ताड़ी पिलाई जाती है। अब ये ताड़ी अंदर का भूत पी रहा है या बच्चा अब ये वही देख सकते हैं। अंधश्रद्धा में फंसा ये समाज नशे का आदी बनकर अपनी जिंदगी बिताता है। यह समझ नहीं पाता कि शराब उसे पी रही है वह शराब को नहीं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में आदिवासी को हमेशा नशे का आदी दिखाई गया है। शायद यह उस समय का यथार्थ हो सकता है, परंतु अपने भविष्य के बारे में न सोचकर, दिनभर भरपूर काम करना और फिर थकावट मिटाने के लिए दारू पीना आदिवासियों की रोजमर्रा की जिंदगी बन चुकी थी। आदिवासियों से कुछ थोड़ी सी दारू के बदले कुछ भी काम करवा लेते थे जंगल के ठेकेदार। या कोई पार्टी का नेता अपना काम करवाने के लिए दारू का लालच देकर आदिवासियों से अपना काम करवा लेते थे। 'अर्जुन' कहानी के अंतर्गत का यह दृश्य बताता है कि किस तरह पीस रहा है दारू के नशे के लिए आदिवासी- "हाँ, हाँ, दारू पी, ताड़ी पी! अभी और दूँगा! वह पेड़ अकेले तो काट नहीं सकेगा! जितने लोग जेल से लौटे हैं,

सबको जुटा ले! मैं तुझे रुपइय्ये दूँगा, दारू दूँगा।"[1] आदिवासी बस्ती के बाहर 'अर्जुन' नाम का बड़ है। जो बहुत पुराना है, शायद पूर्वजों के समय से होगा, उस पेड़ को पार्टी के नेता विशाल महतो को कटवाना है। 'केतु' आदिवासी ऐसे काम पैसे व दारू लेकर काटता है इसी का चित्रण उपरोक्त संदर्भ में किया गया है।

जंगल खत्म होने की कगार पर है, क्योंकि जंगल को भीतर ही भीतर से काटा जा रहा था। नशे के आदी आदिवासी अपने भविष्य के बारे में न सोचते हुए ठेकेदार, जंगल बाबू, सरकार, इन सब की बात सुनकर जंगल को सूना करने का काम कर रहे थे। पुरुषों की भाँति आदिवासी महिलाएँ भी नशे की आदी रहती थी। 'टोना' कहानी में काकी बिना महुआ पीये कोई भी काम नहीं करती थी। उनका मानना था कि महुआ उनके देवता का प्रसाद है। जब वह प्रसाद ग्रहण करेगी तभी देवता प्रसन्न होकर उसकी मनोकामना पूर्ति कर सकता है। नशा, अंधश्रद्धा का मारा यह समाज शायद अपनी इन्हीं आदतों की वजह से भी आगे बढ़ नहीं पाया है। अंधश्रद्धा के अंधकार में फंसा यह समाज अपने आत्मविश्वास को खो रहा है। शायद इसका जिम्मेदार वह खुद भी है। कहानीकार कहानी को अपने वाक्य रचना से सार्थक बना रहा है। इक्कीसवीं सदी का यह युग आधुनिकता को छूते हुए भी अभी भी कहीं दूर अकेला खड़ा है। जहाँ समाज का विकृत चित्र दिखाई देते हैं। महामारी, भूख, शोषण, अत्याचार, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, चोरी, इन सबको आज के युग में एक बड़ा स्थान मिल चुका है। इन सबको अब निकाल बाहर फेंकना किसी एक के वश की बात नहीं। कहानी वर्तमान समय का जीवंत चित्रण कर रही है। आदिवासी समाज गुम हो चुका है इन सब आरोपों के बीच। आदिवासी बेघर हो गया है। आज उसका अस्तित्व खतरे में है, इन्हीं सब प्रश्नों का कारण कौन हो सकता है- हम अर्थात यह समाज जो आगे बढ़ते इंसान की टांग हमेशा नीचे खिंचते रहता है।

---

[1] आदिवासी कथा - महाश्वेता देवी, पृ.सं. 138

3.4.1.8 आदिवासी आक्रोश

आदिवासी आक्रोश से मेरा तात्पर्य है आदिवासी समाज में उत्पन्न होती जागरूकता। आदिवासी शिक्षा को अपना हथियार बनाकर जागरूकता के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है। आदिवासी अब संविधान, सरकार का मतलब समझने लगे हैं। अपने अधिकार क्या-क्या हैं। किन-किन सुविधाओं का लाभ वह उठा सकते हैं। इसके प्रति अब वर्तमान आदिवासी अधिक सतर्क हो गया है। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा 'हादसे' में आदिवासी अपने अधिकारों के लिए विभिन्न आंदोलनों को करता दिखाई गया है। रमणिका गुप्ता इन सब आंदोलनों को अपने मार्गदर्शन में करवा रही थी। यहाँ तक कि वह स्वयं सभी आंदोलनों की प्रतिभागी भी थी। आदिवासी स्त्री या पुरुष आक्रोश से भरा हुआ है वर्तमान समय में। सत्यनारायण पटेल की कहानी 'भेम का भेरू मांगता कुल्हाड़ी ईमान' समाज में स्त्री विद्रोह पर उतर जाए तो वह कुछ भी कर सकती है। इसका साक्ष्य देती है यह कहानी। स्त्री केवल अपना सम्मान मांगती है। अपने अधिकार मांगती है। वह अपने परिवार को अपना सर्वस्व अर्पण करती है तो बदले में वही प्रेम सम्मान वह पाना चाहती है। कालबेलिया जाति के कालुनाथ और सकिना की यह कहानी है। कालुनाथ अपनी पत्नी पर शक करता है और भरी पंचायत में उसे अपने पवित्र होने का ईमान देने को बोलता है। गाँव की पंचायत का भी यही फैसला होता है। तब आक्रोश में आई सकीना भरी पंचायत में सबके सामने कहती है- "ईमान म्हारी एकली को नी, कालूनाथ को भी जाँचो। सकीना साहस स्वर में बोली, यो भी तो दो-दो, तीन-तीन महीना बाहरे रेवे है, किके मालम कि यो अपनी ईमान खराब नी करे।"[1] यहाँ सकीना का आक्रोश अपने अस्तित्व को बचाने के लिए था। अपनी पवित्रता साबित करने के लिए था। सकीना का यह प्रतिरोध समाज के प्रति भी था, जो सिर्फ स्त्री को ही अपनी पवित्रता साबित करने को कहता है।

---

[1] भेम का भेरू माँगता कुल्हाड़ी ईमान - सत्यनारायण पटेल, पृ.सं. 137

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानियों में आदिवासी अपने हक, अधिकार एवं अस्तित्व के लिए लड़ता आया है। अपने स्वयं के फैसले पर उसे बार-बार सोचना पड़ता है। आदिवासी समाज में स्त्री हो या पुरुष आज बहुत आगे की सोचने लगे हैं। उनके अस्तित्व का प्रश्न खड़ा हुआ है। आदिवासी आज जंग करने के लिए भी खड़ा हो सकता है। उतना आक्रोश उनके मन-मस्तिष्क में भर चुका है। आज उनका जल-जमीन-जंगल उनसे छीन लिया जा रहा है। उन्हें बेघर करके सड़कों पर रखा जा रहा है। उनमें बेरोजगारी, शोषण, अत्याचार इन सबसे वह त्रासग्रस्त हो रहे हैं। वर्तमान समय में भी कोई आदिवासी स्त्री अगर कुछ बड़ा करना चाहे, अर्थात उच्च शिक्षा लेना, सरकारी नौकरी करना तो उन्हें आगे बढ़ाया नहीं जाता। इन सभी त्रासदियों के कारण आज आदिवासी आक्रोश से खौल उठे हैं। आदिवासी समाज जागरूकता के मार्ग पर आगे बढ़ने की कोशिश जरूर कर रहा है। यह कोशिश कहीं-न-कहीं खरी भी उतर रही है। 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' में धानी की यही जागरूकता या यूँ कहें उसका आक्रोश कर रहा है- "किसान खातिर जमीन कहाँ है? तो का तोर खेतवा हमेशा बदुरिए जोतते रहेगा? आपन जमीन पउ हड्डी-खोरवा के दखल देख के मन नहीं जरता तोर"[1] आदिवासी अब अपने हक को मार-पीटकर भी छिनने के लिए तैयार बैठा है। कहानियाँ समय-समय का चित्रण करती है। किस समय क्या व्यथा थी। किस दौर से सभी अपनी परेशानियाँ झेल रहे थे। कैसे अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहे थे। कहानी सब कुछ बयान करती है। कहानी उस माहौल में पाठक को ले जाती है जहाँ पाठक पात्रों के साथ अपने-आपको कहानी में देखता है। यही संवेदना आदिवासी कहानी के अंतर्गत भी हमें देखने को मिलती है।

3.4.1.9 आदिवासी संस्कृति का भाव

सबसे अलग सबसे सुंदर जगत में रहता आदिवासी। जो घने पेड़ों के बीच रस्सी का झुला बनाकर बड़ के पेड़ से झुला खेलता नजर आता है। प्रकृति की सुंदरता में आदिवासी

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश कुमार सिंह, पृ.सं. 129

अपनी जिंदगी जीता है। अपनी संस्कृति की विविधता के लिए आदिवासी पूर्ण विश्व में प्रचलित है। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपने शब्दों के अनोखे रूपों से प्रकृति एवं संस्कृति का चित्रण कहानियों में किया है। यह कहानियाँ पाठक को किसी स्वप्न नगरी से कम नहीं लगती जहाँ संस्कृति की विविधता में पाठक खो जाता है। इनके लोकगीत, लोककथाएँ , इनके विभिन्न त्यौहार, भाषा, बोली आदि का आदिवासी समाज में अधिक महत्व है। अपनी संस्कृति से पहचाने जाने वाला आदिवासी जंगलों का पुजारी है। आदिवासियों में हर वर्ष मेला, जात्रा, या हर हफ्ते हाट की प्रथा होती है। मेला या जात्रा आदिवासी युवक-युवतियों के लिए खुशी का समय होता है। प्रेम करने वाले जोड़े, पति-पत्नी, सहेलियाँ यह सभी अपना-अपना झुंड बनाकर मेले या जात्रा में जाते हैं। अलग-अलग प्रांत से मनुष्य यहाँ आते हैं। अपनी दिल खोल मौजमस्ती यहाँ आदिवासी युवा करते हैं। 'जंगली हिरनी' कहानी में भी ऐसे ही युवाओं का चित्रण किया गया है, जो जात्रा की खुशी में नाच रहे हैं, गा रहे हैं- "खा-पीकर मस्त होकर दो टोलियों में युवती-युवक बँट गए। लड़कों ने सिर पर सींग और उसमें लटकी कौड़ियों की लड़े, मोर पंख पहन रखा था और लड़कियों ने गले भरकर मूँगों की माला, सिर में बाँस की कंघी खोंसे, जूही के फूल लगाए, एक हाथ में लकड़ी पकड़े नाच शुरू किया।"[1]

आदिवासी संस्कृति को संभाले रखने की जिम्मेदारी हम सबकी है। परंतु यह संस्कृति मिटती जा रही है। भूमंडलीकरण ने सब वस्तुओं को खत्म कर डाला है। इसलिए अब आदिवासी भी गायब होता नजर आ रहा है। आदिवासी संस्कृति भारत की एक अलग ही पहचान है। भिन्नताओं से भरा यह देश अब आदिवासी संस्कृति को तहस-नहस करके आगे बढ़ रहा है। आज का आदिवासी शहर पहुँचकर पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहा है। आज का आदिवासी अपनी मूल भूमि को छोड़कर शहर की तरफ भागने को मजबूर हो गया है। इतनी त्रासदी का सामना करने के बाद भी जो आदिवासी अभी अपनी जमीन पकड़े हुए हैं।

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 228-229

वह अपनी संस्कृति को आगे बढ़ाकर चल रहे हैं उनकी विशेषता ही उनकी संस्कृति है। केदार प्रसाद मीणा की कहानी 'इसी सदी के असुर' के अंतर्गत आदिवासी के खुशी के दिनों का वर्णन किया गया है। जब खेती में फसल अच्छी होती है तब आदिवासियों के लिए यह किसी त्यौहार से कम नहीं होता। साथ-साथ अगर वह किसी त्यौहार के दिन में फसल भी अच्छी मिले तो खुशी का ठिकाना नहीं रहता- "नई-नई शादी की उमंग, बाप होने का चढ़ता हुआ रंग, ऊपर से साल अच्छी फसल ... मड़ुआ और मकई दोनों से भरा-भरा घर.... कौन था उसके जैसा खुशी से भरा-पूरा ... वह तो पागल ही हो गया था। जंगल में पार के असुर गाँव सरहुल पर्व के आने के आनंद में डूबे थे। जवान लड़के-लड़कियों का गीत रह-रह कर गूंज रहा था- "डाड़ी बुरु रे गोटा बुरू हरीचर तबारे। ही गोटा डाइर हयिट तना।"[1] जंगल खुशहाल है, फल-फलों से पूर्ण है। बरखा का पानी टिप-टिप करके बरस रहा है। आदिवासी संस्कृति का वर्णन कहानीकार ने कितने सुंदर शब्दों से किया है। आदिवासियों की संस्कृति, उनके त्यौहार, पर्व आदि उनके जीवन की मूल पहचान है। जो बहुत सुंदर है।

3.4.1.10 आदिवासी मान्यताएँ

आदिवासी समाज अंधविश्वास पर अधिक विश्वास करता है। जो उनके सामने प्रत्यक्ष रूप से नहीं है, वह ऐसी अंधविश्वासी बातों पर भी आदिवासी विश्वास करते हैं। इन्हीं विश्वासों से वह विभिन्न मान्यताओं को मानता है। मान्यताएँ जादू-टोने की हो सकती हैं। देवी देवताओं की हो सकती है। भूत-प्रेत की हो सकती है या किसी को न्याय दिलाना हो, उसकी हो सकती है। 'भेम का भेरू माँगता कुल्हाड़ी ईमान' में कालबेलिया जाति की एक मान्यता है- "कालबेलियों में ईमान देने का तरीका चुनने का हक औरत को नहीं था। उसे ईमान देना था, तरीका जो भी तय किया जाए। वह ईमान देने से मना नहीं कर सकती। मना करने पर बगैर ईमान जांचे ही वह दोषी मान ली जाती। दोषी माने जाने पर पंचायत जो भी दंड मुकर्रर करे उसे

---

[1] आदिवासी कहानियाँ - केदर प्रसाद मीणा, पृ.सं. 94

भोगना होता।"[1] यह मान्यता सामाजिक तौर से देखी जाए तो सही नहीं क्योंकि प्रत्येक स्त्री को अपनी तरफ से बोलने का अधिकार जरूर होना चाहिए। सिर्फ पुरुष ही क्यों अपनी गाथा सुनाते बैठे। ऐसी विचित्र मान्यताओं ने कहीं-न-कहीं आदिवासी स्त्रियों को आगे बढ़ने नहीं दिया। मातृसत्तात्मक समाज होते हुए भी माँ को उसका सही अधिकार नहीं मिल पा रहा है। यह मान्यताएँ किसी भी तरह से सच के पलड़े में नहीं उतर सकती है।

और एक मान्यता शायद इसी वजह से आदिवासी जंगल को बचा भी पा रहे थे। आदिवासी पेड़ों को देवता मानकर उसकी पूजा करते थे। पेड़-पौधों की पत्तियाँ, फूल, नसे औषधि के रूप में इस्तेमाल किए जाते थे। इसलिए पेड़ आदिवासी जीवन का प्राण था। 'अर्जुन' कहानी में पेड़ों का महत्व बताता हुआ दीगा- "शादी-बियाह पड़ने पर, हम सब वहाँ जाकर ढोल-नगाड़ा बजाते हैं, मनौती के बाल मुंडाकर वे बाल वहीं ... उसी पेड़ तले गाड़ देते हैं। अरे, बड़ा देते-दानिया, दवाओं के गुणों से भरा पड़े हैं, दीगा का बप्पा, उन औषधियों के गुण पहचानता था।"[2] समाज मान्यताओं को तैयार करता है। यह किसी विशेष रूप में विशेष समय बनाई हुई घटनाएँ हैं, जिनका आदिवासी जीवन में अधिक महत्व है। सरकार जैसे विभिन्न कानून अपने समाज के लिए बनाता है। ठीक उसी तरह आदिवासी समाज भी अपने समाज के लिए कुछ मान्यताओं का निर्माण किया हुआ है। यह आज बनाई या सोची हुई मान्यताएँ नहीं बल्कि सदियों से चलती आ रही हैं। इनमें से कुछ मनुष्य के लिए अच्छी भी है। और कुछ बुरी भी है। अर्थात जैसे सकीना को दिया हुआ दंड जो कहीं से भी सही नहीं था। ऐसी ही विभिन्न मान्यताओं से संस्कृति से आदिवासी पहचाना जाता है। यही उसकी मूल सौगात है जो वह सदियों से संजोता आया है।

अत: आदिवासी समाज आज खतरे की ईंट पर खड़ा है। आज वह विभिन्न आंदोलन कर रहा है अपने अधिकारों के लिए अपने अस्तित्व के लिए। आदिवासी संस्कृति का ह्रास

---

[1] इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिन्दी कहानी - सूरज पालीवाल, पृ.सं. 134

[2] आदिवासी कथा - महाश्वेता देवी, पृ.सं. 139

होता जा रहा है। आदिवासी विस्थापित हो रहा है। उसके जंगल कहीं खो से गए हैं। आज वह बड़ी विपदा का शिकार बन रहा है। आदिवासी कहानियाँ इक्कीसवीं सदी का ऐसा माहौल हमारे सामने बयान करती है जहाँ आज पूर्णत: पाश्चात्य संस्कृति का आगमन हो चुका है। खान-पान, कपड़े, पद्धतियाँ सब कुछ बदलता जा रहा है।

3.4.2 दलित संवेदना

हम हमारा देश बहुभाषिय, बहुसंस्कृति को मानते हैं। हम यह भी कहते हैं कि यहाँ विविधता में एकता है। यह कथन सही है, यह भी हम कह सकते हैं। विविधता में एकता वाला यह देश सभी कुल जाति को सुई-धागे की तरह एक के साथ एक जोड़ता आया है। परंतु यही विविधता हमें शायद उन दलित समाज से नहीं जोड़ती जहाँ मनुष्य ही जन्म लेता है। वह भी हाड़-मांस से बना है। उसे चोट लगने से उसका भी लाल रंग का रक्त ही बहता है। क्यों दलितों को हर वस्तु के लिए क्रांति या आंदोलनों का सहारा लेना पड़ता है। धरती पर जन्मे प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार होता है कि वह अपने तरीके से अपना जीवन व्यतीत करे। किसी भी मानदंड में गिनने से पहले मनुष्य की जाति या वर्ग को ही क्यों पूछा जाता है। हमारे भारतीय समाज में जातियों को चार वर्णों में बाँट दिया जाता है। वह है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। 'शूद्र' एक ऐसा शब्द है जो मनुष्य को मनुष्य से दूर करता है। दलितों को शूद्र या पिछड़ा वर्ग ऐसे संबोधित करते हैं। दलित अछूत होता है, उनके स्पर्श मात्र से ही साधारण सवर्ण मनुष्य अछूता बन जाता है। यह कहना कहाँ तक सही होगा? मनुष्य जानवर को छूते हैं, उन्हें खाना, घास डालते हैं तो क्या उनके स्पर्श मात्र से मनुष्य जानवर बन जाता है। किसी भी प्राणी को छूने से हम अपवित्र नहीं होते, तो मनुष्य के छूने से अपवित्र कैसे हो सकते हैं। ऐसे ही सभी प्रश्न शायद दलितों के मन में भी बार-बार तलवार की चुभते होंगे।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भी हमें दलितों पर हुए शोषण एवं अत्याचार, उत्पीड़न की भावना सामने दिखाई देती है। दलितों को अपनी पहचान दिलाने वाले या यूँ कहें दलितों के

ईश्वर डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर जी के कठोर परिश्रम एवं मेहनत से दलित वर्ग को दुनिया में सबके साथ जीने का हक, सम्मान एवं अधिकार प्राप्त हुआ है। बाबा साहब जी ने दलित वर्ग की स्थिति को बदलने का अटूट प्रयत्न किया। जिसमें वह कामयाब भी हुए। धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचारों का बाबा साहब ने जमकर विरोध किया। बाबा साहब के कदमों पर चलने वाले दलित साहित्यकार जैसे जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, नामदेव ढसाळ, कौशल्य बैसंत्री आदि लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज को एक बड़ी विचारधारा एवं सोच का रास्ता दिखाया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में दलित उत्पीड़न और शोषण, अत्याचार को हम प्रत्येक क्षेत्र में देख सकते हैं। आज का वर्तमान समाज जहाँ दलित वर्ग शिक्षित हो या अशिक्षित उसकी योग्यता उसके कौशल से ना देखकर उसके वर्ग या जाति से देखा जाता है। गुणवत्ता अगर वर्ग से ना नापकर उसकी योग्यता से नापी जाए तो दलित वर्ग भी उच्च श्रेणी का माना जाएगा। अस्पृश्यता भेदभाव मनुष्य को मनुष्य के प्रति तिरस्कार निर्माण करने को विवश कर देता है। जो दो पवित्र भावनाओं को एकत्रित मिलने नहीं देता। कहानी यथार्थ को बयान करती है। दलित शोषणवादी कहानियाँ पढ़कर पाठक वर्ग के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कितने त्रासदी भरे जीवन को व्यतीत करके यह वर्ग आगे बढ़ा है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी स्तरों पर दलितों को चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। दलित स्त्री की व्यथा तो त्रासदी की सीमा ही पार कर चुकी है। दलित स्त्री सवर्णों के साथ-साथ खुद के घर में भी सुरक्षित नहीं। अनेक विपदाओं का सामना कर दलित स्त्री स्वयं के अंदर आत्मविश्वास जगाने का काम स्वयं ही कर रही है। वर्तमान समय में दलित बहुत आगे की सोच रहा है। उसे अब 'स्व' की भावना की अनुभूति हो चुकी है।

3.4.2.1 अस्तित्व का प्रश्न

प्रेमचंद के 'घीसू' से लेकर रत्नकुमार सांभरिया के 'पुछाराम' तक दलितों का प्रश्न वहीं खड़ा रहा है। वह प्रश्न- हमारा अस्तित्व कहाँ है? लगभग दोनों कहानियाँ 'कफन' तथा

‘बदन दबना’ में एक सदी का अंतर है। फिर भी दोनों की परिस्थितियाँ वर्तमान समय में भी एक ही हैं। अपने अस्तित्व के लिए लड़ता आ रहा दलित समाज बहुत सी कठिनाइयों का सामना करता आया है। दलित त्रासदी का कोई निवारण नहीं। क्योंकि छुआछूत की भावना कहीं न कहीं आज भी वही है। बहुत सी जगह तो स्वयं बहुजन वर्ग ही अपनी पहचान छुपाना चाहता है। जिसका मूल कारण शायद वह चैन से सबके साथ जीना चाहता है। वह भी सामान्य मनुष्य की तरह चार लोगों में घुल-मिलकर रहना चाहता है। अपने अस्तित्व को समाज से बचाना चाहता है। दलितों की पीड़ा शुरुआत से अब तक कम नहीं हुई है। हाँ, यह कह सकते हैं कि पीड़ा की मात्रा कम हुई है। अपने अस्तित्व को समाज ढूंढना क्या यह सही है। मनुष्य, मनुष्य होता है, तो फिर ऊँच-नीच की भावना से, बस दलितों को ही क्यों अपने अस्तित्व पर सवाल उठते हैं। आदिवासी समाज यह भी सवर्ण समाज का भाग नहीं। परंतु आदिवासी तथा दलित दोनों को एक तराजू में नापा जाए तो दलितों की त्रासदी आदिवासियों से अधिक दिखाई देती है।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक ‘संघर्ष’ कहानी का ‘शंकर’, ‘बदन दबना’ कहानी का पुछाराम, ‘घुसपैठिये’ कहानी का ‘सुभाष सोनकर’ ऐसे पात्रों को सामने लेकर आया है। इन पात्रों के ऊपर दलित होने की त्रासदी का कोई अंत नहीं है। अपने अस्तित्व के लिए प्रत्येक पात्र संघर्ष करता दिखाई गया है। सभी पात्र शिक्षित हैं। अपना भला बुरा समझ सकते हैं। फिर भी वह जीत नहीं पाते। सवर्णों की दुनिया इन्हें आगे बढ़ने नहीं देती। ‘बदन दबना’ कहानी के अंतर्गत ‘पुछाराम’ की बहन ‘जमना’ की शादी करानी होती है। परंतु पुछाराम के पिता रेमाराम के पास शादी करवाने के लिए पूर्ण पैसे नहीं होते। रेमाराम स्कूल के हॉस्टल से पुछाराम को हल्कासिंह ने घर में बंधुआ रखकर अपनी बेटी की शादी रचानी चाही। क्योंकि रेमाराम के पास दूसरा कोई रास्ता नहीं बचा था। यहाँ पुछाराम की विवशता अपने अस्तित्व पर प्रश्न उठाती रहती है। पुछाराम को ही क्यों स्कूल छोड़ना पड़ा। बस कुछ नोटों की गड्डी

के लिए- "सौदा तय था। नोटों की गड्डी हाथ में आते ही रेमा के चेहरे से चिंता के बादल छंट गए थे। चैतन्य की रोशनी चमकने लगी थी। ब्याह की रौनक दिखने लगी थी। खुशी की गफलत, उसे इतना भी होश नहीं, जिस बेटे को वह पाँच साल के लिए रखे जा रहा है, उसके सिर पर जुदाई का हाथ फेर दे।"[1] पुछाराम विवश था उसके हॉस्टेल के कमरे में गांधी तथा अम्बेडकर दोनों की तस्वीरें थी। जो समझाती थी करो या मरो, पर किसी के नीचे ना झुको। पुछाराम यह सब देख रहा था। सातवीं तक उसने पढ़ाई की थी। बाद में पिता ने बंधुआ बना डाला। बस तेरह वर्षीय पुछाराम को उसके मालिक 'हल्का सिंह' के प्रति आक्रोश की भावना थी। क्योंकि उसी की वजह से पुछाराम को स्कूल छोड़ना पड़ा। यही त्रासदी प्रत्येक दलित छात्र की है। उन्हें पढ़ना तो है, परंतु उनके पास पढ़ाई के कोई जरिए नहीं। मनुष्य शिक्षा का मार्ग धर ले तो भविष्य वह अपना भला-बुरा स्वयं समझ सकता है। लेकिन यह दुनिया उन्हें शिक्षा क्षेत्र में आगे बढ़ने ही नहीं देती। अपने अस्तित्व को बचाए या फिर अपनी जिंदगी को बचाए रखे, इसी की सोच दलितों को हमेशा परेशान करते रहती है। इक्कीसवीं सदी का कहानी जगत दलित वर्ग की समस्याओं को लेकर आगे बढ़ा। दलितों की अस्तित्ववाद की त्रासदी को मार्मिक ढंग से कहानियों में चित्रित किया गया। जिसे पाठक वर्ग आत्मसात कर सके। दलितों के प्रश्न समझ सके। उनकी विपदा को महसूस कर सके। उनके अस्तित्व को सम्मान दे सके। दलित वर्ग का शोषण कम कर सके। उन्हें आत्मसम्मान दे सके।

3.4.2.2 छुआछूत व जातिवाद की त्रासदी

अस्पृश्यता शब्द सुनकर ही मन में एक बेचैनी सी उत्पन्न हो जाती है। दलित समाज इस शब्द के साथ किस तरह से सोता-जागता होगा, यह हम समझ भी नहीं सकते। यह छुआछूत बस शरीर के बाहर तक होती तो ठीक था। परंतु जातिवाद, छुआछूत की भावना ने दलित समाज के मानव हृदय पर वार किया है। जिससे यह समाज कितना भी बाहर आने की

[1] खेत तथा अन्य कहानियाँ - रत्नकुमार सांभरिया, पृ.सं. 110

कोशिश करे। वह शह नहीं पा सकता। जितने भी गंदे काम हैं, अर्थात मैला ढोना, बस्ती की साफ सफाई करना, मरे हुए जानवरों को गाँव बाहर लेकर जाना या फेंक देना, श्मशानों की साफ-सफाई करना, जूते बनाना यह सब काम दलितों को सौंपे गए हैं। यह काम दलितों के पूर्वज के पूर्वज भी करते आये हैं। एक तरह से देखा जाए तो दलित समाज सवर्ण समाज को स्वच्छ रख रहा है। इसके बदले दलितों को नाम मिला 'अछूत' क्योंकि दलित उपरोक्त सभी काम करते हैं। सोचा जाए अगर इन्होंने समाज में मैला ढोने का काम नहीं किया तो क्या यह सवर्ण समाज चैन और खुशहाली की जिंदगी बच सकता है। उत्तर होगा नहीं। सवर्ण समाज अपने को ऊँचा दिखाने के लिए किसी भी हद तक गिर सकता है। परंतु वह मैला ढोने जैसा कार्य तो बिल्कुल ना करेगा। भंगी बोलकर दलितों को बुलाया जाता है। जैसे छोटे बच्चे को यह प्यार से कोई अच्छा सा नाम देते हैं। उसी प्रकार दलितों को भंगी नाम प्राप्त हो गया है। भंगी का शाब्दिक अर्थ भंग या नष्ट करना होता है। इसका अर्थ दलित समाज की गंदगी को नष्ट कर रहा है। समाज को स्वच्छ बना रहा है। फिर भी दलित अछूत है। जिसने पूर्ण देश को स्वच्छ रखने का प्रण लिया, उसी देश के वासियों ने दलितों को अछूत कहकर दूर कर दिया।

इक्कीसवीं सदी की दलित कहानियों में छुआछूत, जातिवाद की भावना प्रत्येक कहानी में चित्रित की गयी है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'तलाश' जो छुआछूत का जातिवाद का एक प्रबल और उदाहरण देते हैं- "आप नहीं जानते साहब, रामबती चूहड़ी है। एक चूहड़ी से खाना बनवाएँगे आप? माँस मछली पता नहीं क्या-क्या खाती है। मुझे तो सोचकर ही घिन-सी आ रही है और वह रसोईघर के अंदर घुसकर सब चीजों को छुएगी।"[1] 'तलाश' कहानी में लेखक ने एक शिक्षित समाज को चित्रांकित किया है। एक सभ्य समाज को शिक्षित है। सरकारी नौकरी करता है, परंतु मानसिकता शायद अभी भी पूर्वजों जैसी ही है। रामवीर सिंह शिक्षित दलित एक साहित्यकार कमरे की तलाश में शहर पहुँचा। पर छुआछूत

---

[1] तलाश - जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं. 26

एवं जातिवाद ने उनको झकझोर दिया। रामवीर सिंह ना सुनकर कोई नहीं समझ पाये कि वह दलित समाज से है। क्योंकि उनके नाम में 'सिंह' शब्द था। इसलिए रामवीर को कभी भी जातिवाद की त्रासदी ने सताया नहीं। लेकिन जब उसके घर में काम करने वाली दलित समाज की एक औरत है और यह रामवीर सिंह के घर के मालिक गुप्ता जी को पसंद नहीं। क्योंकि दलित समाज की औरतें बस सवर्ण के आंगन तक ही काम कर सकती थी। उनको सवर्णों के घर में आने की अनुमति नहीं है। दलित पुरुष या महिला अगर गलती से भी सवर्ण के घर में आ गए तो उनका घर अपवित्र हो जाता। वह पूर्ण घर में गौमूत्र छिड़कते। यह सब रामवीर सिंह को पसंद नहीं आया। उन्हें अपने समाज को मिल रहा यह तिरस्कार अच्छा नहीं लगा। और उन्होंने गुप्ता जी का मकान खाली कर दिया। काम वाली स्वच्छ थी, उसके कपड़े धुले हुए अच्छे थे। वह काम भी अच्छा करती है, लेकिन काम वाली का एक बड़ा गुनाह है कि वह दलित समाज से आती है। क्या ऐसी घटनाओं को देखकर पाठक वर्ग के रोंगटे खड़े नहीं होते होंगे। क्या गलती है दलितों की जो उन्हें काम करके जीने भी नहीं देते। जिस रास्ते पर सवर्ण रात-दिन चलते हैं वह रास्ते दलितों से ही साफ होते हैं। तो रास्ते भी तो शायद अपवित्र हो जाते होंगे। तो फिर रास्तों को गौमूत्र या गंगाजल से पवित्र क्यों नहीं किया जाता।

3.4.2.3 शिक्षा की त्रासदी

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जी ने संविधान से दलित शिक्षा का अधिकार प्राप्त कर लिया था। सब उत्साहित भी थे कि अब दलित भी स्कूल जाएगा उसे भी शिक्षा प्राप्ति का अवसर मिलेगा। अब दलित भी अफसरों की तरह सबके साथ उठ-बैठ पाएगा। परंतु यह सब सपना सा ही था। गाँव के ठाकुर, पंडित यह बिल्कुल नहीं चाहते थे कि चमार और भंगी के बेटे पंडित, ठाकुर इनके बेटों के साथ एक ही बेंच पर बैठकर पढ़ाई करे। शिक्षा की जागरूकता आ गई थी, परंतु वह सब तरफ फैल नहीं पायी थी। इसलिए बहुत सा दलित वर्ग शिक्षा से वंचित था। छोटे-छोटे बच्चे स्कूल जाने की जिद करे तो उन्हें मार-चपाट का यूथ किया जाता।

ब्राह्मणवादी विचारधाराओं ने दलितों के अंदर शिक्षा का भाव जाग्रत ही होने नहीं दिया और जो जागरूक होने वाले युवक अपनी शिक्षा की डोर को पूर्ण करके आधे ही रास्ते अपना दम तोड़ देते। मैं यहाँ घुसपैठिये कहानी के सुभाष सोनकर की बात कर रही हूँ। सुभाष सोनकर जो मेडिकल कॉलेज में प्रथम वर्ष का विद्यार्थी था। सुभाष को प्रत्येक वस्तु के लिए कॉलेज में सवर्ण लड़के छेड़ते रहते। उसे हॉस्टल में भी चैन से न रहने दिया जाता था। कॉलेज में हुए कुछ झगड़ों की वजह से सुभाष पुलिस स्टेशन जाकर रपट लिखवाता है। यह बात सवर्ण विद्यार्थियों को बिल्कुल पसंद नहीं आयी। उन्होंने सुभाष सोनकर मार डालकर उसने आत्महत्या कर दी है बोलकर पूरे कॉलेज में फैला दिया। सवर्ण विद्यार्थियों के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं थी। परंतु यह न्याय तो नहीं हुआ ना। शिक्षा पाने का अधिकार भी दलितों से छीना जा रहा है।

इक्कीसवीं सदी की दलित कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं को कुचल देने वाली थी। एक-एक कहानी से एक-एक नए किस्से बाहर सुनने को मिलते जो हृदय को छलनी किए जा रहे थे। पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को कभी आगे बढ़ने नहीं दिया जाता। किसी-न-किसी मार्ग पर उन्हें तोड़ने का कार्य ही करते हैं। सुभाष सोनकर की मौत के बाद खबर निकलती है- “राकेश साहब, सुभाष सोनकर बलि चढ़ गया है ....।”[1] इसी तरह चित्रा मुद्गल की एक लघु कथा ‘नाम’ के अंतर्गत भी ऐसी ही त्रासदी को चित्रित किया गया है। एक माँ अपने बच्चे को स्कूल भेजना चाहती है। उसे पढ़ा-लिखाकर बड़ा आदमी बनाना चाहती है। इसके लिए स्कूल जाना बहुत जरूरी है। पढ़ना-लिखना बहुत आवश्यक है। अगर शिक्षा नहीं तो जीवन नहीं। इन सब बातों को डोमिन माँ समझती है और अपने बच्चे को स्कूल भेजना चाहती है। परंतु गाँव के ठाकुरों को यह मंजूर ना था उन्होंने हमेशा दलितों को रोका। गाँव का सरपंच ठाकुर रिछपाल सिंह डोमिल माँ से कहता है- “तुम्हारी सुअर-सी औलादों को स्कूल में संग बैठने-

---

[1] घुसपैठिये - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 13

पढ़ने की सरकारी इजाजत क्या मिल गयी कि तू मतउु, दतऊ, धनकुआ, ईसुरी नाम छोड़ बाँभन, ठाकुरों के नाम रखने लगी? तेरा बेटा देवेन्द्र प्रताप सिंह हो गया है तो तू हो गयी उसकी महतारी ठकुराइन! क्यों, हो गयी न!"[1] दलित वर्ग की विवशता उनका आत्मसम्मान तोड़ रही है। उनकी उम्मीद की पहली सीढ़ी जो शिक्षा है उसे भी चढ़ने नहीं दे रही। शिक्षा के अभाव के कारण दलितों को सरकार से आयी विविध सुविधा के बारे में पता नहीं चलता। वह सुविधाओं का लाभ नहीं उठा सकते। अच्छी शिक्षा लेकर उच्च पद तक उन्हें पहुँचने नहीं देते। इन सबका बस एक ही कारण है कि वह दलित है। दलित, दलित बनकर जन्म लेता है तो उसमें उसका क्या गुनाह है। शिक्षा का अधिकार दलित को भी चाहिए।

3.4.2.4 भ्रष्टाचार तथा धार्मिक धारणा

धर्म के नाम पर होता पाखंड पूरा भारतवर्ष देख रहा है। भगवान के नाम से होते त्यौहारों पर अनगिनत पैसा लूटा जाता है। इसका अहसास सबको होता है। पर बोलना कोई नहीं चाहता। ब्राह्मणों के समाज में भगवान सर्वश्रेष्ठ है। उनसे आगे कुछ नहीं। फिर यह ब्राह्मणवादी समाज भगवान का आदेश मानते क्यों नहीं। अर्थात भगवान जातिभेद नहीं मानते तो ब्राह्मण क्यों मानते हैं। अगर ब्राह्मण सही है तो भगवान सही है। धार्मिक आडंबरों ने, पाखंड ने समाज को अंदर ही अंदर खोखला बना दिया है। मनुष्य को कुछ सोचने नहीं देता। इसी वजह से भ्रष्टाचार, जातिवादी भावना हर तरफ दिखाई देती है। एस.आर. हरनोट की कहानी 'सवर्ण देवता दलित देवता' दलित समाज की एक अनोखी कहानी है। यह कहानी सहजराम की है। जो दलित समाज का नागरिक है। हरनोट जी की कहानियों में पहाड़ी चित्रण अवश्य होता है। पहाड़ी दलितों की यह कहानी है। इनका एक पारंपरिक त्यौहार होता है जिसका नाम 'भुण्डा' है। यह त्यौहार प्रत्येक बारह वर्ष में एक बार मनाया जाता है। इस उत्सव में दलितों की बड़ी ठाट होती है। क्योंकि आजकल इन्हें कोई अछूत नहीं मानता। इस परंपरा में

[1] लपटें - चित्रा मुद्गल, प.सं. 106

पहाड़ के ऊपर दो चट्टानों के बीच एक बड़ी रस्सी बांधी जाती है। जिस पर किसी एक दलित को चढ़ाया जाता है। और एक तरफ से दूसरी तरफ जाने को कहा जाता है। रस्सी पर चढ़ने वाले इंसान को पवित्र माना जाता है। भले ही वह दलित हो एक दिन वह देवता बन जाता है। जब तक रस्सी पकड़े हैं, वह देवता है। उसके अंदर एक विशिष्ट शक्ति का जन्म होता है। परंतु रस्सी पर चढ़ने से पहले दलित अछूत ही है उन्हें देवता की किसी भी वस्तु को हाथ नहीं लगाना है। नहीं तो वह वस्तु अपवित्र बन जाती है- "ओ छोकरे! तेरा दिमाग खराब हो गया है। दिखता नहीं तेरे को। यहाँ रथ रखा है। उसे छू दिया तैंने। तेरी हिम्मत कैसे हुई यहाँ आने की और रजाई में हाथ लगाने की।"[1]

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में दलितों की विभिन्न त्रासदियों का विश्लेषण किया गया है। दलित साहित्य दलितों के धार्मिक पाखंड से हुए भेदभाव को दर्शाता है। ब्राह्मणवादी विचारधारा किस तरह से दलितों की मानसिक संवेदनाओं को चूर-चूर करती है, यह स्पष्ट होता है। हमेशा पाँव की धूल की तरह दलितों को देखा गया। उनकी त्रासदी की कोई सीमा नहीं। 'संघर्ष' कहानी का 'शंकर' भी भगवान बनना चाहता है। अपनी नानी से सुनी राम, कृष्ण, शंकर भगवान की कहानियाँ शंकर को बहुत भाती है। उसे लगता भगवान शक्तिशाली है। सबके दुख दूर करता है। इसलिए दलित शंकर को भी भगवान बनना है। कहानियों में दर्शाती यह आत्मीय भावना, खरे तौर पर देखा जाए तो बहुत कुछ सिखला जाती है। दलित समाज की नानी अपने पोते को अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले की कहानी न सुनाकर भगवान की कहानी सुनाती है। शायद यही वह ब्राह्मणवाद है। जो संपूर्ण दलित समाज को डराकर रख रहा है। धार्मिकता मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाली हो तो ऐसे धर्म का क्या फायदा। जो एक दूसरे को जोड़ने के बजाय तोड़ने का काम करती है। शायद यही विडंबना दलित समाज में फैली हुई है। अगर खाने को रोटी ना मिले तो जीएंगे कैसे, सवर्णों से लड़ाई-झगड़ा कर बचेंगे

[1] जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ - एस.आर. हरनोट, पृ.सं. 69

कैसे? इन्हीं प्रश्नों में दलित उलझा हुआ है। भ्रष्टाचारी समाज अंधविश्वासों को बढ़ावा देता है। जैसे 'सलाम' कहानी की 'सलाम प्रथा'। कितना भी आगे बढ़ जाने के बाद भी सवर्णों के नीचे झुकना ही पड़ेगा। यही त्रासदी दलित शिक्षित वर्ग की है। जिसे अब किसी के पैरों तले नहीं रहना।

3.4.2.5 दलित स्त्री उत्पीड़न

स्त्री कोई भी समाज की हो, वह समाज की कठपुतली है। जो जहाँ घुमायेगा वहाँ घुम जाएगी। उसकी स्वयं कोई भावना नहीं। यह त्रासदी सवर्ण हो या दलित या आदिवासी, सभी स्त्रियों की यह विपदा है। परंतु यह विपदा सबसे अधिक दलित स्त्री की है। दलित स्त्री घर के बाहर ही नहीं, घर के अंदर भी सुरक्षित नहीं है। जहाँ दलित समाज का कोई मान-सम्मान नहीं वहाँ दलित महिला को क्या इज्जत और सम्मान मिल सकता है। हमेशा दलित महिला पैरों को धूल समझा गया। उसे वेश्या बनाया गया। उसकी कोई भी मान-मर्यादा नहीं रखी गयी। भारतीय समाज पितृसत्तात्मक है। यहाँ पुरुषों का ही राज चलता है। घर का मुखिया पुरुष ही रहता है। दलित समाज भी पुरुष प्रधान है। यहाँ भी पुरुषों की ही चलती है। स्त्री शोषण घर, बाहर हर तरफ होता ही रहता है। इन सबके बीच स्त्री, एक दलित स्त्री जैसे गिद्ध और चील के झुंडों में फंसी हिरणी की तरह होती है। जो हर वक्त अपनी जान बचाकर, छुपाकर आगे बढ़ती है। कालीचरण प्रेमी की कहानी 'उसका फैसला' स्त्री मन को चूर-चूर करने वाली कहानी है। जो स्त्री की भावना न समझते हुए उसे मर जाने के लिए विवश कर देती है। बिंदो चंदर की पत्नी जो पतिव्रता है उसके जीवन में उसके पति के सिवाय और किसी को उसने देखा ही नहीं। परंतु उसका पति, ससुर तथा उसका समाज उसे बदचलन का नाम उसके माथे पर चिपका देता है जिससे वह अपना पीछा नहीं छुड़वा सकती। बिंदो को गाँव प्रधान, उसका ससुर उसके मर्जी के खिलाफ उस पर जबर्दस्ती करते हैं। यह बात वह अपने पति तथा ससुर से कहती है। परंतु कोई उसका सच सुनना ही नहीं चाहता। न पति सुनता है न सास सुनती है।

गाली गलौज करके उसके अस्तित्व पर सवाल खड़े किये जाते हैं। उसके चरित्र को भरी पंचायत में उछाला जाता है।। बिंदो को पता है यह समाज उसकी एक न सुनेगा। उसे धिक्कारेगा। निर्णय लेने वाला गाँव के सरपंच के बेटे ने ही उसका बलात्कार किया होता है। और पंचायत में निर्णय के लिए भी प्रधान को ही कहते हैं- "जा चन्दर, अपनी जोरु को पंचायत में सबके सामने लेकर आ। हम उससे कुछ सवाल पूछना चाहते हैं ताकि कल को कोई कहे न कि बिना पूछे-गछे फैसला एक तरफा कर दिया। हम सबको न्याय चाहते हैं।"[1] जिसने बलात्कार किया वही निर्णय लेने वाला था। बिंदो को क्या न्याय मिलने वाला है यह पहले से पता था। वह किसी को नहीं देखती उसे किसी का न्याय नहीं चाहिए। वह सीधे कुएँ में कूदकर अपनी जान दे देती है।

निर्दयी समाज स्त्री की कोमल भावनाओं को समझ नहीं पाता या समझना ही नहीं चाहता, यह बड़ा प्रश्न है। फिर भी ऐसी निर्दयी दुनिया में वह अपने परिवार के लिए जीती है। अपने बच्चों के लिए अपनी पूरी जिंदगी न्यौछावर कर देती है, परंतु फिर भी उसे उसकी साधना का पूरा फल नहीं मिल पाता। कहानियाँ पाठक को समय का परिचय देती हैं। दलित स्त्री की त्रासदी पचास वर्ष पूर्व की हो या इक्कीसवीं सदी की, उसके चरित्र पर सवाल तो उठाए ही जाते हैं। इसलिए वह खुद को कभी-कभी लाचार समझती है। दीपक शर्मा की 'चमड़े का अहाता' के अंतर्गत स्त्री पुरुष प्रधन समाज में कितनी बेबस होती है यह चित्रित किया गया है। बेटी हुई तो चमड़े के टंकी में फेंक देते क्योंकि लड़की बोझ होती है- "तुम्हारी एक नहीं, दो बेटियाँ टंकी में फेंकी गयी, पर तुम्हारी रंगत एक बार नहीं बदली। मेरी बांधनी माँ ने जान दे दी, मगर जीते-जी किसी को अपन बेटी का गला घोंटने नहीं दिया।"[2] प्रस्तुत संदर्भ में औरत के दो रूपों का परिचय दिया गया है। एक वह है जो पति के डर से कुछ नहीं कहती और अपनी दोनों बेटियों का गला खुद के सामने दबाते देखती। मर जाने के बाद टंकी में

[1] नयी सदी की पहचान - श्रेष्ठ दलित कहानियाँ - मुद्राक्षस, पृ.सं. 104

[2] नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ महिला कथाकार, ममता कालिया, पृ.सं. 115

फेंकते देखती पर कुछ न कहती। और दूसरी ओर एक माँ बाघिन की तरह है जो अपनी बेटी को मारने नहीं देती स्त्री हो या पुरुष दोनों ही एक गाड़ी के पहिये होते हैं। फिर समाज एक ही पहिये से गाड़ी कैसे चलाएगा। दलित स्त्री अपनी वेदना भरी त्रासदी का चित्रण किसके साथ कहे वह समझ नहीं पाती। क्योंकि कौन अपना कौन पराया यह वो ढूंढ नहीं पा रही है।

3.4.2.6 दलित चेतना का विकास

दलित अभी 'स्व' के बारे में सोचने लगे हैं। अर्थात अब अपने अधिकार, हक के बारे में विचार कर रहे हैं। वह शिक्षा को आधार बनाना चाहते हैं। उनको पूरा साथ मिल नहीं मिल पा रहा है। फिर भी वह लड़ने को तैयार बैठे हैं। इक्कीसवीं सदी का समाज साहित्य का आईना बन रहा है। आईने में दलित खुद का अस्तित्व देख रहे हैं। वह समझ रहे हैं उन्हें अब चुप होकर बैठकर कुछ नहीं मिलेगा इसलिए चेतना का आना तो निश्चित है। दलित कहानीकार अपनी व्यथाओं को कहानी के माध्यम से पाठक तक पहुँचाते हैं। पाठक को समझना आसान काम नहीं होता परंतु कहानीकार की मार्मिकता उसका यथार्थ पाठक के अंतर्मन पर वार करता है। कहानी की तीक्ष्णता इतनी गहरी होती है कि वह प्रत्यक्ष समाज का चित्रण करती है। ऐसी दलित चेतना 'संघर्ष' कहानी के 'शंकर' के भीतर जन्म लेती है। सुशीला टाकभौरे ने 'संघर्ष' कहानी लिखकर दलित साहित्य को एक नयी राह दिखाई। शंकर मात्र चौदह साल का लड़का है। उसके अंदर शैतानी कूट-कूट भरी थी। मगर ये शैतानी क्यों थी, वह थी जातिवाद की वजह से। सब बच्चे उसकी नानी को लेकर चिढ़ाते। नानी गाँव का मैला ढोने का काम करती। शंकर को बिल्कुल पसंद नहीं उसकी नानी ऐसा कुछ काम करे। शंकर हमेशा नानी को कहता। तुम ये गाँव का कचरा मत उठाओ। पर नानी विवश थी। पैसे जरूरी थे। शंकर की नादानी एक दिन उसे स्कूल से बाहर फेंक देती है। इसका मूल कारण होता है वह दलित है और पढ़ाई में सबसे होशियार है। एक शर्त में सवर्ण के बच्चे घर जाने पर शंकर उन्हें थूक चाटने को कहता है। इसी कारण उसे स्कूल से बाहर निकाल फेंक देते हैं। वह दसवीं क्लास में जा नहीं पाता। उसका

आक्रोश कहीं रूक नहीं पाता। माता-पिता, नानी सब गाँव के ठाकुर, स्कूल प्राध्यापक सबसे विनती करते। हाथ जोड़ते-पैर पकड़ते परंतु कहीं कोई मदद नहीं करता। बच्चों के खेल-खेल में हुआ यह फैसला सही नहीं था। शंकर अपनी पढ़ाई छोड़ना नहीं चाहता था। आखिर में वह हाथ में लाठी उठाता है। तब फैसला करते हैं- "शंकर को कक्षा में बैठने की अनुमति देना चाहिए।। बच्चों-बच्चों का झगड़ा था। उनका झगड़ा स्कूल के समय के बाद हुआ था। गांव वाले उसको कुछ भी सजा दे सकते हैं। स्कूल की तरफ से उसे सजा नहीं मिलनी चाहिए। उसका नाम कक्षा में फिर से ले लेना चाहिए।"[1] शंकर का संघर्ष आखिर संपूर्ण होता है। वह पहला दलित लड़का होता है, जो मैट्रिक में प्रथम स्थान पर आता है।

दलित समाज के अंदर जागरूकता बहुत जरूरी है। क्योंकि यहाँ माँगने से कुछ नहीं मिलता। छिनना जरूरी है। दलित वर्ग अब बहुत आगे की सोचकर अपने अधिकार की जागरूकता को पहचान रहा है। दलित समाज सवर्णों के नीचे झुकना नहीं चाहता। यह एक ही धार में होने वाला कार्य नहीं। इसे सबको समझकर आगे ले जाना है। दलितों की त्रासदी उनके सही आक्रोश से ही कम होगी। संविधान ने दलित, पिछड़े वर्ग को दिये हुए अधिकार क्या-क्या है। इसकी चेतना दलितों को होना आवश्यक है। तभी यह समाज अपने समाज के लिए कुछ कर पायेगा। दलित जागृति सब स्तर पर होनी चाहिए। अधिकारों की मांग पूरी करना उनका प्रथम कार्य होना चाहिए। इक्कीसवीं सदी की 'संघर्ष' जैसी कहानी आशा की एक लहर को जन्म देती है जिससे कह सकते हैं कि दलितों का भविष्य भी उज्ज्वल हो सकता है। उनकी आने वाली नयी पीढ़ी मैला ढोती नहीं बल्कि हाथ में कलम लेकर बड़े-बड़े पदों पर अपना अधिकार जताएगी। 'तलाश' कहानी का रामवीर सिंह, 'बदन दबना' कहानी का पुछाराम आदि के भीतर भी दलित चेतना का यही जागृत स्वरूप दिखाई देता है। और वह अपने समाज के लिए कुछ तो भी कर सकते हैं इसकी आशा भी निर्माण करते हैं।

---

[1] संघर्ष - सुशीला टाकभौरे, पृ.सं. 25

3.4.2.7 दलित आंदोलन

आंदोलन मनुष्य अपने अधिकार, अपने अस्तित्व, अपनी पहचान के लिए करता है। दलितों को अपने इन्हीं सभी अधिकार प्राप्ति के लिए विभिन्न आंदोलनों को करना पड़ा जिसमें कुछ सफल भी हुए और असफल भी हुए। सत्यशोधक समाज आंदोलन, आदि धर्म आंदोलन, सतनामा आंदोलन, सामाजिक सुधार आंदोलन, डॉ. बाबा साहब का दलित आंदोलन, नाम शूद्र आंदोलन आदि आंदोलनों से जातिवाद, छुआछूत, अस्पृश्यता ऐसे विभिन्न मुद्दों को उठाया गया। आंदोलनों का स्वरूप बहुत बड़ा था। इनमें जान लेने की और देने की दोनों का प्रश्न खड़ा था। साहित्य जगत में भी कहानीकारों ने अपने समय पर हुए या सुने ऐसे आंदोलनों का चित्रण किया। कहानी के अंतर्गत भी विभिन्न आंदोलनों से पाठक का परिचय हुआ। पाठक वर्ग स्थिति व समय को समझ पा रहा था। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'मुम्बई कांड' भी आक्रोश से भरी हुई है। कहानी सुमेर की है जो अपने समाज के प्रति आदरणीय भाव रखता है। सरकार और राजनीति दोनों मिलकर समाज का नाश कर रहे हैं। ऐसी सुमेर की धारणा थी। उसके मन में मुम्बई कांड में हुई फायरिंग गूंज रही थी। रास्तों पर पड़ी हजारों बेजान लाशें जिसे देखने वाला भी कोई नहीं था, उसके सामने दिख रही थी। "मुम्बई कांड ने एक बार फिर अयोध्या की याद ताजा कर दी थी। वह मुम्बई से हजारों मील दूर था। फिर भी उस हादसे की प्रतिध्वनियाँ उसे बेचैन कर रही थी। वह अपने अंदर एक तूफान महसूस कर रहा था, एक ऐसा तूफान जिसे इससे पूर्व उसने कभी महसूस नहीं किया था। मुम्बई में डॉक्टर अम्बेडकर की मूर्ति को अपमानित किया जाना और फिर अम्बेडकर समर्थककों पर गोली चलाना, उसके बचे-खुचे विश्वास को तोड़ रहा था।"[1]

[1] घुसपैठिये - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 31

बाबा साहब जी को जूतों का हार पहनाया गया था। इस बात से सुमेर बहुत दुखी था। सुमेर के मन में हजारों आंदोलन जैसे खड़े हो रहे थे। सुमेर अपने होश खो बैठा था। उसका बस एक ही ध्येय बन चुका था कि उसे भी अपने शत्रु को अपमानित करना है। उसे भी जूतों का हार अपने शत्रु के गले में टांगना है। कहानी आत्मसम्मान की है। आत्मरक्षा की है। कोई भी आएं और ऐसे अपमानित करके चला जाए यह उसे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हुआ। अपने अधिकारों के लिए लड़ना गलत बात नहीं है। अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ना भी गलत नहीं। सुमेर भी ऐसे ही असमंजस में फंस चुका था। आंदोलन मानव का अधिकार दिलाने के लिए एक जरिया है। जिसे पूर्ण करना और सही रास्ता चुनना वह अपना कर्तव्य समझता है। बाबा साहब ने भी नमक, पानी, जातिवाद के लिए अनेक आंदोलन किए। शिक्षा के लिए आंदोलन, जनजागृति के लिए आंदोलन आदि। बहुत प्रयत्नों के बाद बाबा साहब को अपना अधिकार मिला था। ऐसा ही अथक प्रयत्न इक्कीसवीं सदी के कहानीकार भी कर रहे हैं। दलित कहानीकार अपने कलम के जरिए समाज में चेतना जगाना चाहते हैं। अपने अधिकारों की लड़ाई करते पात्र कहानी को यथार्थ द्वार पर खड़ा पाते हैं। आंदोलन जागरूकता की निशानी है। जिसे हम समझ सके कि संविधान दलित वर्ग के लिए क्या-क्या सुविधा प्रदान कर रहा है। और किन-किन वस्तुओं की जरूरत है मनुष्यता जागृति के लिए यह हमें सिखाता है। सभी चीजों के भाव होते हैं एक अच्छा और एक बुरा। आंदोलनों से भी यही प्रतीत होता है। आंदोलनों ने कभी-कभी मनुष्य को मनुष्य से दूर भी करने का कार्य किया है। क्योंकि सभी जगह बेईमानी चल रही है। शायद यहाँ भी कुछ ऐसा ही हो।

3.4.2.8 दलितों की आर्थिक व्यथा

आर्थिक व्यथा दलित की हो या आदिवासी की, एक ही है। भूमंडलीकरण की वजह से आदिवासी बेघर हुए। जातिवाद की भावना ने दलितों को बाहर निकाला। शिक्षा जैसे पवित्र स्थान पर भी जातिवाद का रोना रोकर दलितों को स्कूलों में आने की अनुमति नहीं। शिक्षा

नहीं तो नौकरी नहीं। आखिर में काम बचा कचरा साफ करना और गाँव का मैला साफ करना। आर्थिक स्थिति से समझा जाए तो दलित बहुत गरीब वर्ग से आते हैं। दलितों के पूर्वज भी ऐसा ही काम करते, इसलिए शिक्षा का अभाव था। जागरूकता कहीं दूर-दूर तक नहीं थी। दलित स्त्री-पुरुष खेत में मजूरी करते। सड़कों को साफ करते, चमड़ा फेंकने का काम करते। इन सबमें उन्हें एक दिन की रोटी मिल जाए तो वह अपना नसीब मानते थे। ऐसे में उनकी आर्थिक परिस्थिति का ठिकाना कहीं रहता नहीं था। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बैल की खाल' में कालु और भूरे दोनों अपने पुश्तैनी काम मरे हुए जानवर की खाल निकालकर बेचने का काम करते थे। गाँव में किसी का भी जानवर मरा हो वहाँ कालू और भूरे की हाजिरी लाना जरूरी था खाल निकालने का काम वह बिना पैसे करते थे। इस काम के कोई भी गाँव वाले उन्हें पैसे नहीं देते थे। खाल बेचकर जो पैसे आते उसी में उनको आनंद प्राप्त होता था। पंडित बिरिज मोहन का बैल कुएँ के बीचों-बीच मर गया था। उसे कालू और भूरे उठाकर गाँव के बाहर एक तालाब के पास बैठकर बैल की खाल निकाल ली। शाम ढल चुकी थी अधिक समय हो जाए तो खाल भी खराब हो जाएगी और उन्हें इतनी मेहनत के बाद एक पैसा भी ना मिलेगा यही डर कालु और भूरे के मन में समाया हुआ था- "उन्हें पुलिया पर बैठे काफी समय हो गया था। शहर जाने वाली कोई सवारी अभी तक नहीं मिली थी। वे जिस मार्ग को भी रूकने का इशारा करते, वह तेजी से निकल जाती थी। जैसे-जैसे अंधेरा बढ़ रहा था, उनकी ऊब भी बढ़ रही थी। इतने दिन बाद आज एक बैल मरा था। यदि वे समय पर शहर न पहुँचे तो खाल सड़ भी सकती है। जो दो पैसे हाथ में आने वाले हैं वे भी न निकल जाएँ उनकी परेशानी अँधेरे से ज्यादा गहरी हो रही थी।"[1] जीने के लिए पैसा जरूरी है। दलित वर्ग एक-एक पैसा जोड़कर अपनी रोजी-रोटी को कमाता है। इतने कष्टों के बाद अगर उनसे वह रोटी ही छीन ली जाए तो वह अपना गुजारा कैसे कर सकता है। दलित जीवन बहुत कठिनाइयों भरा है। जिसका

[1] सलाम - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 36

अंत कब तक होगा कोई नहीं बता सकता। दलित वर्ग की यह आर्थिक त्रासदी सुशीला टाकभौरे की 'संघर्ष' कहानी, जयप्रकाश कर्दम की 'तलाश' कहानी, एस.आर. हरनोट की 'एम. डॉट.कॉम' कहानी रत्नकुमार सांभरिया की 'बदन दबना' कहानी सभी के अंदर आर्थिक व्यथा की त्रासदी का चित्रण पाठक को महसूस हो ही जाता है। यही कारण है कि आज दलित वर्ग इतना आक्रोश भरा है। अपनी कमियों को अपनी मुश्किलें नहीं बनाना चाहता। अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहता है। जातिवाद के रहते एक के घर में एक काम भी करना मुश्किल। इन्हीं सब कारणों की वजह से आर्थिक परिस्थितियों की चरम सीमा बहुत ऊपर पहुँच चुकी है। अपनी त्रासदी का जीवन व्यतीत करने वाला दलित समाज अपनी व्यथाओं से लाचार बनना नहीं चाहता। अपना सर्वस्व भी देकर वह अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा है। शायद यही लड़ाई उनको उनका अधिकार दिलाकर उनके अस्तित्व को न्याय दे पाएगी। यह सब होने के पश्चात उनकी आर्थिक स्थिति का कांटा अपने आप सीधा घुमने लगेगा। यह कांटा ब्राह्मण विचारों, जातिवाद ने पकड़ कर रखा है। इसे एक दिन मुक्ति तो जरूर मिलेगी। मिलकर ही रहेगी।

3.4.2.9 सामाजिक विषमता

हमारे समाज की जाति-व्यवस्था ने मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया है। आज भी देश में चल रहे दलित अत्याचार, शोषण के चर्चे प्रत्येक पत्रिका में हम देख सकते हैं। उनके साथ हुए अन्याय और अत्याचार की तो कोई सीमा ही नहीं है। सामाजिक स्तर पर आज भी उनसे दुर्व्यवहार दिखाई देता है। समाज में सभी मनुष्य जाति को समानता का अधिकार है। फिर यह अधिकार जातिवाद के नाम पर क्यों बांटा जाता है। इन्हीं सवालों के जवाब आज दलित वर्ग ढूंढ रहा है। सामाजिक व्यवहारों में होने वाली छोटी-बड़ी नोक-झोंक को जातिवाद का नाम देकर बड़ा किया जाता है। अपमान का सामना करता दलित वर्ग बहुत सी कठिनाइयों का सामना कर रहा है। ऐसी ही एक घटना जो यबान पत्रिका में प्रकाशित होकर आई थी- "तीन

जुलाई 2006 की तारीख भीलवाड़ा का भगवानुपर गाँव। दो दलित बच्चों बंटी और मोनू ने आईसक्रीम कप में आईसक्रीम खाई। दुकानदार ने बच्चों से उनकी जाति पूछी। जैसे ही उसे पता चला कि बच्चे दलित हैं तो उसने उनके हाथों से आईसक्रीम कप छीन लिए और उन्हें गालियाँ देने लगा। बच्चे नहीं जानते थे कि उन्होंने क्या खता की है उसकी सजा उनका पूरा समाज भुगतेगा। रात में अंधेरे में सवर्णों ने दलितों को उनके घरों से निकालकर पीटा। उनकी महिलाओं से बदसलूकी की गई। ये जुल्म अंग्रेजों ने नहीं किया था। जुल्म की यह इबारत 60 साल के आजाद भारत में लिखी गई थी। इस आईसक्रीम की सजा आज भी इस समाज के माथे पर लिखी हुई है। वे आज भी समाज से बहिष्कृत हैं। वर्ष 2009 तक भी दोषियों को सजा नहीं मिली जबकि अनुसूचित जाति एवं जनजाति अधिनियम को बने 20 साल हो चुके हैं। मगर आज भी दलित जानवरों से बदतर जिंदगी जी रहे हैं।"[1] कितना भयावह है यह सब देखना कि बच्चों को अधिकार नहीं कि वह एक आईसक्रीम भी खा सके। अन्न-धान्य पर भी जातिवाद की मोहर लगा दी गई है। कौन से वर्ग के व्यक्ति क्या-क्या वस्तु या चीजें खा सकते हैं, ग्रहण कर सकते हैं। जातिवाद ने किसी को नहीं छोड़ा चाहे वह छोटा बच्चा हो या कोई बुढ़ा व्यक्ति। दलित, दलित ही होता है। यही उसकी पहचान बन चुकी है। सामाजिक रूप से सभी मानव समान हैं। न कोई उच्च न कोई नीच। तो मनुष्य ही कैसे तय कर सकता है वह स्पृश्य है या अस्पृश्य है।

छुआछूत की भावना शरीर छूने से नहीं मन की गंदगी से निकलती है। छुआछूत की व्यथा उसे ही समझ में आती है, जो उसे जीता है। दलित वर्ग इस त्रासदी को बरसों से झेलता आया है और आज तक झेल रहा है। दलितों का सामाजिक अधिकार संविधान में प्रस्तुत हो चुका है। तो फिर क्यों जातिवादी विचारधारा वाले मनुष्य संविधान की बातों को छोटा ठहराकर अपनी मनमानी कर रहे हैं। कहानी सब कुछ बयान करती है। कहानी समाज का

---

[1] बयान पत्रिका (अगस्त 2008) - सं. मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं. 8

यथार्थ है जो सही-सही ढंग से पाठक के सामने लाती है। पाठक का एक कदम दलित वर्ग को उसका सही अधिकार दिलाने के लिए पर्याप्त है। जागृत मनुष्य अपने अधिकारों को समझता है। सामाजिक स्तर पर उसे सरकार से किन-किन प्रणालियों की जरूरत है वह कह सकता है। अपने हक के लिए वह सरकार के सामने न्याय की पुकार मांग सकता है। कानून मनुष्य के लिए बने हैं। उनका सही इस्तेमाल करना मनुष्य का कर्तव्य है।

3.4.2.10 राजनीति और दलित

राजनीति सब कुछ बदल सकती है। जिसके हाथ में सत्ता वही मालिक बनकर सर के ऊपर बैठ जाता है। इक्कीसवीं सदी की नयी पीढ़ी अपने अधिकारों को समझने की कोशिश कर रही है। आरक्षण का महत्व क्यों है यह दलित नव पीढ़ी समझ पा रही है। अगर आरक्षण न हो तो शायद सवर्ण किसी भी क्षेत्र में घुसने ही न दे। शिक्षा प्राप्ति का अधिकार सबको है। शिक्षा और राजनीति दो अलग प्रश्न हैं। परंतु वर्तमान समय में शिक्षा, आरोग्य यह सब शाखाएँ राजनीति के चपेटे में आ चुकी हैं। आज का समय मार्कशीट पर अच्छे अंकों का नहीं बल्कि राजनीति में अच्छी पहचान बनती है। पाँच साल की राजनीति में अपनी पूर्ण जिंदगी भर की कमाई कर ली जाती है। मैं यह नहीं कह रही कि सभी नेता भ्रष्टाचारी होते हैं। लेकिन पूरे अच्छे भी तो नहीं होते। 'बदन दबना' कहानी के अंतर्गत ऐसे ही दृश्य को स्पष्ट करते हुए लेखक कहता है- "राजनीति की माया भी खूब है। वह आदमी को बार-बार हराकर भी मृगमरीचिका में उलझाए रहती है। सांस-सांस जीत की उम्मीदें उठती हैं। राजनीति में प्राय: पाँच साल की रात और पाँच साल का दिन होता है, लेकिन हल्का का दिन कभी नहीं उगा। जुगून जूड़ी के ताप-सा बना रहता। वह सफेद-सफ्फाक धोती पर सफेद रेशम का कुरता पहनता। कंधे पर खादी का सदरी (जॉकेट) पड़ी रहती। राजनीति के दोहे गुनगुनाता।"[1]राजनीति अच्छे-अच्छे के होश उड़ा देती है। ऐसे ही राजनीति ने हलका सिंह के भी होश उड़ा दिए थे।

[1] खेत तथा अन्य कहानियाँ - रत्नकुमार सांभरिया, पृ.सं. 110

वह इतनी बार लड़ा पर एक बार भी न जीता। बिना किसी राजनीति पद के हलका सिंह दलितों पर इतने अत्याचार करता है तो एक बार सच में राजनीति में फैट जढ़ गये तो दलितों का कोई नामोनिशान न रहता।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी 'घायल शहर की एक बस्ती' राजनैतिक आतंक के कहर की कहानी है जहाँ जातिवाद, छुआछूत से अधिक आतंक का डर मंडराता हुआ रहता है। शाम के सात बजे के बाद झोपड़ी से बाहर निकले तो कोई भरोसा नहीं वापस घर आयेगा या नहीं। पूरा शहर कर्फ्यू से बंद। कोई नेता नहीं। कोई राजनीति नहीं। बहुतों के घर उजड़ चुके थे। अब और कितने मरने वाले किसी का पता नहीं। दो पार्टियों की लड़ाई ने पूरे शहर पर तबाही के बादल बिखरा दिए थे। हरिया कहानी का मुख्य पात्र है। यह सब आतंक उसने अपनी आँखों से देखा। लगभग पचास की उम्र तक का था हरिया। हरिया चारों ओर के आतंक को देखकर परेशान हो चुका था। वह खुद से ही सवाल कर रहा था- "दंगे में आखिर गरीब आदमी ही क्यूँ मरता है, अमीर क्यूँ नहीं?"[1] हरिया का यह सवाल बहुत बड़ा था जिसका उत्तर शायद कोई न दे पाए।

दलित संवेदना मनुष्य के रूह से मिलाती है। दलित ही दलित क्यों है? ऐसे प्रश्न बार-बार पूछती है। संवेदनशील मनुष्य को अपनी भावनाएँ पर कोई काबू नहीं रहता। दलित इन्हीं भावनाओं में बहता चला जा रहा है। आज का जागरूक दलित शिक्षा को अपना हथियार बना रहा है। अपनी खोई अस्मिता को अब वह फिर से पाना चाहता है। दलित संवेदना दलितों का छुपा आक्रोश है। जो कहानियों के माध्यम से कहानीकार सभी दर्शकों को दिखाना चाहते हैं। दलित अब रूकेगा नहीं अपने अधिकार छोड़ेगा नहीं। अपने संविधान के हर एक सूत्र को जोड़कर उसे निभाने का कार्य दलित वर्ग के सभी स्त्री-पुरुष करेंगे।

---

[1] नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ - सं. मुद्राराक्षक, पृ.सं. 19

3.4.3 स्त्री संवेदना

"यत्र नार्यस्तु पूजन्ये, रमन्ते तत्र देवता:।

यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्त त्राफला: क्रिया: ।। .... "मनुस्मृति"

हमारा भारत देश जहाँ दुर्गा, काली, सरस्वती, संतोषी आदि बहुत सी स्त्री रूपी देवियों की पूजा की जाती है। स्त्री हो या पुरुष दोनों ही मनोभाव से देवियों की पूजा करते हैं। अगर मनुष्य इन पत्थर रूपी देवियों को इतना मान-सम्मान देते हैं तो यह सम्मान जीवित स्त्रियों को क्यूँ नहीं मिलता, जो इसी धरती पर मनुष्य के साथ ही रहती है। जनसंख्या के आधार पर देखें तो शायद आज भारत की जनसंख्या चीन से आगे बढ़ चुकी होगी। यहाँ भारतवासियों की रीति ही कुछ अलग है। बेटा घर का वारिस तो बेटी पराये घर का धन होती है। यह मान्यता संपूर्ण भारतवर्ष की है। लड़का हुआ तो खुशी-खुशी ही बरसने लगती है। परंतु यहाँ किसी लड़की ने जन्म लिया तो उसे जन्म से ही सिर का बोझ मानते हैं। इसी वजह से कन्या भ्रूण हत्या दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। कन्या भ्रूण हत्या के कारण आज लड़कियों के मुकाबले लड़कों की संख्या अधिक है। ऐसा हमारे देश में ही क्यों हो रहा है? क्या इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने की हमें आवश्यकता नहीं है। किसी भी काल या समाज का अध्ययन विश्लेषण उस समय तक पूरा नहीं हो सकता जब तक समाज का आधा हिस्सा स्त्री की परंपरागत एवं परिवर्तित स्थिति का विश्लेषण सही एवं समग्र रूप से नहीं किया जाता। जहाँ हम मूर्ति रूपी देवियों की पूजा-अर्चना करते हैं उसी देश में स्त्री को, उसकी अस्मिता को छलनी-छलनी किया जाता है। भारत देश में प्रतिभाशाली महिलाएँ भी हैं, जैसे हमारी पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील, किरण बेदी, कल्पना चावला, ऐश्वर्या राय, सरोज खान, नासिरा शर्मा, मन्नु भंडारी आदि ऐसी बहुत सी श्रेष्ठ महिलाएँ हैं, जिन्होंने अपने कार्यशीलता से अपने कर्तव्य से अपना नाम कमाया है। और फिर अगर देखें इसी देश में कुछ ऐसी महिलाएँ भी हैं जिनके बारे में सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। लक्ष्मी के ऊपर एसिड अटैक जो लक्ष्मी के

शरीर को ही नहीं बल्कि उसके आत्मविश्वास को भी जला डाला। ज्योति सिंह का बलात्कार जिसने पूरे भारतवर्ष को शर्मिंदा कर दिया। कोई मनुष्य इतना निर्दयी कैसे हो सकता है जो शरीर के साथ आत्मा को भी तोड़-मरोड़ कर चला जाता है। ज्योति सिंह के भयावह बलात्कार के पश्चात सरकार ने निर्भया कानून लागू किया। परंतु आज भी हजारों की तादाद में स्त्री-शोषण, बलात्कार, अत्याचार ऐसे शब्द हमेशा सुनाई पड़ रहे हैं। इस तरह से हमें स्त्री के दोनों रूपों या वर्गों का चित्रण प्राप्त होता है। जहाँ नारी एक तरफ सशक्त है तो दूसरी तरफ शारीरिक रूप से लाचार है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री के विविध रूपों का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। आज की महिला पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है। घर के साथ-साथ बाहर का काम भी वह संभाल रही है। बड़े-बड़े पदों पर हमें आज भारतीय महिलाएँ दिखाई देती हैं। महिला सशक्तिकरण के दौरान हमारे भारतीय संविधान स्त्री और पुरुष समानता को प्रधानता दी। समान अधिकारों को प्राप्त करने के लिए दोनों में कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। संविधान में दिये गए अधिकारों से स्त्री स्वयं के बल पर समाज के सामने अपना मार्ग खुद चुन सकती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में विभिन्न स्त्री पात्रों का चित्रण है जिसमें दलित स्त्री, आदिवासी स्त्री, शिक्षित स्त्री, अशिक्षित स्त्री, आत्मनिर्भर व आत्मविश्वास से पूर्ण स्त्री, कमजोर व लाचार स्त्री आदि बहुत सी स्त्रियों का चित्रण प्रस्तुत है। जिससे स्त्री की कहानी का समय पता चलता है कि आज भी स्त्री किन-किन परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। आज समाज बहुत आगे बढ़ चुका है, परंतु परंपराएं वही हैं।

3.4.3.1 अस्मिता व सम्मान के लिए लड़ती नारी

स्त्री का जन्म शायद बस अपना अस्तित्व समाज में, समाज को, समाज के लिए ही बना है। इक्कीसवीं सदी में जहाँ दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श बहुचर्चित है। उसी में स्त्री विमर्श भी एक बड़ा विषय बन चुका है। अपने मान-सम्मान को बचाती, अपने अस्तित्व को

जागृत करती, अपने घर-परिवार संभालती ऐसे असंख्य दायित्व में स्त्री जकड़ी हुई है। इन उलझनों से बाहर निकलना स्त्री के लिए आसान बात न होगी। क्षमा शर्मा की कहानी 'न्यूड का बच्चा' ऐसी ही विपदा एवं उलझनों में जकड़ी हुई 'वीनू' की कहानी है। घर वालों की बात न मानते हुए रणवीर के साथ घर छोड़कर भाग जाती है। तभी से वीनू की घड़ी का कांटा उल्टा घुमने लगता है। रणवीर को छोड़कर सलीम के साथ विवाह करने के पश्चात वीनू की नई जिंदगी का आरंभ होता है। एक पढ़ी-लिखी कहानी की पात्र वीनू जिसने अपने जिंदगी के फैसले शायद कभी सही नहीं लिये। सलीम की मौत दुर्घटना से हो जाती है। वीनू और उसका छोटा बच्चा बस यही वीनू की दुनिया बन गई थी। अपने शरीर पर अपना पूरा अधिकार होता है कहकर वीनू वेश्यावृत्ति में पड़ जाती है। उसी से वह अपना घर चलाती है। एक न्यूड फिल्म का फोटोग्राफर माधवन वीनू के लिए एक नया काम लाता है। न्यूड फोटोग्राफी का तब वीनू असमंजस में घिर जाती है। अगर बड़ा होकर उसके बेटे ने ये सब देख लिया तो क्या होगा। उसे उत्तर देता माधवन कहता है- "अभी तो सोचने के लिए बहुत बहुत छोटा है। जब तक वह बड़ा होगा दुनिया इतनी बदल चुकी होगी कि तुम ही उसे नहीं पहचान पाओगी।"[1] वीनू को अपनी इज्जत तथा अस्मिता का ख्याल होने लगा। पर वह कुछ नहीं कर सकती थी। स्त्री को अपनी सुरक्षा का हक स्वयं को ही है। अपनी अस्मिता को सही दिशा तक लेके जाना यह भी स्वयं की जिम्मेदारी ही है। क्योंकि समाज में किसी भी व्यक्ति पर आँख मूंदकर विश्वास करना उसी के लिए खतरा बन सकता है। अपने बच्चे से अपना अस्तित्व छिपाती वीनू दुनिया की नजर से बच नहीं पायी थी।

स्त्री की अपनी एक विडंबना है, जो समाज उसे देता है। स्त्री के लिए समाज ने कुछ दायरे बनाके रखे हैं। उसे पतिव्रता रहना है। घर संभालना है। समाज के नीति नियमों का पालन करना है। ऐसे और बहुत कुछ नियम समाज ने एक औरत के लिए बनाकर रखे हैं। इन्हीं में वह

[1] नेम प्लेट - क्षमा शर्मा, पृ.सं. 84

अगर रहेगी, तो सुखी रहेगी। इनका उल्लंघन अगर किसी स्त्री ने किया तब वह पछताती है। जया जादवानी की कहानी 'कोई है... ?' एक स्त्री की कहानी जो एक अंधकार में फंस चुकी है। उसका मन प्रत्येक क्षण उसपर जैसे कोई निगरानी कर रहा हो, जासूसी कर रहा हो ऐसा प्रतीत होता है। दरवाजे के उस पार क्या हो सकता है यह जानने को आतुर नायिका अपने-आप से अनेक प्रश्न पूछती रहती है। वह समझ नहीं पाती आखिर कौन उसकी परीक्षा लेना चाहता है, कौन उसे इतना बेबस कर रहा है कि वह दरवाजे के अंदर जा नहीं सकती बाहर वह रह नहीं सकती- "हटती हूँ पीछे .... नहीं, अब नहीं, थपेड़े खा लिए बहुत .... ढूँढा बहुत .... खोजा बहुत.... कोई नहीं था, कोई नहीं है.... अब बस। पर किसका वश? रोका जितना, वही उतने ही वेग से। तो क्या चाहा था? बहना? और ये आखिरी शिखर है झरने का .... ऊपर देखा, आसमान पर धूप खिली है .... बाँहें फैला दीं अपनी। अँधेरा .... सीलन... घुटन... यही तो जाना था आज तक।"[1] कहानी की नायिका खो गई है अपने आप में। उसे पता नहीं चल रहा वह कौन सी दुनिया का हिस्सा है। जहाँ सब कुछ अच्छा है। कोई अंधकार नहीं, किसी का द्वेष नहीं, कोई भी स्त्री को अपनी मर्यादा भंग करने वाला नहीं समझता। जहाँ स्त्री पवित्र है। अपने आप में सुरक्षित है। या दूसरे अंधकार में समाज का हिस्सा।

3.4.3.2 कामकाजी महिला की विवशता

इक्कीसवीं सदी का पहला दशक पार कर चुका समाज आधुनिकता के नाम पर बहुत आगे बढ़ चुका है। वर्तमान समय में स्त्री शिक्षित है। घर के साथ बाहर का दोनों काम संभाल रही है। स्त्री ऑफिस जा रही है। कारखानों में मजदूरी कर रही है। खेतों के सभी काम संभाल रही है। वर्तमान समय की स्त्री आत्मनिर्भर है, यह कहना कोई गलत बात न होगी। स्त्री के बदले पुरुष की यह श्रेणी देखी जाए तो भारतीय समाज पितृसत्तात्मक होने की वजह से पुरुषों को घर के बाहर का काम यही उनकी मुख्य जिम्मेदारी होती है। लेकिन स्त्री दोनों जगह

[1] उससे पूछो - जया जादवानी, पृ.सं. 122

संभाल लेती है। या यूँ कहें संभालनी पड़ती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री के ऐसे ही विविध रूपों का परिचय हमें मिलता है। 'नेम प्लेट' कहानी की 'वीनू', 'कांपता पुल' कहानी की 'चंचल', 'तीसरी बेटी के नाम- ये ठंडे, सुखे, बेजान शब्द' कहानी की 'सुनयना', 'उड़ान' कहानी की 'कुसूमिया' आदि पात्रों से भिन्न-भिन्न क्षेत्र में स्त्रियाँ किन-किन परेशानियों का सामना करती है वह चित्रित किया गया है। सभी के काम करने का तरीका अलग है। सबकी सुविधाएँ अलग हैं। परंतु सभी का एक ही बड़ा प्रश्न कि अगर हम स्त्री हैं तो उसमें हमारा क्या कसूर है। अनिता गोपेश की कहानी 'उड़ान' की 'कुसूमिया' कहानी का मुख्य पात्र है। ऐसा कह सकते हैं। घर काम करने वाली कुसूमिया अपनी जिंदगी का फैसला खुद करना चाहती है। बहुत कष्टों से उसने अपना बचपन जीया है। किशोरावस्था उसके लिए कम मुसीबतों भरी नहीं थी। इतनी छोटी उम्र में आखिर कुसूमिया ने घर छोड़कर भाग जाने का रास्ता क्यों चुना। यह बताते हुए कुसूमिया अपनी मालकिन से कहती है- "ना दीदी, हम जो कुछ भी किये हैं बहुत सोच-समझकर अपनी मर्जी किये हैं। और आप निश्चित रहिए हम सुखी रहेंगे। और नहीं भी रहेंगे तो वहाँ ही कौन-सा सुख था। यहाँ कम से कम अपनी मर्जी से तो रहेंगे।"[1] कुसूमिया की जिंदगी बहुत सी कठिनाइयों में फंसी हुई थी। कुसूमिया का परिवार बहुत बड़ा था। छः बहिनें और तीन भाई। सब अपनी-अपनी दुनिया में खोए हुए। रोजी रोटी के लिए सभी काम करते। माँ-बाप सबके पैसे अपने हाथ में रखते थे। कुसूमिया को बाहर वालों से अधिक परेशानी घर वालों से थी। कुसुम का कहना था कि खाने-पीने से लेकर कपड़ों तक, बीमार हुए तो दवा, दारू तक सभी हमें हमारी मालकिन ही देखती हैं, तो माँ-बाप बने फिरते आप। कुसूमिया के स्वर में आक्रोश था। जिसे वह अपने मन से बाहर निकाल फेंक देना चाहती थी। दुनिया ने जो जंजीर बना रखी उनको तोड़कर वह अपनी जिंदगी जीना चाहती है। घर से बाहर काम के लिए निकलने वाली स्त्रियों को घर तथा बाहर दोनों के ताने भी झेलने पड़ते हैं। वह स्त्री भले ही अच्छे मन से बाहर काम करके

[1] कित्ता पानी - अनिता गोपेश, पृ.सं. 155

आए लेकिन कुछ न कुछ दोष जरूर ढूंढा जाता है। जैसे स्त्री ने स्त्री रूप में जन्म लेकर कोई बड़ा पाप कर दिया है। स्त्रियों की यही विवशता इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित की गयी है। स्त्री को घर से बाहर काम करना है तो उसे किसी पुरुष की मदद लेनी अनिवार्य है। जैसे पति, पिता या भाई, क्योंकि रात्रपाली जमी होती स्त्रियों के मन में खौफ बैठ जाता कि हम घर सुरक्षित पहुँचेगी क्या? अगर ये खौफ नहीं तो जमाना क्या कहेगा लड़की रात-रात करके अकेले ही घर आती है। महिलाओं के लिए हर तरफ बस कठिनाइयों का पुल ही बांध रखा है, इन समाज के बनते फिरते रखवालों ने। उसे कहीं भी किसी का भी साथ नहीं।

3.4.3.3 रूढ़ि, परंपरा में जकड़ी स्त्री

भारतीय समाज में रूढ़ि, परंपरा का बहुत अधिक महत्व है। सुबह उठने से लेकर रात के सोने तक कुछ न कुछ विधि परंपरा जुड़ी ही होती है। स्त्री के लिए रूढ़ि और परंपराओं की कोई सीमा ही नहीं। भारत में कई सारे धर्म हैं। अपने धर्म की अपनी नीति होती है। प्रत्येक धर्म में स्त्रियों के लिए अलग-अलग बंधन स्थापित किए गए हैं। लड़की के लिए अलग रीति-रिवाज, महिलाओं के लिए अलग यहाँ तक कि वृद्ध महिलाओं के लिए भी अलग रीति-रिवाज है। ऐसी परंपराओं में जकड़ स्त्री स्वयं के लिए कुछ भी करने से पहले दस-दस बार सोचती है। कविता की कहानी 'उलट बाँसी' के अंतर्गत महिला की यही परंपरावादी दुविधा को चित्रित किया गया है। एक माँ बेटी की कहानी जो समाज से अधिक घरवालों से चिंतित है। अपर्णा के तीन भाई हैं। सब अपनी-अपनी जिंदगी में व्यस्त और खुश हैं। अपर्णा अपने पति के घर में रहती है। यहाँ माँ अकेले हैं। उसकी जिंदगी सुनसान है। उसके दुख दर्द बाँटने वाला कोई नहीं क्योंकि सभी बच्चे शादी करके नौकरी के सिलसिले में शहर जाकर बस चुके हैं। माँ शहर नहीं जाना चाहती। वहाँ की हवा में उसे वह सुख नहीं मिलता जो गाँव की मिट्टी में मिल पाता है। अब उम्र हो गयी है माँ की, जो इतने साल न रही शहर में वृद्धावस्था में कैसे रह पायेगी। माँ के जीवन में एक व्यक्ति आया है, जिससे वह शादी करना चाहती है। डॉक्टर साहब

जो माँ का इलाज कर रहे हैं, परंतु यह बात घर में किसी को पसंद नहीं आयी। क्योंकि एक वृद्ध महिला जिसके नाती-पोती शादी की उम्र के हो गए वह शादी कैसे कर सकती है। यही हमारे समाज की परंपरा है। पति की मृत्यु होने के पश्चात महिला को कोई हक नहीं कि वह दूसरी शादी कर सके। माँ तो वृद्धावस्था में शादी करना चाहती है। उसकी दुविधा तो और बड़ी है। बाहरी समाज से पहले घर वाले ही इस बात के सख्त खिलाफ होते हैं। बड़ा बेटा आक्रोश में आकर कहता है- "जिस उम्र में लोग तीर्थ करते हैं, भक्ति में मन रमाते हैं उस उम्र की नाती-पोतों वाली औरत का ब्याह रचना .... आज तक नहीं सुनी थी यह अनहोनी। पिता जी की आत्मा कितनी दुखी हो रही होगी यह सब देखकर....।"[1] औरत समाज के बहुत से बंधनों में बंधी हुई है। उसे उन सबसे बाहर निकलकर अपने बारे में सोचने का पूरा अधिकार है। क्यों वह समाज की परंपरावादी जंजीरों में जकड़ी रहे। घर से बाहर निकले तो अस्मिता का सवाल, घर में अकेले रहे तो परंपरा, रूढ़ि का सवाल आखिर क्यों नारी ही अकेली पिसती रहे इन सभी सवालों के बीच में। दुविधा खत्म होने का नाम न लेती। अपर्णा अपनी माँ के साथ थी। शायद वह भी एक स्त्री है इसलिए वह अपनी माँ का दर्द समझ पायी। अपनी विचारधारा समाज में रहने वाली पुरुष सत्ता से उजागर होती है। जो समाज कहेगा वही सही है। यह गलत बात तो नहीं कि अपना अकेलापन, सूनापन दूर करने के लिए किसी का साथ लेना। किसी से अपनी सारी खुशियाँ तथा दुख बाँटना, यह तो गलत नहीं है। समाज क्यों फंसा है इन परंपरावादी विचारधारा के दकियानूसी बंधनों में। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री की विभिन्न त्रासदी का मुख्य कारण समाज में बनाई गई यही सभी रूढ़ियाँ हैं, जिसमें पुरुष कितनी भी शादियाँ करे, वह घर से कितनी देर भी बाहर रहे, वह शराब पी सकता है वह कुछ भी कर सकता है। परंतु यह सब बंधन सिर्फ और सिर्फ महिलाओं के लिए ही बनाए गए हैं।

[1] उलटबाँसी - कविता, पृ.सं. 16

3.4.3.4 पारिवारिक बंधनों में बंधी हुई स्त्री

भारत अपनी एकता के लिए विश्व भर में जाना जाता है। एकता अर्थात एकत्रित होकर रहना। हमारा समाज भारतीय संस्कृति को मानता है। जहाँ हम घर में एक परिवार बनकर रहते हैं। यह परिवार अपने एकता की निशानी है। जहाँ बहुत से अपने-अपने विचार होते हैं। संयुक्त परिवार एवं एकल परिवार है। अधिकतर समाज में देखा जाए तो संयुक्त परिवार की धारणा सदियों से चलती आ रही है। जहाँ पूरा परिवार मिलकर साथ-साथ रहते हैं। सुख-दुख सब साथ-साथ बाँटते हैं। यहाँ स्त्री की विपदा और अधिक बढ़ जाती है। असंख्य रूढ़ि-परंपराओं से स्त्री-पुरुष के संबंध बंधे हुए हैं। यहाँ सबकी अपनी-अपनी विचारधारा होती है। अपने-अपने मत होते हैं। इन सबके साथ चलना कहीं-न-कहीं स्त्री के लिए मुश्किलें खड़ा कर देती हैं। सूर्यबाला की कहानी 'गौरा गुणवंती' की पात्र गौरा की कहानी है। माता-पिता स्वर्ग सिधार चुके हैं। बड़े भैया तथा भाभी के साथ गौरा को रहना पड़ रहा है। उसकी बूढ़ी दादी भी गौरा के साथ है। जब तक भाइयों की शादी ना हो वह माता-पिता के बनकर रहते हैं। एक बार उनके जीवन में उनकी पत्नी का साथ मिल गया तो बाकी सब दूसरे स्थान पर बन जाते हैं। गौरा एक होशियार लड़की है। परंतु उस पर माता-पिता का साया न होने की वजह से उसे अपने ढेरों अरमानों का त्याग करना पड़ता है। गौरा पढ़ाई में बहुत अच्छी तथा होशियार है। परंतु भैया को अपनी बेटी की स्कूल फीस भी देनी होती है। उसमें वह बेटी और बहन दोनों का खर्चा कैसे उठा पाएंगे यह सोचकर गौरा कहती है- "कितने दिनों बाद मैंने भाभी से कहकर नाम कटवा लिया था, भाभी ने ना-नू भी की, पर मैंने समझा दिया कॉलेजों में कुछ पढ़ाई नहीं होती, बस बता देते हैं फलाँ-फलाँ किताब पढ़ लो, सो मैं घर में ही पढ़ लिया करूँगी।"[1] भैया भाभी की विवशता गौरा बनना नहीं चाहती थी इसलिए वह अपना नाम कॉलेज से कटवाना चाहती है। परंतु उसकी माँ या पिता कोई भी होते तो इतनी दुविधा से एवं विवशता से उसे

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 15

कॉलेज से नाम कटवाना नहीं होता। गौरा अपने आपको भैया-भाभी का बोझ समझने लगी थी। इसीलिए शायद पढ़ाई की इच्छा होते हुए भी उसने अपने मन को मार कर इतना बड़ा फैसला लिया।

पंखुरी सिन्हा की कहानी 'कोई भी दिन' एक बेबस पंडित की पत्नी की कहानी है। जो अपने होशो-हवाश खो बैठी है। पति की मार ने उसे आधा पागल तो बना दिया था। पंडित बनकर जो संपूर्ण समाज को अपना ज्ञान बांटता है, उसे उसी के घर की औरत की इज्जत करना नहीं आता। बात-बात पर मारपीट बस जिसमें वह औरत अपना जो पंडित जी की पत्नी है अपने होशो-हवाश खो बैठी है- "बड़ी मुश्किल है, पंडित जी की पत्नी के साथ, अब क्या कहा जाए। दूध गैस चढ़ाकर भूल गयी। गैस फुल पर ऑन है। दूध उबल-उबलकर चूल्हे पर गिर रहा है। घर एकदम धुआँ-धुआँ। सब खिड़की बंद हैं। खिड़कियाँ कभी खोलती ही नहीं हैं। ऐसे में किसी दिन आग लग जाएगी। कुछ होश ही नहीं है उसको। बाहर ग्रिल पकड़कर चुपचाप खड़ी है। विचित्र परिस्थिति हो गयी है, कुछ बोलते नहीं बनता है।"[1] आखिर क्यों एक स्त्री को ही सब झेलना पड़ता है। घर हो या बाहर सबके तानों का शिकार एक औरत ही बनती है। पंडित की पत्नी को इस दुनिया व समाज से चिढ़ हो चुकी है। उसे अब किसी से वास्ता नहीं। वह अकेले में खुद को क्या कर ले इसका भी कोई भी भरोसा नहीं। यही त्रासदी स्त्री प्राचीन काल से अब तक झेलती आ रही है। जिसके दर्द का कोई भी अंत कहीं भी दिखाई नहीं देता।

3.4.3.5 स्त्री उत्पीड़न तथा यौन शोषण

स्त्री किसी भी जाति, किसी भी वर्ग, किसी भी समाज की हो। उसे देखने का नजरिया प्रत्येक समाज, वर्ग, जाति में एक जैसा ही होता है। सदियों से औरत को सिर का बोझ माना गया है। पैरों की धूल समझा गया है। औरत की विवशता है उसका शरीर जो उसने नहीं स्वयं

[1] कोई भी दिन - पंखुरी सिन्हा, पृ.सं. 141

प्रकृति ने बनाया है। स्त्री ने कपड़े चाहे कैसे भी पहने हो वो सिर से लेकर पांव तक ढंके रहने दो या छोटे-छोटे कपड़े पहनकर रहने दो। खोट देखने वाले की नजर में होती है। कपड़े पहने स्त्री की नहीं। अपनी सभी परेशानियों की जिम्मेदारी वह स्वयं है ऐसा समाज कहता है, परंतु उसी स्त्री की एक मानसिक स्थिति क्या हो सकती है, इसका विचार शायद किसी को नहीं होता है। मुद्राराक्षस की कहानी 'उसका फैसला' की 'बिन्दो' जो समाज की सभी त्रासदियों से हार चुकी हैं। उसके विश्वास को पैरों तले रौंदा गया है। बस शारीरिक रूप से ही स्त्री की तुलना की जाती है। उसका मनोबल तोड़ा जाता है। गाँव की पंचायत का फैसला बिन्दो को पहले ही पता था। जिसने उसका बलात्कार किया वही पंचायत में न्याय करने बैठा है। पति, सास, ससुर किसी का भी साथ बिन्दो को नहीं था। माँ-बाप, भाई सबको गाँव की पंचायत पर भरोसा था। तो क्या करे अकेली बिन्दो आखिर में उसने चुना मौत को- "अब कहाँ भागती है साली, तेरा फैसला तो होकर रहेगा। कहकर चन्दर उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़ा। लेकिन इससे पहले कि चन्दर उसको पकड़ पाता उसने कुएँ में छलांग लगा दी। सारी पंचायत अवाक देखी रह गई।"[1] क्या वजह है कि बिन्दो को अपनी जान देनी पड़ी। अपने अस्तित्व को मिटाना पड़ा। अपने-आपको कब तक एक स्त्री को वह पवित्र है, यह साबित करना पड़ेगा। जब समाज, गाँव के साथ उसका पति ही उसे सबके सामने शर्मिंदा करे, तो वह किसके सहारे और किसके लिए जिंदा रहे। यही स्त्री वेदनाएँ बिन्दो के मन-ह्रदय में साँप की तरह रेंग रही होगी। उसके जीने का मकसद उससे छीन लिया जाता है। अनिता गोपेश की कहानी 'कित्ता पानी' में एक स्त्री वेदना उसका डर उसे कुछ सोचने ही नहीं देता। अकेली लड़की रात के समय घर कैसे पहुँचे उसी की यह कहानी है। यह विपदा शिक्षित हो या अशिक्षित दोनों महिलाओं के साथ होती है। कहानी एक पार्टी की रात की है। जहाँ लेखिका अपने मन की बात पाठक वर्ग तक पहुँचाना चाहती है। रात में कोई भी सवारी मिलती नहीं, मिलती है तो

[1] नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, मुद्राराक्षस, पृ.सं. 104

स्त्री को हजारों प्रश्नों से गुजरना पड़ता है, डरना पड़ता है- “आश्चर्य से सोचती हूँ अकेले पुरुष के सामने स्त्री, जाति, वर्ग, संप्रदाय, उम्र सबसे परे, अंतत: स्त्री ही है- पुरुष से डरती हुई भयभीत, आक्रांत। नहीं! ‘पुरुष’ से नहीं, पुरुष में छिपे उस पशु से जो ऐसी स्थिति में उसके भीतर उग आता है। आये दिन तो पढ़ती है किस्से बलात्कार के। ‘बाहर से आयी किसी विदेशी पर्यटक के साथ ड्राइवर ने किया बलात्कार!’ ‘अकेले औरत से गलत राह दिखाकर सुनसान में ले जाकर किया सामूहिक बलात्कार।’ यह जघन्य अपराध सामान्य पुरुष नहीं कर सकता और राक्षस के आगे तो देवता भी हारे हैं, तो मैं किस खेत की मूली!”[1] लेखिका ने कितने मार्मिक शब्दों से स्त्री की त्रासदी तथा उसके स्त्री होने की विपदा का चित्रण किया है। घर में हो या घर से बाहर स्त्री आज के वर्तमान में भी कहीं भी सुरक्षित नहीं है। इसलिए वर्तमान पत्र में छपकर आता है। एक साल की बच्ची के साथ बलात्कार, बलात्कार उसके अपने पिता द्वारा। जो शब्द सुनने में इतने घिनौने हैं, तो वह बलात्कार उस बच्ची के मन में क्या असर डाल रहा होगा।

3.4.3.6 प्रेम संबंध में स्त्री दृष्टिकोण

‘प्रेम’ शब्द मन को एक तरह सुकून तथा शांति प्रदान करने का काम करता है। प्रेम भावना मनुष्य के भीतर का द्वेष निकाल कर उसके भीतर आत्मीयता के भाव का निर्माण करती है। मनुष्य एक बार ही जन्म लेता है और एक ही बार मृत्यु की शरण में जाता है। इतनी छोटी सी मनुष्य की जिंदगी है। उसे गुस्सा, द्वेष, अहंकार, घृणा से न जीकर अगर प्रेम भावना से जीवन व्यतीत किया जाए तो कितना अच्छा हो सकता है। परंतु यह इतना आसान भी नहीं। जैसे हाथ की पाँचों उंगलियाँ समान नहीं होती। उसी तरह प्रत्येक मनुष्य भी समान नहीं होता। मुँह से कही बातें सब सच हो जाए तो कलयुग जैसी कोई बात ही नहीं रहती। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपनी कहानियों में इन्हीं भावों का चित्रण किया है। यह मनुष्य की

[1] कित्ता पानी - अनिता गोपेश, पृ.सं. 45

विविधता को भी दर्शाता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम- ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' एक माँ और बेटी की कहानी है। एक बेटी जो पढ़-लिखकर अपने पाँवों पर खड़ी हुई। वो सब कुछ किया जिससे व्यक्ति को अच्छा नाम मिले, इज्जत मिले। परंतु यही अच्छा नाम अपनी जिंदगी खराब कर दे तब उस नाम का क्या करें, यही दुविधा माँ के हृदय में भी है। माँ, पुत्री का प्रेम जगत में सबसे ऊँचा होता है। उसकी भावनाएँ बहुत महत्वपूर्ण बन जाती है। ऐसी ही माँ की भावनाएँ बताते हुए लेखिका लिखती है- "तू और बड़ी हुई। तू और बड़ी हुई। तू सपनों में खोने लगी, हवा में उड़ने लगी। तूझे अपने साथ पढ़ने वाला एक लड़का अच्छा लगने लगा था। तुम्हारे सपने एक थे। खुशियाँ एक पर तुम्हारे मजहब अलग थे। हम सबने तुझे घेरा। तुझे कभी आँसुओं का कभी अपनी ममता का वास्ता दिया, मजहब बहुत बड़ी दीवार है, समय रहते चेत जा।"[1] माँ अपने बच्चे का कभी बुरा नहीं चाहेगी। वह अपने बच्चे के लिए सदा तत्पर रहती है, प्रत्येक काम के लिए। लेखिका ने यहाँ बड़े सरल एवं अच्छे शब्दों में अपनी बेटी की विविशता को चित्रित किया है। प्रेम मनुष्य को जोड़ने का काम जरूर करता है। परंतु यह प्रेम ही मजहब के प्रति अपना प्रेम भी व्यक्त करता है। प्रेम भले ही मनुष्य को एक बनाए, परंतु मजहब उन्हें कभी एक होने नहीं देता। बेटी के प्रति माँ की प्रेम भावना लेखिका यहाँ अच्छे शब्दों में व्यक्त कर रही है। यह प्रेम माँ बेटी का रिश्ता दिखा रहा है।

क्षमा शर्मा की कहानी 'न्यूड का बच्चा' व्यथा भरी प्रेम कहानी है जहाँ प्रेम का अर्थ शारीरिक सुख है। यहाँ दो आत्माओं का मिलन प्रेम नहीं है। यह अलग प्रेम की भाषा है ऐसे भी कह सकते हैं। प्रेम व्यथा नहीं सुख का भाव निर्माण करने वाला होना चाहिए परंतु मजबूरी प्रेम की परिभाषा भी बदल देती है। लेखिका वेश्या बनी स्त्री का प्रेम व्यक्त करते हुए लिखती हैं- "जहाँ तू चाहे भी तो नहीं पहुँच सकेगी। जहाँ हूरें सोने की तश्तरी में रखकर हीरे-मोती से जड़े गिलास हम प्रेमियों के सम्मान में पेश करेंगी। उनमें तेरी इस दुनिया का शर्बत या दूध नहीं

[1] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 129

बल्कि अंगूरों की लजीज शराब भरी होगी। शराब!"[1] दुनिया बहुत बड़ी है। उसमें रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी विचारधारा से आगे बढ़ रहा है। अपनी वेदना, अपनी त्रासदी को प्रत्येक स्त्री अपने-अपने ढंग से देखना चाहती है। किसी में अधिक क्षमता होती है तो कोई बीच में ही हार जाती है। प्रेम की कोई एक सरल परिभाषा देना शायद आसान न हो सके। क्योंकि माँ-पुत्री का प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम, प्रेयसी-प्रियतम का प्रेम मनुष्य और प्रकृति का प्रेम आदि सब एक दूसरे से भिन्न हैं। जिसे एक ही मापदंड में मापना शायद सही न हों। इक्कीसवीं सदी की कहानियों की विवशता उनका भाव कहानीकार बड़े मार्मिक ढंग से कहानियों में चित्रित करता है। इसलिए प्रथम दशक की कहानियों का स्तर अंतिम दशक की कहानियों से थोड़ा भिन्न दर्शित होता है।

3.4.3.7 महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण इसका अर्थ अगर समझा जाए तो स्त्री का शक्तिशाली होना या फिर स्त्री का आत्मनिर्भर बनना, स्त्री का अपने जगत में अपना एक नाम स्थापित करना हो सकता है। स्त्री सशक्तिकरण की जरूरत क्यों आई है, इसपर अगर विचार किया जाए तो पाठक वर्ग समझ सकता है कि आज की इक्कीसवीं सदी की पीढ़ी भी विचारों के क्षेत्र में कितनी पीछे है। स्त्री को आज भी उसे जो सम्मान या आदर मिलना चाहिए वह मिल नहीं पा रहा है। इसलिए सशक्तिकरण की धारणा का निर्माण हुआ। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपने विचारों को खुले ढंग से पाठक के समक्ष उतार दिया है जिसमें शिक्षित-अशिक्षित दोनों महिलाओं की स्थिति का अच्छी तरह से चित्रण किया गया है। स्त्री कहीं भी हो वह मजदूरी करती हो या किसी बड़े पद पर स्थायी नौकरी करती हो। उसे समाज का सामना तो करना ही पड़ता है। आज की स्त्री बस चूल्हा और घर ही नहीं बल्कि बड़े-बड़े कामों में अपना वर्चस्व बढ़ा रही है। अपना आत्मसम्मान खड़ा कर रही है। जीने के लिए किसी कंधे की आवश्यकता

---

[1] नेम प्लेट - क्षमा शर्मा, पृ.सं. 80

नहीं दिखाना चाहती है। शर्मिला बोहरा जालान की कहानी 'विकसित मैं' दो सहेलियों की कहानी है। जहाँ प्रेम के नाम पर द्वेष का आदान-प्रदान हो रहा है। दिखाने की कोशिश है कि सभी ठीक है। परंतु वहाँ कुछ भी सही नहीं है। कहानी की नायिका एक साहित्यकार है जो अपने विचारों को समाज के सामने रखना चाहती है। जो अपने सम्मान का अधिकार समाज में स्थित पुरुषवादी विचारधारा से छिनना चाहती है। आज की स्त्री बस पति, घर, चूल्हा, खाने की बात न कर कर साहित्य, समाज, भविष्य की बातें करती हैं, जिससे अपने स्त्री होने का मलाल किसी को न हो। न खुद को हो या न दूसरे को हो। लेखिका अपनी सहेली के प्रति नायिका के विचार प्रकट करते हुए लिखती है कि- "उसे यह पता नहीं है कि मेरी सहेलियाँ वे हैं जो मुझसे हर विषय पर बात करती है। हम लोग हर समय सास और पति की बात नहीं करते और न ही कल खाने में क्या बनाया था आज क्या बनाने वाली हो की पूछताछ। हम बात करते हैं कि साहित्य में आजकल क्या लिखा जा रहा है, कला फिल्मों के दर्शक कौन हैं? मैं तो घिसी-पिटी फिल्मों, घिसे-पिटे लेखन में अंतर करना जानती हूँ। पर उसे तो यह सब कुछ भी नहीं मालूम।"[1] स्त्री अपने विचारों को सभी तरह के रंगों में ढालना चाहती है। जिसमें आत्मसम्मान और प्रेम मिले। परंतु यह समाज की धारणा है कि वह स्त्री को हमेशा नीचे ही देखना चाहता है। जिससे स्त्री का आत्मबल कमजोर पड़ जाता है। वह आगे नहीं बढ़ती। परंतु महिला सशक्तिकरण ने महिलाओं को नयी उम्मीद से जोड़ दिया। आज की महिला बल से नहीं अपनी आत्मशक्ति से जागृत होकर सभी कठिनाइयों का सामना कर रही है। आज वह महसूस नहीं कर पा रही कि उसे किसी के साथ की भी जरूरत है। कहानीकारों ने अपने विचारों की एक बड़ी शृंखला बनाई है। जिसमें इक्कीसवीं सदी की महिलाएँ किन-किन क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है उसका उल्लेख हो रहा है। स्त्री ताकतवर बन रही है अपने विचारों से। उसे अब किसी पुरुष का हाथ नहीं चाहिए आगे बढ़ने के लिए आदि सब बातों को ग्रहण पाठक

[1] बूढ़ा चाँद - शर्मिला बोहरा जालान, पृ.सं. 104

कहानियों से कर पाता है। आज की वर्तमान स्त्री की कहानियाँ उल्लेखनीय भी है। जहाँ प्रत्येक कहानी में त्रासदी चित्रित है, वहीं कहीं स्त्री का आक्रोश भरा रूप भी चित्रित किया गया है। जिससे कह सकते हैं कि वर्तमान समय की स्त्री अपने अधिकार को लेना जानती है। चाहे बल से या साहित्य से उसे अपना सम्मान वापस पाना ही है किसी भी हालत में।

3.4.3.8 अंधश्रद्धा में फंसी स्त्री की मान्यता

अंधश्रद्धा मानव मस्तिष्क को परदे के अंदर बंद कर देती है। क्या सच क्या झूठ यह जानने नहीं देता। समाज में फैली असंख्य अंधश्रद्धा की वजह से बहुत से पाप, अत्याचार, गुनाह भी हो रहे हैं। जिनको रोकना आज की स्थिति में कितना संभव है कह नहीं सकते। और जब स्त्री अंधश्रद्धा के बारे में कहा जाए तो उसकी कोई सीमा ही नहीं होगी। वर्तमान समय में आधुनिकीकरण बहुत संपन्न हो चुका है। फिर भी बहुत सी ऐसी मान्यताएँ हैं जिनकी वजह से भारत रूढ़ि, परंपराओं में फंसा हुआ है। स्वयं की विचारधारा में जकड़ा हुआ है। यही दुविधा सब तरफ दिखाई पड़ती है। इसीलिए कहानीकारों की कहानियों में भी ऐसी ही परंपरा, अंधश्रद्धा जगह-जगह चित्रित की गई है। नये कपड़े पहनने से पहले विधियाँ, खाना खाने से पहले की विधियाँ, पूजा की विधियाँ, घर से कहीं बाहर जाने की विधियाँ आदि ऐसी बहुत सी प्रथाएँ हैं जिनमें मनुष्य अटका हुआ है। जिससे बाहर आने की कोशिश वह करें भी तो निकल नहीं पा रहा। पंखुरी सिन्हा की कहानी ‘कोई भी दिन’ में उमा के अपने दोनों बेटे सोनू और बबलू बहुत दिनों या यूँ कहें वर्षों के बाद घर आने वाले हैं। बेटों के प्यार में माँ को अंधश्रद्धा की सभी सीमाएँ लांघने को विवश कर दिया है। उमा को लगता है कि इतनी सारी खुशी को अपने रिश्तेदार, अड़ोस-पड़ोस किसी को भी कहे तो उनके बच्चों को नजर लग जाएगी। संक्रांति त्यौहार पर दोनों बेटे घर आ रहे हैं। मगर इस साल संक्रांति मंगलवार के दिन आ रही है। संक्रांति अर्थात तिल और गुड़ का त्यौहार है। त्यौहार के दिन तिल एक-दूसरे को बाँट कर खुशियाँ बांटी जाती हैं। मगर मंगलवार के दिन तिल बाँटना शुभ नहीं। इसी विपदा में फंसी

उमा के मन में हजारों सवाल खड़े हुए होते हैं। कहाँ और किसने कहाँ होगा कि तिल कोई सी दिन बांटना है और इस दिन नहीं। यह अंधश्रद्धा वैज्ञानिक युग में हम रहते हुए भी हमें पीछे लेती जाती है। अपनी परेशानी को हल करने के लिए उमा पंडित जी के पास जाना चाहती है- "विंध्यवासिनी जी के किरायेदार भी तो पंडित हैं। पंडित होना उनकी जाति ही नहीं, उनका पेशा भी है। वे घरों में हवन-पूजा इत्यादि करवाते हैं। क्या उन्हीं से पूछ लिया जाए? शंका का जिस हद तक निवारण हो जाए अच्छा है। इस बार की मकर संक्रांति के बेखौफ, निष्कंटक मन से मनाना चाहती थी।"[1] अंधश्रद्धा न मनुष्य को सही ढंग से जीने देती है, न मरने देती है। बस मन में हजारों सवालों को जन्म देती है। अंधश्रद्धा मन में स्थान बना लेती है। इसलिए उससे पीछा छुड़ाना आसान नहीं होता। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भी वैज्ञानिक युग के साथ-साथ अंधश्रद्धा में धंसे समाज का भी चित्रण है। जिससे पाठक उस समय से संबंध रख पाता है। सभी चित्र पाठक के सामने होते हैं। किस परिस्थिति में किस विवशता से कहानी लेखन का कार्य किया गया होगा। कहानी मनुष्य जीवन का चित्र है जो कथन से या लेखनी से समाज तक पहुँचता है। जो चित्र नयी पीढ़ी भी देख रही है। ऐसे में अगर अंधश्रद्धा जैसा अंधकारमय जीवन हमारे आने वाली पीढ़ी के सामने रखेंगे तो हमें क्या उनकी उज्ज्वल भविष्य की कामना की आशा कर सकते हैं। वैज्ञानिक युग में अंधश्रद्धा पर विश्वास करना सही और अच्छी बात नहीं। क्योंकि वह मनुष्य मस्तिष्क में गलत और सही सोचने की क्षमता को खत्म कर देती है। अंधश्रद्धा मनुष्य की विचारशीलता को खत्म कर देती है। अंधश्रद्धा मनुष्य की परछाई है। जो कभी-भी उसका साथ छोड़ने की बात बिल्कुल नहीं करती। मगर हमें आगे बढ़ना है।

3.4.3.9 स्त्री की आर्थिक परिस्थिति

पुरुष प्रधान समाज में पुरुष का ही वर्चस्व भारतीय संस्कृति में पहले से ही होता आया है। इसका यह कारण भी हो सकता है कि पुरुष घर और बाहर की पूरी जिम्मेदारी संभालता है।

[1] कोई भी दिन - पंखुरी सिन्हा, पृ.सं. 134

घर का खर्चा-पानी निकालने के लिए पैसे जरूरी है। यही पैसे पुरुष हमेशा से कमाता आया है। बिना धन के जिंदगी बिता नहीं सकते। धन कमाने के लिए औरतों को बाहर निकाल नहीं सकते। परंपराओं के बीच फंसा समाज यही सब दर्शाता आया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत होने का चित्रण है। दलित तथा आदिवासी महिलाएँ पुरुष के समान घर तथा व्यवहार दोनों संभालना होता है। इसलिए मजदूरी, कोयला खदानों में काम करती, लकड़ियाँ बेचती, घर साफ-सफाई का काम करती, गाँव स्वच्छ करती आदि कामों में दलित तथा आदिवासी महिलाओं का चित्रण है। इक्कीसवीं सदी की महिलाएँ शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ती दिखाई गई हैं। आर्थिक परिस्थिति ठीक न होने की वजह से वेश्यावृत्ति में पड़ी स्त्रियों का चित्रण भी इक्कीसवीं सदी की कहानियों में किया गया है। सवर्ण घरानों की स्त्रियाँ घर से बाहर अधिक निकलती नहीं। उनका दायरा बस घर की दहलीज तक ही होता है उससे आगे नहीं। इसी वजह से स्त्री पहले अब तक स्त्री, पुरुषों पर निर्भर दिखाई गई है। पुरुष प्रधान समाज की यही विवशता स्त्री झेलती आ रही है। आर्थिक परिस्थिति सही नहीं रहने के कारण कहीं-न-कहीं स्त्रियाँ अपने मन का दर्द वही छुपा लेती है। मगर कुछ कह नहीं पाती। सूर्यबाला की कहानी 'गौरी गुणवंती' की गौरी भी इसी असमंजस में फंसी हुई है। माता-पिता दुनिया में नहीं रहे भैया और भाभी का बोझ समझती गौरी स्वयं को और कहती- " 'अनाथ' लिखवा कर भैया मेरी फीस शुरू से माफ कराते आ रहे थे। एक-दो साल, जब तक विप्पू नहीं हुआ था, छात्रवृत्ति भी मिली थी, पर जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, कर्तव्यों के प्रति अधिक से अधिक सजगता हावी होती रही। मेरे कपड़ों पर खाने पर, किताबों पर कितना खर्च होता है, हिसाब लगाती रहती। इसीलिए पास में कुछ पैसे होने पर भी पिकनिक जाने वाली लड़कियों में मेरा नाम कभी न लिखा गया न स्कूल में हुआ कोई शो मैंने देखा। एक बार इला दी ने धीमे से अलग बुलाकर पूछा भी था- सुनो, गौरी, तुम पैसों की वजह से न जी रही हो तो

मैं....।”[1] आर्थिक जीवन सही रखने के लिए मनुष्य को अपनी सारी जिंदगी कर्म में झोंकनी पड़ती है। स्त्री अगर बाहर काम को जाए तो अस्मिता का प्रश्न प्रत्येक औरत के सामने खड़ा रहता है। घर में रहे तो छोटे-बड़े खर्च गिनाए जाते हैं। असमंजस में घिरी स्त्री अपनी परेशानी किससे बयान करे। यह वह समझ नहीं पाती। ऐसा क्यों है कि स्त्री को अपने जीवन में प्रत्येक वस्तु के लिए लड़ना ही है, आश्रित होना ही है। स्त्री जीवन बहुत सी कठिनाइयों को लेकर जन्म लेता है। जन्म से मृत्यु तक वह समाज के विभिन्न संस्कार, परंपरा, रूढ़ि आदि में जकड़ी होती है। स्त्री वेदना का कोई अंत नहीं जैसे समंदर और आकाश का भेद कोई जान नहीं सकता। उसी तरह इस समाज में स्त्री चाहे वह कोई भी हो, गरीब या अमीर, दलित या सवर्ण, कोई भी जाति की हो, उनकी वेदनाएँ सब एक ही होती हैं। वेदनाएँ दिखने का माध्यम भले ही अलग हो। स्त्री को कभी भी दूसरे के ऊपर आर्थिक दृष्टि से निर्भर नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह उसकी कमजोरी प्रदर्शित करता है, जो कभी होना नहीं चाहिए।

3.4.3.10 स्त्री अत्याचार व अकेलापन

जीवन एक-दूसरों को साथ लेकर चलने का नाम है। तभी सुखी जीवन भोग सकते हैं। स्त्री-पुरुष भेदभाव शरीर से करना यह ठीक बात नहीं। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष दोनों को भिन्न तरह से भिन्न-भिन्न कामों के लिए बनाया है। इस पर स्त्री नाजुक, सरल, भोली तथा पुरुष शक्तिशाली, बलवान आदि शब्दों से हम इन्हें गौरव देते हैं। सरल, भोली का अर्थ यह तो नहीं कि उस पर अपनी चाहे वह हरकत पूरी की जाए। इक्कीसवीं सदी में हजारों कहानियाँ लिखी गयीं। प्रत्येक कहानी की अपनी एक गाथा है। प्रत्येक कहानी अपने आप में कुछ कहती सुनाती है। स्त्री शोषण, बलात्कार की वार्ताएँ आए दिन टेलीविजन, फोन, रेडियो पर सुनते आते हैं। स्त्री का शारीरिक बल से कमजोर होना क्या उसका गुनाह है? अगर नहीं तो क्यों एक साल की बच्ची को भी छोड़ा नहीं जाता। बलात्कार शरीर का नहीं आत्मा का होता है।

---

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 13

जिससे वह पूरी तरह टूट जाती है। उसका मन बिखर जाता है। पर समाज को स्त्री के मन से क्या लेना देना। स्त्री शोषण जैसे कोई हर रोज होने वाली दिनचर्या बन गयी है। छोटे से छोटे बच्चों के कानों में आज वर्तमान में जो चीजें पहुँचनी नहीं चाहिए वह हो रही हैं। शायद इन्हीं सभी कारणों की वजह से स्त्री खुद को अकेला पाती है। उसे किसी पर भी विश्वास करना नहीं है। वह थक चुकी है जमाने के ताने सुनकर। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में दलित तथा आदिवासी महिलाएँ जैसे दूध में गिरी मक्खी की तरह है। एक बार अपना काम कर लिया फिर निकाल बाहर फेंका। यह सोच अगर आगे बढ़ती रहेगी तो स्त्री सुरक्षित कैसे होगी। स्त्री का अकेलापन उसके अंदर आक्रोश का निर्माण करता है। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'महीन रेखा' सोना और रूपम की है। कैसे पति-पत्नी अपने निजी सवालों का जवाब न ढूंढकर एक-दूसरे से अलग होते जाते हैं, उसकी यह कहानी है। सोना को अब उसके पति में पहले जैसा रूपम नहीं दिखाई दे रहा है। वह कहती है- "ऐसा क्यों होता है कि शादी से पहले अपना प्यार सबसे प्यारा लगता है। दुनिया की हर शै उसके समक्ष फीकी लगती है। फिर ऐसा क्या हो जाता है कि वह प्यारी चीज अपने प्यार की केंचुली को उतार फेंकती है। उस केंचुली में नयापन होता है, पर अजनबीपन झलकने लगता है, बनावटीपन आ जाता है। वह लिजलिजापन धीरे-धीरे घृणा में बदल जाता है।"[1] प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्त्री को ही ढूंढना है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियाँ स्त्री के प्रत्येक संदर्भ को दर्शाती आयी हैं। शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री दोनों ही समाज के ढकोसलों में फंसती आती है। जो समझदार है, अपना भला बुरा जान पाती है ऐसी स्त्रियाँ सावधान हो जाती हैं। परंतु यह सभी स्त्रियों के साथ होगा ऐसा हम कह नहीं सकते। वैज्ञानिक युग में सांस ले रहे हम आज भी स्त्री-पुरुष में बड़ा भेदभाव करते हैं। यह भेदभाव घर, स्कूल, कार्यस्थल सभी जगह दिखाई देता है। स्त्री को

[1] क्या गुनाह किया - अंजु दुआ जैमिनी, पृ.सं. 21

अपनी अस्मिता के लिए लड़ते दिखाया गया है। अपने स्त्रीत्व के लिए हमेशा उसे समाज ने ग्लानि ही प्रदान की है। इसीलिए वह स्वयं को अकेला पाती है।

3.4.4 वृद्ध संवेदना

समाज बनता परिवार से है। परिवार बनता है घर में रहने वाले व्यक्ति से। छोटे-बड़े सबको मिलाकर एक संसार बनता है। उस संसार की नींव घर के बड़े होते हैं। दादा-दादी, नाना-नानी यह सब घर को संभाले रखते हैं। नाती-पोतों को अपने दादा-दादी, नाना-नानी की गोद में खेलते देखना जैसे कोई सुखभरी नदी में नहाने जैसे लगता हो। परंतु आज दुनिया बहुत आगे बढ़ चुकी है। आधुनिकीकरण ने सब कुछ बदल दिया है। आज की पीढ़ी नौकरी, व्यवसाय के लिए गाँव से दूर जाना चाहती है। उन्हें जाना भी पड़ता है। माँ-बाप वही गाँव में रह जाते हैं और बाकी परिवार शहर या उनकी नौकरी की जगह बस जाते हैं। यहीं से रिश्ते में अलगाव का निर्माण होता जाता है। घर की नींव जिसे हम कहते हैं वह अकेला पड़ता जाता था। भारतीय संस्कृति यहाँ के मनुष्य को बड़े के प्रति आदर सम्मान की भावना सिखाती है। जो पहले जमाने में मानते भी थे। बड़ों का हुक्म ही सब कुछ होता था। परंतु आज की स्थिति ऐसी नहीं। आज के मॉडर्न जमाने ने सारे आदर सम्मान को नष्ट कर दिया है। संयुक्त की जगह एकल परिवार की धारणा सब तरफ दिखाई देती है। घर में अगर तीन बेटे हो तो तीन चूल्हे घर में जलते हैं। सामाजिक परिस्थिति, धन की आशा आदि सबकी वजह से मनुष्य बदलता जा रहा है। इन सबमें घर के बड़े जो अब वृद्धावस्था में पहुँच गए हैं उनकी स्थिति और भी अधिक भयावह है। वर्तमान समय में बड़ा प्रश्न है माता-पिता को देखेगा कौन, उन्हें संभालेगा कौन? जिन्होंने जन्म दिया ऊँगली पकड़कर चलना सिखाया। दुनिया दिखाई उन्हें रखने के लिए आज के बच्चों एक छोटा सा कमरा भी नहीं है। यह विपदा से गुजरता वृद्ध मनुष्य शायद अंदर ही अंदर खून के आँसू पी रहा होगा। 'बागबान' फिल्म हम सबने देखी ही है, शायद कोई छूट भी सकता है। माता-पिता किन-किन त्रासदियों से गुजरते हैं, यह फिल्म इसका सटीक उदाहरण है।

वृद्धावस्था में शरीर साथ नहीं देता। पैर, घुटने, आँख सब कुछ धुंधला-धुंधला दिखाई देता है। एक अंधकारमय जीवन वृद्धों का हो जाता है। क्या यह सही है कि इस अवस्था में भी हम उन्हें ना देखे। आज के बच्चे वह भी आने वाले समय में वृद्ध चरण में पहुँचने वाले हैं। यह सब उनके साथ भी होगा। ऐसे ही पीढ़ियाँ आगे बढ़ती जाएंगी। तो हम कौन से संस्कार नई पीढ़ी को दे रहे हैं। एक-दूसरे से अलग करने के संस्कार। वृद्धावस्था जीवन का अंतिम चरण है। जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक मनुष्य को काम ही करता है। वृद्धावस्था में अगर थोड़ी सी खुशी, शांति तथा आत्मीयता से उन्हें नजदीक किया जाए तो शायद वह चैन की सांस से अपना देह त्याग सकते हैं। क्या हम इतना सुख भी इन्हें नहीं दे सकते। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में वृद्धावस्था में होने वाली त्रासदी, अकेलेपन की भावना कोई भी अपना नहीं यह भाव ऐसे विविध मुद्दों को उठाकर उस पर चर्चा की गई है। दलित, आदिवासी तथा स्त्री विमर्शों के बारे में अक्सर पत्र-पत्रिका, दूरदर्शन पर चर्चा दिखाई गयी है। इनमें ही और बड़ा विमर्श या यूँ कहें संघर्ष देखा गया वह है वृद्धावस्था। जाति, धर्म, मजहब इस पर चर्चा करना, कहानी लिखना एक हद तक देखा जा सकता है। परंतु घर का बड़ा व्यक्ति कैसे किसी पर बोझ बन सकता है। वह भी अपने लोगों के बीच में बोझ बनने की विचारधारा कितनी भयावह है।

3.4.4.1 वृद्ध मानसिक व सामाजिक वेदना

'वृद्धावस्था' शब्द सुनते ही ऐसा लगता है जीवन का यह अंतिम चरण सुखमय गुजर जाए। सबके साथ मिल-जुलकर रहना। सुख-दुख अपनों में बाँटना। जीवन के चार पल खुशियों में बिताना यही आशा रह जाती है। परंतु बच्चे अभी सभी जगह भटक चुके हैं। एक के साथ एक कोई रहना नहीं चाहता। शहरी जीवन सब पर प्रभाव डाल रहा है। मनस्थिति बदल रहा है। अच्छे और बुरे पहचान समझ नहीं पा रहा है। बूढ़े माँ-बाप को सबके सामने ले जाने के लिए शर्म आती है। उनकी वेशभूषा, उनका रहन-सहन पसंद नहीं आता। एस.आर.

हरनोट अपनी कहानी 'माँ पढ़ती है' में ऐसी ही ग्लानि में फंसे लेखक ने अपनी बात कही है- "बिना प्रेस किए कपड़े, प्लास्टिक के जूते उपहास का सबब बनने लगेंगे। फिर उनके मुँह से बीड़ी की बास आती रहेगी। उनके बाल भी ठीक तरह से नहीं होंगे। हालांकि शॉल सिर पर ओढ़ी होंगी पर काले-सफेद बालों की आपस में उलझी लड़ियाँ नीचे तक लटकी दिखाई देती रहेंगी। उनमें घास के तिनके और सूखी पत्तियाँ फंसी नजर आएंगी ही। जैसे ही लोगों को मालूम होगा कि मेरी माँ आई है तो वे बार-बार उनके पास बधाई देने जाएंगे। उनसे बातें करना चाहेंगे। कई कुछ पूछने लगेंगे और पत्रकार बंधु तो अपनी जिज्ञासु बातों से माँ को कुरेदेंगे भी। फिर पता नहीं माँ उनसे किस तरह बतियाएंगी। क्या कुछ उलटा-सीधा बोल देंगी। बातें करते-करते उन्हें खांसी आ गई तो सब कुछ उलटा-सीधा बोल देंगी। बातें करते-करते उन्हें खांसी आ गई तो सब कुछ किरकिरा हो जाएगा।"[1] एक साहित्यकार भी अपनी माता को लेकर इतनी बड़ी विपदा में है। बचपन में जिस माहौल में छोटी से बड़ी हुई, अब तो वृद्ध हो गई। वह अपना रहने का तरीका कैसे बदल सकती है। क्या गाँव की सीधी-सादी औरत बनकर रहना इतना बड़ा पाप है आज के संदर्भ में। जिस मिट्टी में रहते हैं वहाँ की खुशबू अपने शरीर को आत्मसात कर लेती है। वह खुशबू शरीर के रोम-रोम में बस जाती है। एकजीवी हुई गाँव की मिट्टी और माँ दोनों को समाज के लिए क्या अलग करना ही होगा? अगर अपने बेटे को ही चार लोगों के भीतर माँ को ले जाने के लिए शर्मिंदगी महसूस होगी। तो उस माँ के हृदय में कितनी वेदनाओं का सागर भर चुका होगा कि उसके बेटे को भी माँ से पहले समाज का ध्यान है। कहते हैं छोटा बच्चा और एक वृद्ध व्यक्ति दोनों के अंदर कोई भेद नहीं होता। दोनों भी अच्छे से चल फिर नहीं पाते। खाना नहीं खा पाते। अपनी रोजमर्रा के छोटे-बड़े काम आसानी से कर नहीं पाते। हम छोटे बच्चे को इतने लाड़ प्यार से पालकर बड़ा करते हैं तो वहीं एक वृद्ध मनुष्य के प्रति तिरस्कार की भावना निर्माण करना सही बात नहीं हो सकती। शरीर साथ

[1] दस प्रतिनिधि कहानियाँ - एस.आर. हरनोट, पृ.सं. 11

नहीं देता साथ ही साथ परिवार साथ नहीं देता। ऐसे समय एक वृद्ध मनुष्य के हृदय में कितनी वेदनाएँ जन्म लेती होंगी। वह स्वयं को एक दूसरे का बोझ मानते होंगे। प्रकृति ने मनुष्य को बनाया। बाल-किशोर-वृद्ध यह चरण प्रत्येक मनुष्य के लिए है। वृद्धावस्था मनुष्य की मानसिकता को बदल देता है। अच्छे घर-परिवार वाले मिल जाए तो जिंदगी बन जाती है। वरन् वृद्ध को बोझ समझकर जिंदगी को नरक बना देते हैं। जो कोई भी व्यक्ति बनना या ऐसी जिंदगी में जीना नहीं चाहेगा।

3.4.4.2 वृद्धावस्था की स्वास्थ्य रक्षा

जिंदगी का भरोसा मनुष्य कभी नहीं कर सकता। कब, क्या, कहाँ हो सकता है यह कोई नहीं बता सकता। जीवन अच्छा बिताने के लिए अच्छे और शुद्ध खान-पान की आवश्यकता शरीर को जरूर होती है। शरीर स्वस्थ रखने के लिए अच्छी जीवन शैली की आवश्यकता है। घर में बड़ों का ध्यान अच्छे से रखा जाए तो उनका स्वास्थ्य तो अच्छा बन ही सकता है। लेकिन अगर उन्हें सिर पर मढ़ा बोझ समझा जाए तो उनका स्वास्थ्य भी खराब हो जाता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में वृद्धों की दोनों ही तरह दिशाएँ दिखाई गई हैं। अपने माता-पिता को प्यार करने वाली संतान तथा उनका तिरस्कार करने वाली संतान दोनों का चित्रण किया गया है। जिससे वृद्धावस्था में वृद्धों की मानसिकता कैसे होती है, यह समझ सकते हैं। सूर्यबाला की कहानी ‘गौरा गुणवंती’ में ‘ताई’ जो एक वृद्ध महिला है उसका चित्रण किया गया है। ताई जो अपने बच्चों को बहुत प्यार करती है। अपनों के लिए कुछ भी करने के लिए तत्पर होती है। परंतु अब उम्र उसका साथ नहीं दे रही। बढ़ी उम्र के साथ शरीर भी हार मान रहा है। गौराबाई की सबसे प्रिय पोती है। गौरा के प्रति ताई को आत्मीयता का भाव अधिक है। क्योंकि गौरा अनाथ थी। अर्थात गौरा के अम्मा और पिताजी दोनों का देहांत हो गया था। गौरा ताई को छोटे बच्चे जैसा प्यार देती। उनकी प्रत्येक छोटी-बड़ी चीजों का वह ख्याल रखती। ताई की ऐसी कमजोर हालत गौरा को देखी नहीं जाती। गौरा कहती है- “ताई

अब इधर बेहद कमजोर हो गयी थी। दवा देती, पाट लगाती या बिस्तर ठीक करती, आशीर्वादों भरे स्वर गूँज-मूँजकर समाप्त होते रहते- राजारानी होगी बेटी! या हीरे-मोती से ले दी! कभी-कभी मन करता, ताई के पैर पकड़ कर रो पड़ूँ...ताई, बस भी करो ना.... यह विडम्बना भरा आशीर्वाद। पर उनसे भी कभी कहाँ कुछ बोली थी, जो आज कल बोलती।"[1] गौरा ताई को अच्छे से समझ पाती थी भले ही दोनों की उम्र में बहुत अंतर हो। ताई का अच्छे से ध्यान रखने वाली गौरा अकेली थी। घर में बाकी सभी लोगों को ताई के लिए इतना समय नहीं होता था। वृद्धावस्था व्यक्ति को कहीं-कहीं बेबस बना देती है। अपने हाथ पैर चल नहीं पाते दूसरों पर निर्भर रहना यह शायद वृद्धों के मन में उदासी की भावना निर्माण कर देते हैं। जिससे वह और बीमार होते जाते हैं। अपने स्वास्थ्य का ध्यान वह स्वयं नहीं रख सकते। और उन्हें कोई मदद करने वाला भी नहीं होता। सब व्यस्त है अपनी-अपनी दुनियाँ में, किसी के लिए समय नहीं। ऐसे क्षण में वृद्ध क्या कर सकता है। इक्कीसवीं सदी की वृद्ध कहानियाँ वृद्धों की त्रासदी पर लिखी गयी हैं। जिससे वृद्ध समस्याओं का पता पाठक को कहानी पठन से समझ सके। वृद्ध अपनी वेदनाओं से त्रस्त है। इसलिए अपने स्वास्थ्य के प्रति इतनी चिंता व्यक्त नहीं करता। इन सब दुविधाओं को देखकर उसे लगता है कि स्वर्ग सिधार जाना ही सबसे अधिक अच्छा उपाय है। जिससे किसी की भी त्रासदी का पात्र वृद्ध स्वयं न बन सके।

3.4.4.3 दो पीढ़ियों के बीच अंतरभेद

समय हमेशा बदलता रहता है। समय के साथ-साथ विचार, रहन-सहन, खान-पान सबमें बदलाव आते हैं। यह बदलाव पीढ़ी-दर-पीढ़ी बदलते रहते हैं। दादा जो कहेगा वह पोते को न भायेगा। पोता जो कहेगा वह दादा को न भायेगा। यह नियति है। जो होकर ही रहती है। भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव अधिक फैलने लगा है जिससे पुराने रीति-रिवाजों को मानना मतलब नयी पीढ़ी का अपमान हो रहा है। ऐसी नयी पीढ़ी सोच लेती

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 15

है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में नयी पीढ़ी की नयी भावनाएँ वृद्ध या पुरानी पीढ़ी उनकी भावनाएँ सबको चित्रित किया गया है। जिससे पाठक को दो भिन्न पीढ़ियों गतिविधियाँ समझने के लिए आसानी हो। 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित लेखिका कुसुम भट्ट की कहानी 'बाघिन' एक माँ की कहानी है। माँ जो बूढ़ी हो गयी है, उसकी सोच भी बूढ़ी हो गयी है। ऐसा अप्पी का मानना है। अप्पी याने अपर्णा जो बहू है इस घर की। अप्पी का पति कुछ ज्यादा काम नहीं करता। अप्पी की तीन बेटियाँ हैं। माँ याने सासु माँ का कहना है कि अप्पी घर के लिए अच्छी नहीं है। उसके पाँव घर में पड़ते ही सब कुछ तहस-नहस हो गया है और अप्पी ने घर को वारिस भी नहीं दिया। यही तानाशाही रोज-रोज इस घर में होती है। माँ को पता नहीं लड़का या लड़की पैदा होना पुरुष के हाथ में स्त्री के नहीं। परंतु यह सब माँ को कौन समझाए। इसी विपदा में अप्पी अपना मुँह बंद करके रहती है। क्योंकि उसे पता है कितना भी समझायें यह पुराने लोग समझने वालों में नहीं। माँ का ताना चालू ही रहता है- "दोषी है अप्पी.... किसी काम की नहीं.... बस्स बच्चे पैदा कर लिए तीन वह भी बेटियाँ! साथ ही तो पढ़ती थी रोहणी और यह ...।"[1] रोहणी, अप्पी की स्कूली सहेली थी। रोहणी का पति अफसर था। उसने एक बेटे को जन्म दिया था। तो माँ का कहना था कि रोहणी अप्पी से बहुत अच्छी है। और रोहणी घर की लक्ष्मी है। अपर्णा घर को बर्बाद कर डालेगी। बेटा या बेटी दोनों में कोई अंतर नहीं। बस शारीरिक रूप से लड़का-लड़की की धारणाएँ नापना गलत होगा। लड़का-लड़की का भाव सदियों से चलता आ रहा है। जो आजतक चल रहा है। परंतु यह भेदभाव अप्पी को गलत कैसे ठहरा सकता है। समाज में स्त्री-पुरुष भाव इन सब परेशानियों की मूल जड़ है। जो निकाल बाहर फेंकना बहुत आवश्यक है। परंतु यह बदलेगा कैसे? पूर्वजों के मन में जो भाव था आज दूसरी पीढ़ी उसे ही आगे बढ़ा रही है। सभी जगह सभी सही नहीं हो सकते उसी तरह वृद्ध व्यक्ति भी सही ही होता है। ऐसा नहीं कह सकते। विचार सही है या गलत यह स्वयं को

[1] हंस पत्रिका (दिसंबर 2006) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 25

सोचना चाहिए। वृद्धावस्था तक पहुँच के भी आप भेदभाव करते हैं, तो यह आज की पीढ़ी नहीं मानेगी। पहले दादा-दादी के जमाने में शिक्षा की भाषा बहुत कम था इसीलिए उनमें लड़का-लड़की का भेद करना गलत नहीं लगता था। क्योंकि लड़का दहेज लाता है और लड़की दहेज देती है। कहीं न कहीं स्त्री और पुरुष दोनों ही यह गलतियाँ कर बैठते हैं, भेदभाव की जो करना गलत है। इक्कीसवीं सदी तक पहुँचकर भी कहानियों में लड़का-लड़की का भेद चित्रित किया गया है।

3.4.4.4 वृद्धावस्था में समय गुजारने के बहाने

वृद्धावस्था तक मनुष्य थक-हार कर जीवन के कुछ बचे हुए पल आराम से गुजारना चाहता है। शरीर साथ नहीं देता। अधिक घुम फिर नहीं सकते जो सामने है उसी में आनंद व्यक्त करना है। परंतु वर्तमान समय बहुत भयावह है। न बेटा अपना है न बेटी अपनी है। ऐसी धारणा बुजुर्गों के मन में घर कर चुकी है। जो सही भी है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में बुजुर्ग औरत तथा पुरुष की त्रासदी का चित्रण प्रत्येक क्षण दिखाई देता है। वृद्धावस्था में बूढ़े माता-पिता बाहर कहीं घुम नहीं सकते क्योंकि उनका शरीर उन्हें साथ नहीं देता। घर के अंदर बेटा तथा बहू का राज, जिसमें वह अपने, अकेलेपन का सहारा ढूंढे फिरते हैं। घर में बच्चों से अधिक क्या हो सकता है घर के बुजुर्गों के लिए। सुशीला टाकभौरे की कहानी 'संघर्ष' जो शंकर नामक चौदह साल के बच्चे के आक्रोश पर आधारित है। शंकर बहुत शैतान है। वह किसी की बात नहीं सुनता। हमेशा कुछ तो भी तोड़ना-फोड़ना यही उसका कार्य रहता है। गाँव वाले शंकर की नानी को बहुत गालियाँ देते। शंकर की हरकतों की वजह से, परंतु वह नानी कुछ न कर पाती थी। शंकर के पिता ने गुस्से में आकर शंकर के हाथ-पाँव बांधकर कोठरी में बंद कर दिया। परंतु नानी से शंकर की वेदना देखी नहीं जाती- "नानी का दिल शंकर के लिए ममता से भरा है। शंकर को रोता देख उसका दिल भर आता। मगर बेटी दामाद के डर से वह कुछ नहीं कहती। चुपचाप देखती रहती। जब सब सो जाते, तब वह धीरे से उठती। शंकर के

पास आती। उसके सिर और मुँह पर प्यार और ममता से हाथ फेरती। हाथ पैर की बंधी रस्सी खोल देती छुपाकर लाई रोटी तरकारी उसे अपने हाथ से खिलाती। शंकर सुबकते हुए खाता। वह धीरे-धीरे उसे प्यार से समझाती रहती।"[1] बड़े अपने बच्चों को रोता-बिलखता नहीं देख सकते। इसलिए वह आत्मीयता से बच्चों को समझाते हैं। बिना बच्चों के शायद कोई भी सुखी नहीं रह सकता। बड़े-बूढ़ों का आधार होते हैं ये छोटे बच्चे, जिसमें उन्हें सुबह से रात कब हुई यह पता नहीं चलता। परंतु यह शहरों में नहीं दिखाई देता। क्योंकि एकल परिवार की प्रथा मनुष्य को मनुष्य से दूर कर रही है। वर्तमान समय में बच्चे दादा-दादी की गोद के बजाय आयाओं के पास दिखाई देते हैं। किन संस्कारों से बड़े होते देखेंगे हम नयी पीढ़ी के बच्चों को, जिसमें संस्कार देने वाला व्यक्ति ही नहीं है। वृद्ध जीवन शारीरिक स्तर से अधिक मानसिक स्तर पर मनुष्य को दुर्बल बना देता है। जो आगे भी चलता जा रहा है। बुजुर्गों की सुरक्षा अपने हाथ में है। बस दिन का थोड़ा सा वक्त उन्हें दिया तो वह अपनी सारी पीड़ाएँ भूल जाते हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ मूलत: वृद्धों को लेकर रची कहानियाँ मन में बहुत सी आकांक्षाएँ निर्माण करती हैं, क्योंकि वृद्धों पर होती त्रासदी का प्रमाण अगर इतना अधिक है तो क्या फायदा है आज की पीढ़ी को जन्म देकर और इतनी यातना सहना और जीवन व्यतीत करना दुर्बल है वृद्धों के लिए।

3.4.4.5 वृद्धावस्था में आर्थिक बाध्यता

आर्थिक परिस्थिति मनुष्य के जीवन का अहम पहलू है। आर्थिक चरण ठीक रहने के लिए मनुष्य एक तरह से बाध्य होता है। इसी के लिए जगह-जगह बदलता फिरता रहता है। जहाँ काम लगे वहाँ दौड़ता है। क्योंकि पैसों से ही जीवन चलता है। बिना धन न कुछ खरीद सकते हैं न जी सकते हैं। वृद्धावस्था में आर्थिक स्तर पर घर के माता-पिता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो सेवानिवृत्त होकर पेंशन के सहारे जीवन बिताते उनकी इतनी बड़ी त्रासदी नहीं

[1] संघर्ष - सुशीला टाकभौरे, पृ.सं. 10

होती। परंतु अगर हाथ में काम नहीं, पेंशन का कोई पैसा नहीं, घर वाले पर अर्थात बेटी, बेटा, बहू पर निर्भर होना पड़े, ऐसे व्यक्ति की त्रासदी की कोई गणना नहीं कर सकते। बात-बात पर पत्नी के ताने, बेटों का गुस्सा, बहू की डांट जीवन जीने नहीं देते। जितना जीवन बचा है, बस दूसरों के सहारे बचा है। यह विचार भी सही ढंग से सांस लेने नहीं देता। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में जीवन की त्रासदी के प्रत्येक पहलू को उजागर किया गया है। जिससे पाठक वर्ग को उस समय का पता चलता है कि त्रासदी पहले भी थी और अभी भी है। 'हंस' पत्रिका में प्रकाशित कहानी 'पितृमुखी' लेखक सरोज खान बातिश द्वारा रचित है। माता-पिता के जीवन संध्या की कहानी है। दो बेटे हैं जो अपने-अपने जीवन में व्यस्त और मग्न है। माता-पिता के लिए किसी के पास समय नहीं है। पिता हमेशा किताबों में घुसे रहते हैं। साहित्यकार जो हैं। कहानी, कविता लिखते है। परंतु माता की त्रासदी कुछ अलग ही है- "क्या जीवन भर किताबों को साथी बनाने से घर-संसार चल जाएगा? यह एक प्रकार की बीमारी है, बेवजह किताबों में खोए रहना, पागलपन नहीं तो और क्या है? इतनी मेहनत यदि आप किसी प्रतियोगी परीक्षा के लिए करते तो आज कहीं अफसरी झाड़ते होते .... पर आप नहीं करोगे, क्योंकि उसमें प्रतिबद्ध होना पड़ेगा ...।"[1] कितनी वेदनाओं भरे शब्द से लेखक ने कहानी की रचना की है। किताबें पेट नहीं भर सकती। माँ जो पति कुछ कमाता नहीं इस ग्लानि में हर वो नौकरी करने के लिए तैयार होती है जहाँ उसे घर संभालने के लिए चार पैसे मिले। घर के साथ नौकरी आदि दोनों भूमिकाएं कहानी नायिका निभा रही थी। उसके वृद्धावस्था में न उसके बेटों का साथ उसे मिला न ही पति का साथ मिला। बस जिंदगी आगे चलाने के लिए वह जी रही थी और कुछ भी नहीं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में वृद्धावस्था की आर्थिक त्रासदी का चित्रण पाठक वर्ग देख सकता है। अर्थात वर्तमान समय के वृद्धों के लिए विभिन्न बाधाओं से ही भरा है। जीवन के अंतिम चरण तक पहुँचकर भी उन्हें सुख व समाधान का एक निवाला भी

[1] हंस पत्रिका (मई 2008) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 28

नहीं मिल पा रहा है। बचपन से काम करके वृद्ध हो गए परंतु बिना कमाये आज भी वह खाना खा नहीं सकते। कहानी यथार्थ बयान करती है। यह यथार्थ भयावह है। जो बूढ़े माँ-बाप का भी साथ नहीं दे सकते। उनके बुढ़ापे का सहारा बन नहीं सकते तो ऐसे जीवन का क्या फायदा जो चैन से अपने बड़ों को मरने भी ना दे।

3.4.4.6 वृद्धावस्था में सुख शांति भावना

सुख-दुख एक-दूसरे के बजाय रह नहीं सकते। जहाँ सुख है वहाँ दुख की छाया भी जरूर होती है। यह हमारे हाथ में है कि हम पहले किसे चुनते हैं। क्योंकि दोनों ही जीवन में रहने वाले तो हैं। बस सुख की आशा मनुष्य को अंधा बना देती है। परंतु वृद्धावस्था की सुख-शांति का अर्थ कुछ अलग होता है। जीवन संध्या के आखिरी दौर में चलने वाले बुजुर्ग माता-पिता अपने जीवन के कुछ पल सुख शांति से बिताना चाहते हैं। परंतु आखिरी सुख भी उन्हें कभी-कभी मिल नहीं पाता। जीवन भर कष्ट, दुख सब कुछ देखा, झेला है, परंतु आखिरी समय भी हम उन्हें सुख ना दे पाए। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कहानी 'वृद्धावस्था' वृद्ध जीवन का परिचय देती है। कहानी का मुख्य पात्र एक शिक्षक हैं जिन्होंने बहुत से विद्यार्थियों को पढ़ाया और काबिल बनाया है। उनकी एक विद्यार्थी विमला को उन्होंने दो साल पढ़ाया था। आज उसी विद्यार्थी की पोती कुसुम जो सात वर्ष की है वह मास्टर जी से मिली व कहने लगी आप मुझे पढ़ाओ। जब उन्हें पता चला कि वह छोटी सी कुसुम उनकी विद्यार्थी विमला की पोती है, तब उन्हें अपने वृद्ध होने का होश आया। मास्टर जी चकित थे कि इतने जल्दी समय आगे दौड़ के चला जा रहा है। मन में सुख की भावना निर्माण हुई। मास्टर जी कहने लगे- "अनुत्तीर्ण होने पर जो दु:ख होता है वह मुझे नहीं होता। मेरे सुख-दु:ख की सीमा अब विस्तृत हो गई है। वृद्धावस्था में सुख-दु:ख की भावना परिवर्तित हो जाती है। तरुणावस्था में आडंबर अथवा प्रदर्शन की जो चाह रहती है वह वृद्धावस्था में नहीं रह जाती। इसी प्रकार न क्षणिक सुखों से वृद्धों को उल्लास होता है और क्षणिक दु:खों से विषाद। न तो कोई सफलता

उन्हें उत्तेजित करती है और न कोई असफलता, हताश। संसार की कठोरता और कर्तव्य की गुरुता से परिचित हो जाने से उनमें विश्वास के स्थान में अविश्वास आ जाता है।"[1]सुख व दुख तराजू के दो हिस्से हैं जो कभी बराबर हो नहीं सकते हैं। किसी एक का पलड़ा भारी होता ही है। मनुष्य जीवन भी ऐसा ही है। किसी एक को बड़ा किसी एक को छोटा कहना मूर्खता होगी। इक्कीसवीं सदी का कहानी साहित्य विस्तृत है। सभी छोटे-बड़े विषयों की चर्चा यहाँ करते दिखाई देते हैं। इसलिए इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ अंतिम दशक की कहानियों से भिन्न प्रतीत होती हैं। संवेदना के स्तर और अधिक बढ़ चुके हैं। वृद्धावस्था की परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण कहानियों में रेखांकित किया गया है। वृद्धावस्था की विवशता मनुष्य को आत्मग्लानि का एहसास करवाती है। जीवन संध्या के आखिरी प्रहर में भी अगर उनकी खुशी, उनका सुख, उनके मन की शांति उन्हें न दे सके, तो उनकी आत्मा अपने शरीर को हजारों प्रश्न पूछकर छोड़ जाएगी। वह चैन से अपनी आखिरी साँस भी न ले पाएंगे। जीवन का यह आखिरी सुख देना अपने बुजुर्ग का सबका अधिकार है।

3.4.4.7 सेवानिवृत्ति का भाव

सरकार द्वारा निर्धारित साठ वर्ष के पश्चात नौकरी से सेवानिवृत्ति मिल जाती है। सेवानिवृत्ति का अर्थ जीवन का वह क्षण जहाँ बच्चे, माता-पिता सब एक जगह रहकर अपने जीवन के कुछ पल अच्छे से बिताए जाए। उम्र के आखिरी पड़ाव पर सुख के कुछ क्षण साथ में जी लेने से बचा हुआ वक्त आराम से निकल जाता है, परंतु सेवानिवृत्ति का काम, नौकरी के जगह हो सकती है। परंतु जीवन के कर्म को कोई सेवानिवृत्ति नहीं होती। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य अपनी विपदाओं को साथ लेकर चलता ही है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में जीवन का मौलिक भाव कहानी में रेखांकित कर लेखक ने पाठक वर्ग से आत्मीयता का संबंध स्थापित कर लिया है। लेखक व पाठक दोनों को कहानी एक-दूसरे से जोड़ती है। जीवन में

[1] Gadyakosh.org - वृद्धावस्था - पदुमलाल पुन्नालाल, पृ.सं. 6

कुछ भी काम अधूरे न छूट जाए यह चिंता लेखक हमेशा करता रहता है। कहानीकारों का भाव समाज की व्यवस्था का परिचय देता है। वृद्धावस्था भी जीवन की मुख्यधारा का मुख्य पहलू है। जहाँ मनुष्य अपने जीवन के पूर्ण काम करके, आराम के कुछ पल अपनों के साथ बिताना चाहता है परंतु यह जीवन का अंतिम सुख सबके लिए बना है यह तो सत्य नहीं है। सेवानिवृत्ति उस क्षण तक नहीं हो सकती जब तक मनुष्य का मन पूर्ण हो चुका है, उसके कार्य पूर्ण हो चुके इसका आभास न करा दे। 'पितृमुखी' कहानी में कहानीकार अपनी विवशता जाहिर करते हुए लिखते हैं- "...कभी-कभी वे स्वयं ऊबकर कहते कि, सब बेकार है, क्या लाभ इतना अध्ययन करने से इससे तो जीवन में और अशांति बढ़ती है। जितना समझो, दुनिया उतनी ही पेचीदा होती जाती है, मैं जानता हूँ तुम्हारी माँ के तनाव में रहने की वजह ... वही तो सब करती हैं, घर से बाहर तक .... उनसे थोड़ा समझौता हमें करना ही चाहिए....।"[1] जिंदगी समझौते पर चला नहीं सकते। प्रत्येक क्षण समझौता करना ही पड़े तो असल भाव जो उन्हीं वेदनाओं से उत्पन्न होता है वह भी एक तरह का समझौता ही समझा जाएगा। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ लेखक के मन का भाव सामने लाकर रख देती है। वृद्ध वर्ग आज के दशक में क्या भावना व्यतीत कर रहा है, उसका मार्मिक चित्रण कहानीकार कहानी के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा है। सेवानिवृत्ति का और एक अर्थ देखा जाए तो अपने संपूर्ण कामों का समापन भी समझा जा सकता है। अब तक बहुत कुछ कर बैठे हैं। अब बस चैन से साँस लेकर आखिरी कुछ पल बिताने हैं। जो भी आधे-अधूरे काम जीवन में बचे हैं उन्हें पूर्णता देने का कार्य करना है। उसके पश्चात जीवन के सुखी पल जो अपने हैं उनके साथ बिताना इससे बड़ी सेवानिवृत्ति जीवन की क्या हो सकती है। वृद्धावस्था जीवन संध्या का पदार्पण है। नयी शुरूआत सब कुछ नया दिखाती है। नए भाव, नए विचार, नए संस्कार और नयी भावनाएँ जो क्षण-प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। जिनका मूल्य जीवन में सबसे अधिक और मूल्यवान है।

[1] हंस पत्रिका (मई 2008) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 30

3.4.4.8 दूसरे पर निर्भर रहने की ग्लानि

वृद्धावस्था मनुष्य को तन से अधिक मन को थका देती है। जिससे मनुष्य के मन में हमेशा यही भाव उत्पन्न होते रहता है कि अब आगे की जिंदगी का क्या कर सकते है। वृद्धावस्था में शरीर साथ नहीं देता। दवा और बस दवा यही जिंदगी का मकसद बन जाती है। बिना लाठी के सहारे चल नहीं सकते। बिना चश्मे के देख नहीं सकते। अर्थात प्रत्येक वस्तु के लिए मनुष्य वृद्ध मनुष्य को किसी न किसी के ऊपर निर्भर होना पड़ता है। सामने वाला कितने अपने भाव से सेवा कर रहा है या फिर बस अपना फर्ज निभा रहा है यह भी कह नहीं सकते। वृद्धावस्था किसी-किसी की जिंदगी में वरदान का कार्य करती है तो किसी-किसी के जिंदगी में अभिशाप का काम करती है। सूर्यबाला की कहानी 'मौज' जिसमें एक सुखी परिवार का चित्रण दादा-दादी, मम्मी-पापा, तनु पोती तथा मनोज पोता आदि का है। एक सुखी व समृद्ध परिवार है। बहू-बेटे दोनों नौकरी वाले बच्चे स्कूल और दादा-दादी घर पर ही रहते हैं। घर के सब छोटे-बड़े काम दादी संभालती है। बहू को वक्त नहीं घर-संसार के बारे में सोचने के लिए नौकरी जो करती है। इतना कुछ करने के बाद भी सुख के दो पल जो वह बिना किसी काम के जी पाये। ऐसे दादी के जीवन में कभी हुआ ही नहीं। सास बीमार है। परंतु बहू को नौकरी से फुरसत नहीं कि वह बुजुर्ग औरत की कुछ मदद करे- "क्या जुकाम वाली जकड़न मम्मी जी, वही आपकी पुरानी साइनोसाइटिस आज तीन-चार बार तुलसी, काली मिर्च वाला काढ़ा बनाकर पी लीजियेगा.... मुझे तो बहुत आराम मिल गया था जब आपने बनाकर पिलाया था, हम लोगों के ऑफीस जाने के बाद जरूर बना लीजियेगा, लापरवाही मत करियेगा ... अरे पराठे हो गये क्या, मम्मी जी, कोई बात नहीं, सब्जी-अचार मैं खुद रखे लेती हूँ....।"[1] रहने के लिए चार दीवारें और छोटे बच्चों का प्यार इसी वजह से शालु के सास-ससुर उनके साथ रह रहे थे। बुढ़ापे में अपनों का साथ हो बस दिन निकल जाएंगे इसी आशा से रहने वाले सास-

---

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 75

ससुर को शालू ने घर में कामवाली बनाकर रखा था। सुबह उठने से लेकर रात के सोने तक शालु के सास-ससुर का काम खत्म नहीं होता था। बच्चों को उठाना, खिलाना, स्कूल भेजना, कराटे क्लासेस भेजना, होमवर्क लेना, खाना बनाना और क्या रहा काम करने को शालु जैसी औरत को। जो बुजुर्ग सास-ससुर की भावनाएँ न समझकर घर में काम करने की मशीन बना दिया है। कहानी पढ़ते-पढ़ते पाठक कहानी का पात्र बन जाता है क्योंकि लेखक अपनी सच्ची भावनाओं से कहानी की रचना करता है। समाज में वृद्धों पर हो रहे सुख-दु:ख का सही ब्यौरा एक कहानीकार ही कर सकता है। दूसरों पर निर्भर होने की ग्लानि किस तरह मनुष्य को जीते जी मार देती है उसका मार्मिक चित्रण कहानीकार ने अपनी कहानियों में किया है। कहानीकार शायद ग्लानि से भर जाता होगा समाज का यह कुरूप चेहरा देखकर, जहाँ किसी को मान-मर्यादा नहीं।

3.4.4.9 अकेलेपन की भावना

मनुष्य अकेले कभी अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उसे अपना जीवन पूर्ण बनाने के लिए किसी-न-किसी की आवश्यकता तो अवश्य होती है। अकेलापन मनुष्य को अंदर ही अंदर दीमक की तरह खाता जाता है। जिसका पता मनुष्य खत्म होने के पश्चात पता चलता है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी ‘प्रेत कामना’ ऐसे एक अकेले व्यक्ति की कहानी है। जीवन में सब कुछ पा चुका है कहानी का यह पात्र जिसे प्रोफेसर कहते हैं। बेटा-बेटी अपने जीवन में खुशी से जी रहे हैं। परंतु पत्नी की मृत्यु ने प्रोफेसर को अकेला बना दिया है। साथ में कोई नहीं रहता। मुम्बई में समुद्र किनारे तीसरी मंजिल पर प्रोफेसर का अपना मकान है जो हमेशा खाली ही रहता है, क्योंकि साथ रहने वाला कोई नहीं है। अकेली जिंदगी प्रोफेसर के जीवन को अंधकारमय बना रही थी। प्रोफेसर न चाहते हुए भी उनकी विद्यार्थी जो बहुत वर्षों बाद उन्हें मिलने आयी थी। दोनों का एक-दूसरे पर नियंत्रण न रहकर शारीरिक संबंध स्थापित हो जाते हैं। यह दृश्य प्रोफेसर का बेटा देख लेता है। अपने पिता को तिरस्कार भरी नजरों से

देखकर भला-बुरा कहता है। प्रोफेसर कुछ सुनने के हालत में नहीं होते। और अपने मन का दर्द व्यक्त करते हुए कहते हैं- "क्या कर लेंगे साले! अभी आए पूछने कि पापा कैसे हो? कभी आया भी तो अकेला, न पोते, न बहू एक कर्तव्यपूर्ति कर चलता बना। कितने-कितने कठिन पल, अकेले पल में बिता डाले, कोई नहीं आया। एक सुख अणिमा के साथ लौटा, तो चले आए उस पर अधिकार जताने। अरे बस कर्तव्य निभाकर चुक गया एक पिता भर हूँ मैं? पिता! जिसे अब तक प्रेत की तरह आदर्श पिता के फ्रेम में बंद रहना लाजमी है? अब वह एक आदमी .... एक व्यक्ति नहीं? मेरे अकेलेपन को किसी की जरूरत क्या है?"[1] प्रेम करने की कोई सीमा या कालावधि किसी ने बनाई नहीं है। वह आत्मा का सुख है। कोई भी कभी भी अपने मन की आवाज सुन सकता है। क्यों फिर समाज सवाल उठाने को हमेशा तैयार बैठा हुआ होता है। अपने जीवन के प्रश्नों के उत्तर हम खुद ही ढूंढ सकते हैं। इसमें और कोई भी उनकी राय को नुमाइश नहीं कर सकता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों ने कहानी का स्तर ऊँचा कर दिया है। अपने-अपने क्षेत्र के कहानीकारों ने अपने-अपने मत समाज के सामने रखे हैं। उसी में एक है अकेलेपन की त्रासदी जो जीने का अर्थ बदल देती है। जीवन बस एक बोझ जैसा प्रतीत होता है। जीने के लिए जीना है वरना मौत का आना भी कोई बड़े गम की बात नहीं। अकेले मनुष्य की मानसिकता समाज से उसे और दूर बहुत दूर ले जाती है। जिससे वह मनुष्य लौटकर वापस भी आना चाहे तो शायद आ न सके। क्योंकि आने वाले सभी रास्ते समाज की रूढ़ि परंपराओं को बंद करके रख दिए हैं।

3.4.4.10 अंतिम क्षण का इंतजार

जन्म और मृत्यु यह विधि का विधान है। जिसे कोई बदल नहीं सकता। जन्म हुआ है तो मृत्यु तो अवश्य होगी। परंतु मृत्यु के कारण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। वृद्धावस्था जो जीवन संध्या का आखिरी पहलू है, जहाँ मौत का खौफ खत्म हो जाता है क्योंकि जीवन में सब कुछ

[1] हंस पत्रिका (जनवरी 2005) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 66

देख लिया सुख के चार पल जी लिये अभी मौत कभी भी आए इससे उन्हें कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ता। अकेलेपन की भावना कैसे भी मनुष्य को भीतर ही भीतर मारती रहती है। बुढ़ापे में जीवन का साथ निभाने के लिए दोनों के हाथों की आवश्यकता है क्योंकि एक ही हाथ हवा में झुलता है। किसी के मन में नहीं। बुढ़ापे में मन व आत्मीयता की आवश्यकता है। किसी वायु या हवा की नहीं। 'प्रेत कामना' कहानी में चित्रित एक संदर्भ- "वह कांप ही गया था, अभी कल परसों ही तो एक मैगजीन में पढ़ा था कि एकाकी विधुर पुरुष कम ही जी पाते हैं। उनकी बनिस्पत जो अपने जीवन साथी के साथ होते हैं या फिर अपने परिवार के साथ।"[1] अकेला व्यक्ति कब क्या कर बैठे या उसके साथ कब क्या हो जाए कह नहीं सकते। इसलिए सब कुछ मिल जुलकर रहना या एक दूसरे को वक्त देना बहुत आवश्यक है। कहानी में आगे पिता अपने पुत्र को कहता है- "आते जाते रहा करो। पता नहीं कब तक हूँ मैं....।"[2]आखिर अपने पिता को क्यों जरूरत हुई कि वह अपने बच्चों के साथ रहे। क्योंकि वह अकेले हैं। उनका दुख दर्द बाँटने वाला कोई नहीं। पता नहीं अंतिम घड़ी कब आ जाए। वह अपने परिवार को भी देख पाएगा या नहीं। ऐसे असंख्य प्रश्नों से घिरा होता है वृद्ध जीवन।

इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ पैरों तले की जमीन को खिसका देती हैं। आज माँ-बाप बच्चों के लिए भारी हो गए हैं। माँ-बाप वृद्धाश्रम और घर में आयाओं को रखा जा रहा है। उनकी भावनाओं का तिरस्कार करके उनके जीवन का अंतिम सुख भी उनसे छिना जा रहा है। आज वर्तमान साहित्य में वृद्ध विमर्श भी बड़ा प्रश्न बन गया है। आज का समाज बुजुर्गों को बोझ मानने लगा है। इसलिए वह घर से अधिक वृद्धाश्रम में अपने-आप को सुरक्षित समझने लगे हैं। सुख-शांति आज वृद्ध जीवन से जैसे गायब ही होते जा रहे हैं। वृद्धावस्था का चरण आयु व्यतीत करने वालों को बिल्कुल पसंद नहीं। क्योंकि अकेलापन, दूसरों पर हमेशा निर्भर, स्वयं के कोई निर्णय नहीं ले सकता। शारीरिक व मानसिक दोनों जगह दुर्बल यह अवस्था है

[1] हंस पत्रिका (जनवरी 2005) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 58
[2] हंस पत्रिका (जनवरी 2005) - सं. राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 58

जिसे हजारों वृद्ध जी रहे हैं। कोई मजबूरी में जीवन यापन कर रहे हैं तो कोई आत्मखुशी के लिए जीवन यापन कर रहे हैं।

3.4.5 अल्पसंख्यक संवेदना

अल्पसंख्यक अर्थात अल्प का अर्थ थोड़ा या कम होता है। अल्पसंख्यक मतलब जिनकी संख्या कम हो। भारतीय समाज बहुत विस्तृत है। बहुसांस्कृतिक देश भारत को मानते हैं। विविधता से पूर्ण अपने रंगों में भारतीय समाज सबको ढाल लेता है। जनगणना की दृष्टि से अगर भारत देश को देखा जाए तो शायद आज 'चायना' को भी भारत ने मात दे दी होगी। भारत में बहुत से धर्म तथा जातियों की मान्यता है। इसमें विविध धर्म आते हैं। जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि अल्पसंख्यक से तात्पर्य है कि जिनकी संख्या भारत देश में कम है। इसके अंतर्गत मुस्लिम, सिख, ईसाई, फारसी आदि सभी धर्म आते हैं। इसलिए इन्हें अल्पसंख्यक कहा जाता है। परंतु अल्पसंख्यक वर्ग के अंदर आए समाज हमें दूर किया जा रहा है ऐसी भावना का निर्माण करते हैं। जिससे मनुष्य-मनुष्य में अंतर बढ़ जाता है। मुस्लिम समाज और त्रासदी की तो कोई सीमा ही नहीं। क्योंकि भारत-पाकिस्तान विभाजन बस दो सरहदों का नहीं हुआ था। उसके साथ मनुष्य को भी विभाजित किया गया था। सत्तर सालों का इतना बड़ा समय गुजर जाने के बाद भी विभाजन की ग्लानि अभी तक खत्म नहीं हुई है। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ विभाजन की त्रासदी को पाठक के समक्ष जीवित रूप से प्रस्तुत कर रही है। मुस्लिम संवेदना का भाव असगर वजाहत की कहानी 'मैं हिन्दू हूँ' में बहुत अच्छे से विश्लेषित किया गया है। विभाजन की त्रासदी बस इंसानों को नहीं तो, प्राणियों पर भी असर हो रहा है यह बताया गया है। मुस्लिम समाज के विविध त्यौहार, उनकी रस्में, शादियाँ, सामाजिक परिवेश, आर्थिक स्थिति आदि का चित्रण इक्कीसवीं सदी के कहानियों में पाठक वर्ग को आसानी से समझ आ जाता है। नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा परवेज, राही मासूम रजा, असगर वजाहत साहित्यकारों मुस्लिम समाज का परिचय, जिससे पाठक वर्ग मुस्लिम

संवेदनाओं को समझ सके। उनकी त्रासदी का कारण जान सके। क्या वजह है कि उन्हें आतंकवादी के नाम से बुलाकर उन्हें अपमानित करते हैं। आतंकवादी हिन्दू या मुस्लिम नहीं होते वह उनकी विचारधारा होती है। जो उन्हें आतंकवादी बनाती है वह किसी भी धर्म का हो सकता है। परंतु भारत-पाकिस्तान के विभाजन ने दोनों देशों की मानसिकता को बदल डाला। इसी वजह से हिन्दू-मुस्लिम लड़ाइयाँ अधिक होने लगी। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में यह दिखाया गया है कि दंगे कोई समाज का व्यक्ति नहीं फैलाता जब तक उसे किसी भी राजनैतिक नेताओं का साथ न हो। सत्ता पर बैठे अधिकारी अपना काम निकलवाने के लिए धर्म का नाम लेकर एक-दूसरे को लड़वाते हैं। जिसमें सामान्य जनता पिसती रहती है। सबसे अधिक वेदना सामान्य जनता को होती है। क्योंकि उन्हें हिन्दू या मुस्लिम से कोई फर्क नहीं पड़ता। उन्हें अपने और अपने बच्चों का पेट भरना है उन्हें जीना है। वह हिन्दू है या मुस्लिम या सिख या ईसाई इन सबसे उनका कोई वास्ता नहीं। क्योंकि जाति, धर्म यह पैसे वाले लोगों का काम है। जिसके पास अपना पेट भरने के लिए दो वक्त की रोटी भी न हो तो वह जाति को लेकर क्या कर सकेगा।

3.4.5.1 विभाजन की त्रासदी

सांप्रदायिकता, विभाजन इन शब्दों ने समाज को तोड़ डाला है। समाज का बंटवारा कर डाला है। जिससे मनुष्य हृदय में कंपन सा हो उठा है। विभाजन भूमि तथा देश का नहीं मन और हृदय का हुआ है। जिससे सामान्य जनता बिखरती जा रही थी। विभाजन एक अभिशाप बन गया सामान्य जनता के लिए जो ना हिन्दू था ना मुसलमान। वह बस एक साधारण इंसान ही था। जो अपने परिवार के लिए छोटे-बड़े काम करके जी रहा था। अल्पसंख्यक की भावनाओं का विचार किया जाए तो वह भावनाएँ चूर-चूर हो गयी थी। इन दंगों और आतंकों में। असगर वजाहत की कहानी 'मैं हिन्दू हूँ' यही विभाजन के पश्चात देश का जो माहौल था उसे चित्रित किया गया है। 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी में मुस्लिम स्त्री-पुरुष संवेदनाओं का सरल

चित्रण किया गया है। उसी के साथ समाज में चल रहे दंगे, सांप्रदायिकता, विभाजन की त्रासदी, कूट राजनीति आदि के संबंध में लेखक अपने विचार कहानी के माध्यम से पाठक वर्ग के सामने प्रस्तुत करता है। कहानी का नायक सैफू जो मानसिक स्तर पर कमजोर है। शरीर बड़ा परंतु बुद्धि अभी तक बच्चों जैसे ही थी। बस्ती में हो रहे दंगे, आतंक उसकी समझ के बाहर का था। बस्ती में होती बम-बारी, गोलियों की आवाजें, तलवारों की गूँज जैसे बस्ती के बच्चों को दिवाली के त्यौहार की तरह लगता क्योंकि उनका जीवन उसी में फंस चुका था। मोहल्लों में होते दंगों के बच्चों में अजीब तरह का उत्साह पैदा कर देता- "अजी हम तो हिन्दुओं को जमीन चटा देंगे, समझ क्या रखा है धोती बांधने वालों ने .... अजी बुजदिल होते हैं .... एक मुसलमान दस हिन्दुओं पर भारी पड़ता है ... हँस के लिए हैं पाकिस्तान, लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान जैसा माहौल बन जाता था, लेकिन मोहल्ला से बाहर निकलने में सबकी नानी मरती थी।"[1] आतंक, दंगा जैसे गुड्डे-गुड्डियों का खेल सा बन गया था। छोटे से छोटे बच्चे तथा वृद्ध सबको मेरा देश तेरा देश यही शब्द कान में गूँज रहे थे। आतंकवाद मन में बस गया था। कोई मजबूरी से सहभाग लेता तो कोई अपनी मर्जी से भाग लेता। परंतु दंगों का हिस्सा सब बनते। आज इक्कीसवीं सदी के आसमान के नीचे मनुष्य साँस ले रहा है। फिर भी दिल में भावनाएँ तो 1947 की ही है। यह मैं सबकी बातें नहीं कर रही हूँ। कुछ गिने-चुने लोग हैं जो जान-बूझकर मनुष्य-मनुष्य में फूट डालकर अलग करना चाहते हैं। इक्कीसवीं सदी के साहित्यकारों ने समाज का यथार्थ चित्रण किया है। जीने के लिए रोटी-कपड़ा-मकान यही जरूरत होती है। इस जरूरत को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का गला दबाना सही नहीं होगा। सांप्रदायिकता की भावना अभी तक दिल से बाहर निकली नहीं है। अगर ऐसा ही रहा तो हम सब कैसे कह सकते हैं 'मेरा भारत महान'। मनुष्य ने भारत को बनाया, तो वही मनुष्य फिर से भारत को तोड़ना क्यों चाहेगा। मानवीय संवेदना हृदय से बाहर आती है। उसे भिन्न-भिन्न

[1] मैं हिन्दू हूँ - असगर वजाहत, पृ.सं. 37

स्तरों पर देखा जा सकता है। तो क्यों हम सब जातिवाद के भावों में फंसकर आने वाली जिंदगी बरबाद कर रहे हैं। कहानीकार अपनी मनोभावी संवेदनाओं से कलम उठाता और लिखता है। समय कहानीकार का साथी है, इसीलिए वह प्रत्येक क्षण को जो कहानी के हैं, उसमें जीता है और शब्दों के सहारे कागज पर उतारता है।

3.4.5.2 मुस्लिम समाज का धार्मिक विश्वास

विभिन्न संस्कृति से तात्पर्य विभिन्न धर्म और जाति है। अपने-अपने धर्म अपनी-अपनी अलग धारणा होती है। यही धारणाएँ एक-दूसरे में भिन्नता दिखाती है। मुस्लिम समाज अपने धर्म के प्रति कट्टरवादी विचारधारा का समाज है। समाज के जो मनुष्य कुराण को दिल से मानता है, उनके हाथ से गलतियाँ न के बराबर होती हैं क्योंकि वह अपने अल्लाह को अपना सर्वस्व सौंप चुके होते हैं। उनकी दशा और दिशा दोनों एक ही सूत्रधार में आगे बढ़ती हैं। परंतु जो व्यक्ति उसे दिल से नहीं मानता वही गलतियाँ फैलाने का कार्य करता है। धर्म मनुष्य के हित में भी है और अहित में भी है। रति लाल शाहीन की कहानी 'अब्दुल जिंदा है' इक्कीसवीं सदी में आज भी समाज विचारों के स्तर पर कितना पिछड़ा हुआ है यह बताया गया है। अब्दुल कहानी का मुख्य पात्र जो अपने मोहल्ले का राजा बनना चाहता है। उसका मानना है कि जब वह रास्ते से गुजरे तो सबका हाथ सलाम करने उठना चाहिए। कहानी के एक मोड़ पर अब्दुल यह सब पा भी लेता है। परंतु उस सलाम आदर की भावना नहीं खौफ होता है। अब्दुल अब गुंडागर्दी पर उतर आया था। गलत रास्ता कभी भी गलत मंजिल तक ही पहुँचाता है। यही अब्दुल के साथ दुश्मनी में न जाने किसने अब्दुल को मार डाला। अब न उसका खौफ रहा न अब्दुल रहा। पुलिस अब्दुल की लाश अस्पताल से पोस्टमार्टम करके मुहल्ले में लाते हैं- "मुहल्ले में लाश के आने पर अब्दुल के घर वालों ने लाश किसी को देखने नहीं दी। संतान पैदा करने के मामले में अब्दुल पूरा कट्टर धार्मिक था। आठ बच्चे और सबसे बड़े पुत्र की आयु नौ वर्ष। हद हो गई। सभी को यही अफसोस हो रहा था कि कैसे ये

बच्चे जिएँगे। मारने या मरवाने वाले को कम से कम यह बात तो सोचनी थी।"[1] मुस्लिम समाज में औरतों को बच्चे न होने का आपरेशन करना बुरा माना जाता है। उनका मत होता है कि बच्चे अल्लाह की देन है उसे रोकने का अधिकार मनुष्य को नहीं है। अब्दुल अपनी जिंदगी जी के चला गया परंतु उसके पश्चात जो उसके आठ बच्चे तथा उसकी बीवी उनकी जिंदगी का क्या। धर्म के नाम पर बच्चे पैदा हो गए परंतु अब कौन सा धर्म अब उन्हें रोटी खिलाएगा। यही विपदा शायद अब्दुल की पत्नी के मन में आती होगी। जिसका निवारण ढूंढना उसके हाथ में नहीं था। अब बस वह बेबस अकेली विधवा रह गई थी। अब्दुल का बेटा सिर्फ नौ वर्ष का है। परंतु उसके मन में आक्रोश भरा हुआ है। वह गुस्से से लाल-लाल हो जाता अपनी अब्बा की लाश देखकर। गुस्से से चिल्लाते मुझे पता है मेरे अब्बु को किसने मारा है। लेखक चौंक जाते हैं। अब्दुल के बेटे का वह रौद्र रूप देखकर और कहते है अब्दुल अभी मरा नहीं, जिंदा है उसके बेटे के अंदर। अर्थात जो चल रहा है वैसे चलते ही रहेगा। अब्दुल के पश्चात उसका बेटा उसी दिशा में आगे बढ़ेगा तो कहाँ कम होगा यह आतंक, दंगे। धर्म के नाम पर होती शरीर की चिड़-फाड़ मनुष्य को दुर्बल बना रही है। इक्कीसवीं सदी का कहानी जगत पाठक को हैरान करके छोड़ रहा है। क्योंकि वर्तमान समय भी कितना दुख भरा है। मनुष्य दूर होता जा रहा है आत्मीयता के भाव से। और नफरत और बेबसी को लेकर आगे चलता जा रहा है वह भी अकेले-अकेले। कोई नहीं साथ है।

3.4.5.2 समाज में जातिवाद की समस्या

यह प्रश्न बहुत बड़ा है। शायद इसका उत्तर भी सबके पास न हो। प्रश्न है मनुष्य ने जाति का निर्माण किया है या जाति ने मनुष्य का निर्माण किया है। हिन्दू, मुस्लिम सिख, ईसाई सभी मनुष्यों की रचना प्रकृति ने तो समान बनाई है। अर्थात हाथ, पाँव, मुँह, पूरा शरीर सब जातियों में एक जैसा ही होता है न। हाँ कोई गोरा तो कोई काला, कोई लम्बा तो कोई गिड्डा

---

[1] अब्दुल जिंदा है - रतिलाल शाहीन, पृ.सं. 175

आदि से मनुष्य को पहचानना एक बात हो सकती है। परंतु जाति व धर्म के नाम पर एक-दूसरे का बँटवारा करना यह तो सही नहीं होगा। इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ समाज का परिवेश बयान करती है। जातिवाद के नाम पर हो रहे दंगे, आतंक में अब बच्चा-बच्चा गिरता जा रहा है। बेचारे छोटे से फूल जो प्यार के सुगंध से नहीं नफरत की दुर्गंध से बड़े हो रहे हैं। क्या सीख मिल रही होगी ऐसे बच्चों को जिनके माता-पिता जातिवाद के फंदे में फंसे हुए हैं। असगर वजाहत की कहानी 'मैं हिन्दू हूँ' में जातिवाद की भावना अपनी सारी सीमाएँ लांघ चुकी है। दंगे और आतंक यही सभी तरफ फैला हुआ है। धोती वाले ने मारा तो वह हिन्दू है, कुर्ते वाले मारा तो वह मुस्लिम है। मुहल्ला पूरा खौफ से कांप जाता था। हाथ में तलवार, बंदूकें, बम जैसे कोई दूरदर्शन पर फिल्म देख रहे हो। परंतु यहाँ खून से लाल मिट्टी भी दिखती थी। जो मनुष्य के अंतर्मन को अंदर से मार डाल रही थी। जातिवाद के नाम पर चल रहे दंगे धरती में बड़े-बड़े कपन को जन्म दे रहे थे। कब और कहाँ भागे उसका कोई रास्ता नहीं था। सब रास्ते बंद हो चुके थे। सैफू जो मानसिक स्तर पर कमजोर है वह भी समझ पा रहा था कि कुछ तो बुरा हो रहा है। सैफू दूध लाने मोहल्ले के दुकान पर जाता है, हमेशा की तरह आज भी गया था। लेकिन आज का सूरज उनकी जिंदगी में कुछ अंधेरा भर लाया था। अचानक सुबह-सुबह दंगे शुरू हो गए पता ही नहीं चला। सैफू खौफ से अधमरा हो गया उसके पास आने वाला व्यक्ति हिन्दू है या मुस्लिम उसे पता नहीं। डर के मारे सैफू बस बोलता जा रहा था- "मैं हिन्दू हूँ .... मैं हिन्दू हूँ .... हिन्दू .... मुझे .... मुझे .... मारा-मुझे मारा .... मैं हिन्दू हूँ.... मैं ...।"[1] एक बच्चे को यूँ डरा धमका कर कोई कैसे अपराध की ग्लानि में धंस नहीं सकता। जातिवाद के आतंक ने मन के टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं। बच्चा-बूढ़ा सब कोई पागल होता जा रहा है। अपनी विवशता से बाहर आने का रास्ता किसी को नहीं दिखाई दे रहा है। जातिवाद की समस्या पहले भी थी आज भी है। अंतिम दशक की कहानियों में आतंक का यही खौफ

[1] मैं हिन्दू हूँ - असगर वजाहत, पृ.सं. 42

कहानीकारों ने चित्रित किया है। और आज भी इसी दुविधा में मनुष्य फंसा हुआ है। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों की वेदना जो कहानी के माध्यम से पाठक तक पहुँच रही है। उससे समझ सकते हैं, जो व्यक्ति इन सभी घटनाओं को जी रहा होगा। उसकी त्रासदी की रेखा कितनी बड़ी होगी। जो आकाश और पाताल की तरह अंतहीन होगी। कहानी पढ़ने या सुनने मात्र से दिल भय से कांप उठा तो कहानीकार के हृदय का कांटा तो वही के वही रूक गया होगा। कहानी सच्चाई बया करती है। अगर कहानी की सच्चाई इस तरह की होगी तो उसे बयान होने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि सीखने वाले कितने हैं और उस धारणा को अमल पर लाने वाले कितने हैं यह कोई बता नहीं सकता। ना पाठक बता सकता है न कहानीकार बता सकता है।

3.4.5.4 आर्थिक विवशता

धर्म, जातिवाद इनमें फंसे रहने से होने वाली भविष्य की त्रासदी का विचार पहले कोई नहीं करता। जीने के लिए रोटी और कपड़े की जरूरत होती है। जो पैसों से पूरी होती है। आतंक, दंगा एक-दो दिनों में सबको बर्बाद करके चला जाता है। पेट की भूख सब कुछ करने पर विवश कर देती है। बच्चों का रोना माँ को जैसे अंदर ही अंदर मारता चला जाता है। मुस्लिम समाज की अगर बात की जाए तो सभी गरीबी रेखा के नीचे नहीं आते। उनमें से कुछ संपन्न व्यक्ति भी हैं। परंतु अधिकतर जनता गरीबी रेखा के नीचे ही है। उनकी पहली विवशता उनका बड़ा परिवार है। एक घर में तीन-तीन, चार-चार या उससे अधिक बच्चे तो होते ही हैं। और अधिकतर देखा गया है। मुस्लिम समाज एकल परिवार की धारणा को अधिक नहीं मानता। इनमें संयुक्त परिवारों को अधिक देखा जाता है। बड़ा परिवार तो उनकी जरूरतें भी अधिक होगी। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें बहुत मेहनत भी करनी पड़ती है। मेहनत का फल हर वक्त मिलता ही है यह तो नहीं कह सकते। सुख-दुख दोनों को साथ लेकर यह समाज आगे बढ़ने की कोशिश करता है। नासिरा शर्मा की कहानी ‘काला सूरज’ मनुष्य की

विवशता का सटीक चित्रण है। लेखिका की कल्पना देखिए काला सूरज, जिसके जीवन में अंधकार भरा हो उन्हें क्या दिन व क्या रात सब एक जैसे ही होते हैं। कहानी की नायिका राहब मोआसा जो दिन में एक सपना देखती है। सपना होता है यूथोपिया देश का, जहाँ हर तरफ हरियाली ही हरियाली है। सबके चेहरे पर खुशी, आनंद झलक रहा है। आनंद इतना कि आसमान को छू रहा है। वहाँ सामने से एक राजकुमार आता दिख रहा है। जो काला है लेकिन बहुत सुंदर है। वह सामने आकर नायिका को माँ बुलाता है। राहब खुशी से पागल हो रही है। इतना सुंदर बेटा है उसका तभी बगल की औरत राहब को हिलाती है। राहब सपनों से बाहर आती है। यह सपना राहब हमेशा देखती खुशियों का सपना जो उसके भाग्य में नहीं लिखा- "एकाएक बेटे के चेहरे पर उसकी नजर पड़ गयी। एक सूखी घुटी रुलाई टुकड़ों में हडडीले सीने में घुमड़ी और उसने लपककर सोते बच्चे को सीने से लगा लिया। बच्चे ने घबराकर आँखें खोल माँ को देखा। उसके चेहरे पर मासूम हँसी कौंधी जो इतनी अनजानी थी कि माँ बेटे के डरावने चेहरे से सहम गई। बच्चे ने सूखे सीने में अपना मुँह गाड़ दिया। राहब की साँस तेज चलने लगी। उसने बेटे के मुँह को चूमना शुरू कर दिया।"[1] बच्चे को पिलाने के लिए माँ के सीने में दूध नहीं क्योंकि माँ के पेट में खाना नहीं। खाना खरीदने के लिए पैसे नहीं। पैसे कमाने के लिए काम नहीं। असंख्य प्रश्नों में डूबा यह समाज अपनी वेदनाओं कैसे और किसके सामने बयान करे। जीवन व्यतीत करने के लिए अगर दिन में एक रोटी भी ना मिले तो ऐसी जिंदगी कितने दिन बिता सकते हैं। पैसा सबको नचाता है। बंदरिया की तरह। जिसके हाथ में डोरी और डमरू उसी के लिए बंदरिया नाचती है। यह समाज हमें बंदरिया की तरह पैसों के लिए नचाता है। क्योंकि उसे पता है हम नहीं जी सकते रोटी के बगैर। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक त्रासदी से भरा हुआ है। इसमें किसी भी समाज का व्यक्ति हो। सबकी त्रासदी वही है। अन्न के लिए होता हास सभी कहानीकारों का मध्य बिंदु है जो अपनी कहानी के

[1] मेरी प्रिय कहानियाँ - नासिरा शर्मा, पृ.सं. 79

माध्यम से कहना चाहते हैं। विवशता प्रत्येक वस्तु की प्रत्येक क्षण और प्रत्येक जगह कहानीकारों ने चित्रित किया है।

3.4.5.5 मुस्लिम समाज की सामाजिक धारणा

मनुष्य की संस्कृति उसका धर्म बताती है। अर्थात कौन सा व्यक्ति किस धर्म से है यह उनके रीति-रिवाजों की पहचान है। मुस्लिम समाज की धारणाएँ स्त्री एवं पुरुष दोनों के लिए ही बनाई हुई है। समाज की नीति उसके कानून, उसकी विविधता यह सब धर्म से बनाई हुई होती है। सामाजिक स्तर पर अगर देखा जाए तो मुस्लिम समाज अपने रीति-रिवाजों में कट्टरता से बांधा गया है। मुस्लिम स्त्रियों को हमेशा पर्दे के अंदर रखा गया है। वह बिना पर्दे के बाहर नहीं आ सकती। विवाह की विधि देखी जाए तो मुस्लिम समाज के पुरुषों को कितने भी विवाह करने की मान्यता है। इसी के संदर्भ में मेहरुन्निसा परवेज अपनी कहानी 'पाँचवीं कब्र' में यह चित्र प्रस्तुत करती है- "किसी से न कहना। वह जो गप्पकार है न! अरे वही जी ब्याज पर पैसा देता है और जिसे कोई लड़की देने को तैयार नहीं होता। थोड़ा शराब और जुए का भी शौक है उसे, पर कहो तो आजकल कौन नहीं पीता? और जुआ कौन नहीं खेलता? बड़े-बड़े साहब लोग सेहत बनाने के लिए पीते हैं। औरत रखने का शोक है उसे, तो यह भी कोई बात नहीं। अरे, अपने इस्लाम में तो चार शादियों की इजाजत है।"[1] एक माँ को अपनी बेटी के लिए शराब पीने वाला, जुआ खेलने वाला और तो और जो लड़कियाँ घुमाता है। ऐसे दामाद से कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि यह सब कुछ तो माफी के काबिल बन जाता है। चार शादियाँ भी कर सकते हैं। माँ को अपनी बेटी से अधिक समाज की पड़ी है। इसलिए अच्छा बुरा कुछ न समझकर बस अपनी बेटी की शादी करवाना चाहती है। क्योंकि उसकी बेटी माँ बनने वाली थी वह भी बिना शादी। बेटी ने गलती की उस पर माँ उसे अंधेरे कुएँ में ढकेलने की तैयारी में है। जिसमें वह जिंदा रहेगी या नहीं उसका कोई पता नहीं। बस अपने सर से बेटी का बोझ उतर

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 213

जाए बस इतनी ही कामना है इस माँ की। सामाजिक स्तर पर देखा जाए तो ऐसे किस्से बहुत सी कहानियों में चित्रित किए जाते हैं। समाज चाहे कितना भी आगे बढ़ जाए लेकिन जो विचारधारा समाज में रहने वाले कुछ आतंकी दिमागों में फैली हुई है। उसे बाहर निकाल नहीं सकते। इक्कीसवीं सदी की कहानियों का वैचारिक स्तर बहुत विस्तृत है। इनमें मुस्लिम समाज के सभी पहलुओं को सामने लाया गया है। समाज की मान्यता क्या क्या है। किस विचारधारा को यह मानता है। उनकी परिस्थिति जो भी है यह सब कहानी के माध्यम से पाठक वर्ग तक रूबरू हो जाता है। मुस्लिम समाज की धारणाएँ, उनकी विविध पद्धतियाँ, समाज के प्रति आतंकी भाव इन मुद्दों से कहानीकारों ने इक्कीसवीं सदी की कहानियों को चित्रित किया है। आतंकवाद राजनीति फैलाती है मुस्लिम या हिन्दू समाज नहीं। चुनावों के समय जाति के नाम पर एक-दूसरे को लड़वाते हैं। उसी से एक के प्रति एक आक्रोश की भावना का निर्माण होता है। जो मनुष्य को एक-दूसरे का दुश्मन बना देता है। जहाँ प्रेम भाव से मिल जुलकर रहना स्कूल में सिखाते हैं। वही विश्वविद्यालयों में जाकर मेरी पार्टी तेरी पार्टी ऐसी भावनाएँ निर्माण हो जाती हैं। सबसे पवित्र स्थल जहाँ लिखना-पढ़ना सीखते हैं वहीं धर्म, जाति के प्रश्न उत्पन्न होते हैं।

3.4.6 किन्नर संवेदना

किन्नर शब्द जिसे सुनते ही सबके मन में तिरस्कार की भावना उत्पन्न होती है क्योंकि बचपन से सीखाया जाता है। किन्नरों से दूर रहना नहीं तो अभिशाप दे देंगे। जो सच होते हैं। वह जो अपने मुँह से एक बार कह दे, उसे छुटकारा पाना मुमकीन नहीं। किन्नर जिसे हम तृतीय लिंगी भी कहते हैं। ऐसी व्यक्ति जिसकी गणना न पुरुषों में की जाती है न ही औरतों में। स्त्री हो या पुरुष दोनों ही किन्नर हो सकते हैं। स्त्री किन्नर को 'हिजड़ी', पुरुष किन्नर को 'हिजड़ा' कहा जाता है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि विमर्शों की चर्चा दशकों से होती आ रही है परंतु किन्नर विमर्श को कभी इतनी महत्ता नहीं दी गई।

इक्कीसवीं सदी से किन्नरों की चर्चा अधिक होने लगी। किन्नर विमर्श जैसे शब्द हर जगह सुनाई देने लगे। हिन्दी कहानियों में अगर देखा जाए तो इतनी कहानियाँ लिखी नहीं गई हैं। परंतु किन्नर साहित्य में उपन्यासों की रचना अधिक है। किन्नर विमर्श का शुरू होना एक महायुद्ध को फिर से शुरू करना होगा। किन्नर विमर्श का दुख दलित तथा आदिवासी समाज से अधिक है, क्योंकि किन्नरों को समाज का हिस्सा ही नहीं समझा जाता है। अपनी त्रासदी में अपनी जिंदगी बिता लेते हैं। किन्नर महाभारत में शिखंडी के रूप में भी देखा जा सकता है। भगवान विष्णु ने भी औरत का रूप धारण कर अमृतपान करवाया था। अगर यह सब कहानियाँ सही हैं तो किन्नर भी बहुत पहले से स्थापित है। समाज की त्रासदी से परेशान होकर अपनी एक नयी पहचान किन्नरों ने बना ली है। आज के किन्नर रास्तों पर, शादियों में, किसी त्यौहार में पैसे माँगने का कार्य ही नहीं करते। बल्कि राजनीति के बड़े-बड़े पदों पर, सरकारी नौकरी में, खेल-कूद की दुनिया में, सब तरफ अपना नाम कमा रहे हैं।

लक्ष्मी को कोई नहीं भूल सकता। जिसने सफलता की ऊँचाइयों को छू लिया है। जो अपने हिजड़ा लक्ष्मी रूप से भारत ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। अपनी समाज सेवा, देश के प्रति उनका प्यार, तथा उनका कोमल व्यवहार सबको भाता है। हिन्दी जगत का सबसे बड़ा दूरदर्शन धारावाहिक 'बिग बॉस' जैसे कार्यक्रमों में भाग ले चुकी है। उनके काम इतने बड़े है कि आज उनकी आत्मकथा भी लिखी गई है। जो बहुत सी भारतीय भाषाओं में अनुवादित है। समाज प्रत्येक व्यक्ति को अपना समय देता है। समय का सही उपयोग अपने हाथ में है। कोई दूसरा आकर आपकी मदद नहीं कर सकता। खुद को खुद के पैरों पर खड़ा होना सिखना ही पड़ता है। सामान्य जनता को समाज के साथ प्रत्येक क्षण होना होता है। परंतु यह किन्नरों के साथ नहीं होता। उन्हें समाज हमेशा तिरस्कार की भावना से देखता है। जिससे उनमें समाज में सिर उठाकर जीने की आशा ही मर जाती है। लेकिन यह कड़ुवाहट लेकर जो अपने ध्येय को पूरा करना चाहता है वह आसमान को छू लेता है, लक्ष्मी की तरह। हमें उन्हें

दिल से अपनाना चाहिए क्योंकि, यह प्रकृति की गाथा है। जो मनुष्य नहीं बनाता, प्रकृति बनाती है। हमें ऐसी दुविधाओं को स्वीकार कर किन्नरों को न्याय दिलाना ही होगा। तिरस्कार से नहीं बल्कि प्यार से उन्हें अपनाना ही होगा। तब जाकर किन्नर समाज में भरा द्वेष बाहर निकलकर सब एक जैसे बन पाएंगे।

3.4.6.1 किन्नर कौन है

किन्नर अर्थात तृतीय लिंगी व्यक्ति हैं। जिन्हें अब सरकार द्वारा भी मान्यता भी प्राप्त आज किन्नर समाज खुले आसमान के नीचे अपनी सांस ले सकता है। पहले के दशकों में किन्नर समाज को घृणा से देखा जाता। उनके पास नहीं जाते थे। जितना हो सके उनसे दूर रहते थे। किन्नर होकर जन्म लेना मनुष्य के हाथ में नहीं। फिर भी दूर भगाया जाता है। वह भी एक मनुष्य ही है यह भी सोचना होगा। साहित्य जगत में किन्नर विमर्श का प्रभाव अधिक इक्कीसवीं सदी के द्वितीय दशक से देखा गया। किन्नर विमर्श पर ‘नाला सोपारा’, ‘मैं पायल’, ‘तीसरी ताली’, ‘किन्नर कथा’, ‘मैं भी औरत हूँ’ आदि उपन्यासों की रचना की गयी। ‘मैं लक्ष्मी ... मैं हिजड़ा’ आत्मकथा का प्रकाशन हुआ। किन्नर समाज आदिशक्ति को अपना आदिदेव मानते हैं। आदिशक्ति अर्थात शिव और शक्ति का एक रूप जिसमें आधे शिव और आधी शक्ति का शरीर है। यह किन्नर जाति के मुख्य देव माने जाते हैं। किन्नरों की मूल व्यथा उनका शरीर है। जिसका वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकते। बस उस शरीर में उन्हें जीना है। सूरज बड़त्या अपनी कहानी ‘कबीरन’ में लिखते हैं- “हिजड़ों में स्त्री और पुरुष हिजड़ा दोनों होते हैं।”[1] अर्थात स्त्री हिजड़ी और पुरुष हिजड़ा यह उनके बुलाने की प्रथा है। आधुनिकीकरण ने सब कुछ बदल डाला है। आज हिजड़ा मतलब एक बड़ा व्यापार बन चुका है। पैसे कमाने का आसान तरीका बन चुका है। पहले जिसे घृणा से देखा जाता था, आज व्यावसायीकरण का बड़ा माध्यम बन चुका है। मैं लक्ष्मी ... मैं हिजड़ा में लक्ष्मी ने अपनी सारी

[1] कामरेड का बक्सा - सूरज बड़त्या, पृ.सं. 17

व्यथाओं को बयान किया है। किस तरह से हिजड़ा बनाने के लिए मनुष्य को खिंचा जाता है। उन्हें विवश किया जाता है। समाज में रहने वाले मनुष्य की मानसिकता अगर ठीक रहे तो किन्नरों को उनका न्याय मिल सकता है। लक्ष्मी कहती है- "कितना भी बड़ा, कितना भी विकसित देश हो, तो भी ट्रांसजेंडर्स को हर देश में भेदभाव का सामना करना पड़ता है। लेकिन अब उनकी संस्थाएँ उनके प्रश्न उठाने लगी है। देश के सामने, विश्व के राजनीतिज्ञों के सामने जाकर वो उनका पक्ष रखने लगी हैं और उनके जवाब ढूंढने लगी है। दूसरी तरफ समाज को भी उनके प्रति संवेदनशील बनाना होगा। एक तरफा हल होने वाला सवाल ये नहीं है। इस वजह से इन कामों में शक्ति, उत्साह और गति होनी चाहिए। तभी समाज का हिजड़ों की तरफ नजरिया बदल सकता है, और हम नजरें नीचे किये बिना समाज की नजरों से नजरें मिला पाएंगे।"[1] लक्ष्मी यहाँ समाज से अपने अधिकार मांग रही है। किन्नर जन्म से ही ऐसे पैदा होते हैं। या फिर कृत्रिम तरीके से अपना ऑपरेशन करवाकर वह किन्नर बन जाते हैं। देखने की अगर बात करें तो यह पूर्ण रूप से औरतों की तरह ही दिखते हैं जो अपना एक अलग समुदाय बनाकर रहते हैं। हिजड़ा शब्द हिजर से बना है। हिजर शब्द का अर्थ अरेबिक में समाज से दूर या समाज छोड़ा हुआ होता है। हिजर से हिजड़ा शब्द की उत्पत्ति को माना गया है। जो मूलत: एक उर्दू शब्द है। अपना स्वतंत्र समाज बनाकर किन्नरों की टोली बनाकर रहते हैं। उनका व्यवसाय मुख्यत: घर-घर घुमकर पैसे मांगना होता है। परंतु आज की किन्नर पीढ़ी ऊँचाइयों को छू रही है। शिक्षा, राजनीति सभी तरफ अपने हाथ बढ़ा चुकी है। आज की किन्नर पीढ़ी सामान्य जनता की तरह सबमें घुल-मिल जा रही है। अपनी कमजोरी को अपनी शक्ति बनाकर आगे बढ़ रहे हैं। किन्नर भी एक मनुष्य ही है। उसे सम्मान मिलना ही चाहिए। यह आज उनकी पुकार है। जिसके लिए किन्नर समाज बहुत से प्रयास कर रहा है। साहित्य जगत में भी किन्नर विमर्श का पदार्पण हो चुका है।

---

[1] मैं हिजड़ा ... मैं लक्ष्मी! - लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, पृ.सं. 176

3.4.6.2 अपमान भावना की त्रासदी

किन्नर समाज जीवन प्रारंभ से अब तक अपमान ही सहता आया है। प्रत्येक क्षेत्र में धिक्कारा गया है। किसी के मुँह से छक्का, हिजड़ा, नामर्द, कोज्जा आदि शब्दों से इन्हें गालियां दी जाती हैं। उनकी मनोस्थिति समझने के बजाय बस आक्रोश और क्रूर नजर से इन्हें देखा जाता है। इनके लिए हमेशा तिरस्कार का भाव दिल में रखा गया है। इसी त्रासदी में जीता यह समाज हमेशा दुविधाओं में फंसा नजर आता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में किन्नरों का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। जिससे साहित्यिक दृष्टि से इसका विवरण कर सके। किन्नर समाज की विवशता का यथार्थ चित्रण हमें हमारे रोजमर्रा की जिंदगी में देखने को मिलता है। कितनी मुश्किलों के साथ वह अपना जीवन व्यतीत करते हैं। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बदन दबना' में घर के सामने आए हुए किन्नर का मजाक उड़ाकर उन्हें शर्मिंदा किया जाता है- "लंबा-सा एक नचनिया अपने चिपके मुँह पर पाउडर लिथड़े था। उसके बड़े-बड़े होंठों पर लाली पुती थी। आँखों में काजल था। मांग भरी थी। कानों में झुमके थे। गले में हार था। वह जनाना कपड़े पहने छलांग-छलांग नाच रहा था। उसकी दाढ़ी मूंछों की खूंटे पपड़ाई जमीन में अकुंआए बीज के शंकुओं-सी दिखने लगी थीं। हलका सिंह ठहाका मारकर हंसा।"[1] समाज सबका है। समाज में रहने का अधिकार सबको है। हलका सिंह पैसों के मामले में अमीर है। उसके हाथ में गाँव की सत्ता है। इसका अर्थ तो यह नहीं होता कि वह सबका अपमान करे। किन्नरों का व्यवसाय ही नाच-गाकर कुछ पैसे कमाना है। सभ्य कहलाता समाज अपनी दुनिया में उन्हें आने नहीं देता। तो वह आखिर जाएं कहाँ। अपमान सहने की भी हद है। हद के बाहर कोई भी जाए तो उसका परिणाम तो भुगतना ही पड़ता है। इसी वजह से आज किन्नर समाज अपने अधिकारों की मांग लेकर आगे बढ़ रहा है। आज साहित्य के माध्यम से उनपर हो रहे अत्याचारों की गाथा पाठक तक पहुँच पा रही है। सोशल मीडिया का सहारा लेकर

[1] खेत तथा अन्य कहानियाँ - रत्नकुमार सांभरिया, पृ.सं. 114

किन्नर समाज अपनी व्यथाओं का चित्रण कर रहा है। 'कबीरन' कहानी जो कबीरन किन्नर पर चित्रित है उसमें भी दर्शाया गया। जब वह पैदा होती है तब पता नहीं चलता कि वह लड़का है या लड़की तभी उसे मार डालने की बात निकलती है। आखिर क्यों सोचा गया कि जिस बच्ची ने आज ही दुनिया में कदम रखा उसे आज ही मार डालना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि माता-पिता को भी बर्दाश्त नहीं कि उनकी संतान तृतीय लिंग जन्म ले। उसे माता-पिता अपमानित होना समझते हैं। कहानी का मृत्यु संदर्भ तो यही दिखाता है कि किन्नर मतलब अभिशाप जो एक बार लग गया तो छूट नहीं सकता। कितनी गलत धारणाएँ हैं समाज की। जो मनुष्य को उसके जीवन में चैन की सांस तक लेने नहीं देता। पहले लड़की का पैदा होना शुभ नहीं माना जाता था। क्योंकि सबको वारिस चाहिए। अब अगर किन्नर बनकर जन्म ले तो उनकी व्यथा का तो कोई अंत ही नहीं होगा। किन्नर को समाज नहीं अपनाता, इसलिए उसमें अपना अलग ही समाज बना लिया है। जो सबसे दूर अपनी टोली में बनकर रहता है। समाज के साथ-साथ जब अपने भी उन्हें अपनाते नहीं। तब उनकी स्थिति कितनी भयावह होगी। न अपने न दूसरे किसी की नजरों से न आदर, न सम्मान, बस मुँह में गालियाँ और तिरस्कार। हर तरफ बस अपमान ही अपमान है। जिससे शायद कहीं-न-कहीं यह समाज टूट भी रहा है। क्योंकि हाथों की पाँचों ऊँगलियाँ समान नहीं होती। वैसे ही सभी मन से मजबूत और समाज की सभी बातें सुनने के आदी नहीं होते।

3.4.6.3 किन्नर समाज की आर्थिक परिस्थिति

किसान-खेत, पुलिस-जनता, वकील-न्यायालय, डॉक्टर-मरीज आदि सभी को उनके कामों से उन्हें देखा जाता है। इसी तरह किन्नर समाज का मुख्य व्यवसाय घर-घर जाकर नाच-गाकर पैसे कमाना होता है। यह कार्य किन्नर शुरुआत से करते आये हैं। इसीलिए उन्हें नचनिया, गाने वाली कहकर बुलाते हैं। शादी-त्यौहारों में इनका घर आना शुभ मानते हैं और उन्हें पैसे दिए जाते हैं। इन्हीं पैसों से किन्नर समाज अपनी रोजी रोटी निकाल लेते हैं। परंतु

सोचा जाए तो क्या इन्हें इतने पैसे मिलते होंगे जिससे वह अपनी रोजमर्रा की जिंदगी आराम से गुजारी जा सके। आज के युग में किन्नरों को भी प्रतिस्पर्धा देने वाले बहुत से निर्माण हो रहे हैं। अर्थात बेरोजगारी ने सबकी दिशा और दशा दोनों बदल दी है। सामान्य जन भी रोजमर्रा की कोई राह न मिलने की वजह से किन्नरों का रूप लेकर जहाँ-जहाँ पैसे माँगते दिखाई दे जाते हैं। इसी वजह से जो सच्चे किन्नर है, उनकी आर्थिक व्यवस्था पर असर पड़ रहा है। अपना पेट भरने के लिए किन्नर समाज धूप-छांव कुछ भी न देखकर बस अपना काम करने लगते हैं। कबीरन अपनी व्यथा को अपने भाई से बताती है- "आप यहाँ कैसे बाबुजी? अरसा हुआ वह शहर छूटे हमारा वैसे भी अपना कोई तो है नहीं। जिसके लिए एक जगह रूकें, ऐसे ही गाते, बजाते, नाचते जहाँ पेट ले जाता है चले जाते हैं।"[1] यहाँ कबीरन स्पष्ट रूप से बताना चाहती है। उनकी जिंदगी का कोई एक ठिकाना नहीं। जहाँ उन्हें पेट भरने के लिए चार पैसों की आशा मिले वहीं वह चले जाते हैं। एक ही शहर में एक ही जगह वह बस नहीं सकते। कितनी यातना भरा जीवन है किन्नर समुदाय का, जो अपनों के बीच भी रह न सकते। उनकी त्रासदी को समझना बस ऊपर से आँख घुमाने जैसा होगा। जिस पर बितता है वही उसे भोग सकता है। वही उसे समझ सकता है। आज की नयी पीढ़ी शिक्षा का सहारा ले रही है। किन्नर बने माता-पिता भी अब अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सोच रहे हैं। इसलिए आज किन्नर बच्चे पढ़-लिखने की सोच रहे हैं। किन्नर लक्ष्म जिसने समाज में अपना बड़ा नाम बना लिया है। उसने सबको दिखा दिया औरत या मर्द होना जरूरी नहीं। करने की हिम्मत होनी चाहिए तो आसमान भी छू सकते हैं। परंतु यह बस लक्ष्मी की बात होगी और भी ऐसी बहुत सी लक्ष्मी होगी जिसे किसी का साथ न मिलने की वजह से उसी दलदल में फंसे रहना है। रोजगार की तरफ देखा जाए तो आज किन्नरों का अधिकार सामान्य स्त्री-पुरुष छीन रहे हैं। उनके जीवन का अस्तित्व मिटाने का कार्य सामान्य जनता कर रही है। इसलिए यह समाज घोर अंधकार में

[1] कामरेड का बक्सा - सूरज बड़त्या, पृ.सं. 21

स्वयं को देख रहा है। ना परिवार ना अपने लोग कोई नहीं उनके पास। कबीरन कहती है उसके भाई सुमेध को तुम्हारी दुनिया से हमारी दुनिया अच्छी है। यहाँ मुझे कोई तिरस्कार की भावना से नहीं देखता। हम सब एक जैसे हैं। आज किन्नर भी अपने समाज में खुद को सुरक्षित महसूस नहीं कर रहा है। इससे बड़ी शर्म की बात क्या हो सकती है। आज का समाज वैज्ञानिक स्तर पर चांद, मंगल तक पहुँच गया है। परंतु विचारों से आज भी पिछड़ा हुआ है। इसी वजह से समाज में एक दूसरे के लिए नफरत पैदा हो गई है। प्यार की भावना कहीं नहीं बची है। किन्नर अपना पेट भरने के लिए दरबदर घूम रहे हैं लेकिन सुकून की एक रोटी भी उन्हें मिले इसका कोई जवाब नहीं है। कहानी पढ़ने से पाठक व्याकुल हो जाता है। उस जिंदगी को यह समुदाय जीता आ रहा है। तो उनमें कितनी यातना और वेदनाएँ होंगी।

3.4.6.4 किन्नर का सामाजिक परिवेश

किन्नर समुदाय संपूर्ण भारत देश में टोली या समुदाय बनाकर रहते हैं। उनकी टोली एक या दो लोगों की नहीं बल्कि बहुत से किन्नरों को बनाकर मिलती है। यह एक-एक की टोली बनाकर एक-एक जगह चुन लेते हैं। और पैसे कमाने निकल पड़ते हैं। सब एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। जातिवाद की भावना किन्नर समुदाय में भी बहुत अधिक है। अगर कोई छोटी जाति का व्यक्ति किन्नर बन गया हो तो उसे अपने टोली में शामिल नहीं करते। बल्कि इनमें सामान्य जनता से अधिक जातिवाद की भावना दिखाई देती है। दलित वर्ग में किन्नर अपना अलग समुदाय बनाकर रहते हैं। दलित कहीं जाकर भी नीचे ही रह जाते हैं। जातिवाद की यह भावना इतने जल्दी शायद समाज से दूर ना होगी। किन्नर अपने-आप में बड़े होते हैं। उनका मानना है वह भगवान के अवतार हैं। वह जो कहते वही सच होता है। इस वजह से अधिकतर जनता इनसे डरती भी है। और कहीं-कहीं ऐसा भी दिखाई गया है कि अपना अपमान न होने के लिए या अपनी इज्जत यूँ ही बरकरार रहने के लिए वह अपने बच्चों को बाहर नहीं निकालते। किसी को नहीं बताते उनके बच्चों में कमी क्या है। कालीचरण प्रेमी की कहानी

'उसका फैसला' भी ऐसा ही चित्र दिखाती है। कहानी का पात्र चंदर जो कभी बाप नहीं बन सकता। बचपन से ही उस में सभी हरकतें लड़कियों जैसी ही होती। परंतु फिर भी चंदर के माता-पिता उसकी शादी बिन्दो से करा देते हैं। और बिन्दों की जिंदगी को बरबाद करते हैं। लेखक चंदर का परिचय देते हुए लिखते हैं- "नाम था लक्ष्मी। पर उसकी कमर में कूबड़ होने के कारण उसे सब कुबड़ी के नाम से ही जानते थे। दोनों का एकमात्र बेटा था चंदर जो था तो सुन्दर जवान पर था अपाहिज सा ही। लोगों का कहना था कि चंदर नामर्द है। मुहल्ले के बिगड़ैल छैले चंदर के पीछे पड़े रहते थे। वे अपनी कामुकता का साधन मानते थे चंदर को।"[1] यहाँ समाज के दोनों स्वरूपों का परिचय पाठक को मिलता है। यह चंदर के माता-पिता को बताता नहीं है समाज को उनका बेटा ही सही नहीं है। परंतु अपने बेटे के दोष छिपाने के लिए चंदर के माता-पिता उनकी बहू बिन्दो का अपना शिकार बनाते हैं और उसे पूरे समाज के सामने शर्मिंदा करते हैं। चंदर अपनी कमियों को मानने के बजाय अपनी पत्नी पर ही अत्याचार करता है। किन्नर कोई अभिशाप सा मान लेते हैं। जिससे सब कोई बचना चाहते हैं परंतु सबकी अपनी जिंदगी होती है। हर कोई अपने समाज में स्वच्छंद जी सकता है। समाज के बने मापदंड सबकी नजरों में सही नहीं होते हैं। अपनी स्थिति तथा दूसरों की स्थिति को एक जैसे ही नजर से देखना सही नहीं होगा न। वैसे ही किन्नर भी अपने समाज को बचाता आगे चल रहा है। हम बस उनका साथ दे सकते हैं। तिरस्कार करने की वजह वह किन्नर तो यह तो न्याय की बात न होगी। सबको समान अधिकार मिलना सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। किन्नर जीवन पहले से ही विपदाओं भरा है। उसमें अगर हम उन्हें नहीं अपनाएंगे तो वह अकेले टूट जाएंगे। इक्कीसवीं सदी का परिदृश्य कहानी जगत में विस्तृत है। उस वजह से सभी भावनाओं का चित्रिकरणा कहानीकार अपनी कहानियों में करता है। उससे समाज में चल रही यथार्थ गतिविधि का चित्रण हम पाठक वर्ग आराम से देख सकते हैं। अपनी-अपनी जिंदगी तो

[1] नयी सदी की पहचान : श्रेष्ठ दलित कहानियाँ - सं. मुद्राराक्षस, पृ.सं. 102

हर कोई जीता है परंतु एक बार दूसरों के लिए जीने का अनुभव तो कुछ और ही होता है। समाज के प्रत्येक नागरिक को यह अनुभव जीवन में एक बार तो करना ही होगा। जिससे मनुष्य की आत्मा तक शांत हो जाएगी।

3.4.6.5 किन्नर का समाज में स्थान

साहित्यकारों की रचनाओं में हमेशा रेखांकित हुआ है- स्त्री अस्मिता की लड़ाई, दलित अस्तित्व की लड़ाई, आदिवासी त्रासदी की लड़ाई, वृद्ध संवेदना की लड़ाई आदि। प्रत्येक वस्तु के लिए लड़ना आवश्यक ही है। जहाँ सामान्य जनता को ही उनका न्याय नहीं मिल पा रहा है। वहाँ किन्नरों की समस्या को तो गिनाई नहीं जाता। उन्हें तो समाज में सीधा स्थान भी नहीं मिल पाता। देखा जाए तो इनकी समस्या सबसे अधिक व सबसे बड़ी है। इतनी समस्याओं के बाद भी आज किन्नर आगे बढ़ने का देख रहे हैं। अपने नाम से आगे जो बेइज्जती से भरा है। पहले का दशक किन्नरों के लिए अलग था। परंतु अब का समय उनके लिए अलग है। पहले सभी तिरस्कार, गाली-गलौज से उन्हें पुकारते थे। 'कबीरन' कहानी की कबीरन को उसका भाई सुमेध उसका समाज व समुदाय छोड़कर अपने घर वापस आने को कहता है। सुमेध के मन प्यार और आत्मीयता है। अपनी दीदी के लिए परंतु कबीरन सुमेध को उत्तर देती है- "मैं तो वहाँ आ जाऊँगी बाबूजी, पर आपको लोग क्या कहेंगे? एक हिजड़े को घर में बुलाएंगे। जिसे अम्मा-बापू घर में नहीं रख पाये उसे आप घर में?"[1] कबीरन की बातें सुनकर सुमेध रो पड़ता है परंतु कबीरन कहती है तुम्हारा समाज मुझे कभी नहीं अपनायेगा। कबीरन को उसका समाज ही ठीक लगता है। क्योंकि उसे उसके समुदाय में कोई तिरस्कार की भावना से नहीं देखता। सबके अंदर आत्मीयता की भावना भले ही अधिक न हो लेकिन होती तो है। जो सामान्य जनता में उन्हें नहीं मिल पाता वह उन्हें उनके समाज में मिल जाता है। समाज बहुत बड़ा है उसके विचार बहुत बड़े हैं। उसी तरह उनमें रहने वाले लोगों की मान्यताएँ

---

[1] कामरेड का बक्सा - सूरज बड़त्या, पृ.सं. 26

भी अलग-अलग हैं। आज के किन्नर गाली-गलौज तथा तिरस्कार के बारे में ही नहीं सोचते। आज के किन्नरों को आसमान छूते देखा जा सकता है। जैसे ऐश्वर्या प्रधान (सिविल सेवक), लक्ष्मी, गंगा कुमारी (पुलिस), सत्यश्री शर्मिला (वकील), प्रीतिका याशिनी (पुलिस), मनाबाई (प्राध्यापक) आदि यह गिनती अभी बहुत लंबी है। किन्नरों ने भी बता दिया है कि भारतीय संविधान सबके लिए है। उसी भारत का हिस्सा किन्नर समुदाय भी है। इसीलिए उन्हें भी सभी अधिकार मिलने चाहिए। जो अब बल से नहीं शिक्षा के माध्यम से हासिल कर रही है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी कहानियों में कहानीकारों ने समाज का यथार्थ स्वरूप रेखांकित किया है। सभी भावनाएँ जो कहानीकार कहानी लिखते समय महसूस करते होंगे और कहानीकार उन क्षणों को पूरी तरह जीता होगा। किन्नर समाज की गाथा दूसरे समाज से अलग है। आज यह समुदाय स्वयं को अकेला नहीं पाता। मनुष्य की विचारधारा बदल रही है। आने वाले समय तक साहित्य में किन्नरों के जीवन की परिभाषा बदल जाएगी इसकी आशा करते हैं। वह भी सिर उठाकर सामान्य जनता के साथ आंख में आंख मिलाकर जी सकेंगे। और अपनी कामनाओं को पूर्णत: अर्पण करेंगे। भूतकाल से भविष्य में कुछ अच्छे बदलाव आना तो जरूरी है ही न। इनकी शुरुआत हमसे हो तो और अच्छा होगा। कहानीकारों की भाषा की संवेदना भविष्य में शायद बदल जाएगी। सबको सबका अधिकार प्राप्त होगा। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में संवेदना के भावों का चित्रण मार्मिक रूपों में किया गया है। जिससे पाठक वर्ग की उँचाई और अधिक बढ़ जाती है। कहानी यथार्थ की होती है। संभवत: वह यथार्थ समाज की अच्छी सच्चाई बयान करने वाला हो तो सबके मन संतुष्ट और आनंदमय हो सकते हैं।

3.4.7 भूमंडलीकरण की संवेदना

'ग्लोबलाइजेशन' अर्थात वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण आदि शब्दों से अर्थ बनता है। भूमंडलीकरण शब्द कितना बड़ा और गहरा लगता है। इस शब्द का यथार्थ भी इतना ही बड़ा

और यथार्थ है। भूमंडलीकरण की शुरुआत अमेरिका से हुई। लगभग 35 से 40 वर्ष का दायरा बीत चुका है। किसी भी पहलू को दोनों तरीके से देखने की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। ऐसे ही भूमंडलीकरण के भी अच्छे और बुरे दोनों पहलू हैं। भूमंडलीकरण की धारणा बस भारत में ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्व में मकड़ी के जाल की तरह फैल गयी है। ऐसा जाल जिसे कितने बार काटो या तोड़ो वह फिर से जुड़ ही जाता है। जब हम छोटे थे तब हमें ये दूरदर्शन देखने का मौका भी बस रविवार को मिलता था। वह भी महाभारत और रामायण देखने के लिए। लेकिन आज का जमाना आसमान छू गया है। छोटे-छोटे बच्चों के हाथों में आई.पॉड, टैब्लेट्स, मोबाइल फोन आदि देख सकते हैं। यह सच बात है कि वैज्ञानिक उपकरणों की वजह से आज बच्चे बुद्धि से अग्रसर हैं। परंतु यही वैज्ञानिक उपकरण उन्हें गलत राह पर भी ले जा रहे हैं। नयी टेक्नोलॉजी की जरूरत सबको है। परंतु उसका इस्तेमाल कितना और कब होना चाहिए उसकी भी तो कोई सीमा हो। हमारे माता-पिता तथा हम स्वयं भी इतनी टेक्नोलॉजी के आदी नहीं थे। इसका अर्थ तो यह नहीं बनता न कि हम बुद्धिमान नहीं हैं। भूमंडलीकरण ने पूरे विश्व को हिलाकर रख दिया है। दीमक जैसे धीरे-धीरे खून चूसता है, जिसका पता मनुष्य को लगता ही नहीं है। उसी तरह भूमंडलीकरण नामक दीमक अपने देश को अंदर ही अंदर खोखला करता जा रहा है। वर्तमान समय ऐसा है कि हम अपनों के चार मोबाईल नंबर भी याद नहीं रख सकते। क्योंकि सब नंबर मोबाईल फोन में संभालकर रखे जाते हैं। पर यह हमारी क्षति नहीं। हम बस वैज्ञानिक चीजों की कठपुतली बनकर रह गये हैं। जैसे वह नचाता है हम नाचते हैं।

साहित्य जगत में भूमंडलीकरण पर बहुत सी चर्चाएँ हुई हैं। रचनाएँ लिखी गई हैं। वैश्वीकरण, बाजारवाद जैसे वर्तमान समय के बड़े राक्षस बनकर पन्नों पर लिखे जा रहे हैं। आज का समाज पूर्व के चालीस वर्षों से पूरी तरह परिवर्तित हो गया है। आज के समाज का प्रश्न बस नाम कमाना और पैसे कमाना रह गया है। भावना प्रेम, अपनापन, यह शब्द जैसे

अनजाने बन चुके हैं। वर्तमान समय में इन शब्दों का कोई मोल नहीं बचा है। एक ही घर में रहते हुए भी आपस में बात नहीं हो पाती। सब अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त हो बैठे हैं। किसी के दुख दर्द से किसी का वास्ता नहीं। बस कमाना ही एकमात्र उद्देश्य रह गया है। बिना पैसे ये नये शौक पूरे नहीं कर सकते। रविवार की छुट्टी जहाँ परिवार के साथ बिताते थे, वहाँ आज शॉपिंग, मॉल्स, क्लब, पार्टी इसने ले ली है। कंप्यूटर को मनुष्य ने बनाया परंतु आज वही मशीनें मनुष्य का जीवन बना रही है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में वैश्वीकरण का भयावह चित्र दिखाया गया है। जिसका प्रभाव प्रत्येक परिवार पर दिखाई दे रहा है। भूमंडलीकरण ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी परिस्थितियों को बदल डाला है। सब जगह नवीनता आ गई है। वर्तमान समय जो कोरोना से ग्रस्त है वहाँ स्कूल ऑनलाइन, पूजा ऑनलाइन, रिश्तेदारी ऑनलाइन, त्यौहार ऑनलाइन सब कुछ ऑनलाइन। मजाक बना रखा है भावनाओं का और अपनों का। बेरोजगारी की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। जिसका हल ढूंढना शायद मुमकीन नहीं। हिन्दी कहानियों में भूमंडलीकरण के बहुत से पहलुओं को एक जगह लाया गया है। कहानियों के माध्यम से पता चलता है कि भूमंडलीकरण के जितने फायदे हैं साथ ही साथ उतने नुकसान भी हैं। बच्चे अधिक टेक्नोलॉजी पर निर्भर हो रहे हैं। दिमाग से अधिक कैलकुलेटर का प्रयोग कर रहे हैं। जहाँ मैदान में खेला जाता था, वहाँ आज फोन में कराटे और कबड्डी खेल रहे हैं।

3.4.7.1 भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद

संपूर्ण जगत आज बाजारीकरण की शृंखला में आ गया है। एक हाथ लो और एक हाथ दो। वह धारणा बन चुकी है। बाजारवाद की परिभाषा वर्तमान समय में पूर्ण बदल चुकी है। आज वस्तु खरीदना व बेचना यह दो ही अर्थ बनकर रह गए हैं। वस्तु का मूल्य कितना है समाज पर उसका प्रभाव कितना है यह सब जानने की आवश्यकता कोई नहीं समझता। बस वस्तु बेचनी है। चाईना में बनी हुई वस्तुएँ भारत में दस रुपये में बेची जाती है। तो इससे उस

वस्तु की गुणवत्ता कितनी खराब होगी यह तो हम समझ ही सकते हें। प्लास्टिक का खाना बनाकर पूर्ण विश्व में बेचा व खरीदा जा रहा है। इन सबसे मनुष्य के स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ रहा है। परंतु इन सबसे किसी को कोई नुकसान नहीं, बस पैसे कमाने की होड़ है उसमें। लेखक जवाहरलाल कौल अपने लेख में लिखते हैं- "सारी दुनिया जहाँ एक बाजार हो, एक ग्राम हो उसमें कोई अड़चन न हो। टेक्नोलॉजी का एक बाजार हो तो इसमें भावनाओं का, मूल्यों का कोई संबंध नहीं, केवल 'ग्लोबल विलेज' एक बाजार की अवधारणा है जहाँ बिना किसी राष्ट्रीय, जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक, क्षेत्रीय अवरोधों के बावजूद माल बिकता रहे और उसके रास्ते में जो अवरोध आएँ वो हट जाएँ।"[1] उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि बाजारवाद को मनुष्य से कुछ लेना देना नहीं। बस उसे उसका काम जारी रखना है अर्थात बेचना और खरीदना। भूमंडलीकरण की समस्या समग्र भारतवर्ष देख और झेल रहा है। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अकेलापन, दंगे ऐसी बहुत सी चीजों की शुरुआत हो चुकी है। अपनी जेबें भरने के लिए सत्ता पर बैठे सत्ताधीश अच्छा व बुरा न सोचते हुए किसी भी वस्तु की इजाजत दे रहे हैं भारत में लाने के लिए। समाज इतना आगे बढ़ चुका है कि इलेक्ट्रॉनिक जगत में जहाँ स्त्रियाँ साड़ियाँ भी विदेशों से मंगवा रही हैं। इससे बड़ा मजाक क्या हो सकता है। औद्योगीकरण, प्रौद्योगीकीकरण इनका अर्थ ही बदल चुका है। बस आगे बढ़ना है। रास्ता सही हो या गलत उससे कोई मतलब नहीं। बस आगे चलते जाओ। भूमंडलीकरण का प्रभाव समाज के बाजार के साथ-साथ परिवार पर भी हो रहा है। आप सबको सुविधाओं में जीना है। किसी के पास किसी के लिए वक्त नहीं है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'तलाश' के नायक रामवीर सिंह अपने लिए कमरा ढूंढ रहे हैं। "एक सुविधाजनक मकान ढूंढ रहे थे। ऐसा मकान जो ज्यादा बड़ा न हो किन्तु दो कमरों का सेट जरूर हो। जिनमें एक कमरा बेड रूम और दूसरा ड्राइंग रूम के रूप में काम आ सके। और सबसे बड़ी बात यह कि मकान में किसी तरह का

[1] मीडिया और बाजारवाद - सं. रामशरण जोशी, पृ.सं. 22-23

शोर या डिस्टर्बेन्स न हो।"[1] आज की दुनिया में लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। किसी के सुख-दुख से किसी को लेना देना नहीं। बस अपना काम निकल जाए। संयुक्त परिवार को देखा जाए तो एक-एक परिवार में दस-दस या उससे अधिक व्यक्ति होते थे। कामकाज के साथ-साथ दुख-दर्द भी बाँटे जाते थे। अपनों के साथ जीवन बिताना सब दुख भुला देता था। भूमंडलीकरण नामक राक्षस ने जब से भारत में पाँव रख है तब से जीवन जैसे उधार का प्रतीत होता है। कोई भावना या आत्मीयता नहीं दिखाता। आते हैं चले जाते हैं। समाज बहुत बड़ा है, समाज में व्यक्ति भी बहुत है। फिर भी आज सब अकेले हो चुके हैं। किसी को एक-दूसरे से यहाँ संबंध नहीं है। कोई नहीं जानता एक-दूसरे को यहाँ। इक्कीसवी सदी में भूमंडलीकरण ने अपने पैर पूरे पसार लिए हैं। अब यह सबको निगलता जाएगा। जितने भूमंडलीकरण के फायदे हैं उससे अधिक तो उसके नुकसान हैं। जिसे अब रोका भी नहीं जा सकता।

3.4.7.2 भूमंडलीकरण का स्त्री पर प्रभाव

दुनिया 'ग्लोबलाइज' बनती जा रही है। सामानों का आदान-प्रदान बड़ी मात्रा में होता देख सकते हैं। नए-नए उत्पादों को तैयार कर रहे हैं। उत्पाद बनने के बाद उनकी बिक्री होना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। सामान बिक्री करने का तरीका है लोगों तक उसकी सूचना पहुँचाना जो विज्ञापनों के माध्यम से किया जाता है। कितनी भी छोटे से छोटी वस्तु हो या बड़ी सबका विज्ञापन बनाया जाता है। विज्ञापनों को आकर्षित बनाने के लिए सुंदर-सुंदर लड़कियों या स्त्रियों को तैयार किया जाता है। पैसे की मजबूरी कुछ भी करवा सकती है। ऐसी ही एक व्यथा को 'पॉल गोमरा का स्कूटर' कहानी में उदय प्रकाश ने चित्रित किया है। पॉल गोमरा जहाँ रहते थे, वहाँ उनके पड़ोसी की एक सतरह साल की बेटी है। जो सफाई कामगार की बेटी है। उसे एक ब्लेड के विज्ञापन में देखा गया। उस विज्ञापन में उस लड़की ने कम से कम कपड़े पहने थे। या यूँ कहें उसे अर्द्धनग्न अवस्था में दिखाया गया। इस एक विज्ञापन से उसके घर

[1] तलाश - जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं. 19-20

वालों का कुछ दिन के लिए पेट तो भर गया। परंतु आने वाले आठ महीनों में ही वह एच.आई.वी. बाधित पायी गयी। आज जो विश्व आगे बढ़ रहा है, परंतु विकास के नाम पर हजारों लाखों गरीबों का खून एवं उनका बलिदान होता जा रहा है। लोकशाही गरीबों को कुचलकर अपना काम निकाल रही थी। इस पर लोग चींटियों, चूहों और छिपकलियों की तरह समाज में रेंग रहे हैं। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं- “उस सूटकेस तक जाते और अपने दांतों में नोटों की गड्डियाँ दबाकर नीचे कूद जाते। उनकी पीठ पर कागज की छोटी-छोटी चिप्पियाँ चिपकी थी जिन पर ग्रामीण विकास, रोजगार, आवास, सड़क, साक्षरता, प्लेग, गरीबी, चेचक, परिवार कल्याण, राहत, भूकंप, पर्यावरण, शौचालय, संस्कृति, एड्स, साहित्य आदि लिखे हुए थे। हर शब्द के अंत में एक अंत: सर्ग या जो हर चिप्पी पर मौजूद था- ‘परियोजना’।”[1] सब कुछ बदल गया है। मनुष्य बदल गया समाज बदल गया। भावनाएँ बदल गई। इज्जत बदल गई। अब बस मुख्यता है तो पूंजीवाद को। जिसके पास पैसे हैं वे मदारी जिसके पास नहीं वह मदारी बंदर या बंदरिया। ढोल बजेगा बंदरिया नाचेगी। कितनी शर्मिंदगी की बात है मनुष्य कठपुतली बनता जा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति भूमंडलीकरण की वजह से पूर्ण भारत में फैल गयी है। यही संस्कृति साहित्य जगत में भी फैल गयी है। ‘मॉडर्न इंडिया’ का मॉडर्न समाज यह धारणा सबके दिल और दिमाग में बंध चुकी है। मनुष्य के कपड़े ही नहीं बदले बल्कि शरीर के अंदर की भावनाएँ भी बदल चुकी हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भूमंडलीकरण का प्रभाव हर तरफ देख सकते हैं। कहानी का यथार्थ स्वरूप देखकर पाठक वर्ग भी चौंक चुका है क्योंकि इतना बड़ा प्रभाव समाज पर पड़ रहा है और समाज साहित्य का दर्पण है। दोनों एक-दूसरे से अलग हो नहीं सकते। और दोनों को एक-दूसरे से अलग देख भी नहीं सकते। भूमंडलीकरण का जलवा पूर्ण जगत पर अपना असर कर रहा है। आज की पीढ़ी पूर्णत: मशीनों पर निर्भर है। कपड़े, बर्तन, खाना, लिखना सब कुछ मशीनें कर रही हैं। जिससे

[1] पॉल गोमरा का स्कूटर - उदय प्रकाश, पृ.सं. 55

मनुष्य इन कामों का बाधी नहीं रहा। सब सुविधाएँ होने के बावजूद भी आज मनुष्य के पास अपनों के लिए भी वक्त नहीं। स्त्री का स्वरूप पूर्णत: बदल चुका है। आज अधिकतर महिलाएँ काम काजी हैं। घर के साथ-साथ ऑफिस संभाल रही है। परंतु ऐसी बहुत सी महिलाएँ हैं जो रोजगार की कमी की वजह से वेश्यावृत्ति पर आ खड़ी हैं। उनके सामने सभी रास्ते बंद हो चुके हैं।

3.4.7.3 भूमंडलीकरण का आदिवासियों पर प्रभाव

भूमंडलीकरण का सबसे बड़ा प्रभाव आदिवासियों पर पड़ा है। भूमंडलीकरण के चलते आदिवासियों के जल-जंगल-जमीन सब कुछ छीन लिए गए हैं। आज उनके पास अपनी एक स्थायी जगह नहीं है। जंगल को काट करके बड़ी-बड़ी इमारतें, सिनेमा घर, माल्स खड़े कर दिए हैं। फिर ये आदिवासी जाएंगे तो जाएं कहाँ। समाज उन्हें धिक्कारता है। जंगल उनसे छिने गए। रोजगार के सभी मार्ग आदिवासियों के बंद कर दिए गए। शहर की तरफ भागा आदिवासी। किसके पैरों को वहाँ जगह मिली तो किसी को नहीं। छोटे-छोटे बच्चे रास्ते का कचरा उठाने लगे। भूख लगी तो उसी का झूठा खाना उठाकर खाने लगे। भूमंडलीकरण ने सब कुछ बदल डाला शिक्षा का प्रभाव कम रहने की वजह से कहीं काम नहीं मिला। काम नहीं तो पैसे नहीं। महिलाएँ न चाहते हुए भी वेश्यावृत्ति में ढकेली गई। इन सब विपदाओं का मूल तो वैश्वीकरण ही है। राकेश कुमार सिंह ने अपनी कहानी 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' में आदिवासियों की अगण्य त्रासदियों का चित्रण किया है। किस तरह से पूंजीवादी लोक पैसों के दम पर गरीब आदिवासियों को मूर्ख बनाकर उनकी जमीन पर कब्जा कर लेते हैं- ''जंगल में विकास के हरकारे पहुँचे थे। मोरम (बजरी) की सड़कों पर गिट्टी पत्थर और बाँस-लट्ठे ढोने वाले ट्रक हनहनाते थे। खरगोश जैसी चिकनी फुरकती नन्हीं मोटरों में दीकू (बाहरी लोग) आते। आदिवासियों के पर्व-त्यौहार-नाच-तमाशों के फोटो खींचते लड़कियों को अलग से नचाकर फोटो खींचते और नोट फहराते। मनसोख लड़कियाँ दीकुओं के मोटरों के मजे भी

लगी थी। उनके साथ रात-बिरात लैन होटलों में जाने लगी थीं। दीकुओं के लिए जंगली जन खेल-तमाशा....! वन गये! वनजाओं की लाज गयी। पुलिस जंगल-दफ्तर और बद्री मिसिर जैसे ठेकेदारों की तीनतरफा लूट का अभयारण्य बन गया था पलामू का जंगल।"[1] लेखक ने अपने संपूर्ण विचारों को बड़े ही मार्मिक तरीके से सबके समक्ष प्रस्तुत किया है। जंगल में घुसे बाहरी लोगों की वजह से आदिवासियों का जीवन शिक्षा ग्रस्त हो गया। उन्हें कहीं भी अपना स्थान मिल न पाया। भोले-बिसरे आदिवासियों को शहरी चकाचौंध दिखाकर उन्हें लूटने लगे इमारतों ने उनके घास के घर बिखेर दिए। उनका अस्तित्व ही मिटने लगा। संस्कृति का ह्रास होने लगा। वह सब तरफ बिखर गए। मिसिर जैसे समाज के ठेकेदारों ने मानवता शब्द को ही खत्म कर डाला। भूमंडलीकरण पूंजीवादियों के लिए तो वरदान ठहरा परंतु जिसके पास कुछ भी नहीं। उन्हें तो बेघर और बेजान बना दिया। आज शहरों में दलित, आदिवासी महिलाएँ दूसरे के घरों के बर्तन साफ करती घर साफ करती अपना पेट पाल रही हैं। यह विवशता उन्हें ही क्यों आई होगी। आदिवासी अपनी समस्या का समाधान कैसे और कहाँ ढूंढे यह समझ नहीं पा रहे हैं। शिक्षा का प्रभाव सबको नहीं हुआ है। आज भी आधे से ज्यादा आदिवासी शिक्षा से वंचित हैं। उनके पास साधन नहीं, सुविधा नहीं जिससे वह लाभ उठा सके। भूमंडलीकरण ने सबके आँखों पर पैसों का और अच्छे नाम का पर्दा बांध दिया है। जिससे पिछड़े गरीब मनुष्य उनको दिखाई ही नहीं देते। ये दिखते हैं बस मतदान के समय, हाथ में कुछ पैसे थमाकर अंगूठा लगवाकर सत्ता हासिल कर लेते हैं। बाद में उन्हें पहचानते भी नहीं। कहानीकारों ने समाज की पीड़ा को जो नए जमाने में नए तौर से पैदा हुई है। उसका विश्लेषण प्रत्येक क्षण रेखांकित करते आ रहे हैं। जिससे हम किस समाज में जी रहे हैं उसका ज्ञान हमें होता है। जो बहुत भयावह है।

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश कुमार सिंह, पृ.सं. 125

3.4.7.4 भूमंडलीकरण का समाज पर प्रभाव

पहले समाज मनुष्य से बनता था। परंतु आज का समाज यंत्र और मशीनों से बनता है। सुबह उठने से लेकर रात के सोने तक मनुष्य को जिस-जिस कार्य की आवश्यकता है उसके लिए मशीने बनाई गई हैं। सुबह-सुबह उठने के बाद हाथों को परेशानी न हो उसके लिए इलेक्ट्रिक टूथब्रश, चाय बनाने के लिए इलेक्ट्रिक केटल, खाना बनाने के लिए इलेक्ट्रिक गैस यह लिस्ट इतनी बड़ी है जिसका अंत इतनी जल्दी नहीं हो सकता। भूमंडलीकरण ने मनुष्य के लिए सभी सुख-सुविधाएँ पास लाकर रख दी हैं। बस उसका उपयोग करना उसे आना चाहिए। आज मनुष्य ही मशीन बन गया है। मनुष्य की तरह दिखने वाले रोबोट तैयार करके बड़े बड़े होटलों में रखा गया है काम करने के लिए। जनता के शरीर पर इन कृत्रिम सुविधाओं का बहुत ही बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। भूमंडलीकरण अर्थात मशीनीकरण के रहते बेरोजगारी की मात्रा भारत में बहुत अधिक बढ़ने लगी। इंसानों का काम मशीनें करने लगी। चार-चार मजदूरों का काम एक मशीन करने लगी। इसकी वजह से रोजगार कम हो गया। मजदूरों को रखने के बजाय मशीनें रखना सही होगा। यह सोचकर कारखानों के मालिक कुछ न कुछ कहकर गरीब मजदूरों को बाहर निकालने लगे। लेखक अवधेश प्रीत की कहानी 'सी-इंडिया' के अंतर्गत पत्रकारिता के दफ्तर में होने वाले बदलाव का चित्रण किया है। मोबाइल फोन, बड़े-बड़े दूरदर्शन, कंप्यूटर, लैपटॉप आदि इक्कीसवीं सदी के शुरुआत में इनका चलन चालू हुआ। परंतु इससे पहले का समय बिना मशीनों वाला था। सभी कामों में मनुष्य को अपने हाथ व अपना दिमाग इन दोनों का उपयोग करना अनिवार्य था। राजीव रंजन जो कहानी के मुख्य पात्र हैं। संपूर्ण कहानी इन्हीं के इर्द-गिर्द घुमती दिखाई देती है। राजीव रंजन एक पत्रकार है। खबरों को इकट्ठा कर टाइपराइटर में टाइप करके छपवाते थे। परंतु पत्रिका के संपादक ने सबको कह दिया वो महीने के भीतर सबको कंप्यूटर सीखना ही होगा। नहीं तो नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। इस पर लेखक अपने विचार कहते हैं- ''फार्म भरते, कम्पटीशन देते जब बेटा नौकरी

की उम्र पार कर गया तो उन्हें गहरा धक्का लगा। बेरोजगार बेटा और अनब्याही जवान बेटी की चिंता ने एकाएक उन्हें भीतर से कमजोर बना दिया था। वह अपनी नौकरी को लेकर सतर्क रहने लगे थे। पहले जैसे तीखे तेवर नहीं रह गए थे। असहमत होने पर संपादक तक से भिड़ जाने वाले वह अब भरसक ऐसी स्थितियों से बचते। कोई साथी उनके इस व्यवहार पर व्यंग्य करता तो वह हँसकर टाल जाते, अरे यार, अब दो-चार साल नौकरी बची है। राम-राम कर कट जाए बस और क्या चाहिए। लेकिन अब नहीं लगता कि नौकरी बचेगी।"[1] आधुनिकीकरण की वजह से समय को बचाने के लिए ऑफिस में टाइपराइटर की जगह कंप्यूटर लाने वाले थे। राजीव रंजन को सेवानिवृत्ति के लिए बस तीन-चार साल ही है। अर्थात अब उनकी उम्र साठ साल के आसपास है। क्या यह मुमकिन है इतने वर्ष तक जिस पर काम करते आए। वह काम का तरीका ही बदल दिया तो क्या यह इतना आसान होगा उन्हें सीखने के लिए। परंतु नौकरी बचाने के लिए हर कोई नयी टेक्नोलॉजी सिखने के पीछे भागता है। कहानियों के माध्यम से भी पाठक वर्ग जान सकता है कि भूमंडलीकरण का असर भारतीय समाज पर किस तरह से रहा है। सब पर भूमंडलीकरण अपनी छाप छोड़ रहा है। साहित्य हो या समाज सब तरफ इसका प्रभाव प्रतीत हो ही रहा है। भूमंडलीकरण की त्रासदी में प्रत्येक भारतीय अपना सिर झुका रहा है। अभी तक इसका निवारण तो मिल ही नहीं पाया है।

3.4.7.5 भारतीय व्यापार पर भूमंडलीकरण का असर

व्यापार के क्षेत्र में भारत विश्व भर में प्रसिद्ध है। बहुत सी वस्तुओं का आयात-निर्यात किया जाता है। पहले यह राष्ट्रीय हित को देखकर किया जाता था। परंतु आज का वर्तमान समय पूंजीवादियों का है। इसमें सही-गलत ऐसी कोई धारणा नहीं बस पैसे कमाने हैं। चाहे किसी से भी क्षेत्र से रहने दो उसका कोई मतलब नहीं। आज की युवा पीढ़ी नशे में धूत हो रही है। भिन्न-भिन्न प्रकार के ड्रग्स भारत में आयात किए जा रहे हैं। क्योंकि अंतरराष्ट्रीय बाजार में

[1] हमजमीन - अवधेश प्रीत, पृ.सं. 124

इसकी अधिक मांग है। आज की युवा पीढ़ी काम के बजाय शराब, ड्रग्स में डूबी है। इसका कारण भूमंडलीकरण हो सकता है। आज का बाजार बुरी चीजों से चल रहा है। जिससे समाज अंदर ही अंदर खोखला होता जा रहा है। राजनीतिक सत्ताधारी और भारत के बड़े-बड़े पैसे वाले व्यक्ति जो भारत को अपनी उंगलियों पर चला रहे हैं। उन्हीं की वजह से आज भारतीय व्यापार पर इतना बड़ा असर पड़ा है। प्रो. अरुण कुमार अपने एक लेख में लिखते हैं- "मेरा मानना है कि एक तरह की बौद्धिक कंगाली आज हमारे दिमागों में है। वो चाहे बुद्धिजीवी वर्ग में हो चाहे व्यवसायी वर्ग में। जितनी भी राजनीतिक पार्टियाँ हैं, सबने स्वीकार कर लिया है कि अब यही पॉलिसी चलेगी और कोई दूसरी नीति नहीं। अगर हम यह पॉलिसी चलाते हैं और वह भी किसी दूसरे के प्लान पर तो यह वन साइडेड होगा। अगर यह ग्लोब्लाइजेशन विधिवत है तो कोई खतरा नहीं, लेकिन डब्ल्यू.टी.ओ. का 'गिव एंड टेक' प्रोसस क्या है? यह वो प्रोसेस है जो अगले 20-25 साल के इकानॉमिक ढाँचे को तैयार करने वाला है। आप या तो स्वीकार करें, या बाहर हो जाएँ।"[1] भूमंडलीकरण का जाल बहुत बड़ा और बहुत गहरा है। इसके अंतर्गत बस वर्तमान का नहीं, बल्कि भविष्य का चरण सोचकर काम करते हैं। किस तरह से और किससे और किसमें पैसे डालने हैं इसका विचार पहले ही किया जाता है। 'ग्लोबल विलेज' का बाजार बहुत विस्तृत है। इसमें होने वाले काम भी बहुत बड़े-बड़े हैं। यह व्यापारीकरण बस पूंजीपतियों का खेल है। सामान्य जनता का स्थान यहाँ कहीं भी नहीं है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों पर भूमंडलीकरण की छाया को पाठक देख सकते हैं। सब चीजें बदल रही हैं। साथ ही साथ उनकी विशेषताएँ भी बढ़ रही हैं। आज का समाज बिना मशीन के जी नहीं सकता। भूमंडलीकरण ने एक तरह से मनुष्य को अपाहिज बनाकर छोड़कर दिया है। वह अपने आप से कुछ करने की कोशिश ही नहीं करता बस दूसरे पर निर्भर। शायद मनुष्य के इसी आलस्य ने भूमंडलीकरण को इस तरह फैलने दिया। आज हम इन सुविधाओं को चाहते हुए भी दूर नहीं कर सकते। सबकी

[1] मीडिया और बाजारवाद - सं. रामशरण जोशी, पृ.सं. 81

अपनी-अपनी विवशता का कारण सामने आकर खड़ा हो जाएगा। इक्कीसवीं सदी का सूरज भी भिन्न है। आज के सूरज के प्रकाश में भी विभाजन होने लगा है। अर्थात सूर्यकिरणों से बचने के लिए बनाई जाने वाली विविध उपकरणों, क्रिम्स यह सुविधा जिनके पास पैसे वह करते हैं। बाकी आम जनता उनका तो वही सहारा बन जाते हैं। भूमंडलीकरण की विशेषता बहुत सी है। परंतु वह सबको काम देने वाली नहीं होती। सामान्य जनता इन नए ढकोसलों पर फंसती जा रही है। इन्हें जागृत करने वाले नेता और अधिक भ्रष्टाचारी है। विश्वास रखें तो किस पर। संपूर्ण समाज विडम्बना में जकड़ा हुआ है। जिसका टूट पाना शायद असंभव है। परंतु जागरूक नागरिक अपनी अच्छाई और अपनी बुराई के बारे में तो सोच ही सकता है न।

3.4.8 मजदूर वर्ग की संवेदना

हम भारत देश के वासी हैं। एक ऐसा देश जो बहुत समय तक गुलामी में नीचे रहा है। चाहे वो अंग्रेज हो या मुगल सबकी गुलामी भारतवासी ने देखी है। हजारों प्रयत्नों के बाद आज हम खुले आजाद देश के आकाश के नीचे सांस ले रहे हैं। इस खुली सांस के लिए हजारों-लाखों भारतीयों ने अपने प्राण त्यागे हैं। उनके लहू से भारत की मिट्टी लाल हो चुकी थी। इतने कठिन परिश्रम का फल आज की पीढ़ी खा रही है। फिर भी उसे ईमान नहीं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में यह देख सकते हैं कि आजादी के इतने वर्ष बाद भी भारत में ऐसे बहुत लोग हैं जो गुलामी की जिंदगी जी रहे हैं। यह गुलामी किसी अंग्रेज या मुगल की नहीं बल्कि अपनों की ही है। भारत को किसानों का देश कहा जाता है। नहीं कहा जाता था। आज किसान ही नहीं रहे, तो उनकी जमीन कहाँ से रहेगी। भूमंडलीकरण नाम वाले राक्षस ने अब उसका गुलाम जनता को बना लिया है। जिसमें मजदूर पिसता जा रहा है। उसकी भावनाओं को रौंदा जा रहा है। कोई सम्मान नहीं कोई इज्जत नहीं। मजदूरों को गुलाम व बंधुआ करके रख दिया है। आज देश में बड़े-बड़े महल बन रहे हैं। जिन्हें अंग्रेजी में 'व्हिला' कहा जाता है। ये इतने बड़े होते हैं कि उसमें गरीब मजदूरों के बीस-बीस परिवार एक जगह रह

सकते हैं। यह इमारतें किसानों से उनके खेत तथा जंगलों को उजाड़कर बनाई जाती हैं। जंगल और खेत दोनों ही न रहे तो गरीब किसान व मजदूर कैसे जीएंगे यह कोई नहीं सोचता। इसीलिए भारत में इतनी विडम्बनाएँ आ चुकी हैं। आज का मजदूर वर्ग बहुत परेशान व अकेला है। उन्हें किसी के प्रेम तथा सांत्वना की आवश्यकता है।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक भयावह है ऐसा कह सकते हैं। 'पुछाराम' की परेशानी, 'जब्बर' की त्रासदी, 'नानी' का समाज के प्रति दुख, 'चपेट' की विवशता आदि पात्रों से कहानी की दसों दिशा ही बदल जाती है। आखिर क्यों और कब तक यह सब मजदूर सहता रहेगा। अपनी विवशता को किसी से बताकर भी कोई फायदा नहीं यह मजदूर वर्ग को पता है। पेट में डालने के लिए एक दाना नहीं। वह जाति पांति लेकर क्या करेगा। मजदूरों की मदद सरकार को करनी होगी परंतु सरकार ही भ्रष्टाचार का निर्माण करती है। तो वह कैसे मदद कर पायेगी एक मजदूर की। सबको लाभ उठाना है और बहुत सा पैसा कमाना है। इसके लिए गरीब तथा लाचार मजदूरों को चींटी की भांति पैरों तले रौंदा जाता है। मजदूर के मुँह से ऊफ तक नहीं निकलती। निकल के भी कोई फायदा तो होने वाला नहीं है। दलित तथा आदिवासी कहानियों में मजदूर वर्ग का चित्रण अधिक मात्रा में किया गया है। मजदूर स्त्री तथा पुरुष दोनों को उतनी ही त्रासदी से आगे बढ़ना होता है। वर्तमान समय मजदूरों से बहुत काम करवाता रेखांकित किया गया है। ईंट की भट्टी, चूड़ी बनाना, बीड़ी बनाना, जूते बनाना, दिवाली में छोटे जाने वाले पटाखों को बनाना, कानूनी और गैर कानूनी ऐसे बहुत से काम हैं जहाँ मजदूरों को कम वेतन देकर काम करवाए जाते हैं। मजदूर वर्ग अधिकतर अशिक्षित होता है, इसीलिए उनके साथ क्या सही और क्या गलत हो रहा यह मजदूर समझ नहीं पाता। और अंधे बैल की तरह काम करता रहता है। उसके पास दूसरा कोई रास्ता भी नहीं। जीना है तो काम करना ही पड़ेगा। क्या कर सकता है मजदूर जब उसके हाथ में कुछ नहीं है। मजदूरों की मदद के लिए बहुत सी मजदूर युनियन, मजदूर संगठन, मजदूर पार्टी बनाई गई। परंतु सब

मजदूरों को इसका लाभ नहीं हुआ। जो युनियन से अच्छे घुलमिल कर रहते हैं उनको युनियन की मदद मिलती है। बाकी ऐसे ही मुँह खोलकर बैठ जाते हैं। सभी जगह भ्रष्टाचार ही है।

3.4.8.1 बाल मजदूरी की वेदना

'बंधुआ' शब्द मनुष्य के हाथ पाँव दोनों बांध देता है। मनुष्य के मस्तिष्क को आगे कुछ सोचने ही नहीं देता। 'बंधुआ' प्रथा बहुत पुरानी है। जैसे गाय-बैल को एक खूंटे से दूसरे खूंटे को बांधा जाता है उसी प्रकार मजबूरी एवं गरीबी मनुष्य को प्राणियों की भांति खूंटे से बांधे देती है। कहानीकार अपनी कहानी के शब्दों को जिस भाँति संजोता है उससे पता चलता है कि आज का समाज भी कितनी परेशानियाँ झेल रहा है। छोटे-छोटे बच्चे स्कूल जाते अच्छे लगते हैं। परंतु इतने छोटे-छोटे बच्चों को काम करता देख हृदय स्वयं को कोसने लगता है। बंधुआ बच्चे सभी जगह देखे जाते हैं। कुछ माँ-बाप की मजबूरी से बनते हैं तो कुछ कोई सहारा न होने की वजह से बन जाते हैं। अजय नावरिया की कहानी 'एस धम्म सनंतनों" में दो तरह के बच्चों का चित्रण किया गया है। पहला बच्चा अच्छे घर परिवार से है। उसके माता-पिता दादाजी सब हैं उसे देखने वाले, उसकी गलतियों को सुधारने वाले, परंतु वहीं दूसरी तरफ और बच्चे हैं जिन्हें दो वक्त की रोटी भी सही से नहीं मिलती। इन छोटे-छोटे कंधों पर अपने परिवार का बोझ होता है। अपने छोटे-बड़े भाई-बहन, माँ-बाप सबको देखना होता है। शिक्षा को दूर की बात उन्हें पहनने के लिए दो जोड़ी कपड़े भी नहीं होते। लेखक लिखते हैं- "उनमें से अधिकांश दोस्त पढ़ने नहीं जाते थे। कोई काँच बीनता था, कोई जूता पॉलिश करता था। कोई गन्ने के जूस की दुकान पर गिलास धोता था, कोई साइकिल पंक्चर लगाने का काम करता था। उनके पास थोड़े पैसे जरूर रहते थे। उनमें व फिल्में देखते थे, बीड़ी-सिगरेट पीते थे। समोसे, कचौड़ी और पान भी खाते थे।"[1] मजबूरी जिंदगी का दूसरा नाम है। आज के बच्चे काम करने के साथ-साथ खराब व्यसनों में भी फंस रहे हैं। शराब, सिगरेट, बीड़ी, जुआ

---

[1] पटकथा और अन्य कहानियाँ - अजय नावरिया, पृ.सं. 15-16

आदि में अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं। कहानी वर्तमान यथार्थ को बयान करती है। अखबारों में, दूरदर्शन पर, रेडियो पर आए दिन खबरें आती रहती हैं बच्चों को गायब करने की। यह बच्चे आखिर जाते कहाँ होंगे। इन्हें बाल मजदूरी में धकेला जाता है। हाथ-पाँव तोड़कर अपाहिज बनाकर भीख मंगवाते हैं। अंधा बना डालते हैं। बच्चों के शरीर के कुछ अंग गैर कानूनी तरीके से बेचे जाते हैं। बड़े-बड़े शहरों की यह छोटी-छोटी बातें बनकर रह जाती हैं। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की यह कहानी बताती है कि आज का युग भी पहले जैसा ही है। या यूँ कहें उससे ज्यादा डरावना है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बदन दबना' इसके अंतर्गत भी 'पुछाराम' पात्र की यही दशा है। उसे पढ़ना है। वह गांधी तथा अम्बेडकर दोनों के नक्शे कदम पर चलना चाहता है। परंतु गरीबी उसे यह करने नहीं देती। बेटी की शादी के लिए पैसे न होने की वजह से 'पुछाराम' जो उस लड़की का भाई है उसे पाँच सालों के लिए हलका सिंह के घर बंधुआ बनाया जाता है। समाज की यह नीति कोई नहीं समझ सकता कि कब किस पर क्या बीतेगी। पढ़ाई छोड़ बंधुआ बना पुछाराम अपनी बहन की शादी तक नहीं देख पाया। क्या दोष पुछाराम का जो इसे हलका सिंह जैसे जालिम के घर खूंटे से बांध दिया गया। अपनी सारी आशा-आकांक्षाओं को पुछाराम ने समाज की गंदे सोच के नाले में बहा दिया। बाल मजदूरी जुर्म है। यह संविधान के खिलाफ है। ऐसा कुछ दिख जाएं तो उसे रोकने का हक हम सबको है। ऐसी गलत बातों को सच्चे नागरिक कभी बढ़ावा नहीं देंगे। बच्चे फूलों के समान कोमल होते हैं। वे मिट्टी जैसे मुलायम होते हैं। उन्हें कैसे तैयार करना और उनको क्या आकार देना है यह हमारे हाथ में है। जैसे बनाओगे वैसे बन जाएंगे। तो क्यों न उन्हें एक अच्छे भविष्य की ओर ले जाएं। उन्हें भी उनका बचपन जी लेने दें। खेलने की उम्र में खेलने ही दें।

3.4.8.2 सरकारी असुविधा

संविधान में प्रत्येक नागरिक के लिए अधिकार दिए गए हैं। स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र नागरिक हैं। मजदूर भी इसी वर्ग में आते हैं। सरकार द्वारा बहुत सी योजनाओं का निर्माण किया

गया है। गरीबी रेखा के नीचे जो व्यक्ति आते हैं, उनके लिए सरकार द्वारा बहुत सी सुविधाओं को बनाया गया है। परंतु इन सारी सुविधाओं को सरकार से मजदूरों तक पहुँचने की बहुत बड़ी रेखा है। सरकार से मिले सौ रुपये मजदूर तक आते-आते दस रुपये हो जाते हैं। इन सबका कारण किसे कहेंगे। सामने कोई नहीं आता। मजदूर कुछ बोलता नहीं। अगर किसी ने कुछ बोला तो जबान बंद कर दी जाती है। कहानी व फिल्में बनाने के लिए एक पृष्ठभूमि की आवश्यकता होती है। यह पृष्ठभूमि उन्हें समाज में घटने वाली घटनाओं से मिलती है। फिल्मों में दिखाई गई मजदूरों के जीवन की घटनाएँ वह कहीं-कहीं सच भी होती हैं। उसी तरह कहानियाँ भी यथार्थ को सामने लाती है। उस समय को सामने लाती है। लेखक शिव अवतार पाल की कहानी 'बंधुआ' के अंतर्गत एक परिवार का चित्रण किया गया है। जो गरीब है। मजदूरी करके अपना पेट भरता है। पिता शराबी, कुछ कर नहीं पाते। शराब पीकर घर में मारपीट करते रहना बस यही उनका काम है। गाँव बहुत छोटा है। शहर से दूर है। गाँव में कोई सुख-सुविधाएँ नहीं। इक्कीसवीं सदी में आने के बावजूद उन्हें गाँव में एक छोटे से अस्पताल की सुविधा नहीं- "एक दिन अचानक उसे हैजा हो गया। गाँव के आस-पास कोई डॉक्टर नहीं था और शहर लगभग पंद्रह मील दूर था, वहाँ जाने के लिए रुपये चाहिये थे जबकि घर में एक धेला तक न था। माँ रोती-बिलखती गाँव में भटकती रही, बेटी को बचाने की याचना करती रही, पर उसके आँसुओं पर कोई द्रवित नहीं हुआ। उसकी आँखों के सामने बहन ने तड़प-तड़प कर दम तोड़ दिया। माँ छाती पीटकर रो रही थी और वह निस्सहाय मूकदर्शक बना देखता रहा, रोता रहा। माँ कहती थी कि बापू की मौत भी इलाज के अभाव में हुई थी।"[1] इलाज के अभाव ने पिता और पुत्री को खत्म कर दिया। सरकार अगर जागृत होकर सही से अपने पूरे काम कर ले तो शायद यह नहीं होता। हाथ में अपने बच्चे की मौत देखकर उस माँ पर क्या बीती होगी। मजदूरी की त्रासदी शायद कभी न खत्म होने वाली हो। परंतु मजदूर तो

[1] वर्तमान साहित्य पत्रिका (जून 2010) - सं. नमिता सिंह, पृ.सं. 56

अपना सपना तोड़ता चला जा रहा है न। उसे उसके अधिकार नहीं मिल पा रहे हैं। विवशतावश जो काम मिले उसी में स्वयं को संतुष्ट मानकर बैलों की तरह काम करता जा रहा है। मजदूर की संवेदना को समझने की आवश्यकता हमें है। मजदूर वर्ग आज त्रस्त है। समाज की बनी रूढ़ि और परंपराओं में, मजदूर को कहीं का नहीं रखा है। सरकार को आगे बढ़कर गरीब जनता के विषय में सोचना ही होगा। राशन की दुकानों में होता घपला किसी से छुपा नहीं है। सरकार द्वारा बनाई गयी योजनाओं के बारे में मजदूर वर्ग को बताना आवश्यक है। मजदूर की शिक्षा का अभाव उसके कामों पर नहीं पड़ना चाहिए। मजदूरों के बच्चों के लिए अच्छी और उन्हें काम आने वाली योजनाओं को बनाना चाहिए। आंगनबाड़ी जैसे स्थल पर भी भ्रष्टाचार होता है। गरीबों के नाम आया हुआ आटा-चावल भी उन तक पहुँच नहीं पाता है। सरकार को बस मतदान के समय नहीं, बल्कि संपूर्ण वर्ष गरीब तथा मजदूरों के बारे में सोचना होगा। उन्हें उनका अधिकार दिलाना होगा। मजदूरों को भी शिक्षा ग्रहण का अधिकार है। उन्हें शिक्षित होना होगा।

3.4.8.3 मजदूर वर्ग का आर्थिक जीवन

मजदूरी करने वाले व्यक्ति का आर्थिक जीवन शायद ही कभी सुख भरा हो। एक वक्त की रोटी के लिए दिन-रात की मेहनत शरीर के पुर्जे तोड़कर रख देती है। दिन रात का कष्ट का पूरा फल मिलेगा यह भी सोच नहीं सकते। बंधुआ गबाने बच्चों को खाना जिसमें नमक-मिर्ची जैसा कोई नाम ही नहीं होता तथा रहने को जगह देकर उनसे सारे काम करवाए जाते हैं। वो जितना काम करते हैं उसका एक तिहाई हिस्से का मोल भी उन्हें चुकाया नहीं जाता। कारखानों में अनगिनत धूल-मिट्टी में धंसे होते हैं। छुट्टी के नाम पर उन्हें नानी याद आ जाती है। बस काम करते रहो करते रहो। इतना सब करने के बाद भी उन्हें जितना वेतन मिलना चाहिए उतना मिलता नहीं। इसी वजह से उनकी आर्थिक स्थिति सुधरती नहीं। अपनी रक्षा का कोई कानून उन्हें पता नहीं। इस पर कारखानों के मालिक अपने मन की करवा लेते है। मनुष्य

का जीवन पैसे पर चल रहा है। बीमार हुए तो पैसे चाहिए, भूख लगे तो पैसे चाहिए, त्यौहार मनाना है तो पैसे चाहिए, कुछ दुख हुआ है तो पैसे चाहिए। बिना पैसे के मनुष्य की गाड़ी आगे बढ़ नहीं सकती। महाश्वेता देवी की कहानी 'अर्जुन' में जीने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। कितनी वेदनाएँ सहनी पड़े अपना काम तो करना ही पड़ता है। 'अर्जुन' कहानी का एक पात्र केतू अपनी यही विवशता बयान करता है- "कितनी बार उसने समझाना चाहा- बाबू, हम लोग तो दिन भर जी-तोड़ मेहनत के बदले, कुल चार रुपल्ली चाहत हैं। इसके लिए पेड़ काटने का हुकुम दो, कार देबों, मानस काटने को कहें, काट-कूट देंगे।"[1] कितना दर्द है इन दो वाक्यों में, जो मनुष्य को इतना बेबस बना रहा है। बस कुछ पैसों के लिए कुछ भी करने को विवश है ये मजदूर। इनकी विवशता के कारण कहीं-न-कहीं हम भी हैं। गलत चीजों को बढ़ावा देने के बजाय अगर उन्हें रोकने की कोशिश की तो शायद कभी-न-कभी यह विपदा कम हो सकेगी। मनुष्य का जीवन पैसों के इर्द-गिर्द घुमता रहता है, क्योंकि वह ही उसकी सारी जरूरतें पूरी भी करता है। दिन भर काम में डूबे यह मजदूर शरीर की थकान मिटाने के लिए नशे के आदी बन जाते हैं। कह लें तो पूंजीवादी लोग मजदूरों का खून-चूसते थे। अब यह नशा मजदूरों को पागल बनाने लगा। बस थोड़ी सी शराब के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। वह सही है या गलत यह सोचने की उन्हें कोई जरूरत नहीं है। 'बंधुआ' कहानी का 'जब्बर' इसके लिए सही उदाहरण होगा। उसे बस आज की सोचनी है। एक वक्त का पेट भर जाए, उसके लिए वह कुछ भी काम कर लेगा। बड़ी-बड़ी बोरियाँ उठायेगा, हल जोतेगा, गोबर उठायेगा कुछ भी करेगा। मजदूर थोड़े से पैसे के लिए अपना पूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है। कभी-कभी तो आधे में ही दम तोड़ देता है। उसकी यह विवशता है कि समाज का कोई भी व्यक्ति इनकी भलाई के बारे में नहीं सोचता। बस अपना काम निकलवा लेते हैं। उसके बाद वे एक-दूसरे को पहचानते भी नहीं। ऐसी स्थिति में मजदूर वर्ग कहाँ जाए। किसको अपनी जिंदगी की व्यथा

[1] आदिवासी कथा - महाश्वेता देवी, पृ.सं. 135

सुनाए। सरकार बस नाम की है। काम की नहीं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों का यह चित्रण अच्छा नहीं है। आज भी इतनी व्यथाओं से जी रहा है मजदूर और उसका परिवार। न समाज का आधार न अपनों का साथ, न शिक्षा का आधार, कुछ भी नहीं मजदूरों के पास, मजदूरों के लिए। वह अकेला था और अकेला ही रहेगा शायद। कोई नहीं साथ देने वाला है।

3.4.8.4 स्त्री मजदूर की त्रासदी

स्त्री की व्यथा तो सबसे अलग और सबसे अधिक है। पहले से आज तक बस वह शोषण झेलती आयी है। अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ती आई है। वह समाज को अपना समझती है परंतु यह समाज उसे अपनाता नहीं। स्त्री कोई भी हो दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक या सवर्ण उसको तो पैरों तले पिसना ही है। आज स्त्री आगे बढ़ी है, परंतु उनकी मात्रा देखी जाए तो वह इतनी अधिक नहीं है। महिला चाहे नौकरी करने वाली हो या मजदूरी करने वाली, सभी तरफ उसे अपने स्वाभिमान को बचाकर रखना है। स्त्री अपने परिवार के लिए कुछ भी कर सकती है। वो कितने भी संघर्षों का सामना कर सकती है। बस उसे एक हाथ चाहिए मदद का, जो उसे सम्मान देकर आगे ले चले। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की ऐसी बहुत सी कहानियों ने स्त्रियों को जागृत किया है। अनिता गोपेश की कहानी 'ऐसा भी होता है' की एक लड़की जिसे कोई नाम नहीं दिया गया। ऑफिस में काम करती है। अच्छे पद पर भी है, परंतु है तो स्त्री, रात को एक पार्टी में सम्मिलित होती है। जाने के लिए बहुत वक्त लग जाता है। डरती है रात के अंधेरे से, कुछ हो न जाए। अगर एक पढ़ी-लिखी नौकरी करने वाली लड़की खुद को सुरक्षित न मान सके तो इस समाज में मजदूरी करती एक गरीब महिला कहाँ से सुरक्षित होगी। कार्यस्थल पर भी उन्हें दोयम दर्जे से देखा जाता है। अभी तक पुरुष की मानसिकता पूर्ण रूप से बदली नहीं है। इसलिए वह इस गंदे समाज का विद्रोह कर रही है। स्त्री होना जैसा एक अपराध ही है। उसे अपने कर्मों पर ध्यान देकर आगे बढ़ना होगा। समाज का विचार उसे छोड़ना होगा। सुशीला टाकभौरे की कहानी 'संघर्ष' जिसमें दलित समाज की

त्रासदी को रेखांकित किया गया है। पहले तो वह स्त्री कितनी वेदनाओं से अपना जीवन काट रही है। कहानी की एक पात्र जिसका उल्लेख 'नानी' शब्द से किया गया है। नानी गाँव का कचरा साफ करती है। गाँव को स्वच्छ रखने की जिम्मेदारी नानी पर है। क्योंकि वह दलित समाज की महिला है। समाज ने लिख रखा है न कि जितने भी गंदे और खराब काम जैसे मैला ढोना, साफ-सफाई करना यह दलितों का ही काम है। इक्कीसवीं सदी में रहकर भी ऐसी बात रखना सच में कितनी शर्म की बात है। शंकर आज के जमाने का बेटा है। इसलिए उसे पसंद नहीं उसकी नानी गांव साफ करे। परंतु इस विवशता को नानी कैसे दूर करे। शंकर कहता है- "क्यों जाती हो तुम घर-घर, गली-मोहल्लों में काम करने? ... क्यों जाती हो? क्यों गाँव भर की गंदगी अपने सिर पर उठाती हो? तुमको गंदा नहीं लगता है क्या? तुम्हारी नाक सड़ गई है? तुमको दुर्गंध क्यों नहीं आती ... ?।"[1] मनुष्य, मनुष्य को कितना विवश बना देता है। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए नानी समाज को साफ कर रही है। परंतु यह निर्दयी समाज उसकी भावनाओं को समझ नहीं सकता। बिना मजदूरी किए बचेंगे कैसे। खाएंगे क्या। यही प्रश्न गरीब मजदूरों को अंदर ही अंदर खाते जा रहे हैं। जिसका उत्तर इनके पास भी नहीं है। मजदूरों को सही न्याय दिलाने की आवश्यकता है। स्त्री कैसी भी हो उसे उसका मान मिलना ही चाहिए। इसमें तो कोई दो राय नहीं बन सकती। स्त्री मजदूरी करती है अपनों के लिए बस वही अपने उसे उसका मान सौंप दे। और क्या चाहिए एक स्त्री को अपनी पूर्ण जिंदगी में। स्त्री है तो घर है। घर है तो समाज। इसीलिए स्त्री को उसका सम्मान मिलना चाहिए।

3.4.8.5 भूख की समस्या का एहसास

कहते हैं न अगर पेट खाली हो तो दिमाग चलता नहीं। अगर एक दिन की भी भूख बर्दाश्त नहीं कर सकता यह समाज, तो सोचिए कैसे जी रहे होंगे गरीब मजदूर जो दो-दो, तीन-तीन दिन तक अपनी भूख बर्दाश्त करके काम कर लेते हैं। भूख मनुष्य से कुछ भी करवा

[1] संघर्ष - सुशीला टाकभौरे, पृ.सं. 13

सकती है। बस खाना मिलना चाहिए। तो ही जिंदगी बचेगी न मनुष्य की। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में मजदूरों की त्रासदी का चित्रण बहुत अच्छे रूप में किया गया है। भूख के लिए चोरी, मारामारी, लूटपाट ऐसे सभी काम किए जाते हैं। क्योंकि वह मजबूरी होती है। उस इंसान की जो उससे दो काम करवाती है। एक अच्छा उदाहरण है। 'बँधुआ' कहानी जो ज्ञानप्रकाश विवेक से रचित है। कहानी एक तेरह-चौदह वर्ष के जब्बर की है। जो अपनी भूख मिटाने के लिए कुछ भी काम कर लेता है। चोरी हो, मारामारी हो कुछ भी हो वो कर लेता है। परंतु उसे किसी के नीचे झुकना नहीं। एक जिद्दी बच्चा जिसे बंधुआ बनाया जाता है जैसे गाय-बैल को खेतों के लिए एक-दो दिन के लिए भाड़े पर दिए जाते हैं। उसी प्रकार जब्बर का भी फैसला हुआ दो दिन एक व्यक्ति घर, बाकी दिन दूसरे व्यक्ति के घर। काम करना मजबूरी बन गई थी। भूख जो थी पेट की, मिटानी तो होगी ही ना। 'आबनूसी रंगतवाले' एक व्यक्ति ने जब्बर को तालाब किनारे देखा तो उसने जब्बर को कहाँ सिंघाड़े खाने हैं, भूख लगी है क्या। जब्बर मासूमियत से हाँ करके सिर हिलता है। आठ-दस सिंघाड़े उताकरकर खाया करें सिंघाड़े।

"भई छिलके उतारकर खाया करें सिंघाड़े।"

"छिलके उतार दूँगा तो बचेगा क्या?"

"रोटी न खायी तनैं।"

"न! कल रात को खायी थी।"

"माँग ली होती किसी से।"

"माँगना अच्छा नहीं लगता।"

"बात तो जोर की कही तनैं। माँगना चाहिए भी नहीं। किसका है तू?"

"मैं इस गाँव का नहीं हूँ। बाप ने घर से निकाल दिया।"[1]

---

[1] शिकारगाह - ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ.सं. 140-141

यहाँ जब्बर को कितना स्वाभिमानी दिखाया गया है। खाना है परंतु मांग के खाना पसंद नहीं। वही जब्बर चोरी करके भी खा लेता है। शायद उसे लगता होगा जिस पर सबका अधिकार है उस पर मेरा अधिकार क्यों न हो। सबकी तरह मुझे भी हक है सब कुछ खाने का, उसका मजा लेने का। भूख मनुष्य की विवशता है। जिसे ना चाहकर भी पूरा तो करना ही होता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में पाठक वर्ग को सभी पहलुओं से रूबरू होने का अवसर मिलता है। कहानीकार कहानी के पात्र इतने रोचक व आकर्षक बनता है जिससे कहानी की वेदना, पात्रों का मनोभाव, उनकी परेशानी सबसे जुड़ पाता है। सबको अपने नजरिये से देख पाता है। कहानी समाज का स्वरूप हमें बताती है और मजदूरों का यह भयावह रूप जो त्रासदी, यातना, वेदना, परेशानी तथा बहुत सी कठिनाइयों से भरा हुआ है। उसे पाठक वर्ग आत्मसात कर पाता है। कहानी की मूल दिशा की तरफ कहानीकार, अपने संवादों से लेकर जाता है। जिससे कहानी का मूल यथार्थ समाज के सामने आसानी से रेखांकित हो पाता है।

3.5 निष्कर्ष

संवेदना कहानी का प्राण है। संवेदना से पूर्ण रचना समाज के यथार्थ को बयान करती है। संवेदना प्रत्येक कहानी का मूल तत्व होता है जिसे विभिन्न स्तरों पर विभाजित करके अपना एक नया अभिप्राय रचा जाता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध धरातलों को चित्रित किया गया है। संवेदना को समझकर संवेदना को विश्लेषित किया गया है। संवेदना का स्वरूप विस्तृत है। संवेदना का सीधा-सीधा संबंध मनुष्य ह्दय तथा उसके मस्तिष्क से होता है। मनुष्य अपनी भावनाओं को समझकर उसमें समर्पित होने का प्रयास करता है। संवेदना प्रत्येक क्षण में संभावित होती है। जिससे मनुष्य का अंतर्भाव समझने में आसानी होती है। मनुष्य गतिशील प्राणी है। उसके विचार गगन छूते हैं। विचारों को गति देने वाला घटक ही संवेदना है। मनुष्य ह्दय की अभिव्यक्ति, मनुष्य मस्तिष्क से होकर बाहर आती है। इसीलिए संवेदना इतनी महत्वपूर्ण बन जाती है। कहानी समाज का यथार्थ

चित्रण चित्रित करती है। यथार्थ को सार्थकता संवेदना देती है। कहानीकार की संवेदना उसके शब्द बनकर कहानियों में उतरते हैं। कहानीकार के विचारों की पृष्ठभूमि समाज होता है। समाज में घटित सभी घटनाओं को लेखक अपने विचारों से उसे पूर्णता प्रदान करता है। यही पूर्णता संवेदना से उत्पन्न होती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदनाओं के विभिन्न प्रकार को रेखांकित किया गया है। कहानियाँ समाज के परिवेश को पाठक के सामने लाती है। जिससे पाठक वर्ग कहानी से तुरंत जुड़ पाता है। प्रत्येक कहानीकार के अपने एक अलग विचार और प्रभाव होता है। जो कहानियों के जरिए पाठक वर्ग समझ सकता है। कहानियों की विविधता होती है कि वह समाज के सभी धारणाओं को एकत्रित कर पाती है। जिससे कहानीकारों के भिन्न-भिन्न विचार जो समाज के प्रति होते हैं उन्हें समझने के लिए पाठक को किसी कठिनाइयों का सामना करना नहीं पड़ता। क्योंकि कहानीकारों का स्पष्टीकरण ही बहुत हो जाता है। कहानी एक ऐसी विधा है, जो सीधे-सीधे प्रेक्षक के सामने खड़ी हो जाती है। कहानी, उपन्यास जितनी लम्बी न होने के कारण पाठक जल्दी ही कहानी को आत्मसात कर पाता है। पठन या कथन यह दोनों भी मार्ग कहानी को समझने में सुलभता निर्माण करते हैं। इसीलिए कहानी आसान मानी गयी है पाठक वर्ग के लिए। कहानियों के माध्यम से विविध परिवेश का परिचय हो पाता है। समाज में घटने वाली विविध घटनाओं को एक जगह बैठकर पाठक वह क्षण जीने की कोशिश करता है। कहानी भिन्न-भिन्न व्यक्ति तथा भिन्न-भिन्न समाज पर आधारित होती है। यह समाज विविधता से बना है। यहाँ मनुष्य की भिन्न-भिन्न जाति, वर्ग, समुदाय, धर्म आदि है। जिससे विभिन्न क्षेत्रों का चित्रण रेखांकित किया जाता है। इसमें शिक्षित-अशिक्षित, ग्रामीण-शहरी, राजनीति, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक-धार्मिक सभी घटकों को समझकर उसपर कार्य किया जाता है। कहानियाँ इसीलिए विशिष्ट होती हैं कि वह समाज के इन्हीं विभिन्न मूल्यों को लेकर रची जाती हैं। जिससे समाज में चल रही सभी घटनाओं का मूल्यांकन किया जा सके। क्या समाज के लिए ठीक है क्या

नहीं यह देखा जा सके। कहानियों की यह भिन्न संवेदना कहानी को विशेष बना डालती है जिससे पाठक व लेखक दोनों अपने विचारों का आदान-प्रदान कर पाते हैं। अपनी विशिष्टता को लेखक अपनी विशिष्ट शैली से रचना का रूप देता है। प्रत्येक कहानीकार की अपनी एक विशिष्ट भाषा व पद्धति होती है। यह पद्धति दो लेखकों की कभी मिलती नहीं। यही भिन्नता पाठक को आकर्षित करती है नयी-नयी रचनाओं को पढ़ने के लिए।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध रूपों को समझने की कोशिश की गई है। मनुष्य संवेदनशील प्राणी होने की वजह से उसकी प्रत्येक वस्तु तथा घटक को देखने की अपनी एक अलग पद्धति होती है। मानवीय स्तर पर संवेदनाओं को देखा जाए तो किसी सुख की अनुभूति होती है तो वह सुखात्मक संवेदना बन जाती है। वेसे ही किसी क्षण में अगर हम दुख को एहसास करे तो बन गयी दुखात्मक संवेदना ऐसे ही मानवीय स्तर पर संवेदनाओं के अनेक भाव होते हैं। सुखात्मक संवेदना, दुखात्मक संवेदना, प्रेम संवेदना, घृणात्मक संवेदना, राष्ट्रीय संवेदना, प्राकृतिक संवेदना, अहंकारात्मक संवेदना तथा करुणात्मक संवेदना आदि है। प्रत्येक संवेदना का भाव एक दूसरे से पूर्णत: भिन्न हैं। आप एक से एक को बिल्कुल जोड़ नहीं सकते। क्योंकि वह एक-दूसरे के प्रति एक भाव नहीं रख सकते। इसीलिए साहित्य जगत में संवेदना इतनी महत्वपूर्ण बन जाती है। संवेदना को समझकर बनाई हुई रचना का मोल बहुत अधिक है। समाज बहुत बड़ा है। इसमें करोड़ों मनुष्य के करोड़ों विचारों को देख सकते हैं। कोई भी व्यक्ति एक ही विचारों के साथ मिल नहीं पाता है। क्योंकि दोनों की बौद्धिक क्षमता एक-दूसरे से पूर्णत: विपरीत होती है। संवेदना के विविध स्तर पर जो कहानियों को केन्द्रित रखकर किए गए हैं। जिनमें आदिवासी संवेदना जो आदिवासी समाज का चित्रण करती है। आदिवासी लड़ता आया है अपने अस्तित्व के लिए। 'जोड़ा हारिल की रूपकथा', 'आदिवासी कथा', 'जंगल का जादू तिल-तिल' ऐसी बहुत सी कहानियाँ जिससे आदिवासियों का संघर्ष सामने आता है। दलित संवेदना के अंतर्गत एक ऐसा समाज जिसे

सदियों से पिछड़ा वर्ग मानकर जानवरों की भांति उन्हें देखा जाता है। क्या बितती है दलितों के ऊपर यह हम 'सलाम', 'संघर्ष', 'घुसपैठिए', 'तलाश' आदि कहानियों में देख सकते हैं। स्त्री संवेदना, स्त्री की ऐसी अभिव्यक्ति है जो हमेशा प्रताड़ित होती आयी है। उसे पता है उसकी क्या गलती है इसमें जो इतने सारे दुख और दर्द बस स्त्री के नाम ही लिखे हैं। 'गौरा गुणवंती', 'काला शुक्रवार', 'उलटबांसी', 'कित्ता पानी' कहानियाँ स्त्री की त्रासदी को बयान करती है। स्त्री अपने जीवन में बहुत से कष्टों का सामना करके आगे बढ़ती है। परंतु उन्हें निश्चित न्याय कहीं नहीं मिल पाता। वृद्ध संवेदना के अंतर्गत वृद्धों की मानसिक स्थिति का चित्रण मिल जाता है। किस तरह वर्तमान समय बड़े-बूढ़ों को अपने सिर का बोझ समझकर उन्हें अपनों से दूर वृद्धाश्रमों में डाल देते हैं। उनकी व्यथा ही निराली है। किन्नर संवेदना आज के समय का चर्चित विषय है। किन्नर समुदाय भी अपने अधिकारों को पाने के लिए सामने आकर संघर्ष कर रहा है। किन्नर आज बौद्धिक स्तर पर अपने विचारो को अधिक महत्ता दे रहा है। अल्पसंख्यक संवेदना में मैंने मुस्लिम समाज का चित्रण किया है। जिससे मुस्लिम समाज की विविध परेशानियों को समझकर समाज उन्हें भी सामान्य रूप से अपनाने की कोशिश कर सकता है। भूमंडलीकरण की संवेदना मन-मस्ष्कि को हिला देती है क्योंकि आज का भारत पूर्णरूपेण बदल चुका है। आज कुछ भी स्थायी नहीं है। सब पैसों की चकाचौंध में फंसते जा रहे हैं। हम स्वयं अपने देश को डुबाते जा रहे हैं। ऐसा मुझे लगता है। जहाँ संस्कृति का पूरा ह्रास होकर पाश्चात्य संस्कृति को अपनाया जा रहा है। मजदूर की संवेदना में बच्चों से लेकर स्त्रियों तक होने वाली त्रासदी का चित्रण है। पेट की भूख मिटाने के लिए आज मनुष्य कुछ भी कर सकता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध धरातलों से संवेदना को समझने के लिए आसानी से प्राप्त हुई है। विभिन्न समुदाय, क्षेत्र, धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति आदि सबका परिचय हमें कहानियों के माध्यम से मिल सकता है।

*****

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी: शिल्पगत मूल्यांकन

4.0 भूमिका

4.1 शिल्प शब्द का विश्लेषण

- 4.1.1 शिल्प शब्द का अर्थ
- 4.1.2 शिल्प का स्वरूप
- 4.1.3 शिल्प की परिभाषा
- 4.1.4 शिल्प की विशेषता

4.2 कहानी के अंतर्गत शिल्प का महत्व

4.3 शिल्प के विभिन्न तत्व

- 4.3.1 कथावस्तु
  - 4.3.1.1 आदिवासी कहानी
  - 4.3.1.2 दलित कहानी
  - 4.3.1.3 औरत की कहानी
  - 4.3.1.4 वृद्ध कहानी
  - 4.3.1.5 किन्नर कहानी
- 4.3.2 चरित्र-चित्रण/पात्र
  - 4.3.2.1 आदिवासी पात्र
  - 4.3.2.2 दलित पात्र
  - 4.3.2.3 मुस्लिम पात्र
  - 4.3.2.4 वृद्ध पात्र
  - 4.3.2.5 बाल पात्र

4.3.3 संवाद/कथोपकथन

4.3.3.1 राजनीतिक संवाद

4.3.3.2 सामाजिक संवाद

4.3.3.3 सांस्कृतिक संवाद

4.3.3.4 धार्मिक संवाद

4.3.3.5 आर्थिक संवाद

4.3.4 देशकाल /वातावरण

4.3.4.1 ग्रामीण वातावरण

4.3.4.2 शहरी वातावरण

4.3.4.3 जंगली वातावरण

4.3.4.4 पहाड़ी वातावरण

4.3.5 भाषा शैली

4.3.6 उद्देश्य

4.4 निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी: शिल्पगत मूल्यांकन

4.0 भूमिका

शिल्प साहित्य की कला है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी कला में निपुण होता है। जैसे दर्जी सिलाई में, कुम्हार बरतन बनाने में, माँ खाना बनाने में आदि । ऐसे ही साहित्यकार की मूल पकड़ रचना की लेखनी में होती है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी तरह से पूर्ण कोशिश करता रहता है रचना को सुंदर बनाया जा सके। शिल्प साहित्य का वही चरण है जिसमें शब्दों की भाषा को देखा जाता है। शिल्प एक प्रकार लेखक के मन की अभिव्यक्ति होती है। शिल्प का सीधा-सीधा संबंध लेखकों के विचार से जुड़ जाता है।

रचनाओं का मूल्यांकन अधिकतर शिल्प विधान पर ठहराया जाता है। शिल्प कहानी लेखन का प्रवाह है। अगर प्रवाह की दिशा सही रही तो कहानी को अपना एक निश्चित स्थान प्राप्त होता है। शिल्प साहित्य की मूल आवश्यकता है। जिसके आधार पर पूर्ण रचना निर्भर बन जाती है। रचना का शिल्प विधान लेखक के विचारों को पाठक वर्ग के सामने आसानी से रख पाता है। क्योंकि शिल्प कहानी का अभिन्न अंग है। कहानी रचना की प्रक्रिया शिल्प के आधार पर ही तय कर सकती है। शिल्प के अंतर्गत कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, भाषा शैली तथा उद्देश्य इन तत्वों का समावेश होता है। जिससे कहानी की पूर्ण रचना का एक ढाँचा तयार होता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में शिल्प का स्वरूप बदलता जा रहा है, यह कहना गलत नहीं होगा। कहानी बदलने का कारण शायद आज का परिवेश भी है। आधुनिकता का यह दौर सब पर अपना प्रभाव डाल रहा है। उसी तरह कहानियों में भी यह बदलाव आ रहा है। शिल्प के भाव भी बदल रहे हैं। भाषा बदल चुकी है। सरल एवं बोलचाल की भाषा का अधिक प्रभाव है। शिल्प मनुष्य के अंतर्मन का भाव है, जिसे लेखक अपने विचारों से प्रतिमा प्रदान करता है। शिल्प के अंतर्गत कहानी को

सरल रूप से समझने के लिए शिल्प के तत्वों का प्रयोग किया जाता है। शिल्प क्रिया साहित्यकार की मूलभूत आवश्यकता है। इसके आधार पर ही अपनी विचारधारा को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है। शिल्प एक कवितामयी प्रक्रिया है कहना गलत नहीं होगा । क्योंकि इसी के विभिन्न तत्वों पर कहानी की प्रक्रिया अवलंबित होती है।

शिल्प कहानी का मुख्य घटक बन जाता है। मानवीय संवेदनाओं से रचित कहानियों में शिल्प की विविधता को देखना एक बड़ा प्रयास रहता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में कहानीकारों का यह प्रयास अद्भुत है। शिल्प मानवीय मूल्यों को स्पष्टत: चित्रित कर पाता है। शिल्प का प्रयास हमेशा सटीक प्रयत्न होता है। जो कहानीकार हमेशा करता रहता है। कहानी को विशिष्टता देने के लिए उसमें पूर्ण तरह से उतरना जरूरी हो जाता है। यह काम शिल्प पूर्ण करता है। शिल्प के विभिन्न तत्वों से कहानी को सफल राह मिलती है। जिससे कहानी को एक पूर्ण सफल कहानी कहा जा सकता है।

4.1 शिल्प शब्द विश्लेषण

शिल्प शब्द के उच्चारण से ही लय तथा राग का निर्माण महसूस कर सकते हैं। यही काम शिल्प साहित्य के अंतर्गत भी होता है। मनुष्य अपने सर्वांगों के बिना अपाहिज होता है। ठीक उसी तरह शिल्प को बिना किसी भी साहित्य को सोचा नहीं जा सकता है। शिल्प कला से साहित्यकार साहित्य के अंतर्गत विभिन्न गुणों का समावेश कर सकता है। इसलिए साहित्यकार शिल्प को रचना की नींव तथा रचना का मूल स्तर मानता है। शिल्प को साहित्य का प्राण कहा जाता है। बिना शिल्प के साहित्य की कोई नींव नहीं बैठ सकती । शिल्प की कला साहित्यकारों को हमेशा प्रेरित करती है। एक अच्छे रचना के लिए शिल्प और संवेदना का मेल देखा जाए तो यह दोनों ही अनिवार्य हैं। रचना को तैयार करने के लिए शिल्प एक औपचारिकता नहीं, बल्कि एक अहम् भूमिका का काम करता है। साहित्यकारों की विभिन्न शैलियाँ होती हैं। उनकी अपनी एक अलग पहचान उनकी लेखनी से समझी जाती है। इस विभिन्नता का उनकी मानसिकता एवं

संवेदनाओं से निर्माण होता है। प्रत्येक साहित्यकार की लेखन कला भिन्न होने के कारण उसमें शिल्प तथा शैली की विशेषताओं को भी देखा जा सकता है। शिल्प की यही विधा सबमें भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है। शिल्प का मूल काम रचना को सौंदर्य प्रदान करना होता है। यह सौंदर्य लेखक के हाथ की कला है। शिल्प से साहित्य की प्रौढ़ता बढ़ जाती है। शिल्प का विकास क्षणिक नहीं है। प्रत्येक दशक में कुछ ना कुछ भिन्नता तथा नवीनता देखी जा सकती है। यह नवीनता समाज के परिवेश का निर्माण होता है। साहित्य पर भी इसका प्रभाव भली-भाँति देख सकते हैं। उसी प्रकार से शिल्प में बदलाव आना भी शिल्प की एक विशेषता ही होगी। शिल्प को तकनीकी गतिविधी कहना शायद गलत नहीं होगा। क्योंकि साहित्य के अंतर्गत वह एक तकनीक की तरह ही काम करता है। इस तकनीक का प्रयोग प्रत्येक लेखक अपनी मर्जी के अनुसार कर सकता है। सब की भाषा, सोच का तरीका तथा परिवेश यह सब एक जैसा नहीं होता। उसी तरह साहित्य के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली तकनीक सबकी एक जैसी हो जरूरी नहीं होती। इसलिए शिल्प की विविधता को पाठक वर्ग सब रचनाओं में देखता है।

भाषा का मुख्य प्रभाव रचनाओं पर देखा जाता है। भाषा भी शिल्प का एक अंग ही है। जो उससे भिन्न नहीं हो सकती। शिल्प की मार्मिक कला का निर्माण साहित्यकार की सृजनशीलता से होता है। शिल्प एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे साहित्यकार सही ढंग से आगे बढ़ सकता है। उसे किसी और दशा-दिशा की जरूरत नहीं होती। शिल्प का नया रूप इक्कीसवीं सदी की कहानियों में पाठक वर्ग को दिखाई देता है। शिल्प की नवीनता का अनुभव पाठक नये युग में कहानियों में देखते हैं। समय के सब कुछ बदलता रहता है। यह शिल्प का बदलाव भी उसी का चिह्न है।

4.1.1 शिल्प का अर्थ

शिल्प का शाब्दिक अर्थ देखा जाए तो उसे तकनीक कह सकते हैं। शिल्प के लिए अंग्रेजी भाषा में 'टेक्नीक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अगर और आसान तरीके से शिल्प

शब्द को समझा जाए तो वह होगा 'ढाँचा' या 'तरीका' । इसलिए कहा जाता है कि शिल्प साहित्य का ढाँचा है । जिस तरह शिल्प को ढाँलने का प्रयत्न करोगे, वह ढल जाएगा । अर्थात साहित्य को सही ढंग से प्रस्तुत करने के लिए उसका एक सही तरिका होना चाहिए । जिससे रचना प्रभावशाली बन जाए । लेखक अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति को पाठक के सामने रखना चाहता है। तो यह आवश्यक बना जाता है अनुभूति का रूपांतर शब्दों में सही ढंग से रखा जाए । यही काम शिल्प करता है।

रचना की शुरुआत से अंत तक उसे सही तरह से एक ढाँचे में रखने का काम शिल्प करता है। शिल्प के संबंध में गोपाल राय कहते हैं कि- "अमूर्त कलाओं में रूप, ढाँचा बनावट आदि ढीले-ढीले अर्थ में प्रयुक्त हो सकते हैं। इनका प्रयोग वस्तु, मूर्ति या चित्र आदि कलाओं में निश्चित अर्थ दे सकता है। उनकी दृष्टि में अंग्रेजी स्ट्रक्चर डिजाइन फार्म क्राफ्ट जैसे शब्द किसी बहुत स्पष्ट वस्तु को संकेतित करने में असमर्थ हैं।"[1] डॉ. गोपाल राय जी के कथन से स्पष्ट होता है कि शिल्प रचना का ढाँचा है। जिसे किस प्रकार प्रस्तुत करना है वह लेखक के हाथ में होता है। रचना की सुंदरता लेखक के विचारों से ही न मानते हुए उसकी लेखनी को भी परखा जाता है। शिल्प का सरल अर्थ समझा जाए तो वह होगा कि ऐसी क्रिया जिसमें लेखक अपने विचारों को लेखन का रूप देकर उसमें विविध उपकरणों का समावेश कर उन विचारों को सुंदर बनाता है। भाव जितना सुंदर एवं सरल होगा उतना ही वह पाठक के नजदीक आ पायेगा । शिल्प ही वह कला है, जो विचारों को सुंदरता प्रदान करके लेखनी का स्वरूप धरती है। शिल्प शब्द बहुत छोटा-सा लगता है परंतु उसके अर्थ को समझते है कि वह कितना बड़ा काम करता है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि शिल्प एक तरह का उपकरण या औजार है। साहित्य की रचना के लिए । इस विषय पर डॉ. हरदयाल अपने विचार रखते हैं- "जब हम शिल्प की बात

[1] शिल्प, रचना-प्रक्रिया और अंतर्वस्तु - ब्रजनंदन किशोर, पृ.सं. 15

करते हैं, तब हम लगभग हर चीज की बात करते हैं क्योंकि शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव जो कि उसकी विषयवस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है। शिल्प एक मात्र साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, जिसके माध्यम, से वह उसके अर्थ को संप्रेषित करता है और अंततः उसका मूल्यांकन करता है।"[1] यहाँ स्पष्ट होता है कि रचना प्रक्रिया के लिए शिल्प का महत्त्व कितना अधिक है। बिना शिल्प के रचना को पूर्ण कर पाना असंभव है। शिल्प कहानीकार की प्रारंभिक प्रक्रिया बन जाती है। जहाँ से उसे अपना लेखन कार्य शुरू करना होता है। शिल्प को साहित्य की संपूर्णता कह सकते हैं। बिना शिल्प के रचना नहीं माना जा सकता। शिल्प ही साहित्य का सब कुछ है।

4.1.2 शिल्प का स्वरूप

रचनाकार अपनी रचना को लिखने से पहले बहुत बार सोचता है। रचना की विषयवस्तु क्या हो, उसकी रूपरेखा कैसी हो, किस तरह की रचना का सृजन करने से वह सुंदर व आकर्षित बन सकती है। इन सबके बारे में रचनाकार विचार करता है। इससे पता चलता है शिल्प का स्वरूप कितना विस्तृत होता है, जो कहानीकार को सभी प्रश्नों का उत्तर अपने-आप में रखता है। रचनाकार के मन की अनुभूति होती है। जिसे सही ढंग से सही स्वरूप से प्रस्तुत करना रचनाकार का धर्म बन जाता है। क्योंकि पाठक वर्ग सभी पहलुओं की अच्छे से जाँच-पड़ताल करता है। रचनाकार अपनी रचना का सृजन करता है, समाज के लिए। समाज में चल रही सभी गतिविधियों, घटनाओं का यथार्थ चित्रण रचनाकार कर देता है। यह चित्रण कभी-कभी भयावह भी होता है। शिल्प का काम है कि प्रत्येक वस्तु तथा स्थिति को सही ढंग से सही जगह प्रस्तुत करे। शिल्प का स्वरूप इसलिए भी बढ़ जाता है वह एकमात्र जरिया जहाँ रचना को सही रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे मनुष्य की रचना प्रकृति ने बना दी है

[1] मेहरुन्निसा परवेज की कहानियाँ : एक अध्ययन - डॉ. अनिता जाधव, पृ.सं. 124

सिर से पाँव तक। अगर कोई विशिष्ट रूप से जन्म ले तो उसे विकलांग या अपाहिज कहेंगे। वैसे ही शिल्प भी रचना को एक सही स्वरूप प्रदान करता है। जिससे रचना की प्रभावशीलता बढ़ जाती है। ब्रजनंदन किशोर शिल्प के बारे में अपने मत रखते हुए कहते हैं- "जिस प्रकार संरचना में वस्तु से अधिक वस्तु की सर्वाधिक सत्ता और प्रवृत्ति का महत्व है उसी प्रकार शिल्प के क्षेत्र में रंग, शब्द, स्वर आदि यथार्थ जगत के साहचर्य से जुड़कर तथा अंतःशक्ति प्राप्त कर ही सार्थकता से जोड़ते हैं।

शिल्प कलाकृति की मूल द्रव्यात्मक तथा भावात्मक शक्ति तथा दृष्टि दोनों है जो कला वस्तु का संघटन और संगठन दोनों करता है। यह रूप वाचक या भाव वाचक क्षुद्र या महत्त्वपूर्ण पदों से अधिक रूप और भाव की जीवन संबद्धता तथा उनके प्रणालीगत रूप और प्रकृति पर आश्रित है। रचना संलगन रूपों और अर्थों को जोड़ने वाले छोटे पदों की पहचान की सघनता और गहराई या सतहीपन और प्रसार की थाह तथा बोध की अनुभूति और अभिव्यक्ति में ही इसकी प्राणवत्ता स्थित है।"[1]

यह स्पष्ट है कि शिल्प सर्वत्र उपस्थित होता है। बिना शिल्प के रचना अधूरी है। रचना का सही रखरखाव भी महत्वपूर्ण बन जाता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में शिल्प की विविधता को समझा जा सकता है। शिल्प के विविध प्रकारों में रचना की महत्ता को पहचान सकते है। शिल्प की नींव पर रचना का आधारस्तंभ खड़ा होता है। इसलिए नींव का मजबूत होना आवश्यक है। शिल्प के संबंध में विचार करना अर्थात उसके संपूर्ण तत्वों के बारे में सोचना। शिल्प के विभिन्न तत्वों से रचना का स्वरूप पूर्ण बनता है। रचना को एक सीधा एवं सरल आकार दिलाने में शिल्प का काम महत्त्वपूर्ण बन जाता है। लेखक के विचारों से अनुभूति को शिल्प अभिव्यक्त करता है।

[1] शिल्प, रचना-प्रक्रिया और अंतर्वस्तु - ब्रजनंदन किशोर, पृ.सं. 23

4.1.3 शिल्प की परिभाषा

शिल्प को अच्छे से समझने के लिए हिंदी साहित्य के विद्वानों ने अपने कुछ मत रखे हैं तथा शिल्प को परिभाषित किया गया है।

1. श्री वामन शिवराम आपटे के अनुसार "शिल्प कलात्मक कार्यवाही की वह रीति जो संगीत अथवा चित्रकला में प्राप्त है तथा कलात्मक कारीगरी है।" यहाँ आपटे जी ने शिल्प को संगीत तथा चित्रकला से निर्मित कला कहा है।

2. लक्ष्मीनारायण लाल शिल्प के संबंध में अपना मत रखते हुए लिखते हैं- "शिल्प सौंदर्य में उसके तथा अनुरूप जैसे कहानी का सारा शिल्प ही उदार से उदारतम हो गया है। उसका बंधा-बंधाया शास्त्रीय रूप अपने आप ही उदार और महिम हो गया । कथा, लोकतत्व, संस्मरण, यात्रा वर्णन की शैली, डायरी की कला, रमन पद्धति ये सब के सब तत्व मिल-जुलकर एक ही कहानी उजागर हो गये । यह सर्वथा एक नया शिल्प ही बन गया ।"[1]

3. डॉ. एम. एम. मेहता के अनुसार- "आज के साहित्य का शिल्प क्या है ? मेरा तत्काल उत्तर हैः इंद्रिय संचेतना ।... नयी कहानी एक ओर रही सही ढंग से ग्रहण करना है तो दूसरी ओर सार्थक अभिव्यक्ति को कलात्मक मोड़ देना भी है।"[2] लेखक यहाँ शिल्प की कला को इंद्रियों से निर्माण होने वाली चेतना को बता रहे हैं। शिल्प कला यथार्थ व कल्पना दोनों का साथ लेकर आगे बढ़ने वाली प्रक्रिया है।

4. ब्रजनंदन किशोर के मतानुसार- "शिल्प केवल भाषा के धरातल पर अवस्थित नहीं है, बल्कि शिल्प चेतना के धरातल पर भाषा स्वयं यथार्थ संस्कृति की पहचान को व्यक्त करने वाला माध्यम है- एक वस्तुगत यथार्थ है। यह भाषा का अर्जित (कौशल) या प्रामाणिक (रूप) परिणाम न होकर रचनाकार की यथार्थ विन्यास संबंद्धता तथा यथार्थ में ऐतिहासिक

---

[1] दूधनाथ सिंह कृत कहानी संग्रह 'जल मुर्गियों का शिकार' में कथ्य व शिल्प - पूजा गर्ग, पृ.सं. 77

[2] हिंदी कहानी की शिल्प विधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं. 262

समकालीन संरचनात्मक रूप-विश्लेषण एवं विकास प्रक्रिया की प्रकृति से उत्पादित तथा प्रणित है।"[1]

यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, शिल्प ही रचना साहित्य का सर्वस्व है। शिल्प के बिना किसी भी तरह की रचना हो उसका पूर्ण स्वरूप नहीं बन पाता है।

5. जवाहर सिंह शिल्प को समझाते हुए अपना मत इस प्रकार रखते हैं कि- "भावगत सूक्ष्म तरंगों को इंद्रिय ग्राहय बनाने के लिए किसी न किसी ठोस रूपाकार में उन्हें ढालने की अनिवार्यता से इनकार नहीं किया जा सकता। इस रूपाकार ढाँचे या स्वरूप के आकलन और निर्माण की प्रक्रिया ही शिल्प भी प्रक्रिया है। अतः रचना निर्माण में शिल्प की उपादेयता एक स्वयं सिद्ध तथ्य है।"[2]

एक रचना को सही तरीके से प्रस्तुत करने का कार्य शिल्प करता है। शिल्प प्रक्रिया है रचना को आत्मसात करने की। शिल्प रचना में त्रुटी को ढूँढना मुश्किल है। अनेक विद्वानों के मतों से पता चलता है कि शिल्प महत्त्वपूर्ण गतिविधि साहित्य के अंतर्गत आती है। और एक सुंदर रचना निर्माण कर सकती है।

4.1.4 शिल्प की परिभाषा

शिल्प साहित्य की रचना का ढाँचा या बनावट है। साहित्यिक रचना को एक सही दिशा की ओर ले जाने का काम शिल्प करता है। इसलिए साहित्य में शिल्प की विशेषता बढ़ जाती है। शिल्प रचना का आंतरिक तथा बाह्य दोनों रूपों का संगम है यह कहना गलत नहीं होगा। शिल्प साहित्य का मुख्य घटक है। बिना शिल्प की सहायता से रचना को सही मापदंड में नापा नहीं जा सकता। रचना रचनाकार के मन की अनुभूति है। जिसे रचना का रूपांतरण प्रदान होता है। अगर यह रूपांतरण सही ढंग से जमाया नहीं गया हो, तो उस रचना का कोई महत्त्व नहीं बचता। प्रत्येक साहित्यकार की अपनी एक अलग जद्दोजहद होती है। यह सब क्यों

---

[1] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 1

[2] शिल्प, रचना-प्रक्रिया और अंतर्वस्तु - ब्रजनंदन किशोर, पृ.सं. 258

होता है, तो पाठक या श्रोता के पास सही प्रचार साहित्य का होने के लिए। पाठक वर्ग तक रचना का सही स्वरूप पहुँचाने के लिए लेखक अथक प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न शिल्प के आधार पर टिका हुआ रहता है। ब्रजनंदन किशोर शिल्प की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि- "शिल्प का संबंध अप्रस्तुत जगत की संरचनात्मक अवस्थिति को विविध आयाम-रूपक तथा जागतिक संबंधता में सक्रिय इकाई मानव एवं मानव समुदाय को संप्रेषित करना है और साहित्य रूपों का संबंध अप्रस्तुत जाति रूप भावों को प्रस्तुत एवं उदीप्त कर मानव को वैविध्यमूलक संदर्भों से भिन्न करते हुए इस जाति रूप भाव को जोड़ना है। इस प्रकार शिल्प की दृष्टि से संरचनात्मक अवस्थितियों के माध्यम से क्रियात्मक प्रवृत्तियों एवं भावों को देखता है।"[1]

शिल्प तकनीकी प्रक्रिया बन जाती है। जब रचनाकार रचना की बात सोचता है, तब मन में हजारों प्रश्न खड़े होते हैं। क्योंकि सही स्तर पर सही घटकों के साथ रचना का निर्माण होना आवश्यक बन जाता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में शिल्प की विविधता को देख सकते हैं। बदलते परिवेश में रचना में बदलाव आया है। यह बदलाव शिल्प में भी आया है। शिल्प को बदलते परिवेश के साथ बदलना यह भी एक कला माध्यम है, कहना गलत नहीं होगा। शिल्प की योग्यता का प्रमाण रचना की अभिव्यक्ति से उभरता है। शिल्प को साध्य बनाकर रची हुई रचना की मौलिकता अपने-आप बढ़ जाती है। शिल्प की अनुभूति को रचनाकार हमेशा ध्यान में रखकर अपना कार्य संपन्न करता है। शिल्प की विशेषता है कि वह रचना को एक स्वरूप देता है। शिल्प के रहते कहानी की रचना में कोई कमी नहीं रहती है। शिल्प की मुख्य विशेषता है कि वह रचना को एक सरल लय की तरह आगे बढ़ाता जाता है। शिल्प रचना का अभिन्न अंग होता है। प्रत्येक रचनाकार की अपनी विचारधारा होती है।अपनी विचारशीलता होती है। उसी तरह प्रत्येक रचना का शिल्प भी

[1] शिल्प, रचना-प्रक्रिया और अंतर्वस्तु - ब्रजनंदन किशोर, पृ.सं. 108

अलग ही होता है। जो निर्भर होता है रचनाकार पर। रचनाकार के विचारों की भाँति रचना के भीतर शिल्प का बदलना भी स्वाभाविक ही माना जाएगा। शिल्प के बिना साहित्य अधूरा कहा जाएगा।

4.2 कहानी व शिल्प अंत:संबंध तथा महत्त्व

कहानी कहानीकार के मन की अभिव्यक्ति होती है। जिसकी पृष्ठभूमि यथार्थ तथा काल्पनिक दोनों स्तरों पर अवलंबित होती है। अपने मन की भावनाओं को लेखक एक स्वरूप प्रदान करना चाहता है। सभी वस्तुओं या घटकों का एक भ्रम होता है। अगर उस भ्रम में ही वस्तु को देखा जाए तो वस्तु की मौलिकता अधिक होती है। कहानी के संबंध में भी यह कहना सही होगा कि शिल्प के तत्वों के अनुसार कहानी की रचना हुई तो उसकी महत्ता बढ़ जाती है। शिल्प और कहानी दोनों को भिन्न नहीं देखा जा सकता है। कहानी का पूर्ण परिवेश ही बदलता नजर आता है। इक्कीसवीं सदी नये दशक के साथ नये विचारों को लेकर आयी है। नयी धारणा जो नयी पीढ़ी से प्राप्त हुई उसे देखा गया। प्रत्येक कहानीकार के अपने नये विचार नयी दशा-दिशा चित्रित हुई है। इन सब में शिल्प की महत्ता भी बढ़ गयी है। मनुष्य की सचेतन भावनाओं को शिल्प ने एक आकार प्रदान किया। जिससे कहानी और सुंदर बन गयी। अशोक कुमार गुप्ता जी कहानी तथा शिल्प के संबंध में कहते हैं कि- ‘‘जब हम किसी कहानी रचना का मूल्यांकन करते हैं तो उसकी शब्द योजना, वाक्य विन्यास, भावों एवं विचारों के साथ-साथ उसकी शिल्प संबंधी विशेषताओं की ओर भी ध्यान देते हैं। शिल्प के अभाव में किसी भी कृति का मूल्यांकन करना दुष्कर होता है।

कहानी साहित्य में शिल्प का विशिष्ट महत्व है। किसी भी कहानी की उत्कृष्टता एवं अभिनवता उसके शिल्प पर आधृत है। ज्यों-ज्यों साहित्य का विकास होता है त्यो-त्यों शिल्पगत परिवर्तन भी होता रहता है। कई बार हम देखते हैं कि रचना (शिल्पगत नवीनता से) जो कि अपनी ओर सहसा ही ध्यान आकर्षित कर लेती है तो दूसरी अनेक आयोजित

परिचर्चाओं, समीक्षाओं, भाव, व्यंजना के होते हुए भी प्रिय नहीं लगती है समय के साथ-साथ टेक्नीक भी बदलती रहती है जिससे साहित्य प्रभावित होता रहता है।"[1]

परिवर्तन समाज की मूलभूत आवश्यकता है। जैसे-जैसे समय बदलता है, लेखक के विचारों में भी बदलाव आना स्वाभाविक ही होगा । यही प्रभाव रचना पर पड़ता है जिससे शिल्प का नवीन रूप पाठक वर्ग देखता है। शिल्प का महत्त्व कहानी में इस वजह से भी बढ़ जाता है, क्योंकि शिल्प किसी भी स्वरूप की कहानी को एक निश्चित ढाँचे में ढालने का काम करता है। जिससे कहानी के अंतर्गत संपूर्ण शिल्प तत्व का प्रयोग न होकर भी कहानी आकर्षित करती है। नयी पीढ़ी भी कहानियों में शिल्प के सभी तत्वों का समावेश कहीं-कहीं दिखाई देता है। परंतु सभी कहानियाँ शिल्प के रूप से संपूर्ण हैं यह कह नहीं सकते । शिल्प के बिन कहानी को सार्थकता नहीं मिल सकती । शिल्प की कहानियों के प्रति अभिव्यक्ति संपूर्णता को दर्शाती है। बिना शिल्प कहानी की कोई महत्ता नहीं रह सकती । वह एक अधूरी गाथा के अंतर्गत आ जाएगी ।

4.3 शिल्प के विभिन्न तत्व

शिल्प की अपनी एक संरचना है। जिसके अंतर्गत कहानीकार अपनी रचना को एक विभिन्न बनावट प्रदान करता है। शिल्प के मुख्य तत्व (1) कथावस्तु (2) चरित्र-चित्रण या पात्र (3) संवाद (4) देशकाल या वातावरण (5) भाषा शैली (6) उद्देश्य आदि है। प्रथम कथावस्तु है यह शिल्प का प्रमुख भाग है। कथावस्तु पर ही पूर्ण कहानी की नींव ठहरी हुई होती है। इसलिए प्रत्येक रचनाकार अपनी कथावस्तु को एक प्रभावी मूर्ति बनाना चाहता है। जिस पर बाकी के सब उस मूर्ति का सौंदर्य बढ़ाने का कार्य करते हैं। शिल्प के उन छः तत्वों से कहानी का एक नया रूप बन जाता है। दूसरे तत्व की बात करेंगे तो वह होगा चरित्र-चित्रण या पात्र । कहानी एक ही निर्भर हो सकती है। या उसके अंतर्गत अधिक पात्रों को भी जोड़ा जा

[1] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 11-12

सकता है। परंतु एक प्रधान पात्र पर रची कहानी अधिक प्रभावी होती है। क्योंकि पाठक उस स्थिति पर यहाँ-वहाँ भटकता नहीं । उसका सरल ध्यान कहानी की कथावस्तु की तरफ आ जाता है। तीसरा होगा संवाद या कथोपकथन । यह भी एक विशिष्ट तत्व है। कहानी का संवाद कहानी को पढ़ने के लिए और प्रेरित करता है। शिल्प की संवाद प्रक्रिया कहानी की सीमा को बढ़ा देती है।

कथोपकथन से कहानी किस विषय और किस परिस्थिति में लिखी गयी होगी इसका सरल मूल्यांकन पाठक वर्ग कर सकता है। देशकाल या वातावरण कहानी की पृष्ठभूमि को बयान करता है। पृष्ठभूमि कहीं की भी और कोई सी भी हो सकती है। देश काल से पता चलता है की कहानीकार कौन-सी सोच विधान से रचना को तैयार कर रहा होगा । शिल्प का पाँचवा तत्व भाषा शैली है। इस तत्व को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। क्योंकि भाषा के बिना कहानी का कोई अर्थ नहीं बन सकता। भाषा ही वह माध्यम है जो सीधे-सीधे कहानीकार तथा पाठक दोनों के बीच का सेतु बन जाती है। आखरी तत्व होगा उद्देश्य । बिना उद्देश्य के कहानी का कोई मूल्य नहीं हो सकता । मनुष्य जो भी काम करता है उसका कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता है। उसी के बल पर वह अपना काम कर सकता है। उसी तरह कहानी भी किसी-न-किसी उद्देश्य पर जरूर ठहरी हुई होती है। जिससे पाठक अपना-अपना एक सरल रास्ता चुन सकता है, कहानी के मार्ग पर । इन विभिन्न तत्वों पर खरी उतरी कहानी प्रभावशाली होती है। पाठक को ऐसी ही रचना की आतुरता होती है। जिससे कहानी के अंतर्गत सभी पहलुओं को एक ही जगह अच्छी तरह से समझ सके । लक्ष्मीनारायण लाल तत्व के संबंध में कहते हैं- “(1) कथावस्तु (2) पात्र और चरित्र-चित्रण (3) कथोपकथन (4) स्थिति अथवा वातावरण (5) शैली (6) उद्देश्य कहानी के उन तत्वों में से कहानीकार किसी एक या एकाधिक तत्वों पर बल दे सकता है, फिर भी समस्त तत्व अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट और मूल्यवान हैं। किसी-न-

किसी रूप और सार में उन तत्वों का सहारा कहानीकार को अवश्य लेना पड़ता है।"[1] शिल्प के तत्व ही कहानी की आत्मा हैं। बिना आत्मा के शरीर कुछ काम का नहीं होता । बिना शिल्प के तत्व के कहानी का कोई अर्थ नहीं बनता ।

4.3.1 कथावस्तु

कथावस्तु कहानी का प्राथमिक तथा अहम् भाग होता है। कथावस्तु को ध्यान में रखकर ही कहानीकार रचना की शुरूआत करता है। कहानी मनुष्य जीवन का मुख्य भाग या यूँ कहें मनुष्य का जीवन ही है। समाज तथा परिवार को ध्यान में रखकर कथाकार अपनी कथा रचता है। कहानी का यथार्थ स्वरूप कथावस्तु में पूर्णतः झलकता पाठक को दिखाई देता है। इसलिए कहते है कि जीवन कहानी का दूसरा नाम है। शिल्प कहानी को परिपक्व बनाता है। कथावस्तु कहानी की परिपक्वता का पहला चरण है। पहला चरण अगर स्थिर और प्रभावशाली रहा तो कहानी अपने-आप उच्चस्तर की बन जाती है। कथावस्तु को कहानी का एक प्रकार का सार कह सकते हैं। जिससे कहानी की मूल विधा का परिचय होता है। कथावस्तु के मूल तीन भाग माने जाते हैं। आदि भाग जहाँ कहानी का प्रथम चरण शुरू होता है। जिसमें पाठक को पात्रों के बारे में पता चलता है। कहानी की विषयवस्तु को समझा जा सकता है। कहानी पूर्ण स्वरूप समझ नहीं सकते, परंतु उसकी शुरूआत के कारण को पता कर सकते हैं। कहानी का दूसरा भाग होता है मध्य भाग जिसके अंतर्ग कहानी थोड़ी बहुत समझ में आ जाती है। कहानी का मुख्य विषय पता चलता है।

सभी पात्रों का चित्रण लगभग हो ही जाता है। प्रथम भाग की तरह आतुरता थोड़ी कम हो जाती है और कहानी का स्वरूप ध्यान में आ जाता है। कथावस्तु का आखिरी भाग कहानी का अंतिम भाग होता है। जिसमें कहानीकार ने अपने सभी विचारों को जाहिर कर दिया होता है। और उद्देश्य के माध्यम से कहानी का पूर्ण सार पाठक को समझने में आ जाता है।

[1] हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं. 219

लक्ष्मीनारायण लाल जी कथावस्तु के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं- "कहानी में कथावस्तु का स्थान मुख्य है। यही कहानी का वह ढाँचा है, जिस पर कहानी निर्मित होती है। कहानी के आरंभ काल में कथावस्तु ही इसका सब कुछ हुआ करता था, लेकिन ज्यों-ज्यों कहानी कला में विकास होता गया, त्यों-त्यों इसका स्थान गौण होता जा रहा है। विशेषकर जब से कहानी में मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोविश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ है, तब से इसका रूप अत्यंत सूक्ष्म होता जा रहा है। वस्तुतः कथावस्तु का जन्म कहानीकार उन अनुभूतियों और लक्ष्यात्मक प्रवृत्ति से होता है जिसके धरातल अथवा मूल प्रेरणा से कहानीकार अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है।"[1]

उपरोक्त कथन से समझा जा सकता है आधुनिकीकरण का प्रभाव शिल्प पर भी आ पहुँचा है। प्रत्येक रचनाकार का अपना एक अलग शिल्प विधान होता है। रोजमर्रा के बदलते जीवन का प्रभाव कहानी के माध्यम से शिल्प के अंतर्गत भी दिखाई पड़ रहा है। कथावस्तु के मुख्य रचना से समाज का यथार्थ पाठक के सामने आ जाता है। जिससे पाठक सच के युग को जी सकता है। यही प्रभाव कथावस्तु का कहानी पर छाया हुआ रहता है। कहानी के अंतर्गत कथावस्तु को मुख्य स्थान देना आवश्यक होता है। परिस्थितिनुसार होता बदलाव कथावस्तु के माध्यम से पाठक तक पहुँचता है। कथावस्तु ही कहानी के अंतर्गत शिल्प का प्रथम व मुख्य चरण होता है।

4.3.1.1 आदिवासी कहानी

इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियाँ आदिवासी कहानियों की कथावस्तु थोड़ी मात्रा में भयावह है कह सकते हैं। कहानियों के अंतर्गत स्त्रियों को अंधश्रद्धा के नाम पर हो रही त्रासदी का चित्रण है। कथावस्तु के तीनों चरणों में अर्थात आदि चरण, मध्य चरण और अंतिम चरण से कहानी को पाठक के सामने प्रस्तुत की जाती है। महाश्वेता देवी की

[1] हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं. 220

कहानी 'डायन' भय का एक गढ़ है ऐसा कहा जा सकता है। डायन कहानी की कथावस्तु को लेखिका ने सरल रूप से पाठक के सामने रखा है। कहानी की पृष्ठभूमि आदिवासी समाज की दिखाई गयी है। जिसमें चंडी नामक प्रधान पात्र है। अंधश्रद्धा में धँसा समाज मनुष्य को मनुष्य न मानते हुए उसे डायन करार दे देता है। कहानी का आरंभ ही उचित शीर्षक के साथ शुरू हुआ है। समाज में फैली डायन प्रथा के रहते स्त्रियों की हो रही त्रासदी का चित्रण, यही मुख्य भूमिका लेखिका ने कथावस्तु में रखी है। यह एक प्रकार का लेखिका का समाज को जागृत करने का तरीका भी हो सकता है। समाज अपने छोटे से बच्चे को माँ से दूर भेजकर उसे डायन बना देता है।

काल्पनिक धरातल की यह कहानी समाज के यथार्थ को बयान करती है। डायन के संबंध में कहानी में लिखे गए कुछ वाक्य- "डायन जब सड़क पर निकलती है, तो टिन पीट-पीटकर सूचना देती हुई जाती है। किसी बच्चे या जवान-जहान मर्द को देखते ही वह अपनी नजरों से उनकी देह का बूँद-बूँद खून चूस लेती है। इसलिए तो डायन को नितांत अकेली रहना पड़ता है। डायन की आहट मिलते ही जवान-बूढ़े-मर्द, सबके सब रास्ता छोड़कर इधर-उधर आड़ में छीप जाते हैं।"[1] उपर्युक्त वाक्य से कहानी की कथावस्तु को समझ सकते हैं।

सत्यनारायण पटेल की कहानी 'भेम का भेरू माँगता कुल्हाड़ी ईमान' कालबेलिया जनजाति की कहानी है। कहानी की मुख्य कथावस्तु को समझा जाए तो यहाँ भी स्त्री को ही केंद्रित किया गया है। संपूर्ण कहानी सकीना और कालूनाथ के ईर्द-गिर्द घुमती दिखाई देती है। कहानी की शुरूआत अभद्र भाषा से शुरू हुई है। कहानी का आरंभ ही पाठक को चौका देने वाला है। प्रेमविवाह में बँधे सुकू और कल्लू समाज में रहते हुए स्वयं पर का भरोसा कैसे तोड़ देते हैं। यह उसकी कहानी है। किसी भी रिश्ते का पहला चरण भरोसा या विश्वास होता है। अगर सामने वाले से वह भरोसा नहीं मिल पाये तो वह रिश्ता सच्चा नहीं कहलाएगा । इसी

[1] आदिवासी कथा - महाश्वेता देवी, पृ.सं. 24

कथावस्तु पर यह कहानी आधारित है। आदिवासियों का जीवन पहले ही कम कठिनाइयों से नहीं भरा। उसमें अंधश्रद्धा उनको और पीछे ले जाती है। आदिवासी समाज को मातृसत्तात्मक माना जाता है। फिर भी यहाँ पुरुषों का ही वर्चस्व अधिक दिखाई देता है। कहानी का अंतिम भाग स्त्री आक्रोश को चित्रित करता है। समाज बस स्त्रियों को ही अपनी पवित्रता साबित करने को कहेगा। पुरुष हमेशा ही पवित्र होता है। वह कभी कोई गलती कर ही नहीं सकता। ऐसी धारणा रखने वाला समाज कभी अपने विचारों से आगे नहीं बढ़ सकता। पवित्रता की मूरत 'राम की सीता' उसे भी समाज में नहीं छोड़ा, तो जो सामान्य महिलाएँ है, उनको क्या यह समाज छोड़ेगा। तो उत्तर होगा नहीं। आदिवासी कहानी की कथावस्तु पूर्ण तरह से आदिवासी समाज को बयान करती है।

4.3.1.2 दलित कहानी

दलित समाज की व्यथा सभ्य तथा सवर्ण समाज से पूर्णतः विपरित होती है। जीवित मनुष्य को कीड़े-जानवरों की तरह देखा जाए तो समाज में उनकी परिस्थिति क्या होगी ? यह पाठक आसानी से समझ सकता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में दलित समाज की पीड़ा को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'तलाश' शिक्षित समाज को संबोधित करती है। घर की तलाश में निकले रामवीर सिंह की यह कहानी है। कहानी की मुख्य कथावस्तु शहर से ही शुरू होती है। घर-परिवार से दूर अपना काम करने आये रामवीर सिंह की कहानी है। कहानी का आरंभिक चरण अच्छा प्रस्तुत किया है। इसमें किसी भी प्रकार के जातिवाद का चित्रण नहीं है। परंतु कहानी का मध्यम चरण कहानी का सार बता देता है। दलित समाज से आये रामवीर सिंह को अपने नाम की वजह से कभी कोई परेशानी झेलनी नहीं पड़ी। परंतु उसके घर में काम करने वाली दलित महिला से जब रामवीर सिंह के मकान मालिक को परेशानी होने लगी। तब जातिवाद की पीड़ा क्या होती है इसका पता कहानी के नायक को पता चला। कहानी का अंतिम चरण दलित चेतना की जागृति को दर्शाता है। वह अपने मकान

मालिक का कहना सुनते नहीं और कहते हैं- "यदि यह बात है तो मैं आपका मकान खाली करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन जातिगत भेदभाव के आधार पर मैं रामवती से खाना बनवाना बंद नहीं करूँगा।"[1] अन्याय के प्रति आवाज उठाना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिये' की कथावस्तु दलित समाज की पृष्ठभूमि पर खिले काँटों से भरे फूलों की कहानी है। अर्थात एक दलित समाज में जन्म लेकर बड़ा होना कितना बड़ा पाप है यह दिखाया गया है। जातिवाद के नाम पर चल रही हिंसा की यह कहानी है। कहानी के अंतर्गत अनेक पात्र दिखाए गए हैं। पाठशाला तथा कॉलेज जैसे पवित्र स्थलों को जातिवाद का अडड़ा इस कहानी में बनाया गया है। कहानी का आरंभिक भाग ही अचंभित करने वाला है। कहानी की शुरूआत आत्महत्या की बातचीत से होती है। कहानी का मध्यभाग मेडिकल कॉलेज में चल रहे जातिवाद का चित्रण करती है। दलित समाज पर हो रहे अत्याचारों की यह कहानी है। कहानी का अंतिम चरण ग्लानि निर्माण करने वाला है। क्योंकि अन्याय के खिलाफ लड़ना आवश्यक है। मनुष्य की जाति से न पहचान होकर उसके गुणों से पहचान होनी चाहिए। मनुष्य सभी एक जैसे ही होते हैं। उनको उनके रंग-रूप तथा जाति से पहचानना सबसे बड़ी मूर्खता होगी। आखिर क्यों सुभाष सोनकर को आत्महत्या करनी पड़ी ? क्या सच में वह आत्महत्या ही थी ? कहानी की कथावस्तु ऐसे कुछ अनसुलझे प्रश्नों को छोड़कर चली जाती है। जिसका उत्तर कहानी के अंत तक भी पाठक को नहीं मिल पाता। जातिवाद एक प्रकार का जहरीला साँप है। जो एक बार डस ले तो मनुष्य पानी भी नहीं माँगता और अपना दम तोड़ देता है। कितना भयावह है यह सब देखना।

4.3.1.3 औरत की कहानी

स्त्री एक छोटा सा शब्द, जिसका अर्थ बहुत बड़ा है। शायद अर्थ की कोई सीमा ही न हो। क्यों प्रत्येक वस्तु या मनुष्य ने स्त्री को अपने में ढालने की कोशिश की है। पता नहीं स्त्री

---

[1] तलाश - जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं. 28

कब सम्मान से जी पाएगी। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री पर आधारित बहुत सी कहानियाँ हैं। जिसमें सभी स्त्रियों का चित्रण है। जैसे- आदिवासी स्त्री, दलित स्त्री, घरेलु स्त्री, कामकाजी स्त्री, वैश्या स्त्री, किन्नर स्त्री, वृद्धा स्त्री आदि। अंजु दुआ जैमिनी की कहानी 'महिन रेखा', 'काँपता पूल' ये दोनों कहानियाँ स्त्री को केंद्रित कर लिखी गयी हैं। 'काँपता पूल' कहानी पति-पत्नी के रिश्ते के संबंध में है। कहानी की कथावस्तु बेहद सीधी व सरल है। बस तीन पन्नों की कहानी स्त्री के जीवन का यथार्थ बयान करती है। कहानी की प्रधान पात्र 'चंचला' है। जो एक बहू, एक बेटी, एक पत्नी तथा एक माँ भी है। चंचल के जीवन की गाथा ही कहानी का संपूर्ण सार है। किस तरह से कामकाजी महिला की स्थिति घर तथा बाहर होती है। उसका चित्रण कहानी के अंतर्गत रेखांकित किया गया है। सब कुछ पास में होते हुए भी अकेलेपन की ग्लानि में चंचल धंसती जाती है। कहानी स्त्री के पारिवारिक संबंधों को दिखाती है। बस ऐसा कोई जो उसकी भावनाओं को समझ सके। "पत्नी एक पिता फिर से नहीं चाहती। वह पति ही चाहती है। एक दोस्त एक हमदम, एक हमकदम। मायके में पिता के अनुसाशन से बाहर निकलना चाहती है और विवाहोपरांत पति से प्रेम पाना चाहती है। हिटलरशाही नहीं।"[1] लेखिका दो वाक्यों में ही कहानी की पूर्ण कथावस्तु बयान कर रही है।

जया जादवानी की कहानी 'अंदर के पानी में कोई सपना काँपता है' शीर्षक से ही कहानी सार्थक बन जाती है। नयी-नयी शादी होने के पश्चात का स्त्री का जीवन यही कहानी का सार है। विवाह दो आत्माओं का, दो परिवारों तथा दो भिन्न समाजों का मिलन है। इसे किस दिशा में हम आगे बढ़ाते हैं यह हम पर ही निर्भर होता है। शादी के पश्चात के जीवन के चित्रण को लेखिका ने शिल्प के शैलियों से सजा के पाठक के सामने रखा है। दुल्हन से माँ तक के सफर का मार्मिक चित्रण है यह कहानी। प्रसव वेदना को किस तरह माँ झेलती है। प्रसव वेदना के साथ समाज के रीति-रिवाजों की वेदना का चित्रण है यह कहानी। कहानी में पात्रों की

[1] क्या गुनाह किया - अंजु दुआ जैमिनी, पृ.सं. 122

संख्या अधिक है। कहानी के अंतर्गत किसी पात्र का भी नाम नहीं दिया गया । बस रिश्तों के नाम से उल्लिखित किया गया है। पति-पत्नी एक साथ होते हुए भी एक-दूसरे से कितने दूर हैं यह पाठक देख सकता है। प्रस्तुत कहानी यथार्थ के धरातल पर खड़ी है यह हम कह सकते हैं। क्योंकि अभी भी देश के ऐसे बहुत से भागों में संयुक्त परिवार के नाम पर चल रहा जुल्म देख सकते हैं। सभी परिवार ऐसे होते हैं यह कहना गलत होगा । मैं बस कहानी को ध्यान में रखकर उस विषय पर बता रही हूँ । सिक्के के हमेशा दो भाग होते हैं। उसी तरह जिंदगी के प्रत्येक घटक के भी दो भाग होते हैं। एक अच्छा और एक बुरा ।

4.3.1.4 वृद्ध कहानी

अपनी जीवन संध्या में आखरी बेली पर प्रवास करती वृद्धावस्था का समय । जो अपने जीवन का आखिरी पड़ाव होता है। जिसमें सुख के चार पल भी मिल जाए तो बस है। परंतु यह सुख सबके लिए नहीं होता । कोई-कोई यातना में ही अपनी आखरी साँस को छोड़ देते हैं। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में वृद्ध जीवन को केंद्रित रखकर भी कहानियों की रचना की गई हैं। कविता की कहानी 'उलटबाँसी' वृद्धावस्था में निर्माण होते अकेलेपन की कहानी है। यह एक दादी की कहानी है। जिसकी पोती नीशा शादी की उम्र की हो गयी है। कहानी की कथावस्तु प्रधान भाग से ही रहस्यमयी प्रतीत होती है। मध्य भाग के आखिरी हिस्से में कहानी का मुख्य सार चित्रित है। अकेलेपन से टूट रही नायिका की माँ शादी करना चाहती है। बस संपूर्ण कहानी का यही एक अर्थ बाहर निकलकर आता है। सामाजिक रीति-रिवाजों में बँधे बेटों को माँ का यह व्यवहार बिल्कुल पसंद नहीं आया । परंतु कहानी का अंतिम भाग रोचक बनकर सामने आया । ना समाज ना परिवार बस अपने जीवन के बारे में सोचकर शादी करने निकल पड़ती है। संपूर्ण कहानी में माँ-बेटी के अंदर छुपा स्त्रित्व कहानी में दिखता है- "मैं माँ के आँचल में अक्षत, दूब और रोली के साथ अनेक सुखर जीवन की प्रार्थनाएँ बाँधती हूँ । माँ ने भी इसी तरह बाँधा था मेरे आँचल में खोइंछा । माँ चली गयी है

और हम दोनों भी चल दिये हैं अपनी-अपनी मंजिल की तरफ।"[1] प्रश्न उम्र का नहीं साथ का होता है। वह मिले तो जिंदगी बनती है।

एस. आर. हरनोट की कहानी 'माँ पढ़ती है' जिसमें माँ का कोई संवाद या उसकी उपस्थिति नहीं दिखाई गयी। लेखक यहाँ स्वयं का अनुभव पाठक के साथ बाँटता है। बरसों बाद माँ से मिलने गया लेखक शायद साहित्य जगत में अपनी माँ को भूल सा गया है। माँ का चित्रण लेखक संपूर्ण कहानी में अपने मुख से ही करता दिखाया गया है। गाँव में रहने वाली माँ अकेली है। उसका हाथ बाँटने वाला कोई नहीं। लेखक की सभी किताबों को लेखक की माँ भी पढ़ती है, यह जब लेखक को पता चलता है तब वह स्वयं ग्लानि में धंस जाता है। खेतों में, घर में काम करते-करते माँ अपने बेटे की पुस्तकों को पढ़ना चाहती है। परंतु बेटा माँ से कही दूर चला गया है। अपनी किताबों की दुनिया में वह अपनी माँ को कहीं पीछे छोड़ चला है। परंतु माँ अपने बच्चे के सिवाय और कुछ नहीं सोच सकती। लेखक ने कहानी की कथावस्तु को पूर्णतः साधारण रखने का प्रयत्न किया है। पूर्ण कहानी माँ के अनुभवों से संपूर्ण है। वृद्ध जीवन जी रहे व्यक्ति अपने जीवन के कुछ पल जो आखरी पल भी होते हैं, उन्हें खुशियों से भर देना चाहते हैं। परंतु यह सबके बस की बात नहीं होती। वैसे ही सभी रिश्ते भी समान नहीं होते। जिंदगी बस चलते रहने का नाम है।

4.3.1.5 किन्नर कहानी

मनुष्य को प्रकृति ने निर्माण किया है। वह स्त्री बनके जन्म लेगी या पुरुष यह मनुष्य के हाथ का काम नहीं होता। स्त्री और पुरुष के सिवाय तृतीय लिंगी समाज भी है। जो हमेशा अपने-आप को कोसता आया है। आखिर उसकी गलती क्या है ? क्यों समाज उन्हें सच्चे मन से नहीं अपनाता ? यही उनका प्रश्न होता है। किन्नर या हिजड़ा, स्त्री या पुरुष दोनों भी हो सकते हैं। यह भी एक प्राकृतिक रचना ही कहलाएगी। फिर भी समाज इन्हें आसानी से

[1] उलटबाँसी - कविता, पृ.सं. 21

मान्यता नहीं देता। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों का प्रस्तुतीकरण दिखाई नहीं देता। सुरज बडत्या की कहानी 'कबीरन' एक स्त्री किन्नर की कहानी है। लेखक ने कहानी को बड़ी मार्मिकता से रचा है। शिल्प-शैली का कहानी में भरपूर प्रयोग किया गया है। यह कहानी एक स्त्री किन्नर जीवन की कहानी है। समाज से पहले स्वयं का परिवार ही किन्नर को अपने घर में स्थान नहीं चाहता है। लेखक ने कहानी को आसान तरीके से ही प्रस्तुत किया है। परंतु कहानी में अंतर्गत उतार-चढ़ाव बहुत बार दिखाए गए हैं। अपनी बेटी समझकर कोई कबीरन को पास नहीं करता यह दुख कबीरन को है। कबीरन को अभी सामान्य समाज से उसका समाज अच्छा लगने लगा है, क्योंकि वहाँ बुरी तरह से या घृणा की नज़र से कोई नहीं देखता। जब कबीरन के भाई को कबीरन के बारे में पता चलता है, तब वह कोशिश करता है अपनी दीदी के घर आने की। परंतु कबीरन को यह स्वीकार नहीं है। वह कहती है- "मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकती। मैं ही तुम्हारे समाज में क्यों आऊँ ? तुम क्यों नहीं आते हमें मुक्त कराने हमारे समाज में ? कितनी कबीरन यहाँ घर से, समाज से बेदखल होकर ठोकरे खा रही हैं।"[1]

किन्नर भी मनुष्य है। उन्हें समाज में वह स्थान नहीं मिल पाता जो उन्हें मिलना चाहिए। हजारों प्रयत्नों के बाद आज किन्नर को अपना अधिकार मिल पाया है। वह भी पूर्ण रूप से नहीं, परंतु शुरूआत तो हुई है। कहानीकार अपने मार्मिक विचारों से कहानी को संपन्न बनाने की कोशिश करता है। वहाँ कही-न-कहीं कथावस्तु का पूर्ण भाव समझने में आता है। कहानीकार ने किन्नर विषय पर अपने मतों को भली-भाँति रखा है। जिससे पाठक को कहानी की अंतर्वस्तु समझने में आसानी होती है। कबीरन कहानी जैसी हजारों कबीरन हैं। जिन्हें प्यार व ममता की आवश्यकता है।

---

[1] कामरेड का बक्सा - सूरज बड़त्या, पृ.सं. 28

4.3.2 चरित्र-चित्रण

पात्रों के बिना कहानी की कल्पना करना उचित नहीं हो सकता । क्योंकि पात्रों के आधार पर कहानी जन्म लेती है। पात्र तथा उनका चरित्र-चित्रण कहानी को आसान तरह से प्रस्तुत कर सकता है। पात्रों की सहायता से कहानी को समझना आसान हो जाता है। पात्रों का परिवेश समयानुसार बदलता दिख रहा है। जिस तरह समाज का प्रभाव कहानी पर पड़ता है, उसी तरह कहानी के पात्रों पर भी समाज का प्रभाव पड़ता है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण को प्रस्तुत करती कहानी, पाठक वर्ग का केंद्र बिंदु बनती है। कहानी मुख्य रूप से प्रधान पात्र के समूह में घूमती रहती है। कहानी का प्रधान या मुख्य पात्र कहानी को पूर्ण तरह से चला सकता है। पात्रों की संख्या बढ़ जाने से कहानी में भटकाव का प्रश्न खड़ा होता है। इसलिए कम पात्रों के साथ रची कहानी की प्रभावशीलता सबसे भिन्न होती है। कहानी यथार्थ की हो सकती है या काल्पनिक घटनाओं की पात्रों का चित्रण मुख्य रूप से सजीव दिखाया जाता है। बदलते समाज के साथ कहानी का बदलाव हमारे समक्ष ही है। लक्ष्मीनारायण लाल कहते हैं- “सामान्य पात्र हमारे समाज में बीच के होते हैं। फलतः पात्रों से हमारा पूरा साधारणीकरण भी संभव हो जाता है कि ये पात्र हमारे देखे-सुने और जाने-पहचाने रहते हैं। आधुनिक कहानी कला की धारा में वस्तुतः लोकोत्तर पात्रों की अवतारणा बिल्कुल नगण्य है। आज का युग बुद्धिवादी युग है। इसे तर्क, विवेक और विश्लेषण में अधिक आस्था है, अंधविश्वास कल्पना और निष्ठा में कम । अतएव आधुनिक कहानी कला में सामान्य पात्र ही लिये जाते हैं, तो मानव संघर्ष और युग चेतना के प्रतीक होते हैं।”[1]

कहानी में विविध पात्र होते हैं। कोई प्रधान पात्र, कोई गौण पात्र, परंतु सभी की उपस्थिति आवश्यक होती है। पात्र के विविध रूपों को देख सकते हैं। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में पात्रों का बदलाव भी देखा गया है। स्त्री पात्र, बालक पात्र, पुरुष पात्र, वृद्ध पात्र,

---

[1] हिंदी कहानी की शिल्प विधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं. 224

किन्नर पात्र आदि विभिन्न पात्रों से कहानी को पूर्णता प्रदान की जाती है। कहानी का प्रधान पात्र अधिक रूप से जीवित दिखाया जाता है। प्रधान पात्र को अगर मृत घोषित करके कहानी आगे बढ़ती है तब उस कहानी की विशेषता कहीं-न-कहीं कम हो जाती है। क्योंकि कोई चाहता भी नहीं महानायक मृत हो। परंतु कभी-कभी कहानीकार विवश होता है। इसलिए उसे कहानी के लिए ऐसे निर्णय लेने पड़ते हैं। शिल्प के अंतर्गत चरित्र-चित्रण को कथावस्तु के पश्चात का मुख्य भाग माना जाता है। पाठक वर्ग भी बिना पात्रों की कहानियों में कोई रुचि नहीं दिखाता। चरित्र-चित्रण तथा पात्र यह भी शिल्प के अंतर्गत कहानी का मुख्य भाग बन जाते हैं। पात्रों को अनुचित तथा उचित कल्पनाओं से कथावस्तु को एक मार्ग मिलता है। जिससे कहानीकार सोचने पर विवश होता है कि पात्र को कैसे प्रस्तुत करें। उच्चवर्ग, निम्नवर्ग, गरीब, अमीर, लावारिस, जातिवादी आदि विविध धारणाओं को कहानीकार को सोचना पड़ता है। जिससे कहानी प्रभावशाली बने।

4.3.2.1 आदिवासी पात्र

शिल्प का महत्त्व कहानी के पात्र पर ठहरा हुआ होता है। पात्रों से कहानी में एक कला का निर्माण होता है। पात्र ही कहानी की जान होती है यह कह सकते हैं। राकेश कुमार सिंह की कहानी 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' आदिवासी धरातल पर ठहरी हुई है। आदिवासी पात्र 'बागुन मुंडा' कहानी का प्रधान पात्र है। कहानी का पूर्ण समावेश बागून मुंडा के आस-पास का दिखाया गया है। बागून मुंडा एक जागृत आदिवासी है। उसे अपने अधिकारों के बारे में पता है। अपने हाथ से जा रही जमीन को देखकर वह दुखी है। इसलिए बागून मुंडा आक्रोश से भरा हुआ है। सरकारी अधिकारी तथा गाँव के ठेकेदार सब मिलकर जंगल नष्ट करने की कगार पर है। यह बागून मुंडा को अच्छे से पता चल रहा है। परंतु सरकारी अधिकारी के सामने कुछ न करने के लिए वह हताश भी है। कहानी के अंतर्गत 'धानी' नामक आदिवासी लड़की से बागून मुंडा को प्रेम हो जाता है। धानी की बातों से ही बागून मुंडा के भीतर जंगल तथा

जंगलवासी के लिए कुछ-ना-कुछ करने की प्रेरणा जागृत होती है। बागून मुंडा अब एक जागृत आदिवासी की तरह ठेकेदार को पूँछता है- "बाकी बताओं तुम, जो मुंडा लोगन का जंगल लूटे ऊ का है... ? ऊ है डाकू । जो मनुष्यों से शिकार का हक छीने...जंगल में घुसे खातिर रुपया माँगे ऊ है खून पीना...जो मुंडा छौड़ियों के साथ जबरई से सुते ऊ कुक्कर...।"[1] बागून मुंडा जागृत हो चुका है। अब वह अपने अधिकारों से पीछे हटने वाला नहीं है।

मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'जंगली हिरनी' की प्रधान पात्र लच्छो है। कहानी में शुरूआत से अंत तक लच्छो-लच्छो-लच्छो यह नाम गुँजता सुनाई देता है। लच्छो खुले विचारों वाली लड़की है। उसे समाज की किसी भी बात से कोई शिकायत नहीं । लच्छो का जन्म कहानी की मुख्य विशेषता दिखती है। एक अंग्रेज के द्वारा बलात्कार किये जाने पर लच्छो माँ की कोख में आयी थी । लच्छो एक अंग्रेज की बेटी थी । यह बात लच्छो के पिता को बिल्कुल पसंद नहीं थी । लच्छो सुंदरता की मूरत है। वह बेहद खुबसूरत है। पूर्ण गाँव में वह अकेली सबसे अलग थी । गोरी-गोरी त्वचा, लंबा कद जैसे कोई जंगल की हिरनी । कहानीकार ने लच्छो का चरित्र-चित्रण बहुत बार सोच-समझकर रचा होगा ।

कहानी पढ़ने के बाद यह महसूस होता है। लच्छो को एक स्वाभिमानी लड़की दिखाया गया है। लच्छो को गाँव में आए एक शहरी बाबू से प्रेम होता है। परंतु आदिवासी को फंसाना शहरी जीवन का भाग बन चुका है। लच्छो को शहरी बाबू छोड़कर उसकी दुनिया में वापस चला जाता है। फिर से लच्छो जंगल में अपने सुहाने गीत गाती अपना जीवन व्यतीत करती है।

4.3.2.2 दलित पात्र

अपने अस्तित्व की खोज करता समाज, जिसे पूर्ण समाज में पिछड़ा कहकर अपने से दूर कर दिया । सभ्य, सवर्ण समाज ने हमेशा इनका तिरस्कार किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'बैल की खाल' के अंतर्गत कहानीकार ने दो पात्रों को प्रधानता दी है। 'काले'

---

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश कुमार सिंह, पृ.सं. 130

और 'भूरे' यह दोनों कहानी के मुख्य पात्र के रूप में सामने आते हैं। काले और भूरे दलित समाज के पात्र हैं। इनका काम गाँव में मरे हुए जानवरों की खाल निकालकर जानवरों को गाँव से बाहर फेंकना। काले और भूरे के अतिरिक्त गाँव में यह काम कोई नहीं करता है। एक पंडित का बैल मर जाता है, और काले और भूरे गाँव में नहीं रहते हैं तब उनकी गाँव वालों को कितनी आवश्यकता है। यह कहानी में दिखाई गया है। काले और भूरे को यह काम करना पसंद नहीं है। परंतु सवर्णों के समाज में वह यह काम छोड़कर दूसरा कोई काम ही नहीं करने देते। क्योंकि सवर्णों के कानून में लिख के रखा है कि सारी गंदगी भरे कामों को बस दलित वर्ग ही करेगा। कितनी शर्मिंदगी की बात है।

इक्कीसवीं सदी में पहुँचकर भी समाज का यह हाल है। उपर्युक्त वाक्य की पूर्ति करता संदर्भ- "जब तक बैल जीवित था तो कोई बात नहीं थी। कल तक अन्न उगाने वाला बैल मरते ही अपवित्र हो गया था। जिसे छूना तो दूर उसके पास खड़े होना भी किसी पाप से कम न था।"[1] यहाँ पिछड़ा किसे कहाँ जाए वही बड़ा प्रश्न है।

रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बदन दबना' का प्रधान पात्र है पूछाराम। जो दलित समाज का लड़का है। गांधीवाद और अंबेडकरवाद दोनों विचारधाराओं को मानता है। पढ़ने की बहुत आशा है। लेकिन गरीबी पढ़ने नहीं देती। बहन की शादी करवाने के लिए पाँच सालों के लिए हलका सिंह नामक पहलवान के पास बंधुआ बना दिया है। अपनी आशा-आकांक्षाओं को शिक्षा के माध्यम से पूरा करना चाहता है। परंतु सवर्ण समाज इसकी मंजूरी पुछाराम को नहीं देता। गरीबी उसके ऊपर दलित जाति यह दोनों पुछाराम के बड़े दुश्मन बन चुके हैं। जिससे वह बाहर निकलना चाहे तो भी निकल नहीं सकता।

पुछाराम कहानी का प्रधानपात्र होते हुए भी एक विवशमयी जिंदगी को जीता आया उसे चित्रित किया गया है। अन्याय का सामना करने की ताकत पुछाराम में नहीं है। क्योंकि

[1] सलाम - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 32

लड़कर भी उसके हाथ कुछ नहीं लगने वाला है। यह पुछाराम को भली-भाँति पता है। जातिवाद के नाम पर पुछाराम को विवश और बेबस चित्रित किया गया है। अपनी आँखों के सामने अपनी बहन की बारात जाती है, लेकिन उसे आखरी बिदाई देने भी पुछाराम नहीं जा सकता। कहानी का पुछाराम पात्र विवश और निराश दिखाया गया है।

4.3.2.3 मुस्लिम पात्र

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में सभी पात्रों का समावेश दिखाया गया है। जिसमें विविध धर्म, जाति, वर्ण को चित्रित किया गया है। रूपसिंह राठौड़ की कहानी 'इकबाल अमर है' इकबाल की कहानी है। इकबाल कहानी का मुख्य पात्र है। इकबाल का चरित्र-चित्रण लेखक ने बड़ा अच्छा किया है। इकबाल एक वफादार अधिकारी था। कहानीकार ने कहानी की शुरूआत में ही प्रधान पात्र को मृत चित्रित किया है। पूर्ण कहानी एक आपबीती की तरह दृष्टिगत होती है। इकबाल अभी अपने फर्ज को नीचा नहीं दिखाना चाहता था। वह अपने कार्य के प्रति हमेशा निष्कपट था। उसकी इसी ईमानदारी ने इकबाल की जान ले ली। चुनाव के वक्त हुई कुछ कहा-सुनी में इकबाल को मार दिया जाता है। "जब तक सूरज चाँद रहेगा, इकबाल तेरा नाम रहेगा।"[1] के नारे लगने लगे। जब तक वह जीवित था, उससे सब अधिकारी जलते थे। क्योंकि ना वह रिश्वत लेता था ना ही किसी को लेने देता था। यही कारण है कि इकबाल अभी दुनिया में नहीं रहा। इकबाल कहानी की शुरूआत में ही दुनिया छोड़कर चला जाता है। फिर भी कहानीकार ने अपनी विचारशीलता से उसे पूर्ण कहानी में जीवित रखा है।

रतिलाल शाहीन की कहानी 'अब्दुल जिंदा है' यह पात्र पूर्णतः इकबाल के विपरित है। अब्दुल कहानी का एकमात्र प्रधान पात्र है। कहानीकार ने प्रधान पात्र की अनेक विशेषताओं को कहानी में चित्रित किया है। अब्दुल कट्टर मुस्लिम विचारधारा का पात्र है। उसे बस दुनिया

[1] कोई है - रूपसिंह राठौड़, पृ.सं. 38

में नाम और पैसा दोनों कमाना है। क्योंकि अब्दुल को लगता है कि बिना नाम के कोई पहचानता नहीं और बिना पैसे के जिंदगी चलेगी नहीं । वह बहुत से मार्ग अपनाता है। आखिर में गलत मार्ग की ओर ही बढ़ता है और अपनी जिंदगी का सबसे गलत फैसला लेता है। यहाँ भी कहानीकार प्रधान पात्र अब्दुल को कहानी की शुरूआत में ही मृत घोषित करता है। फिर भी पूर्ण कहानी में अब्दुल का नाम ही गूँजता रहता है।

मुहल्ले की लड़ाई में अब्दुल को कौन मार देता है इसका पता भी नहीं चलता है। अब्दुल ने नाम और पैसे दोनों कमा लिए परंतु समय से पहले ही वह दुनिया छोड़कर चला गया । यह कहीं-न-कहीं अब्दुल की बेवकूफी थी । जो समय से पहले सब पाना चाहता था, परंतु उसे आखिर मौत ही मिली । अब्दुल की लाश को बड़ी शौहरत से बिदाई मिली । लेखक कहता है, अब्दुल के नाम का खौफ मोहल्ले में होने के बावजूद भी आज उसकी अर्थी को कंधा देने पूरा मोहल्ला शान से आगे आया है।

4.3.2.4 वृद्ध पात्र

कहानी की बात निकल रही है तो सभी उम्र के पात्रों को कहानी में सम्मिलित करना आवश्यक बन जाता है। इक्कीसवीं सदी का युग बहुत आगे बढ़ चुका है। सब में बदलाव आ गए हैं। वैसे ही पात्रों का बदलाव भी उचित ही है। अवधेश प्रीत की कहानी 'सी-इंडीया' आधुनिकता की ओर बढ़ रहे समाज का चित्रण है। कहानी के अंतर्गत अनेक पात्रों को चित्रित किया गया है। मुख्य पात्र राजीव रंजन है। जो अगले तीन सालों में रिटायर्ड होने वाला है। राजीव रंजन के अखबार कार्यालय में पुराने टाईपराईटर की जगह नए कम्प्यूटर आने वाले हैं। जिसे नयी तकनीकी में काम नहीं कर पाएगा शायद उसकी छुट्टी भी हो सकती है। राजीव रंजन इसी दुविधा में फंसा हुआ है कि नौकरी गई तो बेटी की शादी कैसे होगी, बेटा कुछ कमाता नहीं । जिंदगी कितने प्रश्नों से घिरी है। अब नौकरी बचाने के लिए वृद्धावस्था में कम्प्यूटर

सिखना है। जिससे राजीव रंजन बहुत डर रहा है। लेकिन राजीव के पास अभी कोई दूसरा मार्ग नहीं बचा था। जिसे वह इस्तेमाल कर के बच पाए।

सूर्यबाला की कहानी 'गौरा' गुणवंती गौरा की दादी जिनका कोई नाम नहीं दिया है। बस उन्हें पूर्ण कहानी में ताई कहकर बुलाते हैं। यहाँ ताई कहानी की गौण पात्र है। ताई की जान है उनकी पोती गौरा में। कहानी में गौरा और ताई इन दोनों को अधिक मात्रा से चित्रित किया गया है। गौरा बिना माँ-बाप की बेटी होती है। इसलिए गौरा की दादी को उस पर ज्यादा ही प्यार होता है। ताई की उम्र अब ज्यादा हो चली है। वह कमरे से बाहर भी आ-जा नहीं सकती। ताई के अकेलेपन का बस एक ही सहारा है गौरा। जिसकी भी अब शादी तय हो चुकी है। अब ताई का आसरा कोई नहीं बचा। यह सब सोचकर ताई अंदर ही अंदर घुटती जा रही थी। "ताई अब इधर बेहद कमजोर हो गयी थी, दवा देती, पॉट लगाती या बिस्तर ठीक करती, आशीर्वादों भरे स्वर गूँज-गूँज कर समाप्त होते रहते- राजरानी होगी बेटी ! या हिंरे-मोती से लदी। कभी-कभी मन करता ताई के पैर पकड़कर रो पड़ूँ...ताई, बस भी करो ना...यह विडंबना भरा आशीर्वाद।"[1]

वृद्धावस्था कभी-कभी सुख तो कभी-कभी दुःख का एहसास करवाती है। परंतु यह समय ही ऐसा होता है जहाँ कुछ भी कहा नहीं जा सकता। बस समय के साथ आगे बढ़ना यही काम बच जाता है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में चित्रित वृद्ध समस्याओं को पात्रों के आधार से आसानी से समझा जा सकता है। उम्र के इस पड़ाव पर हो रही पीड़ा को समझना नामुमकिन है।

4.3.2.5 बाल पात्र

कहानी के पात्र कहानी में जान डाल देते हैं। हँसी से गूँजता माहौल सभी दुखों को भूला देता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में बाल मजदूरी बाल उत्पीड़न ऐसे

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 15

पहलुओं को भी चित्रित किया गया है। जिसे देखना थोड़ा भयावह लगता है। मजबूर जिंदगी में पेट के लिए कुछ भी करना आवश्यक है। शिव अवतार पाल की कहानी 'बँधुआ' जिसका प्रधान पात्र है 'लक्खू' जो मात्र चौदह वर्ष का है। पिता कुछ काम करते नहीं। माँ अकेले घर को संभाल रही है। यह सब देखकर लक्खू परेशान है। छोटी उम्र में ही लक्खू बड़ा बन गया था। लक्खू का नाम उसके माँ ने ही लखपति रखा था। सोचकर की मेरा बेटा हमेशा पैसे में खेलेगा। परंतु हुआ पूरा उसके विपरित। यहाँ लक्खू को खाने के लिए एक वक्त की रोटी नहीं है। घर की दुनिया छोड़ लक्खू शहर की तरफ दौड़ा। पैसा कमाने की आस में जो वह भी टूट गयी और लक्खू बंधुआ बन कर रह गया। लक्खू को पता ही नहीं चला वह बँधुआ कब बना- "वह सन्न रह गया। उसके वर्तमान का नंगा सत्य उजागर हो गया था। अब वह लक्खू नहीं बँधुआ था। बंधुआ यानी खूँटे पर बँधा जानवर, जिसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। उसके जीवन की बागडौर मालिक के हाथ में होती है, वह जैसे चाहे उसे नचाता है। यह एक शब्द लाखों दीमकों को समूह बनकर वर्तमान और भविष्य चटकर लेता है।"[1] गाँव के खेतों में, नदियों में खेलने वाला बचपन अब चमड़े के कारखानों में बंद हो चूका था।

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'संघर्ष' का प्रधान पात्र शंकर जो मात्र सात या आठ साल का है। कहानी की शुरूआत में एक जिद्दी लड़का अपनी मनमानी करने वाला, अपनी ही सुनने वाला, सब सताते रहता। शंकर दलित वर्ग का बेटा था। कहानीकार ने बड़ी मार्मिकता से शंकर का वर्णन किया है। जातिवाद का कीड़ा छोटे-बड़े सबको काँटता है। यह दर्द अब शंकर महसूस कर रहा है। शंकर को पसंद नहीं है कि उसकी नानी गाँव का गंदा काम करे। मैला उठाने का, रास्ते साफ करने का यह काम शंकर को पसंद नहीं है। शंकर को लेखिका ने एक क्रांतिकारी के रूप में दिखाया है। जो जातिवाद मानने वाले समाज का विरोध करता है। कहानी का पात्र कहानी की मुख्यधारा होता है। पाठक पात्र के सहारे आगे की कहानी के

[1] वर्तमान साहित्य पत्रिका (जून 2010) - शिव अवतार पाल, पृ.सं. 57

संबंध में सोचता है। पात्र की भूमिका महत्वपूर्ण बन जाती है। यहाँ शंकर भी उसी भूमिका में है। शंकर अन्याय के विरोध में लड़ना चाहता है। अगर काम बुद्धि से न हो तो वहाँ बल का प्रयोग करने के लिए भी वह तैयार है। शंकर का यह संघर्ष उसके जीवन का सबसे बड़ा संघर्ष ठहरा । उसने अपने अधिकारों को छोड़ा नहीं । समाज में चल रही जाति, रूढ़िवादी परंपरा का शंकर ने विरोध करके न्यायवादी समाज की तरफ अपना पहला कदम बढ़ाया है। यही जागरूकता अगर सभी में निर्माण हो तो शायद जातिवाद का कीड़ा मर सकता है।

4.3.3 संवाद/कथोपकथन

बिना वार्तालाप के कोई भी वस्तु पूर्ण नहीं होती । संवाद करना मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। बिना संवाद किसी भी निष्कर्ष तक पहुँचा नहीं जा सकता । संवाद मनुष्य में सजीवता निर्माण करता है। बिना शब्द के भाषा नहीं वैसे ही बिना, संवाद के जीवन नहीं । शिल्प का संवाद मुख्य तत्व भी कहलाता है। कथावस्तु को प्राण प्रदान करने का कार्य कथोपकथन या संवाद करता है। संवाद दो व्यक्तियों के बीच का हो सकता है अथवा दो से अधिक के बीच का । संवाद कहानी का मर्म बताता है। अशोक कुमार गुप्ता कथोपकथन के बारे में कहते हैं कि- "कहानीकार अपनी रचना में कथोपकथन के अनेक भेदों का प्रयोग करता है। इनमें भावात्मक, नाटकीय, व्यंग्यात्मक, दार्शनिक आदि कथोपकथन प्रमुख हैं। इन सभी भेदों का आयोजन पात्रों के चरित्रांकन को प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। कथोपकथन कहानी शिल्प का वह उपकरण है जिसमें कथावस्तु परिष्कृत, सजीव, सटीक एवं अभिनव बनती है। कहानियों में संवाद संक्षिप्त, उपयुक्त, अनुकूल एवं मार्मिक होने पर ही पाठक रसानुभूति का अनुभव करता है।"[1]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कथोपकथन शिल्प का मुख्य घटक माना जाएगा । इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में संवाद को विविध चरणों को देखा

---

[1] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प-विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 4

जा सकता है। संवाद का कोई भी विषय हो सकता है। सामाजिक स्तर, राजनीतिक स्तर, आर्थिक स्तर, सांस्कृतिक स्तर या धार्मिक स्तर आदि । कहानी की कथावस्तु पर कहानी का संवाद निर्भर होता है। कहानीकार की कहानी का काल भी संवाद पर प्रभाव डालता है। समय जैसे बदलता जाता है, उसी तरह शिल्प भी बदलता रहता है। संवाद की भाषा, काल, कथावस्तु आदि सभी पर कहानी का संवाद निर्भर होता है। संवाद कभी-कभी क्रोधपरक, प्रेमपरक, ईर्ष्यापरक आदि किसी भी भाव पर निर्भर होता है। संवाद कहानी का प्राण होता है। संवाद से कहानी के पात्रों के चरित्र-चित्रण का पता चल सकता है। संवाद के समय पात्रों का कौतूहल, जिज्ञासा, कुछ नवीनता का आभास यह सब पाठक को आकर्षित या साहित्य के प्रति रुचिता का भाव निर्माण करते हैं। मुख्य संवाद कहानी की कथावस्तु पर निर्भर होता है। कहानी जिस स्वरूप से दर्शायी गयी है, यह आवश्यक है कि संवाद भी कहानी के अनुकूल ही दर्शाया जाए। क्योंकि कहानी तथा कहानी का संवाद एक ही प्रवाह की ओर बढ़ते दिखने चाहिए अन्यथा कहानी तथा उसके पात्र दोनों का कोई तालमेल देखा नहीं जा सकता है। कथोपकथन की भाषा भी कहानी के अनुकूल होनी चाहिए । यह सभी सही ढंग से प्रस्तुत हो तभी कहा जाता है कि कहानी शिल्प के सही ढाँचे में उतरी है। कथोपकथन एक तरह से पात्रों के व्यक्तित्व का चित्रण भी करता है। कथोपकथन के माध्यम से कहानी की शिल्पगत विशेषता देख सकते हैं।

4.3.3.1 राजनीतिक संवाद

इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ संवाद से विविध प्रकारों से दर्शाया गया है। राजनीति के क्षेत्र पर कहानियाँ आसमान छू गयी हैं। प्रत्येक क्षेत्र में राजनीति का पहनावा देखने को मिलता है। पारिवारिक राजनीति हो या सामाजिक राजनीति हो सब जगह भ्रष्टाचार का ही चित्रण है। सुभाष नीरव की कहानी ‘सुराख’ राजनीति में हो रहे भ्रष्टाचार का पक्का सबूत है। राजनीति के नाम पर चल रहे घोटाले को लेखक ने कहानी के माध्यम से चित्रित किया है। कहानी का

मुख्य पात्र मि. जोशी है। मि.जोशी के सर्वदाता एक राजनैतिक नेता है। कहानी में उनका कोई नाम नहीं दिया हुआ है। बस मंत्री नाम से पूर्ण कहानी में संबोधित किया गया है। मंत्रीजी काफी वर्षो से राजनीति में हैं। पर अब उनका भ्रष्टाचार समाज के सामने आ रहा है। रेडिओ, दूरदर्शन, अखबार सब तरफ भ्रष्टाचार का मामला बाहर आ रहा है। मि, जोशी मंत्री जी को तसल्ली देते हुए यह संवाद- "सर, जिस बात का मुझे भय था, वही हो गई। आपका यह इंटरव्यू जब टेलिकास्ट होगा तो और अधिक हड़कंप मचेगा। और यदि इंटरव्यू जब पी. एम साहब ने...।"

वह एकाएक चेते। यह क्या कर डाला उन्होंने ? इस ओर तो उन्होंने सोचा ही नहीं।

"तो फिर"

"सर...आप घबराएँ नहीं, सर ! मैं देखता हूँ, क्या हो सकता है"

"मैं अभी एजेंसी को फोन करता हूँ।"[1]

अगर राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य अच्छे से निभाया जाए तो इतनी परेशानी होगी ही नहीं। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बदन दबना' में हलका सिंह जो एक पहलवान है। गाँव में उसका एक रूतबा है। यह रूतबा अच्छाई का नहीं बल्कि बुराई का है। पिछले पाँच चुनावों में पुछाराम ने अपना नाम दिया परंतु एक भी बार वह चुन कर नहीं आया। हमेशा हलकासिंह के चेहरे पर एक रूबाब दिखता था। जैसे इस बार वह खड़े हुए मतलब वही जीत के आएंगे। पर ऐसा एक बार भी नहीं हुआ। इसका गुस्सा वह घर वालों पर निकालते। राजनीति की माया हलका सिंह के सर से उतर नहीं रही थी। हलका सिंह के पिता गाँव के सरपंच थे। परंतु उनके बाद सरपंच या वार्ड पंच की उपाधि फिर से घर में आयी ही नहीं। यहाँ हलका सिंह और मंत्री दोनों पात्र भी हमेशा से अपने-अपने तरह से कोशिश करते आए। परंतु सफल न हो पाए। शायद राजनीति की नीति ही ऐसी होती है, जो मनुष्य को अपने आस-पास ही घुमाती रहती है। पर भीतर सभी को उतरने नहीं देती। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में राजनीति का

---

[1] औरत होने का गुनाह - सुभाष नीरव, पृ.सं. 85

काला सच कहानीकारों ने अच्छी तरह से चित्रित किया है। जिससे पाठक वर्ग समझ रहा है उनके आस-पास का माहौल कितना भ्रष्टाचारी हो चुका है।

4.3.3.2 सामाजिक संवाद

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मनुष्य का पूर्ण जीवन समाज पर अवलंबित होता है। क्योंकि उसे इसी समाज में रहना है। आते-जाते सभी मनुष्य का एक-दूसरे से कोई-न-कोई नाता जरूर बन जाता है। पंखुरी सिन्हा की कहानी 'सफर पूर्वा' की कहानी है। कलकत्ते से दिल्ली ट्रेन से जा रही पूर्वा के सफर की कहानी है। सफर के दौरान भी मनुष्य अपनी-अपनी सामाजिक सोच को दूर नहीं रख सकता है। ट्रेन में चढ़ी एक सिख औरत के साथ पूर्वा भी थी । वह औरत उम्र में थोड़ी ज्यादा थी । ट्रेन में शुरू हुआ उनका वार्तालाप-

"आप कलकत्ते में रहती हैं ?"

"नहीं, दिल्ली में ।"

"यहाँ रिश्तेदारों से मिलने आयी थीं ?"

"नहीं, दरअसल मैं दिल्ली में पढ़ती हूँ । युनिवर्सिटी में, यहाँ एक वाइवा लेने आयी थी ।"

"आप कॉलेज में पढ़ाती हैं ?"

"मैं अमृतसर में पढ़ाती थी, सरकारी स्कूल में ।"

"यहाँ प्राईवेट टयूशन करती हूँ ।"

"कलकत्ते में ।"

"हाँ, दिन में बाहर टयूशन करती हूँ ।"[1]

संवाद एक ऐसी शैली है, जिससे मन में हलकापन महसूस होता है। सामाजिक स्तर पर जब हम चार लोगों से मिलते हैं, सबके अपने-अपने विचार होते हैं। अपनी-अपनी मान्यताएँ होती हैं। समाज में रहने वाले सभी को एक साथ चलने की आवश्यकता है। तभी सामाजिक

[1] किस्सा-ए-कोहिनूर - पंखुरी सिन्हा, पृ.सं. 129

तौर पर हम सब एक-दूसरे की मदद कर सकते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिये' में सामाजिक स्तर की यह साझेदारी देख सकते हैं। कॉलेज में पढ़ रहे सभी दलित विद्यार्थी एक साथ हैं। क्योंकि सवर्ण विद्यार्थी उन्हें कॉलेज तथा हॉस्टेल में चैन की सांस लेने नहीं देते हैं। समाज में रहते हुए भी जातिवाद की भावनाओं में जीता सवर्ण समाज हमेशा किसी-न-किसी कारण की वजह से दलित विद्यार्थी को परेशान करते हैं। समाज में रह रहा मनुष्य सभी एक स्तर का होता है। किसी को यह हक या अधिकार नहीं छोटा या बड़ा बनाने का। मनुष्य की गणना उसकी गुणवत्ता से होनी चाहिए न कि उनकी जाति से। शिक्षित समाज भी अगर जातिवाद को मानता रहा तो अशिक्षित वर्ग का तो कुछ कह ही नहीं सकते। सामाजिक प्रताड़ना के कारण कहानी के अंतर्गत एक दलित विद्यार्थी आत्महत्या करता है। यही सामाजिक विकृति मनुष्य के भीतर रहनी नहीं चाहिए। समता, समभाव या विचार सब के मन हो तो शायद समाज में जातिवाद की नौबत फिर से जन्म ही नहीं लेगी।

4.3.3.3 सांस्कृतिक संवाद

हमारा भारत देश अपनी संस्कृति के लिए पूर्ण विश्वभर में जाना जाता है। जितने राज्य हैं, उतनी ही उनकी संस्कृति भिन्न है। संस्कृति की यही भिन्नता हम इक्कीसवीं सदी की कहानियों में देख सकते हैं। कहानियों में सांस्कृतिक धरातल की विभिन्न कहानियाँ दिखाई गयी हैं। यहाँ की संस्कृति है सबको साथ लेकर चलने की। यहाँ घर-परिवार को अधिक महत्व देते हैं। यहाँ प्रत्येक खुशी को आपस में बाँटा जाता है। यही संस्कृति है। मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'टोना' के अंतर्गत आदिवासी संस्कृति का चित्रण किया गया है। गोबर से घर को लिपना। अगर कुछ अशंकाएँ हो, शरीर का कोई दर्द हो तो गाँव में काकी नामक एक पात्र है, जो चावल के जरिए सब कुछ बता देती है। ऐसी यहाँ के लोगों की मान्यताएँ हैं।

"काकी कल मैंने एक सपना देखा है, तू चावल बीनकर देख तो, किसी ने टोना तो नहीं किया।"

“साँझ को बीन दूँगी, अभी मंदिर जाना है, एक लड़की का पेट फूल गया है। किसी ने टोना किया है, उतारना है।”

“नहीं, अभी बीन मेरा जी कल से ठीक नहीं है मन में खटका-सा है।”

“चल न, जरूर टोना है।”

“अच्छा, बीन दूँगी, जा गोबर से धरती को लीप।”[1]

अपने-अपने समाज की अपनी-अपनी संस्कृति होती है। जिसे जो पसंद है वो ही करता है। यादवेंद्र शर्मा चंद्र की कहानी ‘घरौंदा नहीं घर’ में कहानीकार ने पारिवारिक जीवन की संस्कृति को चित्रित किया है। घर बस चार दीवारों से नहीं बल्कि उनमें पनपने वाले रिश्तों से बनता है। घर भी हमारी संस्कृति का एक हिस्सा है। जहाँ परिवार मिलकर रहता है। यह कहानी भी वही दर्शाती है। पति-पत्नी के बीच बढ़ते टकराव के कारण घर में होता कलह नायिका को सहा नहीं जाता। लेकिन पति से अलग होकर जब एक छोटी-सी बच्ची गोद लेती है तब उसकी दुनिया ही बदल जाती है। बेटी अनामिका जो अपनी माँ के जीवन में सभी रंग भर देती है। यहाँ रिश्तों को महत्व दिया गया है। उसके प्रेम को समझा गया है। हमारे देश की संस्कृति हमें प्यार करना सिखाती है। एक-दूसरे को इज्जत देना सिखाती है। आत्मसम्मान से जीना सिखाती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में हमें यह संस्कृति देखने को मिलती है। माँ और बेटी के पवित्र रिश्तों का यहाँ अलग ही मान है। उसी रिश्ते का चित्रण हमें इस कहानी में देखने को मिलता है। कहानी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाती है। यथार्थ पर ठहरी हुई कहानी कहीं-न-कहीं मनुष्य जीवन का आईना है। जिसमें मनुष्य का दुश्मन और कोई नहीं वह स्वयं रहता है। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक सांस्कृतिक धरातल पर मनुष्य की मानसिकता को दिखाता है। शिल्प के तत्व कहानी के प्राण इसलिए हैं क्योंकि उसमें समाज का दर्पण झलकता है।

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 29-30

4.3.3.4 धार्मिक संवाद

भारतीय संस्कृति में धर्म की बड़ी मान्यता है। यहाँ मनुष्य की पहचान ही उसके धर्म से की जाती है। लगभग हजारों से अधिक मंदिरों को हम भारत में देख सकते हैं। इसी का प्रभाव हमें कहानियों में दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में धर्म से संबंधित अनेक धारणाओं को रेखांकित किया गया है। जिससे भारत में कितनी विविधता है यह समझ सकते हैं। सुषमा जगमोहन की कहानी 'मोक्ष' के अंतर्गत भारत के सबसे पवित्र स्थान गंगा नदी का चित्रण किया गया है। वहाँ के लोगों की क्या धारणाएँ हैं, उसे बताया गया है। जापान तथा कोरिया से चार लड़कियाँ भारत दर्शन के लिए आयी हैं। भारत की जगहों के बारे में कहने के लिए उन्होंने भारत का एक गाईड रखा है। गाईड सभी पवित्र स्थलों के बारे में चारों लड़कियों को बताता है। गाईड कहता है गंगा में जो एक बार चला गया उसे 'मोक्ष' की प्राप्ति होती है। चार लड़कियों में से एक लड़की इसे सच मानकर मोक्ष की प्राप्ति के लिए गंगा में कुद जाती है। उसके बाद का यह संवाद-

"मैं कहा हूँ ?"

"क्या मुझे मोक्ष मिल गया ?"

"लेकिन मोक्ष के बाद मैं कहाँ आ गयी हूँ ?"

"ओह, ये तो वही चेहरे नजर आ रहे हैं, जो गंगा किनारे नजर आ रहे थे । क्या ये लोग भी मेरे साथ ही गंगा में विलीन हो गये थे ?"

"अरे गजू गाईड, तुम भी साथ आ गये । अच्छा हुआ, अब तुम मुझे बताओं मोक्ष प्राप्ति के बाद क्या करना होता है ? और सू तुम भी ! और तुम भी ।"[1] सब कुछ अपनी मान्यताओं पर निर्भर होता है। जिस तरह से हम विचार करतें हैं उनकी प्रतिमा हम पर ही दिखाई देती है।

[1] कोई मेरा अपना - सुषमा जगमोहन, पृ.सं. 117

पंखुरी सिन्हा की कहानी ‘कोई भी दिन’ की पृष्ठभूमि भी धार्मिक मान्यताओं की ही है। वर्षो बाद माँ के दोनों बेटे सोनू और बबलू घर में आने वाले हैं। माँ धार्मिक विधि-विधाओं को बहुत मानती है। कुछ अपशकुन न हो जाए मेरे बेटों की खुशी को किसी की नजर ना लग जाए, ऐसे प्रश्नों में घिरी होती है। संक्रांति त्यौहार पर बेटे घर पर आने वाले हैं। इस बार की संक्रांति मंगलवार को आ रही थी । संक्रांति मतलब तील और गुड़ का त्यौहार होता है। परंतु मंगलवार के दिन तील को बाँटना अशुभ होता है। इन सबका निवारण ढूँढ़ने के लिए माँ पंडित के घर जाना चाहती है। जिससे वह समझ सके उसे तील दान करने है या नहीं । धार्मिकता कहीं न कहीं अंधश्रद्धा की ओर बढ़ती जा रही है। तील को मंगलवार को बाँटने से उसमें कौन-सा नुकसान हो सकता है। यह बस एक मन का और समाज में चल रही कुरितियों का वहम है। जिससे मनुष्य की मानसिकता भी बदलती जाती है। सच्चाई का सामना ना करते हुए, बस जो धर्म के नाम पर चल रहा है। उसे आँखें बंद करते जाते हैं। कहानियों में समाज में चल रही सभी गतिविधियों को दिखाया जाता है। उसमें सही और गलत को हमें समझना है।

4.3.3.5 आर्थिक संवाद

मनुष्य जीवन भर कष्ट करता है अपना जीवन सुधारने के लिए । जीवन के अंत में बस कुछ सुख हमें मिल जाए यही आशा करते हैं। परंतु आज का समाज मनुष्यता से अधिक पैसों को मानने वाला है। पैसों के लिए कुछ भी कर उतरने को तैयार बैठे हुए होते हैं। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में पैसों की जरूरत मनुष्य को कितना बेबस करती है यह दिखाया गया है। क्षमा शर्मा की कहानी ‘न्यूड का बच्चा’ मन को दहला देने वाली कहानी है। कहानी की नायिका वीनू अपने माता-पिता की बात न सुनकर गलत राह पर निकल पड़ती है। जिससे विवाह किया वह कुछ ही दिनों में वह भगवान को प्यारा हो गया । हाथ में बेटा लिए समाज का सामना करती वीनू जूझ रही है आर्थिक परेशानियों में । आखिर अपने देह को ही पैसा कमाने का साधन बना लेती है। उसी बीच माधवन नामक एक व्यक्ति से पहचान बढ़ती

है। वह वीनू को 'न्यूड फोटोग्राफी' करने को कहता है। जिससे वीनू को मन चाहे पैसे मिलने वाले थे-

"मैं जिस तरह की तस्वीरें खींचता हूँ उनके लिए आप जैसी भरे-पूरे बदन की स्त्री चाहिए।"

"क्या मतलब ?"

"आप चौंकिए मत। रेम्यूनरेशन बहुत अच्छा है। मैं न्यूड फोटोग्राफी करता हूँ।"

"न्यूड"

"तो। प्रोफेशन तो प्रोफेशन है। और न्यूडिटी में कला नहीं होती किसने कहा।"

"मिलिंद सोमण और मधु सप्रे का फोटो नहीं देखा जिसमें उन्हें रातों-रात स्टार बना दिया।"

"तो क्या मैं भी रातो-रात स्टार बन सकती हूँ। तब मुझे ऐसा-वैसा कोई काम नहीं करना पड़ेगा।"[1]

विवशता मनुष्य से कुछ भी करवा सकती है। यह समय हमेशा मनुष्य की परीक्षा लेता ही रहता है। अनिता गोपेश की कहानी 'कैसे-कैसे दिन' प्रकृति के कहर का असर मनुष्य को कौन से कुएं में ढकेल देता है। यह उसकी कहानी है। प्राकृतिक विपदाओं के कारण मनुष्य जीवन पर होते परिणामों की यह कहानी है। रहने को घर नहीं, खाने को खाना नहीं, बिमारियों की वजह से बहुत से बच्चे और बुढ़ों की मौत हो रही है। यह सब देखकर कहानी की नायिका दुर्गी बहुत परेशान है। दुर्गी के बच्चे भी छोटे हैं। सरकार कुछ मदद नहीं कर रही है। ट्रकों में पॅकेट भरकर खाना फेंक के चले जाते हैं। जो एक को मिलता है एक को नहीं। कभी-कभी तो पेट भरने के लिए खराब हुआ खाना भी खाना पड़ता है। प्लॅस्टिक के पॉलिथिन को जोड़-जोड़ कर दुर्गी ने अपने रहने के लिए छोटी-सी झोपड़ी बनाई है। जिसके आर-पार से हवा आती-जाती रहती है। बच्चे ठंड से काँप रहे हैं। पर क्या करें दुर्गी के पास पैसे नहीं अपनी जरूरतों को

[1] नेम प्लेट - क्षमा शर्मा, पृ.सं. 84

पूर्ण करने के लिए कहानी में प्रयोग किए प्रत्येक शब्द पाठक के मन को लगने वाले हैं। इससे कहानीकार की प्रभावशीलता का पता चलता है।

4.3.4 देशकाल/वातावरण

देशकाल या वातावरण शिल्प का मूल या महत्वपूर्ण घटक कहलाएगा। कथावस्तु की प्राथमिकता कहानी का वातावरण होता है। कौन-सी परिस्थिति या स्थिति में कहानी लेखन का काम हुआ है, यह जानने के लिए वातावरण मुख्य घटक बन जाता है। कहानी ऐतिहासिक है या आधुनिक है यह समझने के लिए वातावरण का कहानी के अंतर्गत समावेश अनिवार्य है। विभिन्न प्रकार के वातावरण का समावेश कहानियों में देखा जा सकता है। जैसे- जंगली वातावरण, पहाड़ी वातावरण, शहरी वातावरण, ग्रामीण वातावरण या जहाँ किन्नर समाज रहता है उस समय का वातावरण । आदि वातावरणों का समावेश इक्कीसवीं सदी की कहानियों में देखा गया है। कहानी के स्तर पर देखा जाए तो वातावरण का तत्व कहानी की विशेष जरूरत है। इसके आधार पर कथावस्तु को उभारा जा सकता है। लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार- "आधुनिक सामाजिक कहानियों में देश-काल परिस्थिति के अंतर्गत परिस्थिति तत्व के चित्रण में अपूर्व बल दिया जाता है। इसके चित्रण में इतनी व्यापकता आती जा रही है कि एक ओर इसके अंतर्गत देश काल के वर्णन की अभिव्यक्ति अत्यंत व्यंजनात्मक रूप में हो जाती है, और दूसरी ओर इसकी विशदता से कहानी में ऐसा सुगठित वातावरण प्रस्तुत होता है जिसके सकल परिप्रेक्ष्य में कहानी की समूची संवेदना, पात्रों की गति के साथ पाठक के सामने चित्रित हो जाती है।"[1]

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि शिल्प के सभी तत्व आपस में ही जुड़े हुए हैं। किसी एक तत्व की अनुपस्थिति भी कहानी पर उल्टा प्रभाव डाल सकती है। कहानी का वातावरण किसी भी क्षेत्र का दिखाया गया है, परंतु उसका कहानी में मुख्य स्थान बन जाता है। कहानी

[1] हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं. 230

वातावरण के ईर्द-गिर्द घुमती दिखाई जाती है। कहानी में पात्रों का चरित्र-चित्रण भी कहानी के वातावरण पर ही निर्भर होता है। अर्थात कहानीकार ने कौन-से देश काल से कहानी का चुनाव किया है। उस कथावस्तु को सही नैतिकता निर्माण करने वाले पात्र ही कहानी को महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली बनाते हैं। कहानी के मूल भाव को समझने के लिए सही वातावरण का चित्रण करना कहानीकार के लिए अनिवार्य बन जाता है। वातावरण का सही चित्रण, पात्रों का सही चुनाव कहानी को आकर्षित बनाते हैं। और पाठक वर्ग भी ऐसी ही रचना को प्राथमिकता देता है। वातावरण के अंतर्गत कहानियों की परिस्थिति का चित्रण भी किया जाता है। देशकाल और वातावरण पर पूर्ण रूप से पात्रों का जीवन निर्भर होता है। जिस प्रकार का वातावरण दिखाया जाता है उसी के अनुकूल पात्रों का भी चुनाव किया जाता है। उनकी भाषा, उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान आदि सब कुछ वातावरण या देशकाल पर ही कहानीकार निश्चित कर सकता है। इससे पता चल सकता है कि देशकाल या वातावरण शिल्प का कितना महत्वपूर्ण तत्व है।

4.3.4.1 ग्रामीण वातावरण

भारत गाँवों का देश है। यहाँ किसान भूमि को हर-भरा करता है। ग्रामीण जीवन सुखमय भी है और दुःख भरा भी है। कहानी के अंतर्गत ग्रामीण जीवन दिखाने का एक अलग ही उद्देश्य होता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में हमें ग्रामीण जीवन का वातावरण बहुत सी कहानियों में देखने को मिलता है। ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानी 'बँधुआ' ग्रामीण परिवेश को दिखाती है। कहानी का नायक जब्बर जो गाँव में रहने वाला लड़का है। जब्बर के आगे-पीछे कोई नहीं । उसे रहने के लिए बस थोड़ी सी जमीन चाहिए । वह कैसी भी और कहीं पर भी हो । परंतु वह थोड़ी-सी जगह भी उसे नहीं मिल पाती । यहाँ-वहाँ सभी तरफ जब्बर कोशिश करता है। आखिर तालाब के किनारे चला जाता है- "गाँव के दूसरे सिरे तालाब था । गाँव वाले यहाँ अपने भैंसे को नहलाते थे । करीब आधा कोस परे एक

और तालाब था। इसमें सिंघाड़े बोये जाते थे। जब्बर तालाब के किनारे खड़े-खड़े पानी को लहराते देखता रहा। तालाब के किनारे गीली मिट्टी थी। गीली मिट्टी पर खड़े होना उसे अच्छा लग रहा था। किनारे पर बिलबिलाते कीड़े थे। स्लेटी के रंग जैसा मैला पानी। पानी में खड़े बगुले। किनारे के पास गोबर के ढेर। बेतरतीब घास, पानबेल के लंबे-लंबे पौधे। थोड़ी दूर नीम के कई एक पेड़।"[1] लेखक ने कितने प्यारे शब्दों में गाँव का वर्णन किया है। शब्द रचना से ऐसा लगता है। जैसे यह सब कुछ पाठक के सामने ही हो रहा है। पाठक तालाब के पानी को, उसके बगल उगते सिंघाड़े को महसूस कर सकता है। कह सकते हैं कि यहाँ जीवंत उदाहरण दिया गया है।

रूपसिंह राठौड़ की कहानी 'गाँव की इंदिरा' में गाँव में रहने वाली इंदिरा की सोच कितनी बड़ी है यह दिखाया गया है। इंदिरा विधवा है। बस आठ महिने का था उसका बेटा 'नीरज' तभी उसके पति का कैंसर की वजह से देहांत हो जाता है। गाँव में रहते हुए भी इंदिरा अपनी सोच से बहुत बड़ी थी। इंदिरा को लग था कि उसका बेटा पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बने। यहाँ गाँव में पति का साथ नहीं। मायके में अंधे पिता और माता के सिवाय कोई नहीं। इंदिरा के सामने हजारों प्रश्न थे। फिर भी इंदिरा डरी नहीं वह अपने इरादों को पक्का बनाकर जो काम मिलता गया करती गयी। आज इंदिरा का बेटा बड़ा हो चुका है। आज इंदिरा के बेटे को सब लेखक नीरज कहकर संबोधित करते हैं। यह सब इंदिरा के कष्टों का ही फल है जो नीरज आज इस मुकाम तक पहुँच पाया है। कहानी के अंतर्गत एक संदर्भ दिया गया है। वह मुझे बहुत ज्ञान प्रधान भी लगा। वह इस प्रकार है- "रंग लाती है हिना, पत्थर से पीस जाने के बाद।"[2] वाक्य बहुत छोटा है परंतु अगर सबने इसे अपने जीवन में लागू किया तो शायद मुश्किलों को अपने घर आना कुछ कम हो जाए। कष्ट के आगे कुछ नहीं। बस कर्म करते रहो, फल अपने आप-पास आ जाएगा।

---

[1] शिकारगाह - ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ.सं. 132-133

[2] कोई है - रूपसिंह राठौड़, पृ.सं. 37

4.3.4.2 शहरी वातावरण

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में लगभग सभी परिवेशों का समावेश किया गया है। शहरी वातावरण की कहानियों में आधुनिकता का प्रभाव अधिक देख सकते हैं। आज की पीढ़ी शहरों की तरफ अधिक आकर्षित होती दिखाई दे रही है। शहरों की चकाचौंध में गाँव की मिट्टी की खुशबू आनी बंद हो गयी है। दीपक शर्मा की कहानी 'चमड़े का अहाता' शहरी कुरूपता को बयान करती है। कहानी में पति-पत्नी और तीन बच्चों का चित्रण किया है। यह परिवार शहर में अपना चमड़े का व्यापार करता है। घर-बाहर बस चमड़े की गंदगी बदबू में यह जीवन व्यतीत करते हैं। सोच आगे नहीं बढ़ी है। आज भी बेटा-बेटी का भेदभाव है। पिता बेटी हुई इसलिए बेटी को चमड़े के अहाते में फेंक कर मार डालता है। कितना भयानक है ऐसा सोचना भी। पर वो हो रहा है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'तलाश' में कहानी का नायक 'रामवीर सिंह' गाँव छोड़कर शहर की तरफ आया है। उसके मुताबिक जो चीजें और घर में रहनेवाली सुख-सुविधाएँ शहरों में अच्छी तरह से होती हैं। वहाँ किसी का 'डिस्टर्बेन्स' नहीं होता। हर कोई बस अपने कामों में ही व्यस्त होता है। दूसरों की जिंदगी में ताक-झाक करने के लिए किसी के पास वक्त नहीं होता।

सूर्यबाला की कहानी 'मौज' जो आधुनिकता की परम सीमा पर खड़ी कहानी है। यहाँ गाँव को शहरों में बसा दिया है। ऐसे यहाँ प्रतीत होता है। कहानी में एक छोटा-सा परिवार दिखाया गया है। दादा-दादी, पति-पत्नी और दो पोते-पोती। शहर में रहने वाला यह परिवार एक साथ रहते हुए भी एक-दूसरे से अलग रहते हैं। बेटा-बहू दोनों नौकरी करने वाले हैं। दोनों पोते स्कूल जाते हैं। घर में बचे बस बुढ़े दादा-दादी। बहू अपने दफ्तर के कामों में हमेशा व्यस्त रहती है। घर का पूरा काम बेचारे बुढ़े माँ-बाप पर चाहे वह बच्चों को खिलाना हो, उनको पार्क ले जाना हो, उनका होमवर्क करवाना हो या घर के कुछ छोटे-बड़े काम आदि सब देखते हैं। फिर भी बेटा कहता है- "यूँ भी रोजमर्रा की जिंदगी में थिंग्स आर मच बेटर दीज

डेज...पहले माँ को कितने काम करने पड़ते थे...सुबह अँगीठी सुलगाने से लेकर झाड़ू-पोंछे तक, सब माँ ही करती थी। सिर्फ बरतन साफ करने के लिए दाई लगी थी और अब देखो बर्तन, झाड़ू, कपड़े, बाथरूम सब दाई करती है। दिन भर बच्चों के साथ हँसना-खेलना और शाम को उन्हें लेकर पार्क की सैर...मौज में कट रहा है बुढ़ापा...।"[1] यहाँ लेखिका की शब्द शैली को विशेष मानना चाहिए। सब कुछ कहने के बाद भी कुछ नहीं कहा जैसे भाव को यहाँ दिखाया गया है। आखिर साहित्यकार भी कलाकार ही होता है।

4.3.4.3 जंगली वातावरण

जंगल से अधिक खुबसूरत जगह और कोई हो ही नहीं सकती। प्रकृति की सारी सुंदरता जंगल में कूट-कूट कर भरी होती है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में इस सुंदरता का निचोड़ अपने शब्दों के माध्यम से कहानीकारों ने कहानियों में रखा है। प्रत्यक्षा ने अपनी कहानी 'जंगल का जादू तिल-तिल' के अंतर्गत शहरीकरण की वजह से जंगलों का होता ह्रास चित्रित किया गया है। लेखिका के शब्द पाठक के मस्तिष्क में शब्दों के तीर चलाते हुए लिखती है- "पुलिया के नीचे पानी बहता है कलकल-कलकल। दूर पेड़ों की छाया साँझ ढले सिमटती-सिहरती है धीमे से फुसफुसाती है पत्तियाँ, अँधेरा उतरता है पत्तियों पर, टहनियों पर, तनों पर जड़ों की मिट्टियों पर, बिरवा की खुली मुट्ठियों पर आँखों पर। जंगल अब सिर्फ आँखों के बंद सपना है। ऐसा सपना जहाँ लौटकर जाना मना है। ऐसा सपना जिसे देखना मना है। लौटना है फिर उस बीहड़ से इस बीहड़ में, जहाँ दुःख एक नंगा तार है, मन जिसके ईर्द-गिर्द सतर्क चौकन्ना चहल कदमी करता है। रात-रात डाल पर चित लेटे आँखें देखती हैं अनगिनत तारे, एकदम-एकदम चकमक, पत्थर सी चकमक, जंगल में रात, बाघ की चमकती जलती आँखे, पानी में चहलती केवल मछली का दप-दप रोशनी मारता चोंइयाँ। दिल फटता है तेंदू पत्ते-सा। गाँव घर गोतियाँ सब छूटा, सब छूटा, साँस छूटी, तार छूटी, छूटा

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 77

रे सब छूटा।"[1] लेखिका ने यहाँ सब कुछ कह दिया है। कैसे जंगल मनुष्य का प्राण है। उसके बिना जिंदगी में कुछ भी नहीं। बस सब खाली है। महाश्वेता देवी की कहानी 'अर्जुन' की भी यही दशा चित्रित की गयी है। पूँजीपतियों के बीच जंगल को बेचा जा रहा है। आज जंगल गायब हो गए हैं। जंगली जानवर दर-दर भटक रहे हैं। आज उनके लिए कोई जगह नहीं बची है। जंगल से जीवन का निर्माण होता है। परंतु आज तो जंगल ही अपने जीवन की भीख पूँजीपतियों से माँग रहे हैं। जंगल को बस जंगल न समझकर उसे अपना जीवन समझा जाता तो आज जंगल जिंदा रहता। जानवरों को उनका घर मिलता, पक्षियों को उनके चहकने की जगह मिलती। परंतु मनुष्य नामक राक्षस ने आज पशु-पक्षियों से उनका घर छीन लिया है। इक्कीसवीं सदी का युग जंगल के लिए भयावह है। आज जंगलों की जगह इमारतें खड़ी हैं। बड़े-बड़े धूँआ छोड़ते कारखाने खड़े हैं। जिससे शुद्ध वातावरण दूषित होता जा रहा है। फूलों की खुशबू की जगह पेट्रोल की दुर्गंध रास्तों पर फैल रही है। इसका कारण केवल एक ही है...मनुष्य।

4.3.4.4 पहाड़ी वातावरण

ऊँचे-ऊँचे पहाडों का देश जहाँ से ऐसा लगता है कि चाँद को हाथ में पकड़ा लेंगे। जहाँ से दुनिया छोटी दिखती है। मनुष्य चींटियों की भाँति दिखाई देते हैं। कुछ अलग ही सौंदर्य होता है पहाड़ो का। पहाड़ों की बात चलते ही एस. आर. हरनोट जी पहले याद आते हैं। इनकी पहाड़ी की कहानी 'जीनकाठी' जो नये समाज का चित्रण करवाती है। जीनकाठी कहानी के अंतर्गत पहाड़ी जीवन की भिन्न-भिन्न मान्यताओं को उनके त्यौहार तथा रीति-रिवाजों को दिखाया गया है। पहाड़ियों का जीवन तथा उनकी पृष्ठभूमि का अच्छा उदाहरण जीनकाठी कहानी में मिलता है। "भुण्डा पहाड़ी समाज का एक विचित्र, अद्भुत और रोमांचक उत्सव। पुराने समय में इसे हर बारह वर्ष के बाद मनाए जाने की परंपरा प्रचलित थी। लेकिन

---

[1] जंगल का जादू तिल-तिल - प्रत्यक्षा, पृ.सं. 53-54

पहाड़ों में आज इसके आयोजन का कई कारणों से कोई निश्चित समय नहीं रहा है। इसमें 'बेड़' नामक एक पर्वतीय दलित जाति की विशेष सहभागिता और महत्त्व होता है। इस परिवार से एक व्यक्ति का चुनाव करके उसे यज्ञोपवीत धारण करवाकर उसे अस्थायी रूप से ब्राह्मण बना दिया जाता है। उत्सव के दिन देवता और ईश्वर की तरह उसकी पूजा होती है। इस धर्माचार के तहत ऊँची पहाड़ी से नीचे की ओर एक लंबा रस्सा बांध दिया जाता है। बेड़ा अपनी जान की बाजी लगाता हुआ जीनकाठी पर बैठकर इस रस्से पर सरकता हुआ नीचे आता है।"[1]

प्रत्येक समाज की कुछ न कुछ नवीनता लेखक हमेशा दिखाने की कोशिश करता है। एस. आर. हरनोट की एक और कहानी 'एम. डॉट. कॉम' जिसमें आधुनिकता के कारण वातावरण में बदलाव दिखाया है। नायिका का नाम चित्रित नहीं किया गया है। बस माँ नाम से संपूर्ण कहानी में संबोधित किया गया है। अपनी गोशाला में रहने वाली माँ की भैंस अचानक से मर गयी थी । उसको सही जगह पहुँचाने के लिए माँ बहुत कोशिश करती है। पहाड़ों में हर जगह घुमती है कि उसकी भैंस को आखिर ले के कौन जाएगा । क्योंकि यह काम बस गाँव के दलित ही करते हैं। परंतु आधुनिकता के कारण आज दलित वर्ग भी आगे बढ़ता इस कहानी में दिखाया गया है। कहानी अंत तक अधूरी ही लगती है। क्योंकि माँ को उसके सवालों का जवाब मिलता ही नहीं है। कहानीकार अपने विचारों से कहानी को कहीं भी मोड़ सकता है। यह उसकी अपनी कला है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में नवीनता का निर्माण उनके शिल्प विधान के कारण हो पाया है। प्रत्येक कहानी की अपनी एक शिल्प कला है।

4.3.5 भाषा शैली

भाषा मनुष्य की आत्मा है। क्योंकि अपने सभी भावों को वह दुःख हो या सुख भाषा के माध्यम से ही एक-दूसरे से बाँटा जाता है। भाषा के माध्यम से एक-दूसरे से सभी स्तरों पर जुड़ने के लिए सहायता होती है। इसलिए भाषा शैली शिल्प का महत्वपूर्ण तत्व बन जाती है।

---

[1] जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ - एस.आर. हरनोट, पृ.सं. 9

भाषा शैली के अंतर्गत भाषा के विविध प्रकार आते हैं। जिससे साहित्य की भाषा को आसानी से समझा जा सकता है। भाषा का प्रयोग कहानी में विभिन्न रूपों में किया जाता है। बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों का अंतर आसानी से समझा जा सकता है। बोलचाल की भाषा साहित्यिक भाषा से अधिक सरल मानी जाती है। शैली शिल्प का एक अंग या एक भाग है। शिल्प को शैली नहीं कहा जा सकता। वैसे ही भाषा शैली भी शिल्प का एक तत्व है। जो कहानी साहित्य के अंतर्गत बहुत महत्वपूर्ण होता है। पात्रों का संवाद या कथोपकथन भाषा पर ही निर्भर होता है। भाषा का प्रभाव कहानी पर उसके परिवेश से निर्माण होता है। भाषा गाँव की हो सकती है, शहर की हो सकती है, किसी विशिष्ट पात्र की अपनी एक भाषा अलग हो सकती है। भाषा पर कहानीकारों के विचारों का प्रभाव भी होता है। प्रत्येक कहानीकार की अपनी एक अलग भाषा तथा शैली होती है। लेखक अपने विचारों को अपनी कल्पनाओं को अपनी भाषा से प्रस्तुत करता है। इन सब मुख्य कारणों की वजह से भाषा का महत्व कहानी के शिल्प में बढ़ जाता है। अशोक कुमार गुप्ता भाषा शैली के संबंध में अपने विचार रखते हुए कहते हैं कि- "शैलीगत अभिनवता कहानी को अधिक प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाती है। कथावस्तु की अच्छाई या बुराई, एवं दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति इसी पर निर्भर करती है। इसका संबंध शब्दों, विचारों एवं भावों सभी से होता है। जहाँ उत्कृष्ट शैली का अभाव रहता है वहाँ कहानी चेतनाहीन एवं मूल बन जाती है।"[1]

भाषा का प्रभाव प्रत्येक स्तर पर दिखाई देता है। भाषा की अलंकारिता, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, कहावतें, उपमा, रूपक, प्रतीक, बिंब, विभिन्न भाषाओं के शब्द इन सबको मिलाकर भाषा का एक नया स्वरूप निर्माण होता है। इन सभी घटकों की वजह से कहानी को समझना और अधिक आसान बन जाता है। भाषा शैली के अंतर्गत भाषाओं की अनेक शैलियाँ हैं। जिससे कहानीकार क्या कहना चाहता है अपनी कहानी में, यह सीधे-सीधे समझ

[1] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प-विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 83

सकते हैं। जिस लेखक की भाषा पर अच्छी पकड़ होती है उसका लेखन साहित्य जगत में अच्छा माना जाता है। पाठक और लेखक के बीच में भाषा ही वह औजार है जो पाठक और लेखक की मानसिकता को जोड़ने का कार्य करता है। भाषा के अंतर्गत सिखने जैसा बहुत कुछ होता है। भाषा का स्वरूप विस्तृत है। भाषा को तथा भाषाओं के शैली को पूर्ण रूप से समझने की बहुत आवश्यकता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में भाषाओं के साथ अद्भुत विभिन्न तरह का प्रयोग किया गया है। प्रथम दशक की कहानियों में भाषा शैली पूर्ण समझने की सुविधा के लिए उसका विश्लेषण अगले अध्याय के अंतर्गत किया गया है।

4.3.6 उद्देश्य

उद्देश्य शिल्प का अंतिम तत्व है। यह अंतिम तत्व होते हुए भी कहानी के अंतर्गत इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। बिना उद्देश्य किसी भी कार्य को करना निरर्थक कहलाएगा। साहित्यकार अपनी रचना से समाज को कोई-न-कोई उद्देश्य आवश्य देता है। इसलिए उद्देश्य मुख्य तत्व कहलाता है। बिना उद्देश्य के कहानीकार कहानी की रचना कर नहीं पाता है। लेखक के मन में किसी एक विषय को समझकर उसके ऊपर अपने अनुभवों को चित्रित करना कहानी कहलाता है। कहानी की कथावस्तु का निर्माण करते ही लेखक के समक्ष उद्देश्य को खड़ा करना भी बड़ा कार्य होता है। क्योंकि पाठक की पहली माँग ही होती है, कहानी से एक अच्छे उद्देश्य का निर्माण होना। साहित्यकार समाज के लिए अपने विचारों को किताबों के माध्यम से फैलाता है। यह विचार किसी भी परिस्थिति पर निर्भर हो सकते हैं। यह कहानीकार पर निर्भर होता है। "कहानी कला के अंतर्गत उद्देश्य इसका वह तत्व है जिसकी मूल प्रेरणा से कहानी में इतने कलात्मक प्रयत्न हस्तलाघव और विधानात्मक कुशलता का परिचय देने होते

है। स्पष्ट रूप से समूची कहानी कला का यह तत्व वह अंतिम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति के लिए कहानीकार अपनी कहानी में विविध प्रयोग करता है।"[1]

उद्देश्य कहानी को एक सही राह दिखा सकता है। अपने विचारों से कहानीकार मुख्यतः नीतिपरक उद्देश्य को देना पसंद करते हैं। यह नीति परकता समाज के उपयोग में आ सकती है इसका भी विचार कहानीकार को करना पड़ता है। बिना किसी ठोस वजह से कहानी का निर्माण करना व्यर्थ होता है। क्योंकि कहानी होती है पाठकों के लिए। अगर वही कहानी को अस्वीकार कर दे तो कहानी का आशय क्या निकल सकता है। उद्देश्य की पृष्ठभूमि हमेशा सत्यपूर्ण होती है। कहानी का उद्देश्य समाज में जानकारी फैलाने का काम भी करता है। उद्देश्य की परिपूर्णता कहानी की सच्चाई बयान करता है। कहानी को समाज के धरातल पर सही साबित करना है तो उसके अंतर्गत सही उद्देश्य की समाविष्टता अनिवार्यता बन जाएगी। अथवा कहानी साधारण तथा उद्देश्यहीन बन कर रह जाएगी। जिससे समाज में किसी जागृति का फैलाव होने की अपेक्षा भी नहीं कर सकते। शिल्प के सभी तत्व एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक के बिना एक कहीं न कहीं अधूरे हैं। सभी मूल्यों को साथ में लेकर चलने वाला कहानीकार अपने क्षेत्र में महान कहलाता है। क्योंकि उसकी रचना में संपूर्णता होती है। उसकी रचना से समाज में उद्देश्य का भाव निर्माण होता है। नैतिक-अनैतिक दोनों मूल्यों को लेकर कहानीकार अपने विचारों को सोचता रहता है। और आखिरी में एक अद्भुत रचना का निर्माण पाठक वर्ग देख पाता है।

निष्कर्ष

शिल्प साहित्य की कला है। जिससे साहित्यकार अपनी रचना को सुंदर बनाने का प्रयास हर समय करता रहता है। साहित्य जगत में शिल्प की अपनी एक अलग ही विशेषता है। शिल्प की विशेषता उसके तत्वों से बढ़ जाती है। प्रत्येक तत्व अपने-आप में विशेष है।

---

[1] हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं. 236

प्रत्येक तत्व की अपनी एक अलग महत्ता होती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में शिल्प का बदलता स्वरूप देखा गया है। इक्कीसवीं सदी में आधुनिकीकरण ने पूर्णरूप से देश पर अपना प्रभाव डाल दिया था। इस प्रभाव का असर कहीं-न-कहीं कहानियों में देखा गया । शिल्प पर भी बदलाव का प्रभाव पाठक वर्ग देख सकता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में विविध धाराओं की कहानियों को समाविष्ट किया गया है। जैसे- दलित, आदिवासी, स्त्री, वृद्ध, जंगली, पहाड़ी, शहरी, ग्रामीण, मुस्लिम, किन्नर आदि कहानियों को चित्रित किया गया है।

प्रत्येक कहानी एक नया उद्देश्य देकर जाती है। कहानियों की कथावस्तु से कहानी की प्रभावशीलता की पहचान होती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक सभी स्थितियों का उल्लेख भी किया गया है। शिल्प की विस्तृत बनावट कहानी में नयी जान डाल देती है। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, पात्र, संवाद, देशकाल, भाषा शैली तथा उद्देश्य शिल्प के उपरोक्त तत्वों की वजह से कहानी को सही ढाँचा मिलता है। जिसमें कहानी की शुरूआत से सीधा क्रम होता है। शिल्प के ढाँचे में सभी कहानियों में संपूर्णता होती है। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने भाषा के नये औजारों का प्रयोग किया है। अपनी रचना को ऊँचाई तक पहुँचाने के लिए सबकी मेहनत तो चलती ही रहती है। शिल्प व संवेदना कहानी का सत्य मर्म होता है। मनुष्य की संवेदनाओं को शिल्प का सही साथ मिलने से कहानी की मार्मिकता और बढ़ जाती है। शिल्प की विशेषता है कि वह पाठक की मानसिकता को बदल सकता है। क्योंकि शिल्प की रचना ही ऐसी होती है कि वह कहानी में प्राण डाल देता है। शिल्प एक तकनीकी शब्द के रूप में साहित्य माना जाता है। जैसे संवेदना मनुष्य का भाव होता है, उसी तरह शिल्प मनुष्य भावों का साहित्य के अंतर्गत तकनीकी रूपांतरण है।

शिल्प की विशेषता है कि कहानियों का शिल्पगत मूल्यांकन कहानियों की पृष्ठभूमि को यथार्थ स्वरूप प्रदान करता है। समाज का यथार्थ कहानी आत्मसात करती है। पाठक उस कहानी का पठन करके समाज के यथार्थ स्वरूप में स्वयं को देखने लगता है। कहा जाए तो बस यह शब्दों का खेल है। जो बस साहित्यकार ही खेल सकता है। यह सामान्य जन के लिए थोड़ा मुश्किल ही हो सकता है। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने बखूबी अपने ज्ञान को कहानियों में निचोड़ा है। कहानियों से पता चलता है कि कहानीकार की क्या मानसिकता रही होगी कहानी रचने के समय। किन-किन पहलुओं को कहानीकार ने समझने की कोशिश की है। साहित्यकार की इन विभिन्न संवेदनाओं को शिल्प के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। शिल्प को ही सर्वथा कहानी के अंतर्गत महत्वपूर्ण माना जाता है।

*****

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी : भाषा का विविध प्रयोग

5.0 भूमिका

5.1 भाषा व कहानी

5.1.1 भाषा का अर्थ

5.1.2 भाषा का स्वरूप

5.1.3 भाषा की परिभाषा

5.2 प्रथक दशक की कहानी : भाषा का विविध प्रयोग

5.2.1 उर्दू व अरबी भाषा

5.2.2 आदिवासी भाषा

5.2.3 गाँव की भाषा

5.2.4 आक्रोश जनक भाषा

5.2.5 देशज भाषा

5.2.6 अंग्रेजी भाषा

5.2.6.1 अंग्रेजी शब्द

5.2.6.2 अंग्रेजी वाक्य

5.2.7 राजस्थानी भाषा

5.2.8 सरल व सहज भाषा

5.2.9 मुहावरे व लोकोक्तियों की भाषा

5.2.10 अलंकारिक भाषा

5.3 प्रथम दशक की कहानी : बिम्ब प्रयोग

5.4 प्रथम दशक की कहानी : प्रतीक प्रयोग

5.5 प्रथम दशक की कहानी : भाषा शैली

5.5.1 संवादात्मक शैली

5.5.2 पूर्वदीप्ति शैली

5.5.3 नाटकीय शैली

5.5.4 वर्णनात्मक शैली

5.5.5 काव्यात्मक शैली

5.5.6 पत्रात्मक शैली

5.5.7 तुलनात्मक शैली

5.5.8 आत्मकथात्मक शैली

5.5.9 लोककथात्मक शैली

5.5.10 मनोविश्लेषणात्मक शैली

5.5.11 व्यंग्यात्मक शैली

5.6 निष्कर्ष

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानी : भाषा का विविध प्रयोग

5.0 भूमिका

भाषा संस्कृति का मुख्य अंग है। भाषा दो मनुष्य के बीच का वह संवाद है, जिससे मनुष्य दोनों के अंतर्मन की बात समझ सकता है। भाषा समाज का सेतु है, जो मनुष्य को एक-दूसरे को जोड़ने में मदद करती है। भाषा एक अभिव्यक्ति है जो मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय से निकलकर होठों तक पहुँचती है। भाषा मनुष्य की भावना है जो शब्द का रूप लेकर समाज के सामने प्रस्तुत करती है। भारत देश विविध बोलियों तथा भाषाओं का भंडार है। यहाँ भाषा की नयी-नयी पहचान विदेश से आने वाले व्यक्तियों को मिलती है। भाषा का संचार पूर्ण विश्व में अलग-अलग तरीके से होता है। भाषा समाज में उत्पन्न होने वाली प्रत्येक वस्तु की अभिव्यक्ति को माना जाता है। भाषा का मूल उपयोग आदान-प्रदान सुलभ होने के लिए किया जाता है। किसी भी भाषा को एक-दूसरे से जोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि वह सबसे भिन्न-भिन्न होता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में भी इसी विभिन्नता का चित्रण प्रत्येक जगह पाया गया है। प्रत्येक कहानीकार की अपनी एक शैली और अपना एक अलग विचार पाया गया है जो एक-दूसरे से पूर्णत: विपरीत है। भाषा हमेशा मुख्य रही है, साहित्य की प्रत्येक विधा को रत्नकुमार सांभरिया, मेहरुन्निसा परवेज, कविता, सुशीला टाकभौरे, राकेश कुमार सिंह, सूर्यबाला, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अनिता गोपेश, सुधा अरोड़ा, जयप्रकाश कर्दम आदि सबकी भाषा का प्रयोग विविध रूपों में चित्रित किया गया है। भाषा का उत्पन्न ध्वनि से होता है। ध्वनि को शब्दों की रचनाप्रदान कर भाषा निर्माण होती है। इससे कह सकते हैं कि बिना भाषा के मनुष्य जीवन अधूरा है। भाषा नहीं तो एक-दूसरे से संपर्क नहीं है। यहाँ तक देखा गया है कि जो गूँगा मनुष्य होता है, उसकी भी अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है। जिससे वह अपने विचारों का आदान-प्रदान आसानी से कर पाता

है। मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। उसके मन तथा मस्तिष्क में हजारों-लाखों विचारों का सागर बहता रहता है। सागर की स्थिरता मनुष्य की भाषा है जिससे मनुष्य अपने सुख-दुख सभी को एक दूसरे से बांट सकता है। भाषा ही मनुष्य के जीवन की मुख्य अभिव्यक्ति है, यह कहना गलत नहीं होगा। जिस तरह प्रकृति-जल-नदी-पहाड़-पेड़-पत्थर-सूरज-चाँद इनके सिवाय मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं। उसी भांति बिना भाषा मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं। भाषा को सुंदर बनाने का कार्य उसकी विभिन्न शैलियाँ करती हैं। इन शैलियों में माध्यम भाषा का मूल स्वरूप पहचानने के लिए मदद होती है। भाषा का प्रयोग साहित्य तथा बोलचाल दोनों में किया जाता है। साहित्यिक भाषा पूर्णत: भिन्न होती है, बोलचाल की भाषा से, इसीलिए दोनों भाषाओं को एक-दूसरे से जोड़ा नहीं जाता है। भाषाओं के विविध स्तरों का चित्रण प्रस्तुत अध्याय में रेखांकित किया गया है। भाषा ही मनुष्य का मूल शस्त्र है। समाज में अपना जीवन व्यतीत करने के लिए भाषा को मुख्य माना गया है।

5.1 भाषा व कहानी

भाषा व कहानी अधूरे हैं एक-दूजे के बिना। कहानी लेखन का कार्य शुरू होता है भाषा द्वारा, भाषा से ही कहानी को एक स्वरूप प्रदान किया जाता है। कहानी पठन का कार्य हो या कहानी लेखन का कार्य हो, भाषा एक मुख्य घटक बन जाती है। कहानीकार अपनी संवेदनशीलता से कहानी की रचना करता है। यह संवेदना कहानीकार को समाज, मनुष्य तथा उसके दृश्य में आने वाली विभिन्न घटनाओं का संकलन है। जिसे कहानीकार अपनी शब्दों की शक्ति से कहानी का रूप प्रदान करता है। कहानी की भाषा उसकी पृष्ठभूमि पर अवलंबित होती है। जैसे सामाजिक कहानी, राजनैतिक कहानी, धार्मिक या सांस्कृतिक कहानी आदि होती है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में कहानीकारों ने अपनी भाषा शैली से कहानियों को एक नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया है। भाषा की विविध उपयोगिता से कहानी को आकर्षित बनाने का कार्य किया गया है। भाषा व कहानी दोनों की उचित सार्थकता से

निर्माण हुई रचना पाठक वर्ग को विचार करने के लिए विवश करती है कि किस दशा और दिशा में कहानी की रचना की गई होगी। मन से उत्पन्न होने वाला सरल भाव ही भाषा है। इसीलिए कहानी के अंतर्गत विभिन्न पात्रों की विभिन्न भाषा होती है। आदिवासी भाषा की लय अलग होती है। मुस्लिम भाषा की अपनी एक अलग विशेषता है। स्त्री के आत्मसम्मान व अस्मिता की अपनी एक भाषा है। गाँव की भाषा अपने-आप में सुंदरता का भाव निर्माण करती है। पुरुषवादी आक्रोश की भाषा का चित्रण देख सकते हैं। वैज्ञानिक युग में चल रहे समाज की अपनी एक अलग भाषा है। ऐसी विविधता से पूर्ण भाषा पाठक वर्ग को कहानी पढ़ने के लिए हमेशा प्रेरित करती आती है। भाषा का सौंदर्य का समाज के प्रत्येक स्थल से निर्माण होता है। समाज में चल रही प्रत्येक गतिविधि से भाषा का संबंध अपने आप जुड़ जाता है। भाषा अलंकारिकता उसमें प्रतीक तथा बिम्बों का प्रयोग, मुहावरे व लोकोक्तियों की सटीक रचना भाषा की विशिष्टता को बढ़ा देती है। कहानी मनुष्य की भावनाओं का खेल है। जिसे साहित्यकार अपनी शब्द शक्ति से कहानी का स्वरूप प्रदान करता है। इसीलिए कहानी की भाषा तथा सामान्य बोलचाल की भाषा में भिन्नता को देखा जा सकता है। जीवन एक खेल है, जिसे चाहते हुए या न चाहते हुए भी खेलना ही पड़ता है। यह खेल समाज से संबंध रखता है। समाज में होने वाली सभी गतिविधियाँ दुख-सुख, पूजा अर्चना, परिवार, त्यौहार, लड़ाई-प्यार यह सभी कहानी का हिस्सा बन जाती है। कहानी की भाषा इसे और रोचक बना देती है। भाषा की विभिन्न शैलियों से भाषा की मौलिकता बढ़ जाती है। भाषा का स्वरूप परिवेश से बदलता जाता है। जिस परिवेश को समझकर या सोचकर रचना की है, उस परिवेश का प्रभाव भाषा पर दिखाई पड़ता है। इसी वजह से प्रत्येक कहानी का परिवेश एक जैसा चित्रित नहीं किया जाता। सब स्थितियों की अपनी एक वजह होती है, जिससे कहानी में बदलाव महसूस होता है। यह कहानीकार का चातुर्य होता है कि अपनी साहित्यिक

वैचारिकता के जरिए वह पाठक वर्ग के अपनी भाषा से आकर्षित करता है। भाषा कहानी का मूल शस्त्र है। कहानी की भाषा कहानी को पूर्ण बनाने का मुख्य कार्य करती है।

5.1.1 भाषा का अर्थ

भाषा साहित्य का मूल शस्त्र माना जाता है। ध्वनि के माध्यम से उत्पन्न होने वाले राग को शब्दों के सहारे एक सूत्र में पिरोया जाता है। शब्दों की ये माला भाषा का स्वरूप लेकर एक-दूसरे के साथ आदान-प्रदान का माध्यम बनती है। भाषा दोनों स्वरूपों में भिन्न होती है। जैसे साहित्यिक भाषा की अपनी एक धारणा है और बोलचाल की भाषा की अपनी एक विविधता है। जनसंपर्क करने का सबसे महत्वपूर्ण व एकलौता माध्यम भाषा ही है। सामान्य मनुष्य से साहित्यिक मनुष्य की विचारधारा में बहुत अंतर होता है। साहित्यिक विचारों वाला मनुष्य अपने परिवेश में जो अनुभव करता है, उसकी विविध घटनाएँ हो सकती हैं, वह जिस परिवेश में रह रहा है वह परिवेश, सामाजिक या राजनीतिक परिस्थितियाँ आदि सबका विचार उसके साहित्य में पाठक वर्ग महसूस कर सकता है। इन सब विचारों को शब्द को सहारे समझने के लिए भाषा ही सुख का काम करती है। भारत अनेक बोलियों तथा भाषाओं का देश है। यही अपने भारत की एक विशेषता है। इसीलिए भारत का साहित्य विस्तृत और अनमोल माना जाता है। क्योंकि यहाँ विभिन्न भाषाओं में साहित्य की रचनाएँ की जाती हैं। जिससे पाठक वर्ग को विभिन्न भाषाओं का साहित्य समझने का अवसर मिलता है। भाषा किसी भी क्षेत्र में आवश्यक होती ही है। बिना भाषा के कोई भी काम करना आसान नहीं हो सकता। हिन्दी कहानियों की अगर बात की जाए तो यहाँ अनेक कहानियों में विशिष्ट भाव का चित्रण होता है। साहित्यकारों के विचार आकाश को छूने वाले होते हैं। उनके विचारों में कहानी का सौंदर्य भाषा के रूप से चित्रित होता है। कहानी बस यूँ ही नहीं बनती। उसके पीछे उसकी रचना का कोई-न-कोई कारण जरूर होता है। कारण कोई भी हो सकता है। साहित्यकार के मन-मस्तिष्क में आने वाले विभिन्न विचारों को भाषा के माध्यम से

जनसामान्य तक पहुँचाया जाता है। भाषा मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया है जो समाज से उत्पन्न होती है। समाज में हो रहे हजारों कामों का रोजमर्रा की जिंदगी पर प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव विचारों का स्वरूप अपना लेते हैं। यह भाषा बनकर एक दूसरे से संवाद साधते हैं। भाषा भी एक प्रकार की साधना ही है। जिसके मन में अच्छे विचार, वहाँ अपने आप भाषा में प्रौढ़ता निर्माण हो जाती है। और जहाँ बुरे विचार वहाँ अपने आप भाषा भी निकृष्ट बन जाती है। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों में भाषा की विभिन्नता को सहज रूप से देखा जा सकता है। सबकी अपनी एक विशिष्ट पद्धति है। सबकी एक अलग भाषा है। किसी की कहानी गाँव का चित्रण करती है। किसी की कहानी समाज में चल रही विविध घटनाओं का चित्रण करती है। भाषा इन सबका पाठक से परिचय कराती है। भाषा को समझना कभी-कभी कठिन बन जाता है। क्योंकि सभी भाषाएँ एक जैसी नहीं होती। सबके अपने विचार और अपनी धारणा होती है। जिससे भाषा का रूप बदल जाता है। भाषा को समझने के लिए उसका सरल व सहज होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि सभी पाठक एक जैसे नहीं होते। सभी की ग्रहण करने की क्षमता एक-जैसी नहीं होती। इसी लिए भाषा को जितना सरल और सटीक रखा जाए उतनी ही उसकी विशेषता बढ़ जाती है। भाषा में प्रत्येक कहानीकार की अपनी एक विशेषता और अपना एक महत्व होता है।

5.1.2 भाषा का स्वरूप

भाषा शिल्प का मुख्य अंग है। भाषा के माध्यम से ही रचना की परिपक्वता को पाठक समझने की कोशिश करता है। समय बहुत आगे बढ़ता जा रहा है। समय के साथ मनुष्य भी आगे बढ़ रहा है। लेखक अपने लेखन कार्य में कितना निपुण होता है यह उसकी रचना से ज्ञात होता है। कहानीकार की शब्दावली, उसके बोल उसकी प्रयोग होने वाली भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ इन सबसे बनने वाली रचना की विशेषता अधिक होती है। परंतु भाषा जितनी सरल व सहज हो उतनी ही वह आकर्षक होती है। उसका समाज पर प्रभाव भी अधिक होता है।

भाषा के बारे में अपने विचारों को रखते हुए मुंशी प्रेमचंद कहते हैं- "भाषा साधन है, साध्य नहीं। अब हमारी भाषा ने वह रूप प्राप्त कर लिया है कि हम भाषा से आगे बढ़कर भाव की ओर ध्यान दें और इस पर विचार करें कि जिस उद्देश्य से यह निर्माण-कार्य आरंभ किया गया था, वह क्यों कर पूरा हो। वही भाषा जिसमें आरंभ में 'बागो बहार' और 'बैताल पचीसी' की रचना ही सबसे बड़ी साहित्य रेखा थी, अब इस योग्य हो गई है कि उसमें शास्त्र और विज्ञान के प्रश्नों की भी विवेचना की जा सके। .... भाषा बोलचाल की भी होती है और लिखने की भी। .... बोलचाल से हम अपने करीब के लोगों पर अपने विचार प्रकट करते हैं- अपने हर्ष शोक के भावों का चित्र खींचते हैं। साहित्यकार वही काम लेखनी द्वारा करता है। हाँ, उसके श्रोताओं की परिधि बहुत विस्तृत होती है और अगर उसके बयान में सच्चाई है तो शताब्दियों और युगों तक उसकी रचनाएँ हृदयों को प्रभावित करती रहती है।"[1] यहाँ प्रेमचंद स्पष्ट कर रहे हैं कि भाषा ही साहित्य व रोजमर्रा की जिंदगी का मुख्य आधार है, जिससे एक साहित्यकार व एक सामान्य व्यक्ति अपने विचारों का आदान-प्रदान सहज रूप से कर सकता है। भाषा का स्वरूप विस्तृत होता है साहित्य के जरिए, क्योंकि साहित्य का प्रेक्षक वर्ग बड़ा होता है। भाषा का स्वरूप बदल रहा है। अर्थात हैदराबादी हिन्दी, मुम्बईया हिन्दी, भोजपुरी हिन्दी, बिहारी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, भोपाली हिन्दी आदि सबका अपना एक अलग अंदाज और अपना एक लहजा है। जिससे भाषा और अधिक सुंदर बनती जाती है।

5.1.3 भाषा की परिभाषा

भाषा को सरल व साहित्यिक रूप से समझाने के लिए भाषा के संबंध में अपने विचार अनेक विद्वानों ने दिए हैं। प्रस्तुत कुछ भाषा की परिभाषाएँ हैं जो भाषा को स्पष्ट करती हैं।

जगमोहन शंकर टंडन जी अपने शब्दों में भाषा को व्यक्त करते हुए लिखते हैं- "भाषा मनुष्य के लिए संपत्ति के समान है। समाज और भाषा का इतना अटूट संबंध है कि एक

---

[1] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प-विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 84

के बिना दूसरे का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।"[1] यहाँ टंडन जी स्पष्ट कर रहे हैं कि भाषा का और कोई दूसरा विकल्प नहीं जिससे समाज और भाषा को एकत्रित किया जा सके। भाषा ही समाज का मूल आधार बन जाती है। मनुष्य के समाज में सबके साथ जीवन व्यतीत करने के लिए, जो इसका एकमात्र आधार है।

डॉ. शोभा बिसारिया भाषा के संबंध में अपना मत व्यक्त करती है- "कहानी एक लघु साहित्यिक विधा है इसलिए इसकी भाषा सरल, सहज होनी चाहिए। दुरुह भाषा कहानी की प्रभावशीलता को कम कर देती है तथा कहानी नीरस लगने लगती है।"[2] शोभा बिसारिया जी भाषा के प्रति अपने विचारों को समझाते हुए कहना चाहती हैं कि भाषा की सरलता तथा सहजता उसे प्रभावी बनाने का सही मार्ग है।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का भाषा के विषय में प्रस्तुत कथन दिया गया है- "बोलचाल की भाषा के सामान्य उपयोगी स्तर से लेकर कविता की भाषा के अधिकतम संभव सर्जनात्मक स्तर के बीच भाषिक प्रयोग की कई प्रकार की संभावनाएँ हैं। भाषा प्रयोग के उपयोगी और सर्जनात्मक भाषा, अकाल्पनिक गद्य माध्यमों (रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोतार्ज, यसात्रावृत्त आदि) की भाषा और नाटक, उपन्यास, कहानी जैसे कल्पना प्रधान गद्य रूपों की भाषा का प्रयोग हुआ है।"[3] भाषा का कौन सा और किस तरह का प्रयोग कहाँ-कहाँ होना चाहिए इसके संबंध में यहाँ बताया गया है।

डॉ. अशोक तिवारी साहित्यिक भाषा का स्वरूप स्पष्ट करते हैं- "भाषा के स्तर पर हिन्दी विभिन्न बोलियों के एक समूह के रूप में सामने आती है जबकि हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेष रूप से तीन बोलियाँ अवधी, ब्रज व खड़ी बोली को स्थान मिल सका है।

[1] मेहरुन्निसा परवेज की कहानियाँ एक अध्ययन - डॉ. अनिता जाधव, पृ.सं. 155

[2] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 13

[3] दूधनाथ सिंह कृत कहानी संग्रह 'जल मुर्गियों का शिकार' में कथ्य वारीप - पूजा गर्ग, पृ.सं. 84

मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी आदि में रचित साहित्य को अभी तक हिन्दी साहित्य में उचित स्थान नहीं मिल सका है।"[1] साहित्यिक भाषा व बोलियों के बीच का अंतर लेखक समझा रहे हैं।

डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार- "भाषा आधुनिक गुणों की अपेक्षा नहीं करती वरन् परिवर्तित संदर्भों में नवीन संरचना शक्ति से प्राण संचेतना ग्रहण कर वह अपने को पुष्ट करती है। तभी वह वास्तविक भाषा बन जाती है।"[2]

डॉ. सुरेश सिन्हा यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि बदलाव ही जीवन तथा भाषा का सही पड़ाव है। बदलाव प्रत्येक वस्तु की विशेषता तथा उनकी कमी दोनों को साथ लेकर चलता है। इसीलिए सभी घटकों को साथ लेकर चलना ही सही मार्ग होता है। भाषा की भी यही विशेषता उसे पूर्ण बनाती है। भाषा चाहे समाज की हो या साहित्यिक हो दोनों में अपनेपन का भाव तो निश्चित ही होता ही है।

5.2 प्रथम दशक की कहानी : भाषा का विविध प्रयोग

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में भाषा की विविधता प्रत्येक क्षण महसूस होती है। प्रत्येक कहानीकार की अपनी विशेषता है। प्रत्येक कहानीकार की अपनी एक विशिष्ट शैली है, जिससे कहानी को पूर्णता मिल पायी है। इक्कीसवीं सदी के बहुत से ऐसे कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कहानी को विशिष्ट बनाने के लिए विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया है। कहानी की भाषा कहानी की महत्ता को बढ़ाती है। सरल व सहज भाषा का प्रयोग कर कहानी को प्रभावशाली बनाते हैं। जिससे पाठक वर्ग के भीतर साहित्य के प्रति रोचकता बढ़ जाती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में राजस्थानी, पंजाबी, अंग्रेजी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं का प्रयोग किया गया है। गाँव की भाषा अर्थात गाँव, कस्बे में बोली जाने वाली भाषा का प्रयोग भी कहानियों में अधिकतर देखा गया है। कहानीकारों ने कहानियों में मुहावरे व लोकोक्तियों का उपयोग करके कहानी की श्रेष्ठता को और बढ़ा दिया है। आधुनिक युग में

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. अशोक तिवारी, पृ.सं. 15

[2] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 16

जीवन जी रहे हैं। इसलिए कहानी की भाषा पर आधुनिकता का प्रभाव पड़ता जा रहा है। समाज अभी शिक्षा की ओर अपनी मंजिल बढ़ा रहा है। इसीलिए अभी की जनता में शिक्षित वर्ग बढ़ चुका है। कहानियों में बढ़ता अंग्रेजी का प्रभाव कहानियों के माध्यम से आगे देख सकते हैं। किसी भी कहानी जो राजनीति, सामाजिक या समाज से आधारित हो, उसमें अंग्रेजी का प्रभाव अधिक दिखाई दे रहा है। देशी-विदेशी शब्दों का प्रभाव भी कहानियों में चित्रित किया गया है। कहानीकारों के विषय में बात करें तो प्रत्येक कहानी तथा कहानीकार एक-दूसरे से भिन्न हैं। किसी का मेल किसी से नहीं खाता। जया जादवानी की कहानियाँ मार्मिक विचारधारा से लिखी हुई होती है। जिसमें स्त्रियों का चित्रण अधिक तौर पर दिया गया है। स्त्री से संबंधी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग अधिक रेखांकित किया गया है। रूप सिंह राठौर की कहानियाँ राजस्थान का परिचय कराती है। उनकी भाषा में एक अलग ही तरह की मिठास है जो कहानियों को प्रभावित करती है। नासिरा शर्मा की कहानियों में भाषा की विविधता को देखने का मौका मिलता है। उर्दू तथा हिन्दी मिश्रित कहानियाँ रोचक होती है। उनकी अलंकारिकता का प्रभाव भाषा पर हर जगह महसूस कर सकते हैं। जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ सरल व सहज हिन्दी से प्रेरित होती है। कहानीकार का कहानी के प्रति मनोभाव को पाठक बिना किसी कष्ट के आसानी से समझ सकता है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानियाँ अधिकतर गाँव व ग्रामीण जीवन पर आधारित होती है। इसलिए गाँव की भाषा का प्रयोग इनकी कहानियों में अधिक देखने को मिलता है। यह भाषा थोड़ी कठिन होती है। जिसे एक ही क्षण में समझ पाना कभी-कभी कठिन बन जाता है। राकेश कुमार सिंह की आदिवासियों के जीवन पर आधारित कहानियों का भाव पढ़कर मन अंदर ही अंदर दुखी लगता है। भाषा कठिन है पर भाव आसान ही है।

5.2.1 उर्दू व अरबी भाषा

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में बहुत सी विदेशी भाषाओं का प्रभाव देखा गया है। उसमें उर्दू तथा फारसी का प्रभाव अधिक मात्रा में है, ऐसा कह सकते हैं। राही मासूम रजा,

नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा परवेज, बानो सरताज, असगर वजाहत आदि अरबी तथा उर्दू भाषीय समाज से आए हुए हैं। अपने समाज का परिवेश अपने साहित्य में अपने-आप छलकने लगता है। ऐसे ही प्रथम दशक की कहानियों में यह भाव हम देख सकते हैं। कहानी के पात्रों का संवाद व उनकी बोली विशेष होती है। अगर यह भाषा को लेकर बनी हो तो उसकी विशेषता और बढ़ती जाती है। कहानी के अंतर्गत भाषा की विविधता भाषा की मूल पहचान होती है। मेहरुन्निसा परवेज की 'पाँचवीं कब्र' में एक मुस्लिम परिवार का चित्रण किया गया है। जो आर्थिक स्तर पर बहुत गरीब है। कहानी में प्रयुक्त भाषा में भावनाओं का उद्रेक देख सकते हैं। अपनी जिंदगी को बिताने के लिए कष्टों का सागर उनके सामने होता है। कहानी की भाषा पढ़ने में सरल है परंतु जिन विवशताओं से अपनी जिंदगी यह गुजार रहा है, उसका चित्रण लेखिका ने भावनात्मक भाषा में किया है। जिसका प्रस्तुत उदाहरण है-

"ऐ सनो, वह रहीम बी की पोतरी तो पेट ले आई!"

"अच्छा!"

"हाँ, वह मजीर की लड़की तो बड़ी उम्र में उठी, पूरे पाँच हजार में सौदा तय हुआ।"

"चलो, हमारी रजिया भी उठ जाएगी। अब तक नाक तो नहीं कटी, उठ ही जाएगी।"

"ऐहे! अरे, मेरी जैसी माँ जिसकी हो, वह भला क्या बदनाम होगी।"[1]

लेखिका के शब्दों का सौंदर्य यहाँ चित्रित किया गया है। एक ऐसा समाज जहाँ बेटियों को हमेशा सिर का बोझ ही समझा गया। हमेशा उसके इज्जत की ही चिंता सबको रही। लेखिका के शब्द गरीबी की त्रासदी बयान करते हैं। रूप सिंह राठौड़ की कहानी 'इकबाल अमर है' भी भाषा की प्रायोजिकता को देख सकते हैं। यह कहानी इकबाल की है। जो एक सच्चा भारतीय नागरिक है। उसे गुस्सा आता है। किसी प्रकार की दे या ली जाए उससे। इकबाल अपनी जगह हमेशा वफादार रहने की कोशिश में रहता है जिससे किसी भी नागरिक

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 211

को कोई कष्ट ना सहना पड़े। परंतु कार्यालय के सभी कर्मचारी ऐसे नहीं थे। उनको गुस्सा आता था इकबाल पर, क्योंकि वह ईमानदार होता है। कार्यालय में हुई छोटी सी नोंक झोक पर इकबाल कहता है- "प्यारे! इतनी भी क्या बेरूखी है। उसने क्या तुम्हारा बाप मार दिया सो कुर्सी को आदमी बता रहे हो? मर्द हो। बदला लेना है तो ढंग से लो। आने वालों के सामने तो कमीनेपन का परिचय न दो। खाओ। जी भरके खाओ। उसने कौन सा तुम्हारा मुँह जकड़ रखा है।"[1] कहानीकारों ने अपनी भाषा का उपयसोग सही जगह व सही ढंग से किया है। इसलिए कहानी का महत्व बढ़ जाता है।

5.2.2 आदिवासी भाषा

लेखक की अपनी एक विधा या यूँ कहें एक रुचि होती है, किसी भी विषय को चुनते वक्त। वैसे ही पाठक वर्ग को भी देखा गया है। सभी को सभी कहानियाँ पसंद ही हो वैसा नहीं होता। मेरा झुकाव भी एक पाठक बनकर आदिवासी कहानियों की ओर अधिक रहा है। आदिवासी कहानियाँ विशेष बन जाती है। उनकी भाषा की वजह से, उनकी बोली की वजह से उनकी संस्कृति की पहचान होती है। महाश्वेता देवी, रोज केरकट्टा, केदार प्रसाद मीणा, संजीव, मैत्रेयी पुष्पा, हरिराम मीणा, रमणिका गुप्ता आदि की कहानियों में आदिवासी भाषा के सौंदर्य का पता चलता है। सभी रचनाएँ आदिवासी समाज को लेकर केन्द्रित होते हुए भी सभी की भाषा में विभिन्नता को देखी जा सकती है। कहानी की भाषा कहानी को अधिक रोचक बनाने का कार्य करती है। आदिवासी बोलियों की गिनती करना शायद मुमकीन न हो। क्योंकि आदिवासी बोलियाँ बहुत अधिक है। सबकी अपनी एक विशेषता और अपनी एक भिन्नता है। जिसे पाठक वर्ग अच्छी तरह से समझ सकता है। केदार प्रसाद मीणा की कहानी 'जंगल की ललकार' में बुदु मुण्डा के परिवार की त्रासदी का चित्रण किया गया है। किस तरह समाज के पुढ़ारी बने हुए व्यक्ति सामान्य आदिवासी जनता को लुट रहे हैं। उनसे उनके

---

[1] कोई है! - रूप सिंह राठौड़, पृ.सं. 39

अधिकारों को छीना जा रहा है। किसी भी बात का सुख आदिवासियों को मिल नहीं पा रहा है। इसीलिए आदिवासी की आक्रोशजनक भाषा का चित्रण बार-बार दिखाई देता है। प्रस्तुत संदर्भ आदिवासियों पर होता पुलिस वालों का अत्याचार- "लाको कहां है? गार्ड बाबू की तेज आवाज फिर सुनाई दी पाण्डू को। इतनी सारी लकड़ी जमा कियै है। .... मना किया, फिर भी नहीं सुनता है। तुम गाँव का लोक कभी नहीं मानेगा। कहाँ गया लाको?" अब्बा तो घर गये हैं। चानो ने बताया। घर में कोई नहीं है। "तेरा बाप नहीं है, तो तुम्हें ही थाना चलना होगा।"[1] यहाँ विवशता भरी भाषा का चित्रण है। किस तरह आदिवासियों से उनके काम छीनकर उन्हें बेरोजगार बना दिया है। उसकी यह भाषा है। आदिवासी कहानियों में भावुकता का चित्रण देखने को मिलता है। आदिवासी बोलियाँ तो अनेक हैं, परंतु लेखनी में इनका प्रयोग हुआ नहीं है। बोलियों से भाषा का निर्माण हुआ है। जो विशेष है। कहानियों की भाषा आदिवासी जीवन को पूर्णता देने का कार्य करती है। सबकी अपनी एक विशिष्ट भाषा होती है। वैसे ही आदिवासी भाषा भी आदिवासी संस्कृति, जीवन, त्यौहार, आक्रोश सबको बयान करती है। आदिवासी भाषा की विशेषता बढ़ाती है कहानी का सार और कहानी की भावना। सदियों से बचता आ रहा है यह समाज, पूंजीवादियों से, सरकार से और इस सभ्य समाज से, फिर भी आज आदिवासियों को अपने वश में करने का काम जारी ही है। जिससे उनकी भाषा, उनकी परंपरा और उनका अस्तित्व कहीं-न-कहीं मिटता जा रहा है।

5.2.3 गाँव की भाषा

भारत को एक जमाने में गाँव का देश नाम से जाना जाता था। गाँव की मिट्टी की सौंधी खुशबू, खेतों में हरे हरियाली फैली हुई, रास्तों पर बच्चों के खेल की आवाज यह सब गाँव की याद दिलाते हैं। इसी वजह से गाँव की भाषा भी मीठी-मीठी होती है, कहना गलत नहीं होगा, परंतु गाँव की भाषा पर भी आधुनिकता ने अपना परदा डाल दिया। ऐसा परदा जिसे

[1] आदिवासी कहानियाँ - केदार प्रसाद मीणा, पृ.सं. 87

आज के समय में निकालना मुश्किल हो सकता है। प्रत्येक राज्य अपनी एक अलग भाषा के लिए पहचाना जाता है। इसी तरह प्रत्येक राज्य में अनेक छोटे-छोटे गाँव होते हैं। प्रत्येक गाँव की अपनी एक भाषा अपनी एक बोली होती है। सबकी विविधता अलग होती है। इसी तरह कहानियों के अंदर भी भाषा की विविधता का भंडार है। जिससे भाषा की मुख्यता को जान सकते हैं। सत्यनारायण पटेल की कहानी 'भेम का भे मांगता कुल्हाड़ी ईमान' कहानी गाँव की भाषा का एक सटीक उदाहरण कह सकते हैं। जहाँ सकीना और कालुनाथ की जीवन कहानी को चित्रित किया गया है। स्त्री शोषण की भाषा, स्त्री आक्रोश की भाषा प्रस्तुत कहानी में महसूस कर सकते हैं। अपनी पवित्रता को सिद्ध करने के लिए सकीना तैयार नहीं होती। क्योंकि उसे खुद पर विश्वास है। जिसे उसे दूसरों के सामने बयान करने की कोई आवश्यकता की जरूरत नहीं है। वह कहती है- "ईमान म्हारी एकली को नी, कालुनाथ को भी जांचो। सकीना साहस भरे स्वर में बोली, यो भी तो दो-दो, तीन-तीन महीना बाहरे रेवे है, किके मालम कि यो अपनो ईमान खराब नी करे।"[1] भाषा का सौंदर्य उसके शब्दों से उभरकर आता है। सकीना को समाज के सामने अपने पति द्वारा किया गया अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ। इसलिए वह बोल उठी। भाषा का निजीपन समझने के लिए उसमें उतरने की जरूरत आवश्यक होती है। तब तक उसके संबंध में कुछ कह नहीं सकते। भाषा की आवश्यकता प्रत्येक स्तर पर होती है। गाँव की भाषा की रीति भी ऐसी ही है। उसकी शब्दावली सरल हिन्दी से बिल्कुल भिन्न होती है। भाषा में एक गाँव की पहचान को देखा जा सकता है। जिससे उस प्रदेश की विभिन्नता को देखा जा सकता है। भाषा एक सरल माध्यम बन जाता है, सबके बीच सहज घुल-मिलने के लिए गाँव की भाषा थोड़ी भिन्न होने की वजह से उसे जल्दी समझ पाने के लिए समय लगता है। कहानियों के जरिए भाषा को समझा जाए तो वह एक सीधा मार्ग हो सकता है। भाषा की विशेषता का चित्रण सभी कहानियों में देख सकते हैं। गाँव की भाषा का

[1] भेम का भेरू माँगता कुल्हाड़ी ईमान - सत्यनारायण पटेल, पृ.सं. 137

वर्णन भी सुंदर ही होता है। परंतु यह गरीब गाँव की जनता कितनी त्रासदियों से अपना जीवन व्यतीत करती है। यह पढ़कर प्रत्येक पाठक के मन में हजारों प्रश्नों का निर्माण होता तो आवश्यक बन सकता है।

5.2.4 आक्रोश जनक भाषा

इक्कीसवीं सदी के कहानियों में सभी समाज व समुदाय का चित्रण किया गया है। यह आदिवासी संबंध में हो, दलित संबंध हो, स्त्री संबंध में हो, किन्नर संबंध में हो या और कोई विषय में हो। किसी न किसी स्थिति में मनुष्य अपना हौसला छोड़कर आक्रोश व गुस्से में आ ही जाता है। इसका कारण कुछ भी हो सकता है। परिस्थिति, समाज, परिवार, पैसे आदि कुछ भी इसका कारण हो सकते हैं। परिस्थिति किसी भी वक्त कुछ भी कर सकती है। इसीलिए आक्रोश की भावनाओं का जन्म होता है। जयप्रकाश कर्दम की कहानी 'कामरेड का घर' जो शिक्षित समाज होते हुए भी जातिवाद के भंडार में कैसे फंसा हुआ है उसका चित्रण है। दुनिया से जातिवाद को नष्ट करने के नाम पर बना कामरेड का एक का दल। परंतु कामरेड को ही फुर्सत नहीं जातिवाद से बाहर निकलने की। उस पर कहानी का नायक असलम से उद्घाटित कुछ संदर्भ में- "मार्क्सवाद हमें शोषण और विसंगतियों का प्रतिकार करना सिखाता है। किन्तु यदि हम अपने परिवार के लोगों को भी नहीं समझा सकते, उनकी सोच में परिवर्तन नहीं कर सकते तो कौन-सा साम्यवादी समाज बनाएँगे हम और कैसे बनाएँगे? आज तुम खान-पान को लेकर इस तरह की बातें कर रहे हो। कल को साम्प्रदायिकता के सवाल पर भी तुम यही कहोगे। यदि अवैज्ञानिक और गलत बातें का विरोध नहीं कर सकते तो कैसे कामरेड हैं हम? क्या अर्थ है इस तरह बैठकर गर्म-गर्म बहसें करने का? यदि हमारा यही चरित्र है तो कम से कम मुझे अपने ऊपर शर्म है कि मैं एक कामरेड हूँ।"[1] यहाँ कहानी का मुख्य पात्र असलम है जो समाज से जातिवाद को हटाना व मिटाना चाहता है। परंतु जब उसके दल का ही एक

---

[1] तलाश - जयप्रकाश कर्दम, पृ.सं. 121

कामरेड मार्क्सवादी विचारों का उल्लंघन करता है तब असलम को देखा नहीं जाता और अपने अंदर की भावना को आक्रोश भाषा के स्वरूप में बाहर निकालता है। यहाँ भाषा की विशेषता को देखा जा सकता है। भाषा के द्वारा मनुष्य की सभी भावनाओं को बाहर समाज में प्रदर्शित किया जा सकता है। यह भावना कोई भी हो सकती है। इसी तरह आक्रोश की एक भावना जब मनुष्य का अंतर्मन दुखने के बाद बाहर निकलती है। आक्रोश की भाषा थोड़ी भयावह जरूर हो सकती है क्योंकि उसमें आवेश का समावेश होता है। जो समाज, परिवार, चेतना किसी भी पहलू की वजह से निर्माण हो सकता है। आक्रोश कहीं-न-कहीं मनुष्य का एक दुश्मन भी बन जाता है। क्योंकि आक्रोशपरक भाषा को सभी को सहना समान नहीं हो सकता। भाषा ही मनुष्य के जीवन का मुख्य आधार स्तंभ है, यहाँ यह देखा जा सकता है।

5.2.5 देशज भाषा

देशज भाषा से अभिप्राय है जो भारतीय जनता की रोजमर्रा की भाषा होती है जिसे उच्चारण से आत्मीयता के भाव का निर्माण होता है। वह भाषा जो साहित्यिक भाषा की तरह कठिन कठिन शब्दों से भरी हुई नहीं होती। देशज भाषा जिसे कोई भी व्यक्ति कहीं भी आराम से उच्चारण कर सके। जिसमें किसी भी प्रकार की विशेषताओं का भंडार न जुड़ा हुआ हो। वह देशज भाषा कहलाती है। गाँव की भाषा को देशज भाषा के अंतर्गत कह सकते हैं। परंतु उसे देशज नहीं कह सकते। क्योंकि अब का भारत आधुनिकता से पूर्ण है। अब बस गाँव नहीं उनके साथ-साथ शहर भी बस गये हैं। गाँव की भाषा और शहरी भाषा में बहुत अंदर देखा जा सकता है। देशज भाषा का स्वरूप गाँव की भाषा से अलग पा सकते हैं क्योंकि इसके अंतर्गत शिक्षित व्यक्तियों का भी समावेश है और अशिक्षित व्यक्ति का समावेश भी है। अजय नावरिया की कहानी 'एस धम्म सनंतनों' में एक छोटा बच्चा विचलित है अपनी जाति को लेकर वह समझ नहीं पा रहा कि मोची और चमार में क्या अंतर होता है। "पर पिता जी हमारी किलास में एक लड़का पढ़ता है, उसके पिता जी भी मोची हैं, गुरु जी ने अब उससे किलास में

उसकी जात पूछी तो उसने खुद को चमार बताया था। क्या मोची भी चमार होते हैं? क्या वे अलग होते हैं? नहीं ... सब एक हैं। हम सभी एक हैं और अब तुम चुप रहो। दिमाग मत खाओ।"[1] कितनी सरल भाषा जिसमें देश की अर्थात गाँव तथा शहरी दोनों भाषा का अनुभव देख सकते हैं। यही विशेषता बन जाती है देशज भाषा की। पात्रों को सहजता से लिखा हुआ साहित्य पाठक वर्ग को प्रभावशाली लगता है। प्रस्तुत कहानी के अंतर्गत भी सीधे-सीधे भाषा के जरिए कहानीकार अपनी बात कह देता है। देशज भाषा संपूर्ण भारतवर्ष की पहचान करवाती है। कहानी भी मार्मिकता को बड़े आसान शब्दों के माध्यम से पाठक वर्ग तक पहुँचाती है। देशज भाषा का प्रभाव कहानियों पर अधिक देख सकते हैं। क्योंकि वह अपनी रोजमर्रा की भाषा बन जाती है। इसीलिए भाषा यह स्वरूप अधिक मान्य किया जाता है। जिसके अंतर्गत अपने मन की भावनाओं को आसानी से समन्वित किया जा सकता है। जिससे पाठक व लेखक दोनों के बीच के संबंध नजदीक के बन जाते हैं। देशज भाषा का प्रभाव प्रत्येक भाषा में देखा जा सकता है। प्रांतीय भाषा में एक अलगाव को देखा जाता है। वही अलगाव जब वह देशज भाषा बनकर पाठक के सामने प्रस्तुत होता है तब उसका स्वरूप बदल जाता है। यही मुख्य विशेषता होती है देशज भाषा की, ऐसा कह सकते हैं।

5.2.6 अंग्रेजी भाषा

भारत देश की अंग्रेजी भाषा जैसे स्वभाषा बन चुकी है। जहाँ जाओ वहाँ अंग्रेज बन चुके हैं । राष्ट्रभाषा हिन्दी को कहा जाता है। परंतु अंग्रेजी का जोर अधिक देखा जाता है। सरकार भी इस पर कोई नियंत्रण नहीं कर पा रही है। बच्चों को या बड़ों को हिन्दी भाषा बोलने में शर्म सी महसूस होती है। ऐसा क्यों हो रहा होगा। पाठशालाओं में प्रांतीय भाषा को महत्ता देने के बजाय अंग्रेजी को प्रथम स्थान पर रखा गया है। यही परिवर्तन हम सब जगह देख सकते हैं। अंग्रेजी भाषा ने पूर्ण विश्व पर अपना हाथ रख दिया है। आज का समय न

[1] पटकथा तथा अन्य कहानियाँ - अजय नावरिया, पृ.सं. 14

चाहते हुए भी अंग्रेजी के अंदर धंसता चला जा रहा है। नौकरी जैसी जगह भी अंग्रेजी नहीं तो कुछ नहीं, ऐसी भावना का निर्माण हो चुका है। इसी कारणवश हिन्दी कहानियों में भी अंग्रेजी का प्रभाव अधिक दिखने लगा है। आधुनिक समय की कहानी में अंग्रेजी वाक्य तथा अंग्रेजी शब्द जैसे साधारण फैंसी बात बन चुकी है। यह हमारी वजह से भी हो रहा है, यह कहना गलत नहीं होगा क्योंकि हम ही यह त्यागना नहीं चाहते। हम अंग्रेजी की पूंछ पकड़कर बैठ गए हैं। जो अभी साहित्य में भी झलकने लगी है। जिसका प्रभाव नव पाठकों पर देखा जा सकता है। मेरा यह कहना नहीं कि अंग्रेजी गलत भाषा है, बल्कि मेरा कहना है कि प्रथम स्थान सभी को अपनी मातृभाषा को देते हुए तत्पश्चात दूसरों के बारे में सोचना चाहिए। परंतु अब यह हो पाना कहाँ तक मुमकिन है, कह नहीं सकते हैं। क्योंकि अंग्रेजी भाषा का जाल मकड़ी के जाल की तरह फैल चुका है। जिसे आप कितना भी तोड़ने का प्रयास करो वह फिर से जुड़ ही जाता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में अंग्रेजी का भयावह रूप हम देख सकते हैं। जो बढ़ता ही जा रहा है। लेकिन कम कहीं से भी नहीं हो रहा है। कहानी के मुख्य पात्रों की अंग्रेजी तो तूफान मेल की तरह आगे बढ़ती दिखाई देती है। जिसका कोई मुकाबला नहीं किया जा सकता। हमने जैसे अंग्रेजी भाषा को महत्व दिया है, वैसे ही किसी भी देश में अपनी भाषा को देखा जा सकता है क्या? तो उत्तर होगा नहीं। भाषा का उपयोग एक साधन की तरह किया जाता है वार्तालाप को आसान बनाने के लिए। परंतु वार्तालाप छोड़कर बाकी जगह अंग्रेजी ने अपना फैलाव कर लिया है। पाठशाला, कार्यालय, सरकारी दफ्तर, छोटी-बड़ी संस्थाएँ सभी जगह अंग्रेजी का प्रभाव अधिक हो गया है। या यूँ कहें बस अंग्रेजी से ही यहाँ का जीवन व्यतीत होता है। देश, देश की भाषा यहाँ पाठशालाओं में द्वितीय श्रेणी की चुनाव में आ गई है। इससे बड़ी शर्म क्या होगी।

5.2.6.1 अंग्रेजी शब्द

इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का बड़ा सा भंडार हमें देखने को मिलता है। उसमें कुछ कहानियाँ प्रयुक्त हुए शब्द नीचे दिये गये हैं। कहानियों में उपयोग हुए कुछ अंग्रेजी शब्द-

तलाश : गेस्ट हाउस, फोन, टेलीफोन, बूथ, बैडरूम, ड्राइंग रूम, डिस्टबैन्स, कॉमन, मटन डे, संडे, शिफ्ट, एडजस्ट, हैंडल, किचन, स्लैब, प्रेस, क्लब, कन्स्टीट्यूशन, साउथ एवेन्यू, मीडिया, कवरेज, एजेंसियों, रिलीज, कॉलेज आदि।

गौरा गुणवंती : ब्रश, कम्पनी, पॉटी, बाथरूम, गैस, ऑफिस, स्कूल, टिफिन, डायरी, रिमार्क, स्टार्ट, फास्ट, लोकल, टाइम, ब्रेक डाउन, पैसेंजर, लंच, कैंटीन, प्ले स्कूल, फाइल, माइग्रेन, स्ट्रिप, बॉस, फ्रेश, टैब्लेट, साइनोसाइटिस, सिंक, ओ.के., टेस्ट, बाय, टेक, केअर, मैनेज, रबर-पेंसल, ग्लास, टम्बलट, फ्रिज, लास्ट, थिंग्स, मूड, पार्क, बेंच, फ्रॉक, डेज, आर, दीज आदि शब्द।

अंदर के पानियसों में कोई सपना काँपता है : फैमिली, सूट, नो-प्राब्लम, टॉवेल, रूटीन, कॉलोनी, मम्मी, मैरिज, अटैंड, हॉस्पिटल, डिलेवरी, ऑपरेशन, बास्केट, बाथरूम, सिस्टर्स नर्सेस, स्ट्रेचर, स्कूटर, फोन, गाउन, पेटीकोट, गारमेंट्स, नर्स, अंडर, शिफ्ट, थियेटर, पेशेंट, इंजेक्शन, डाक्टर्स, ग्लूकोज, चेकअप, स्ट्रेचर, ओ-गॉड, रेजर, सीनियर, डायबिटीक, प्लेसेंटा, पर्स आदि शब्द।

खबर : सर, फाइल, स्कॉफ, बॉबकट, हेलमेट, जींस, टॉपर, रिकार्ड, शॉक, चार्जशीट, वैरी, गुड, सर, शॉक, पैन, मैडम, फोटोकॉपी, एडजेस्ट, मैटर, लायजन, ऑफिस, प्रेस, नोट, सोर्स, नोट बुक, ऑफिसर, न्यूज, साइलेंट, फिगर, नेगेटिव, स्टोरी, कप, टेबल, डिक्टेट, पीओन, सीट, सिप आदि शब्द।

उलटबाँसी : ट्रेन, फोन, डॉक्टर, रिपोर्ट, हनीमून, प्लेटफार्म, रिक्शा, गेट, गोल्डन, जुबली, सेलीब्रेट, क्लाइमेक्स, व्हाट, डॉक्टर, स्टेशन आदि शब्द

मुम्बई कांड : स्पीड, टी.वी., चैनल, जुलाई, वोट, पुलिस, फायरिंग, रैली, मीटिंग, पैक्ट, मुम्बई, पार्क गेट, ओरिएंट, सिनेमा आदि शब्द

घुसपैठिये : मेडिकल, कॉलेज, फाइनल, केस, फोन, मील, होमवर्क, स्कूल, कॉलेज, एडमिशन, इंजीनियरिंग, रैंगिग, हॉस्टल, फर्स्ट इयर, सीनियर, बस स्टैंड, सीट, बेडरूम, मिनट, ड्राइंग, डीन, मैस, प्रैक्टिकल, बैच, क्लासेज, वार्डन, अटैंड, एलॉट, गर्ल्स, मैनेजमेंट, इंस्पेक्टर, रिपोर्ट, डॉक्टर, पोस्टमार्टम आदि शब्द।

विकसित मैं : ग्रीटिंग कार्ड, आरचिज, कोटेशन, स्कूल, कॉलेज, नाइटी, पाजेसिव, नम्बर, कोर्स, फेल, मैडम, मम्मी, पापा, बोर, इडियट, एम.ए., फोन आदि शब्द।

यह बस कुछ कहानियों के अंतर्गत प्रयोग किये गए शब्द हैं। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में उपरोक्त अंग्रेजी शब्द और अधिक प्रयोग किये गये हैं।

5.2.6.2 अंग्रेजी वाक्य

अंग्रेजी शब्दों की तुलना में अंग्रेजी वाक्य का प्रयोग कम किया गया है। कहानी का बहुतांश भाग शब्दों से पूर्ण हो जाता होगा। और कहानी का माध्यम हिंदी होने की वजह से शायद कहानीकार अंग्रेजी वाक्यों का अधिक उपयोग नहीं करता होगा। अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हम सब तरफ देखते आ ही रहे हैं। कहानी, उपन्यास यहाँ तक कि कविताओं में भी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होने लगा है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में अंग्रेजी भाषा की निपुणता का प्रमाण इनकी कहानियाँ देखकर मिल सकता है। कहानियाँ जो समाज का दर्पण है। जो समाज में घटित घटनाओं का वैचारिक संकलन है। जयप्रकाश कर्दम, सूर्यबाला, उषा जादवानी, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अनिता गोपेश और भी ऐसे बहुत से कहानीकारों को अपने साहित्य में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते देख सकते हैं। सभी भाषाओं

की तरह अंग्रेजी भी एक भाषा ही है तो फिर इसी भाषा का प्रभाव अधिक क्यों देखा जा रहा है। आज का समाज अंग्रेजी समाज बन गया है। कोई बड़ा मनुष्य अर्थात उम्र से बड़ा अपने से छोटे व्यक्ति या बच्चे से बात करना चाहेगा तो पहला प्रश्न आएगा- व्हॉट्स युअर नेम? यहाँ से अंग्रेजी की शुरुआत ही हो जाती है। शायद अब के समाज में इसे रोकना भी मुमकिन न हो। अवधेश प्रीत की कहानी 'सी-इंडिया' कहानी के शीर्षक से ही अंग्रेजी की शुरुआत हुई है। यह कहानी राजीव रंजन के बदलते युग के साथ बदलते जीवन की है। आधुनिकता के चलते पुराने टाइपराइटर छोड़कर अब सब काम संगणक (कम्प्यूटर) पर होने वाला था। इसी से भयभीत हो उठे हैं राजीव रंजन। कहानी की शुरुआत कुछ ऐसी है-

> "तो ये आपका फाइनल जवाब है?'
>
> 'जी'
>
> 'फाइनल-फाइनल?'
>
> 'यस सर!'
>
> 'कांफिडेंट!'
>
> 'तो लॉक कर दिया जाए?'
>
> 'आफकोर्स।'
>
> 'कम्प्यूटर जी! सी-इंडिया को लॉक किया जाए।"[1]

सुधा अरोड़ा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम - ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' एक माँ और बेटी के प्रेम की दासतान है। कहानी मन के अंदर कुछ अलग ही भाव का निर्माण करती है। जिससे निर्दयी समाज में रह रहे निर्दयी मनुष्य की पहचान होती है। इस कहानी में प्रयोग हुआ एक वाक्य- "हर ऐम्बिशन्स लेड टु हर डेथ!"[2] वाक्य कुछ शब्दों का ही, परंतु यह पूर्ण कहानी को बयान करते हैं। जिससे लेखक के मन भाव का भी पता चल रहा है। सूर्यबाला की

---

[1] हमजमीन - अवधेश प्रीत, पृ.सं. 118

[2] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 130

'मौज' कहानी भी आधुनिकता का प्रचार करती दिखाई गई है। बेटा बहू नौकरी करते हैं। दो पोती-पोता को सास-ससुर संभाल रहे हैं। आज के व्यस्त समाज में वृद्धावस्था में पहुँचे सास-ससुर की यह कहानी है। कहानी में उद्गारित कुछ वाक्य- "यूँ भी रोजमर्रा की जिंदगी में, थिंग्स आर मच बेटर दीज ....।"[1] अंग्रेजी भाषा आज के जीवन की जरूरत बन चुकी है।

5.2.7 राजस्थानी भाषा

भारतीय भाषा की मिठास ही कुछ अलग है। प्रत्येक भाषा एक-दूसरे से अलग है। फिर भी उसमें नवीनता की पहचान मिलती है। इस प्रकार राजस्थानी भाषा की सुंदरता भी अलग ही है। इसमें हिन्दी शब्द से मिलते-जुलते शब्दों को देखा जा सकता है। हिन्दी भाषी, राजस्थानी भाषा को पूर्णत: नहीं फिर भी उसके कुछ भागों को अवश्य समझ सकता है। राजस्थानी भाषा का निर्माण शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ, ऐसा माना जाता है। राजस्थानी भाषा की मुख्य बोली मारवाड़ी है। उसी तरह मेवाती, अहरवाई, रांगड़ी, मालवी, शेखावटी, गौड़वाडी, बीकानेरी, हाड़ौती, खैराड़ी, चौरासी, थली आदि अनेकों बोलियों से राजस्थानी भाषा का निर्माण हुआ है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशेषता है। हिन्दी साहित्य में राजस्थानी, बिहारी, भोजपुरी, हरियाणवी आदि भाषाओं का समावेश अधिक तौर पर देखा जाता है क्योंकि इनकी बोलियाँ हिन्दी भाषा से मिलती-जुलती हैं। इक्कीसवीं सदी के कहानियों में राजस्थानी, हरियाणवी आदि भाषाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। रूप सिंह राठौड़ की कहानियाँ इसका अच्छा उदाहरण बन सकता है। उनकी भाषा हिन्दी तथा राजस्थानी मिश्रित भाषा है। परिवेश का असर तो मनुष्य जीवन पर होता है। उसी वजह से रूपसिंह राठौड़ की कहानियों में भी राजस्थानी भाषा का अधिक प्रभाव देखा जा सकता है। कहानी 'आदर्श की अर्थी' जो एक परिवार की कहानी है। परिवार की छोटे-बड़े नोंक झोंक की कहानी है। घर में दो बेटे हैं। बड़ा बेटा विवाहित है। छोटे बेटे का विवाह होने वाला है। वह

---

[1] गौरा गुणवंती - सूर्यबाला, पृ.सं. 77

आदर्शवादी रास्ते पर अधिक जोर देता है। कहानी में उद्गारित कुछ संदर्भ- "अरी ओ भली मानस! संतोष रख। सब्र का फल कहते हैं मीठा होता है। कभी न कभी तो लहर आयेगी दिल को थामके रख मालिक की मर्जी। बदनसीबी पर बार-बार रोने से कुछ नहीं मिलता। छाती वज्र सी कर ले। देखते हैं और क्या होता है आगे? मैं पलायनवादी नहीं हूँ। जीवन से पलायन मृतात्मा करती हैं। जिनकी जिजीविषा मर चुकी हो। मैं हार मानने वाला नहीं। आखिरी दम तक जीवन में आने वाली विभीषिकाओं से जूझूँगा।"[1] भाषा मन के भाव सबके सामने प्रस्तुत करती है। कहानियों का लिखने का विधान, उसकी भाषा, उसका कथ्य इन सब पर कहानी की प्रभावशीलता अवलंबित होती है। हरिराम मीणा, केदार प्रसाद मीणा, रूपसिंह राठौड़ की कहानियों में राजस्थान की मिट्टी की सौंधी खुशबू आती है। भाषा शैली का सटीक प्रयोग भाषा की विशेषता बढ़ा देती है। प्रांतीय भाषा के साहित्य में भाषा की एक लय होती है जिससे भाषा में नवीनता का अनुभव होता है। राजस्थानी भाषा का भाव भी कुछ ऐसा ही है। राजस्थानी शब्द उच्चारण में एक लय का निर्माण होता है। वही उसे आकर्षक बनाने का कार्य भी करती है। कहानीकारों ने अपनी सुविधानुसार भाषा का प्रयोग करके अपनी कहानियों की रचना की है। जिससे वह पाठक वर्ग को भी अपनी रचना के प्रति आकर्षित कर पाता है।

5.2.8 सरल व सहज भाषा

भाषा जितनी सरल व सहज हो वह उतनी ही प्रभावशाली व प्रवाह के गति से आगे बढ़ती जाती है। सरल और सहज भाषा आम जनता की भाषा होती है। जो हर कोई समझ सकता है। सरल भाषा से पाठक वर्ग आसानी से कहानी के मूल्यों को समझ सकता है। सरल भाषा से अर्थ होता है आम भाषा जो समाज में रोजमर्रा की जिंदगी में हर कोई प्रयुक्त करता है। जिसमें सामान्य शब्दों का, बोलचाल के शब्दों का समावेश अधिक हो। जो एक कुशल कहानीकार की पहचान बनती है। साहित्य को साहित्यिक स्तर पर अनुभव करना और रोज

[1] कोई है! - रूप सिंह राठौड़, पृ.सं. 43

की दिनचर्या की तरह महसूस करना दोनों में जमीन-आसमान का अंतर देख सकते हैं। यह अंतर विविध मार्गों से दिखाया जाता है। सरल और सहज भाषा की शब्दावली भी साधारण ही होती है। जो साधारण मनुष्य जिसकी साहित्यिक भाषा से कोई संबंध ही न आता हो, वह भी आसानी से समझ पाता है। यही सरल भाषा की मुख्य विशेषता है, कह सकते हैं। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के कहानीकारों में यही गुण अधिक देखा गया है। अर्थात कहानियों में सरल भाषा का प्रयोग अधिक किया गया है। मीराकांत की कहानी 'बाबू जी की थाली' संपूर्ण कहानी सरल भाषा में लिखी गयी है। कहानी का अर्थ पाठक को एक क्षण में ही पता चल जाता है। यही वह भाषा की विशेषता होती है जो उसे सबसे अलग बना देती है। कहानी में लिखित कुछ वाक्य- "बाबूजी बस बाबूजी थे। अपने में एक व्यक्तित्व। सांवला रंग, ऊँचा कद, औपचारिकता निभाने भर के लायक चेहरे पर छोटी-छोटी मूँछे, तीखी उठी हुई नाक, जरूरत से ज्यादा सुनने वाले बड़े-बड़े कान, कनपटियों पर व सिर के पीछे ठीक गर्दन के ऊपर बालों का जमघटऔर इन बालों ने ही जगह दी थी उनके माथे को दूर-दूर तक फैलने की।"[1] यहाँ लेखिका ने कहानी के एक पात्र बाबूजी उनके शारीरिक वर्णन को सरल भाषा से रेखांकित किया गया है। बाबूजी का यह पात्र कहानी का ऐसा पात्र है जिसका स्वयं का कोई भी संवाद कहानी में दर्शाया नहीं गया है। यहाँ बाबूजी को तृतीय पुरुष की जगह दे सकते हैं। भाषा का माध्यम इतना सहज है कि कहानी पढ़ने की रुचि अपने आप पाठक में जागृत हो जाती है। इक्कीसवीं सदी की अधिकतर कहानियों को इसी विधा में देखा गया है जिससे कहानी और भी अधिक आसानी से जन-समुदाय में फैल रही है। कहानियों में सहजता से सामान्यत: परिवेश को देखा जा सकता है। सभी जगह साहित्यिक पहलुओं को देखा जाना आसान नहीं होता। क्योंकि सभी पाठक वर्ग उतने निपुण होते हैं सभी तरह की भाषाओं में यह भी नहीं कह सकते। इसीलिए कहा जाता है सरल व सहज भाषा अधिक प्रवाहशील होती है।

[1] गली दुल्हनवाली - मीराकांत, पृ.सं. 82

प्रवाहशील का अर्थ यहाँ यही कहा जा सकता है कि वह अधिक पाठकों तक पहुँच सकती है। कहानी की भाषा ही उसका मुख्य शस्त्र है जिसे पाठक तक आसानी से पहुँचाने का काम कहानी की सरल भाषा कर सकती है। भाषा अपने आप में निपुण होती है।

5.2.9 मुहावरे व लोकोक्तियों की भाषा

मुहावरे व लोकोक्तियाँ भाषा को सुंदर बनाने का काम करते हैं। मुहावरे तथा लोकोक्तियों की वजह से भाषा का लहजा बदल जाता है। मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग करने की प्रथा बहुत पहले से भारतीय संस्कृति में प्रचलित है। गली, चौरस्ते, किसी मंदिर, पाठशालाओं में नाटक, कहानी पठन का आयोजन किया जाता था। मुहावरा शब्द अरबी भाषा का अर्थ है। मुहावरा अर्थात इसका शाब्दिक अर्थ हुआ अभ्यास। किसी एक विषय या वस्तु को केन्द्रित करके उसके संबंध में शब्दों की विविध रचना करके मुहावरा बनता है। साधारणत: लोक में प्रचलित जो उक्तियाँ होती हैं, उन्हें लोकोक्तियाँ कहा जाता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में भाषा के विविध चरणों का प्रयोग किया गया है। वहाँ मुहावरे तथा लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग किया हुआ है। गाँव की भाषा में मुहावरों का प्रयोग अधिक है, यह देखा गया है। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी ‘बदन दबना’ में प्रयुक्त मुहावरा- “अकल की दाढ़ आई नहीं’, ‘वकील बनने चला है’।”[1] हलक सिंह डांटते हुए पूछा राम को कहता है। इसी प्रकार से प्रथम दशक की ऐसी बहुत सी कहानियों को देखा जा सकता है। जहाँ मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग करके भाषा की प्रभावशीलता को बढ़ाया गया है। अनिता गोपेश की कहानी ‘उड़ान’ एक गरीब मजदूर लड़की की कहानी है। उसके जीवन में हुई सभी छोटी-मोटी घटनाओं को बड़ी सुंदर भाषा से लेखिका ने रेखांकित किया गया है। कुसुमिया घर छोड़कर दीपक के साथ भाग जाती है। तब शुभा के मुंह से यह मुहावरा “आसमान से टपकी खजूर में अटकी....?”[2] सारा खेल शब्दों का है। साहित्यकार को शब्दों

---

[1] खेत तथा अन्य कहानियाँ - रत्न कुमार सांभरिया, पृ.सं. 113

[2] कित्ता पानी - अनिता गोपेश, पृ.सं. 154

का यह खेल भली भांति खेलना आता है । इसीलिए साहित्यकारों की भाषा और उनकी रचना सबसे अलग कहलाती है। सुधा अरोड़ा की कहानी ‘सत्ता-संवाद’ एक पत्नी और पति की कहानी है। जो प्रेम से अधिक यातनाओं से भरी है। घर तथा बाहर का काम दोनों को बस एक अकेली औरत को ही करना पड़ता है। उस वक्त उद्गारित हुआ एक मुहावरा - “पकाऊँ भी मैं और उगाऊँगी मैं।”[1] लेखक कितनी गहनता से सोचता है। इसीलिए उनके मन में इस प्रकार के विभिन्न विचारों का सैलाब आता रहता है। और वह शब्दों के माध्यम से भाषा बन जाता है और प्रेक्षक सामने प्रस्तुत हो जाता है। शर्मिला बोहरा जालान की कहानी ‘विकसित मैं’ जो एक स्वतंत्र स्त्री की कहानी है। जो बस घर और चूल्हा संभालने पर विश्वास नहीं करती। अपितु समाज में सबके साथ चलने को मानती है। कहानी अच्छे तथा बुरे दोनों भावों तथा घटनाओं से निर्मित होती है। इसी तरह यहाँ भी कहानियों में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिसकी वजह से उपरोक्त मुहावरों का उपयोग किया गया। जैसे “मैंने खुद अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारी थी”, “उसे साँप सुंघा दिया हो।”[2] आदि मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ कहानी तथा उपन्यास इनमें रुचि बढ़ाने का कार्य करते हैं। इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक विविधओं से पूर्ण था।

5.2.10 अलंकारिक भाषा

एक स्त्री की सुंदरता जैसे उसके कपड़े और उसके गहनों से देखी जाती है। यहाँ मैं स्त्री की आंतरिक सुंदरता की नहीं बल्कि उसके बाहरी रखरखाव के संबंध में बातें कर रही हूँ। उसी तरह भाषा के सौंदर्य को उपमा, अलंकार इनमें मापा जाता है। रूपक, उपमा इनका गद्य साहित्य में परंपरागत रूप से उपयोग किया गया है। मुहावरे, लोकोक्तियाँ भी अलंकारिकता का ही एक भाग माना जाता है। अलंकारिकता के अंतर्गत भाषा का सरल उपयोग न करते हुए उनमें शब्दों की विविधता का निर्माण किया जाता है। अलंकारिकता को मन की भाषा भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत भाषा का भाव समझने के लिए थोड़ी जटिलता का निर्माण हो

[1] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 108

[2] बूढ़ा चाँद - शमिला बोहरा जालान, पृ.सं. 101, 103

जाता है। अलंकारिकता कल्पना को भी कह सकते हैं। अलंकारिक भाषा का उपयोग पाठक को प्रोत्साहित करता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों के अंतर्गत इसी विविधता को कहानीकारों ने चित्रित किया है। प्रत्येक कहानी की अपनी एक विशेषता है। जिससे उस कहानी का भावार्थ अधिक प्रेरणादायी बन जाता है और उसकी विशेषता भी बढ़ जाती है। अलंकार शब्दों की सुंदरता को एकत्रित करके रचना तैयार होती है। यह एक बड़ी प्रक्रिया होती है, यह भी कह सकते हैं। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी 'घरौंदा नहीं, घर' स्त्री जीवन की कहानी है। कहानी का शीर्षक ही कितना सार्थक है। अलंकारिकता का निर्माण यहाँ शीर्षक से ही शुरू हुआ ऐसा लगता है। लेखिका लिखती हैं- "रेत अब भी गीली थी। उसने रेत के भीतर अपने पाँव धंसा दिये। ठंडी-ठंडी कोमल-कोमल रेत। वह उसे उठा-उठाकर अपने घुटनों तक के पाँवों पर गिराने लगी। एक अत्यंत सुखद अहसास!"[1] कितने सुंदर तरीके के यहाँ लेखक ने यहाँ रेत और पानी का वर्णन किया है। यही होती है अलंकारिक भाषा, जिससे पाठक रचना के प्रति आकर्षित होता जा रहा है। शब्दों की यही भिन्नता को लेखक पहचानकर सही जगह सही प्रयोग करता है। जया जादवानी ने अपनी कहानी 'उलटबाँसी' में प्रयुक्त किया हुआ यह वाक्य- "लहरें जब आती होंगी तेज-तेज तो किनारे पर खड़े लोग भी भींग जाते होंगे! है न? कैसा लगता होगा उस वक्त ....?"[2] पानी की लहरों को महसूस करना चाहती है, अपूर्वा की माँ। जिसने कभी सागर देखा नहीं वह सागर की कल्पना में अपनी सोच को प्रवाहित करती आगे बढ़ रही है। यही लेखिका की विशेषता है। अलंकारिकता शब्दों की तथा भाषा की अभिव्यक्ति को बढ़ा देती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भाषा के विविध संदर्भों को लिया गया है। उसी के अंतर्गत अलंकारिकता भी एक प्रयोग है। जिससे कहानी की सुंदरता को और बढ़ाया जाता है। अलंकारिकता रूपक, उपमा, अतिश्योक्ति, हास्य, कल्पना या विरोधाभास किसी पर भी बनाया जा सकता है। अलंकारिकता कभी-कभी कहानी के लिए

[1] वाह कित्ती, वाह! - यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ.सं. 98

[2] उलटबाँसी - कविता, पृ.सं. 13

अनिवार्यता बन जाती है। अलंकार में अनेक विषयों को सम्मिलित किया जाता है। जिससे अलंकारिक भाषा का निर्माण सहज हो सके।

5.3 प्रथम दशक की कहानी : बिम्ब प्रयोग

बिम्ब का सीधा अर्थ समझा जाए तो वह होगा, मनुष्य की मानसिक चित्रात्मकता। बिम्ब एक कल्पना है। जिसे लेखक शब्दों में संजोकर रचना बना देता है। कल्पना का अधिकतर जोर कविता की तरफ होता है ऐसा मानते हैं। क्योंकि उसकी भूमि काल्पनिक स्तर पर अधिक होती है। परंतु बिम्ब बस कविता तक ही सीमित नहीं है। बिम्ब का प्रयोग कहानियों में भी देखा जा सकता है। इस विषय में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार- “काव्य भाषा और कुछ नहीं अपितु बिम्ब प्रक्रिया के पूर्व क्रियाशील प्रतीक है। सच यह है कि बिम्ब काव्यभाषा का एक उपादान है और यह आवश्यक नहीं कि हम बिम्बात्मक भाषा को ही काव्य भाषा कहें। वस्तुत: यथार्थ की चित्रात्मक प्रस्तुति ही बिम्ब है। युगीन कहानीकारों ने कहीं परिवेश, परिस्थिति, वस्तु के चित्रण के लिए बिम्ब का सहारा लिया है और कहीं मानव-मन के आंतरिक एवं बाह्य सौंदर्य निरूपण हेतु अथवा उसके अन्तस के मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग किया है। ऐसे बिम्ब को सुन-पढ़कर पाठक या श्रोता को कहानी अपनी कहानी प्रतीत होती है।”[1] डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी स्पष्ट कर रहे हैं कि बिम्ब विधान लेखक की उच्च कल्पना का एक स्तर है। जहाँ कविता हो या कहानी हो दोनों के भीतर बिम्ब का प्रयोग किया जाता है। कल्पना का भी यथार्थ होता है। यह यहाँ स्पष्ट किया गया है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भी बिम्ब का प्रयोग या यूँ कहें बिंबात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। बिम्ब कहानी की उत्कृष्टता है। इस तरह से भी विचारों का संचार हो सकता है। यह कहानियों को पढ़कर पता चलता है। प्रत्यक्षा की कहानी ‘जंगल का जादू तिल-तिल’ के अंतर्गत लेखिका ने बिंबात्मक भाषा का प्रयोग भली-भांति किया है-

[1] अंतिम दशक की हिन्दी कहानियाँ : संवेदना और शिल्प - डॉ. नीरज शर्मा, पृ.सं. 191

"भनभन-भनभव आवाज इधर-उधर घूमती है इस छोर से उस छोर। तेज तीखी, मोलभाव करती, हँडिये के नशे में झगड़ती, उकसाती, दबे-छिपे हँसते-किलकते और फिर दिन ढलते थकी-हारी, बेचैन थरथराती, बुझती ढिबरी की काँपती सिमटती लौ-सी। अँधेरा होते ही सब सिमटता जाता है। अलाव की रोशनी में उजाड़ पड़े चाकौर गुमटियों के निशान, कागज की चिन्दियाँ, पत्तल और कुल्हड़। रेजगारी की छनछनाहट, नोटों की करकराहट। कुछ बुझे उदास चेहरे, धूसर मिट्टी में सने पैरों के तलवे, रबर की चप्पलें और जंगल में सुन सन्नाटे में खाते-पाते अकेले रास्ते। जंगल का जादू कहीं बिला गया है।"[1] लेखन की सुंदरता बढ़ाने के लिए प्रत्येक साहित्यकार अपना प्रयास हमेशा करता ही रहता है। कहानी का यथार्थ बना रहे और उसकी प्रभावशीलता भी बढ़े, यह नियमित प्रयास होता ही है। बिम्बों की भाषा में कहीं-कहीं जटिलता का सामना भी करना पड़ता है क्योंकि वह सरल व सहज से थोड़ी सी उलझी हुई होती है। कभी-कभी उसका सीधा अर्थ समझ पाना मुश्किल बन जाता है। परंतु यह भाषा के लिए आवश्यक भी होता है। बिम्बात्मक भाषा अवधान सभी जगह प्रतीत होता रहता है। बिम्बात्मकता की विशेषता होती है कि जो सच में नहीं हो सकता उसे कल्पना के माध्यम से बनाया जाए।

5.4 प्रथम दशक की कहानी : प्रतीक प्रयोग

मनुष्य के विचारों की मूल अभिव्यक्ति ही प्रतीक है। शब्दों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रतीक का उपयोग किया जाता है। प्रतीक शब्दों का छोटा रूप होता है। जिससे कम से कम शब्दों में शब्द के अर्थ को समझा जा सकता है। प्रतीक को अंग्रेजी में 'सिम्बल' शब्द से संबोधित किया जाता है। प्रतीक का प्रयोग भाषा को नवीनता प्रदान करने के लिए भी किया जाता है। डॉ. हरिचरण शर्मा के अनुसार- "प्रतीकों में न केवल सूक्ष्म निदर्शन की शक्ति होती है, बल्कि उनके माध्यम से विस्तार वक्तृता भी संक्षेप रूप धारण कर लेती है। क्योंकि

[1] जंगल का जादू तिल-तिल - प्रत्यक्षा, पृ.सं. 51

प्रतीकों का जन्म ही कम से कम शब्दों के माध्यम से अधिक से अधिक अर्थ व्यक्त करने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप हुआ है। प्रतीक किसी अदृश्य या अप्रस्तुत के निमित्त प्रस्तुत किए गए प्रत्यक्ष या दृश्य संकेत है। स्पष्ट शब्दों में रूप गुण और भाव को अवगत कराने वाली वह कल्पना प्रतीक कहलाती है।"[1] प्रतीक अर्थात किसी वस्तु या पदार्थ के संबंध में उसकी एक प्रतिमा का खड़ा करना। किसी बातों में कहना, परंतु बात को सीधे तरीके से न कहकर उसके लिए एक उदाहरण अथवा प्रतिमा का तैयार करना प्रतीक कहलाता होगा। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों के अंतर्गत कहानी के सभी लक्षणों का उल्लेख किया गया है। उसी तरह प्रतीक का चित्रण भी कहानियों में देखा जा सकता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' कहानी के शीर्षक में ही हमें प्रतीक का चित्रण हो जाता है। यह कहानी माँ और बेटी के अटूट रिश्ते की है। जहाँ एक तीसरा व्यक्ति अर्थात मेरी के पति का चित्रण है। किस तरह वह एक औरत को प्रताड़ित कर रहा है। इसका मार्मिक चित्रण लेखिका ने प्रतीक का उपयोग करके दिया है- "तुझे सीढ़ी बनाकर वह ऊपर और ऊपर उठता गया। वह फिर से पीछे देखना नहीं चाहता था। तूने अपने हाथ क्यों बढ़ाए उसकी ओर? वह आसमान की ओर बढ़े तेरे हाथों को रसोई की बंद खिड़की के पास लाना चाहता था, जहाँ से एक टुकड़ा आसमान भी तुझे साफ न दिखे! क्यों नहीं मानी तूने उसकी बात? उसने तुझे तालों में बंद कर दिया। तुझे फिर भी दहशत नहीं हुई? तू उस तहखाने से निकलने के रास्ते ढूंढने लगी। अपनी आवाज बंद दरवाजे के बाहर पहुँचाने की जुर्रत कर बैठी।"[2] एक स्त्री की बेबसी का चित्रण यहाँ प्रतीक के प्रयोग से किया गया है। एक स्त्री की बेबस आवाज जिसे उसका पति ही बंद कर देना चाहता है। इसकी वजह यह है कि वह उसके पति से आगे पहुँच रही थी। अपनी एक नयी पहचान बना रही थी। अपना स्वयं का एक नाम बना रही थी। परंतु यह सब एक ही क्षण में पूर्ण होना पुरुष प्रधान समाज में मुमकीन नहीं है। प्रतीक प्रयोग के तीव्र

---

[1] जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प विधान - अशोक कुमार गुप्ता, पृ.सं. 107

[2] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 130

शब्द कहानी को अच्छे ढंग से विश्लेषित कर पाते हैं। प्रतीक की यही विशेषता इक्कीसवीं सदी की कहानियों में पाठक वर्ग देख सकता है।

5.5 प्रथम दशक की कहानी : भाषा शैली

भाषा नदी का बहाव है। जिस तरफ मोड़ोगे उस तरफ मुड़ जाएगी। भाषा मनुष्य का जीवन है। जिसके सहारे वह समाज में सबसे घुलमिल सकती है। प्रत्येक बोली की भाषा होती है। परंतु प्रत्येक शब्द की भाषा होना तो मुमकीन नहीं है। भाषा मनुष्य के अंतर्मन की आवाज है। जो मन कहे वह भाषा बन जाती है। भाषा का पड़ाव हर स्तर पर बदलता देख सकते हैं। प्रत्येक समय अपनी आपबीती सुनाता है। ठीक उसी तरह भाषा भी अपने सही समय की सही आपबीती पाठक तक पहुँचाती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों की गाथा भी विस्तृत है। हजारों की तादाद में कहानियाँ प्रकाशित हुईं। प्रत्येक कहानी का भाव एक दूसरे से अलग समझा जा सकता है। कहानी का प्रभाव अपने आप आगे बढ़ता चला जाता है। कहानी कल की कल्पना होती है जिसे यथार्थ की पृष्ठभूमि के जरिये रचा जाता है। यह यथार्थ समाज का होता है। समाज में होने वाली विविध घटनाओं का होता है। कहानी की इन घटनाओं को स्थिरता भाषा देती है। कहाँ, किस जगह क्या होना चाहिए, यह भाषा तय करती है। कहानियों को इन भाषाओं को इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने विविध शैली से रचने की कोशिश की है। जो सफल ठहराती हुई भी दिखाई गई है। कहानियों के अंतर्गत संवादात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली,नाटकीय शैली, वर्णनात्मक शैली, काव्यात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, तुलनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, मनोविश्लेषणात्मक शैली, लोककथात्मक शैली तथा व्यंग्यात्मक शैली के आधार पर विभाजित किया गया है। प्रत्येक शैली की अपनी एक विशेषता होती है। प्रत्येक शैली एक-दूसरे से भिन्न होती है। परंतु यही वह पद्धतियाँ हैं जिससे कहानी की सही तरह से पहचान पाठकों को करवाई जा सकती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों की संरचना में अंतिम दशक की कहानियों से अधिक बदलाव देखने को मिलता है।

शायद इसका कारण कहीं-न-कहीं आधुनिकता भी हो सकती है। क्योंकि समाज बदला तो उसका परिवेश बदला, यह बदलाव कहानियों की भाषा में भी देखा जा सकता है। भाषा शैली कहानी की अनिवार्यता भी है, ऐसा कह सकते हैं। क्योंकि कहानी समाज की ही होती है। समाज में उत्पन्न हुए विभिन्न घटकों से विषय बनता है। कहानी की भाषा चेतन मन व अवचेतन मन दोनों में ही समाविष्ट हो जाती है। किसी भी कहानी का मुख्य आधार उसकी भाषा होती है। वह शब्दों से रची जाती है परंतु उसमें प्रयुक्त होने वाले शब्द या भाषा मन से ही उत्पन्न होती है। इसीलिए किसी भी रचना को देखते हैं तो उसमें प्रयुक्त किये गए भाषा के विविध प्रकार, शैली, शब्दों के प्रकार, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि सबके हैं। तत्पश्चात कहानी की गुणवत्ता को समझा जाता है।

5.5.1 संवादात्मक शैली

संवाद दो व्यक्तियों के बीच का वार्तालाप है। या यूँ कहें दो या अधिक मनुष्य में होने वाली बातचीत को संवाद कहा जाता है। यह संवाद का विषय अनेक हो सकते हैं। संवाद बातचीत को सुलभ बनाने का जरिया है। जिससे आसान मार्ग से बड़ी-बड़ी बातों को निपटाया जा सकता है। कहानियों में चित्रित संवाद शैली कहानी की विषय वस्तु को बढ़ावा देती है। संवाद का विषय कुछ भी हो सकता है। वह घर-परिवार, समाज, बीमारी, अच्छाई, त्यौहार, दुख आदि किसी भी विषय को केन्द्रित करके की जा सकती है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में यह संवाद अधिक तौर पर दिखाई गई है। भाषा की उत्कृष्टता को बढ़ाने का काम शैली करती है। संवाद देखना या सुनना प्रत्येक मनुष्य को पसंद ही आता है। जहाँ तक मुझे पता है। संवाद का विषय कभी खट्टा कभी मीठा तो कभी आक्रोश या घृणा का भी होता है। जया जादवानी की कहानी 'अन्दर के पानियों में कोई सपना कांपता' के अंतर्गत नयी दुल्हन से होने वाले संवाद का चित्रण किया गया है-

"आज क्या 'पल्ली' (चने की भाजी) और तवे की सब्जी बनी है"

"ये सूट तुम्हारे मायके से आया है या विकी ने लेकर दिया है"

"आज हमने कढ़ी चावल बनाए हैं"

"क्या करें आजकल सब्जियाँ अच्छी नहीं लगतीं?"

"अच्छा, तुम्हें सिर्फ सिलाई आती है या कढ़ाई भी"[1]

प्रस्तुत संवाद तीन-चार महिलाओं का है। जिसमें रोजमर्रा की बातों को दर्शाया गया है। संवादात्मक शैली की यही आसान पद्धति पाठक या श्रोताओं को अधिक भाती है। जिसके अंतर्गत कहानी का मुख्य उद्देश्य या सार आसानी से साफ समझ सकते हैं। जिससे कहानी का भाव अधिक प्रभावी लगने लगता है। अवधेश प्रीत की बड़ी ही रोचक कहानी 'हमजमीन' कल्पना से कुछ ऊपर वाली कहानी है। कहानी कब्र में रह रहे दो लोगों की कहानी है जो एक-दूसरे से बात या संवाद कर रहे हैं-

"किसने मारा तुझे?' पहले ने उत्सुकता से पूछा।

'कातिलों ने।' दूसरे ने छोटा-सा जवाब दिया।

'आखिर वे थे कौन? हिन्दू?' पहले ने जोर देकर पूछा।

'क्यों? मुसलमान क्यों नहीं हो सकते?'

'भाई, कातिल तो सिर्फ कातिल ही होता है।' दूसरे ने फलसफा दिया।

'तू तो बड़ी-बड़ी बातें करता है।' पहले ने फिर चुटकी ली। 'लेकिन तू मरा कैसे? पहले के स्वर में गहरी जिज्ञासा थी।"[2]

संवादात्मक शैली का यही सरल रूप है। जिससे पाठक वर्ग की पठन में उत्सुकता का निर्माण होता है। संवादात्मक शैली का प्रयोग कहानीकार कहानी के अंतर्गत कहीं भी कर सकता है। जिससे कहानी का भाव और अधिक बढ़ सके।

---

[1] अंदर के पानियों में कोई सपना कांपता - जया जादवानी, पृ.सं. 118

[2] हमजमीन - अवधेश प्रीत, पृ.सं. 61

5.5.2 पूर्वदीप्ति शैली

पूर्वदीप्ति को अंग्रेजी में "फ्लैश बैक' कहते हैं। अर्थात पूर्वदीप्ति शैली भाषा कहानी का अतीत चित्रित करती है। जो घटनाएँ घट चुकी हैं, उनका उल्लेख पूर्वदीप्ति शैली के अंतर्गत किया जाता है। बीते हुए कल की बातों को या घटनाओं को एक विशेष रूप से कहानियों में चित्रित करना भी भाषा का सौंदर्य ही कहा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में अधिकतर कहानीकारों ने पूर्वदीप्ति शैली पर विचार किया है। कहानियों के अंतर्गत जहाँ-जहाँ पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया गया है और वह प्रयोग वहाँ अनिवार्य भी था ऐसा भी लगता है। पूर्वदीप्ति शैली की प्रक्रिया भूतकाल से लेकर वर्तमान तक पहुँचती है और आगे उसमें भविष्य की बातें भी होती हैं। इससे समझा जा सकता है कि पूर्वदीप्ति शैली की प्रक्रिया अपने तीनों समयों को लेकर आगे बढ़ती है। अनिता गोपेश की कहानी 'उड़ान' में एक सुंदर चित्र बनाती है- "न जाने क्या-क्या सोचती रहती थी कुसुमिया, होली के आसपास मौसम होता था गौरैयों के बच्चे देने का, पंखा के ऊपर कमरे की धन्नियों के ऊपर जहाँ भी जगह मिलती वहीं घोंसले बनाती, अंडे देती। कुछ दिनों में बच्चे हो जाते, चिड़िया-चिरौटा मिल-मिलकर चोंच में भर भरकर खाना लाते, खिलाते। फिर एक दिन अचानक दिखते कच्चे-कच्चे पंखों और गुलाबी चोंच वाले बच्चे। हवा में फुदकते चिड़िया-चिरौटा मिलकर उसे सिखाते पहली उड़ान।"[1] यहाँ लेखिका ने शैली का अटूट प्रयोग किया है। जिसमें भूतकाल, वर्तमान काल व भविष्य काल तीनों का सही उदाहरण है। यहाँ लेखिका ने एक औरत से चिड़िया की जिंदगी कितनी बेहतर होती है यह बताने की कोशिश की है। तथा 'उड़ान' कहानी का सार भी वही है। स्त्री आज के समाज में अपने विचारों के लिए मुक्त नहीं है। उसे रोकने व टोकने वाले बहुत हैं। यह समाज स्वतंत्र विचारों को लेकर कभी किसी स्त्री को जीने ही नहीं देता। इसीलिए चिड़िया एक स्त्री से अधिक मुक्त और अपने पंखों की

---

[1] कित्ता पानी - अनिता गोपेश, पृ.सं. 156-157

सहायता से वह आकाश छू सकती है। जो स्त्री भी कर सकती है परंतु उसमें रूकावटें हजारों होंगी। प्रथम दशक की बहुत सी कहानियों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग किया गया है। कहानी को सही तरीके से आगे बढ़ाने के लिए तथा पाठक को कहानी का पूर्वभाग भी अच्छे से समझने के लिए पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करना पड़ता है। घटित घटनाओं का चित्रण भी इतने सुंदर तथा प्रभावी रूप में करना सही लेखक की पहचान होती है। जिससे कहानीकार कहानी की सभी कड़ियों से पाठक को जोड़ पाता है। कहानी की यही विशेषता उसे बाकी विधाओं से भिन्न बनाती है। पूर्वदीप्ति शैली या स्फुतिपरक शैली कहानी की कथा वस्तु का प्रयोग सही जगह सही ढंग से करने में मदद करती है। आगे बढ़ने से पहले अपने अतीत की तरफ एक बार तो देखना आवश्यक होता ही है।

5.5.3 नाटकीय शैली

नाटकीय शैली अर्थात नाटक का ढोंग चित्रण करता है। अपनी किसी भी बात को मनवाने के लिए किए जाने वाला प्रयास नाटक हो सकता है। डॉ. अनिता जाधव नाटकीय शैली के संबंध में अपने विचार रखती हैं- "यह शैली भावात्मक शैली के पास होती है। कहानी में दो रूपों में प्रस्तुत किया जाता है- पूर्णात्मक और आंशिक। पूर्णात्मक रूप में इसका आरंभ से अंत तक प्रयोग किया जाता है और आंशिक रूप में यह एक पूरक अथवा सहायक शैली के रूप में प्रयुक्त होती है।"[1] कहानी में नाटकीय भाषा कहानी की रोचकता बढ़ा देती है। यह नाटकीय शैली किसी भी प्रसंग में प्रयुक्त की जाती है। अर्थात अगर कोई गहन विषय पर बात हो रही हो, किसी वस्तु का मजाक करने की कोशिश की जा रही हो, सास बहू के कुछ छोटे-बड़े झगड़े हों, बच्चों की कुछ बातें हो या समाज, राजनीति संबंधी कुछ मुद्दे हो। सभी जगह किसी-न-किसी तरह शैली का प्रयोग देख सकते हैं। ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानी 'बंधुआ' एक छोटे जब्बर की कहानी है। न माता-पिता का साथ, ना ही समाज का। मस्तमौला अपनी जिंदगी जीता आ

[1] मेहरुन्निसा परवेज की कहानियाँ : एक अध्ययन - डॉ. अनिता जाधव, पृ.सं. 173

रहा है। किसी कारणवश उसे बंधुआ बनाया गया। परंतु है तो वह छोटा बच्चा ही, परंतु उस पर किसी को कुछ दया माया नहीं आती थी। उसके सिर पर रखा सामान भारी था जिसे वह उठा नहीं पा रहा था। तो उसने वह सामान यानी सुहागा ईश्वर चौधरी के पांव पर गिरा दिया- “काका या बासण ठीक करियो। ज्योंहि ईश्वर चौधरी पास पहुँचा,जब्बर ने सुहागा उसके पैरों में पटक दिया। चीख पड़ा ईश्वर चौधरी। बैठते-बैठते बैठ-सा गया। लेकिन चैन कहाँ? लगता था, पैर की हड्डियाँ चटख गयी हैं। दोनों पैरों से खून की धारा बह चली। दर्द इतना था कि ईश्वर को उल्टी आ गयी। जब्बर .... जब्बर तो ऐसे खड़ा था जैसे कुछ हुआ ही न हो। ईश्वर चौधरी दर्द के मारे दहाड़ रहा था। जब्बर तनिक मुस्कराते हुए बोला, “चौ, साँब, ईब बुला लो पंचायत! वो आके तेरे पैरों पे हल्दी-तेल की टकोर करेगी।”[1] यहाँ जब्बर सब कुछ करके भी, कुछ न पता हो ऐसा नाटक करता है। और वही उसे डांट फटकार भी पड़ती है। नाटकीय शैली नाटक का स्वरूप होते हुए भी कहानी के अंतर्गत अपना काम करती है। नाटकीय भाषा भी अपना एक अलग ही प्रभाव पाठक वर्ग पर छोड़ती है। यह भावात्मक अभिव्यक्ति होती है जो पाठक व लेखक के बीच अलग से संबंध निर्माण करती है। कहानी की पृष्ठभूमि की रचना कैसी भी हो परंतु उसमें भाषाओं का सही प्रभाव उसकी महत्ता को बढ़ा देता है। नाटकीय शैली भी कहानी में कुछ ऐसा ही कार्य करती है। जिससे कहानी अधिक रोचक बन पाती है।

5.5.4 वर्णनात्मक शैली

‘वर्णन’ एक सुखद अनुभूति देने वाला शब्द है। किसी भी चीज के लिए किया गया वर्णन उस वस्तु की महत्ता को बढ़ा देता है। कहानियों में अधिकतर देखा गया है कि वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अधिक रूप से हुआ है। वर्णन मनुष्य, प्रकृति, समाज किसी भी विषय को लेकर हो सकता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में लगभग सभी कहानियों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। प्रत्यक्षा अपनी कहानियों में प्रकृति

[1] शिकारगाह - ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ.सं. 144

का वर्णन करती दिखाई देती है। मीराकांत अपनी कहानियों में समाज के प्रति अपने विचार विविध भावों से रखती है। सूर्यबाला अपनी एक अलग और सुंदर वर्णात्मक भाषा का प्रयोग करती है। कविता की कहानियों में स्त्री तथा पुरुष दोनों के संबंध में बातों से वर्णन झलकता है। अवधेश प्रीत की कहानियाँ भी वर्णनात्मक शैली पर आधारित होती है। सभी कहानीकारों की कहानियों में वह चाहे सुखद वर्णन हो या दुखद उसका चित्रण तो अवश्य होता ही है। प्रस्तुत कहानी 'बदन दबना' के अंतर्गत लेखक हलका सिंह का वर्णन करता है- "हलका सिंह पैंतालीस का नहीं था। दिखता पचपन पार था। कव्वा रंग, गेंडे-सा गोल-मटौल बदन। अदना कद। खुंटियायी सफेदी दाढ़ी में इक्का-दुक्का काला बाल। बेतरतीब कटी उसकी मूंछें होंठों पर छान की चिल-सी पड़ी रहतीं। दारू पीता, बूँदे मूंछो की छोरों पर टपके-सी झूलती। उसकी अलग आदतों से तंग आई उसकी पत्नी ने आत्महत्या कर ली थी। इकलौती पुत्री ब्याह के बाद मायके आई नहीं।"[1] यहाँ कहानीकार ने अच्छा और बुरा दोनों तरह का वर्णन किया है। यह कह सकते हैं। यही विशेषता होती है वर्णनात्मक शैली की, जो सुंदर-सुंदर शब्दों से वाक्य की रचना बनाता है। मेहरुन्निसा परवेज की कहानियों में वर्णनात्मक शैली का प्रयोग जगह-जगह देखा जा सकता है। 'मेरी बस्तर की कहानियाँ' एक अच्छा उदाहरण बन सकता है वर्णनात्मक शैली का। जहाँ आदिवासी जीवन का वर्णन मिलता है। आदिवासी भाषाओं का वर्णन मिलता है। कहानी के पात्र भी अपने-आप में विशेष ही होते हैं। उनकी पात्र संरचना उनकी भाषा यह सभी कहानी को संपूर्ण बनाने का काम करते हैं। इसीलिए वर्णनात्मक शैली का अधिक होता प्रयोग पाठक भली भांति समझ जाता है। वर्णन करना अर्थात उनमें छिपे हुए राज को बाहर निकालना। जो कहानीकार अपने शब्दों के जालों में अच्छी तरह से बुनने का कार्य करते हैं। वर्णनात्मक शैली का प्रयोग प्रत्येक कहानी की अनिवार्यता होती है, यह कहना शायद गलत न होगा।

[1] खेत तथा अन्य कहानियाँ - रत्नकुमार सांभरिया, पृ.सं. 110

5.5.5 काव्यात्मक शैली

गद्य साहित्य की रचना सभी विधाओं का मिश्रण होता है, ऐसा कह सकते हैं। कहानी के अंतर्गत नाटकीय, काव्यात्मक सभी पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। काव्य रचना एक सुगम मार्ग होता है, अनुभूति लेने का। काव्य चित को सहज रूप से अपने आप में ढाल लेता है। काव्य दिखने में भले ही छोटा हो परंतु उसका भावार्थ विस्तृत होता है। कहानीकारों की कवि की भूमिका उन्हें और अधिक श्रेष्ठ बना देती है। कहानी की भाषा काव्य की भाषा से अधिक सरल व सहज होती है ऐसा कह सकते हैं। क्योंकि काव्य की शब्दावली थोड़ी कठिन होती है। जिसे एक ही क्षण में समझ पाना कभी-कभी मुश्किल लगता है। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'जंगली हिरनी है' कहानी की मुख्य पात्र 'लच्छो' बस्ती में मनाए जा रहे त्यौहार की जगह खूब नाचती-गाती है। अपना आनंद बयान इन पंक्तियों में करती है-

"देवी बलें में दंतेसरी, देवी बलें में माता मावली,
बड़े देवी आस आया, तुई बड़े देवी आस।।
आव आया तुई करना कोटिन,
आव आया तुई करना को टिन,
घुमरा विरेज कर आया तुई घुमरा बिजे कर।।"[1]

लच्छो यहाँ उसके काव्य के माध्यम से उनके कुलदेवता का वर्णन कर रही है। उनकी देवी ही उनका सब कुछ है, यह बता रही है।

'जोड़ा हारिल की रूपकथा' के अंतर्गत लेखक राकेश कुमार सिंह ने आदिवासी समाज का चित्रण किया है। आदिवासी जीवन कितना त्रासदी परक होता है, कितनी कठिनाइयों से अपना जीवन बिता रहे हैं, उसका चित्रण है। फिर भी यह आदिवासी छोटी-छोटी खुशियों में अपना दिल बना लेते हैं। इन्हें इसके लिए किसी 'शॉपिंग' या 'मॉल्स' की

[1] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज, पृ.सं. 231

आवश्यकता नहीं होती। कहानी की एक पात्र 'झूमर' नाच-गाकर अपने सरना देवता को याद कर रही है-

"खद्दी चाँदी हियो रे नाद नौर
फागु चाँदी हियो ने नाद नौर
भर चाँदो चाँद रे नाद नौर
मिरिम चाँदो हो-साँड़ लेउनाऽऽ।"[1]

काव्यात्मक शैली की विशेषता ही है कि वह भावात्मक होती है। मन से निकले शब्दों को काव्य रूप में संजो देती है। काव्य जीवन का राग बन जाता है। जहाँ लेखक अपनी भावनाओं को अच्छे से अच्छे शब्दों को चुनकर उसकी रचना तैयार करता है।

5.5.6 पत्रात्मक शैली

पत्रों के माध्यम से कहानी का प्रस्तुतीकरण पत्रात्मक शैली कहलाएगा जिसमें लेखक कहानी का संपूर्ण भावार्थ पत्र के माध्यम से दिखाता है। संपूर्ण कहानी या कहानी का कुछ अंश पत्र रूप में देख सकते हैं। पत्रात्मक शैली की विशेषता कही जाए तो यह कहानी परस्पर आमने-सामने न होते हुए पात्रों को कल्पना में सोचकर लिखी जाती है। यहाँ कोई पात्र आपस में बातचीत नहीं करता। यह बस एक तरह का व्यवहार होता है, कहना गलत नहीं हो सकता। पंकज सुबीर की कहानी 'तमाशा' जो पूर्णत: पत्रात्मक रूप से लिखी गई है। एक पिता को अपनी बेटी की तरफ से पत्र, जिसमें बेटी ने अपने पूर्ण जीवन की त्रासदी का चित्रण किया है। वह अपने पिता से ही प्राप्त हुई होती है।

"नमस्कार,

कोई सम्बोधन इसलिए नहीं दे रही हूँ क्योंकि आपके लिए मेरे पास कोई संबोधन है ही नहीं। जब अपने चारों तरफ नजर दौड़ाती हूँ तो पाती हूँ कि वे सभी जो मेरे आसपास हैं

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश कुमार सिंह, पृ.सं. 126

उनके लिए मेरे पास एक उचित संबोधन भी है किन्तु आपके लिए ...? आपके लिए तो मेरे पास कुछ भी नहीं है, न भावनाएँ और न ही संबोधन। वैसे अगर रिश्तों की परिभाषाओं के मान से देखा जाए तो आपके और मेरे बीच में भी एक सूत्र जुड़ा है मगर मैं उस सूत्र को नहीं मानती इसीलिए ये पत्र लिख रही हूँ।

- डॉ. स्वाति कुसुम देशपांडे, प्राध्यापक हिन्दी विभाग, रास कॉलेज।"[1]

यहाँ संदर्भ पूर्ण रूप से दे पाना मुश्किल है, क्योंकि पत्र पूर्ण तीन पन्नों का है। इसीलिए उसका संक्षिप्त रूप बस यहाँ दिया गया है। पिता से मिले नाम 'तमाशा' से नायिका का जो हास हुआ है उसके संबंध में प्रस्तुत कहानी या यूँ कहें पत्र लेखन है। जो पाठक को पढ़कर बहुत ही शर्मिंदगी महसूस होती है कि एक पिता ऐसा भी कैसा हो सकता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी' में भी माँ और पिता से अपनी कुछ बातें बताते हुए बेटी का पत्र है। यह पत्र भी पाँच पन्नों का है, इसीलिए कुछ अंश ही यहाँ चित्रित कर रही हूँ।

"प्यारी माँ और बाबा

चरण स्पर्श!

मुझे मालूम है बाबा, लिफाफे पर मेरी हस्तलिपि देखकर लिफाफे को खोलते हुए तुम्हारे हाथ काँप गए होंगे। तुम बहुत एहतियात के साथ लिफाफा खोलोगे कि भीतर रखा हुआ मेरा खत फट न जाए।

...मैं जल्दी थक गई, इसमें दोष तो मेरा ही है। तुम दोनों मुझे माफ कर सको तो कर देना।

इति

तुम्हारी
आज्ञाकारिणी बेटी
अन्नपूर्णा मंडल।"[2]

---

[1] ईस्ट इंडिया कंपनी - पंकज सुबीर, पृ.सं. 126-129

[2] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ. सं. 123-127

पत्र रूप से लिखी गई कहानी पत्रात्मक शैली के अंतर्गत आती है। जो उसके स्वरूप से छोटी भी हो सकती है या बड़ी भी हो सकती है।

5.5.7 तुलनात्मक शैली

दो वस्तुओं, घटकों, मनुष्यों, भावनाओं, स्थितियों आदि में किसी भी तरह की तुलना करना तुलनात्मक शैली कहलाएगा। तुलना किसी भी विषय पर हो सकती है। तुलना की चर्चा भाषाओं पर भी की जाती है। साहित्य में भी विविध विधाओं की कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक पर तुलनात्मक शैली से विचार किया जाता है। इसी तरह इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भी तुलनात्मक शैली का प्रयोग दिखाया गया है। जहाँ लेखक अपने विचारों को दो तरह से सोचने का प्रयत्न करता है। तुलना छोटे या बड़े के साहित्य में नहीं होती, बल्कि दो विचारों की होती है। एक लेखक के विचार दूसरे लेखक से कितने मेल खाते हैं, यह उसका संबंध बताती है। कहानियों के अंतर्गत पात्रों की तुलना चित्रित की गई है। अंजू दुआ जैमिनी की कहानी 'महीन रेखा' के अंतर्गत पति समाज में घुम रहे गलत पुरुषों की तुलना करते हुए कहती हैं कि- "आजकल देख रहा हूँ सोना शरण के साथ खूब हिल-मिल रही है। शायद मुझे जलाने के लिए ... शरण को 'भाई साब' कहकर वह उसे रिश्ते में बांध रही है, पर मैं जानता हूँ, शरण की आँखों में शराफत नहीं है। कैसे आगाह करूं सोना को कि इस नेता शरण की नीयत साफ नहीं है? भोली-भाली लड़कियों को फंसाना उसकी आदत है। इस समय सोना मेरी बातों पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं करेगी। डरता हूँ, वह मुझ पर शक्की का लेबल न लगा दे। वैसे भी मुझे और जूही को लेकर वह गलतफहमी का शिकार है।"[1] यहाँ पति-पत्नी के विश्वास के संबंध में चर्चा की गई है। पति को नीचा दिखाने के लिए किसी प्रकार पत्नी किसी दूसरे पुरुष को पति के सामने लाकर उसके गुणों की चर्चा करती रहती है। वह उसके पति तथा दूसरे पुरुष के भीतर तुलना करना चाहती है। यही है तुलनात्मक शैली जहाँ एक को दूसरे से

---

[1] क्या गुनाह किया - अंजु दुआ जैमिनी, पृ.सं. 23-24

सही गुणों के लिए मापा जा रहा है। यही तुलना हमें सुशीला टाकभौरे की कहानी 'संघर्ष' में भी देखने को मिलती है। जहाँ शंकर तुलना करता है, उसके समाज की और सवर्ण समाज की। वह समझ नहीं पाता दोनों समाज के मनुष्य की शारीरिक रचना तो एक जैसी ही है। फिर क्यों उन्हें जातिवाद के नाम पर तोड़ा जा रहा है। जातिवाद का कीड़ा दलितों को क्यों कुचलता जा रहा है क्यों उन्हें ही सारे गंदे काम करने पड़ते हैं? ऐसे अनेक सवाल शंकर के भीतर जन्म ले चुके हैं। शंकर हमेशा तुलना करता रहता है सवर्ण बच्चों की। आखिर सभी सहूलियतें बस सवर्ण के बच्चों को ही मिलती है। दलित और पिछड़े वर्ग के बच्चों के सिर पर तो किसी भी सहूलियत का हाथ नहीं है।

5.5.8 आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली से हम यह समझ सकते हैं कि एक ऐसा व्यक्ति जो अपने स्वत: की कहानी बताना चाहता हो। जहाँ लेखक स्वत: प्रथम पुरुष की श्रेणी में उपस्थित हो। जहाँ लेखक अपने ही कुछ विचारों को साझा करना चाहता हो। आत्मकथा अर्थात स्व की कथा का अभिप्राय भी निकाला जा सकता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, जिससे कहानी का सार हमें अनेक पात्रों को मिलाकर सोचने की आवश्यकता नहीं होती। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी 'सच का दायरा' के अंतर्गत आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग अच्छे से चित्रित किया गया है। कहानी की पात्र एक युवती बहुत वर्षों पश्चात अपने घर आयी है। उसे सब कुछ बदला-बदला लग रहा है। वह समझ नहीं पा रही यह सब इतनी जल्दी कैसे हो गया है- "पूरे बारह बरस या फिर कई युग। कहते हैं, सतयुग में तपस्वी की रात बारह बरस बाद होती थी। यह भी सुना है, कुम्भकरण छह माह तक सोता था। कदाचित छह माह उसकी एक रात होती होगी। इसलिए मैं तुम्हें कुम्भकरण कहती हूँ।"[1] इसी तरह सुशीला टाकभौरे की कहानी 'मुझे जवाब देना है' में

---

[1] वाह कित्ती वाह! - यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', पृ.सं. 102

सुशीला टाकभौरे स्वत: के साथ घटित घटना को कहानी के माध्यम से पाठक तक पहुँचाना चाहती है। सुशीला टाकभौरे की शादी के शुरुआती दिनों में उनके जीवन में घटित हुई कुछ घटनाओं का जिक्र लेखिका ने यहाँ किया है। "भाई साहब! मैं उन्हें कुछ दिनों से भाई साहब ही कहने लगी हूँ। इससे पहले ऐसा कुछ कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। वे साहित्य मर्मज्ञ हैं। दलित उत्थान के समर्थक हैं और अम्बेडकरी आंदोलन के वरिष्ठ नेता हैं। वे संपूर्ण दलित पिछड़े समाज को अम्बेडकरी आंदोलन से जोड़ना चाहते हैं। वे मुझे भी इस विचारधारा से जोड़ना चाहते हैं। वे हमारे बड़े भाई जैसे शुभचिंतक हैं। इस नाते मुझे उनके स्नेह का मिलना निश्चित व स्वाभाविक ही है। मगर बात सिर्फ इतनी ही नहीं थी। बात उन आँखों की गहराई और विस्तार की थी।"[1] अपने मन में उमड़े अम्बेडकरवादी विचारधारा को लेखिका यहाँ समझना चाहती हैं। वह स्वयं से इस कहानी में प्रश्न पूछती है कि वह कहाँ गलत हो रही है। उनका मुख्य उद्देश्य क्या है जीवन जीने का। अपने समाज के लिए व अपने समाज की महिलाओं के लिए वह क्या-क्या कर सकती है। उनका मुख्य केन्द्र समाज है, अपना घर-परिवार ही नही। आत्मकथात्मक शैली के माध्यम से साहित्यकार के स्वयं के विचार कितने सरल व गंभीर हो सकते हैं, यह देखा जा सकता है।

5.5.9 लोककथात्मक शैली

लोक कथाएँ अर्थात प्राचीन काल से चलती आ रही रीति-परंपराएँ, जहाँ किसी विशिष्ट विचारधाराओं का चलन चलता आ रहा हो। जहाँ बस एक व्यक्ति की नहीं बल्कि समूह की बात चल रही हो। इसके अंतर्मन पारंपरिक लोक गीत, उनके त्यौहार, आचार-विचारों का समावेश भी किया जाता है। लोककथाएँ समाज की संस्कृति का चित्रण है। जहाँ विभिन्न विचारों की मान्यताओं का विचार किया जाता है। यह किसी एक समाज व एक धर्म का प्रतीक नहीं होती। प्रत्येक धर्म व समुदाय की अपनी एक विशिष्ट विचारधारा होती है।

---

[1] संघर्ष - सुशीला टाकभौरे, पृ.सं. 90

इन्हीं धारणाओं को कहानी में रूपांतरित किया गया है। यहाँ जिस शैली का प्रयोग अधिक होता है, उसे लोककथात्मक शैली कहा जाता है। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में इस शैली का प्रयोग रेखांकित किया गया है। राकेश कुमार सिंह 'जोड़ा हारिल की रूपकथा' कहानी के अंतर्गत विविध पद्धतियों को दिखाया गया है। आदिवासी समाज की मान्यताओं को चित्रित किया गया है। आग को प्रसाद की तरह बाँटने की लोकप्रथा का वर्णन किया है। अगर उसे स्वीकारा नहीं गया तो देवता नाराज हो जाते हैं। ऐसा इस समाज की मान्यता है। "बीर साइत बिन परब-त्यौहार हँड़ियाँ-ताड़ी नईं पीते बाकी ई पीता है। हमें ई मुरदा मानु जोरे मत भेज पहान....

निसाबाज सोहराई ने गलत बात जरूर किया है पर .... पहान के लिए धर्मसंकट .... पहान का फैसला बीरसाइत का वचन भी कोई पानी को रेख नई। वचन फिरे मुण्डा की कोई गति नई। देवता उसकी पूजा नईं लेते। तीर निसाने पर नईं बैठता ...।"[1] सबकी अपनी प्रथा, अपने आचार व अपनी गाथाएँ होती हैं। यहाँ भी आदिवासी समाज की मान्यताओं के संदर्भ में रेखांकित किया गया है। अपने लोककथाओं के लिए प्रत्येक समुदाय या समाज की कुछ धारणाएँ होती हैं जिसे मान्य करना उन्हें अनिवार्य होता है। और गाँव तथा जो समाज शिक्षा से थोड़ी दूरी पर है, उन सबमें लोककथाओं का प्रचार अधिक होता है। उनके भीतर ऐसी मान्यताओं को विशेष स्थान होता है। जिसे यह सब दिल से अपनाते हैं। इसे जबरदस्ती से थोपा नहीं जा सकता, यह सबकी मन से निकलने वाला भाव है जिसे हर कोई मानता ही मानता है। लोककथा एक प्रकार की जीवन शैली का प्रमुख भाग बन चुका है।

5.5.10 मनोविश्लेषणात्मक शैली

मन की स्थिति का चित्रण मनोविश्लेषणात्मक होता है, जहाँ साहित्यकार मानसिक तरह से अपने विचार रखता है। मनोविश्लेषणात्मक शैली के अंतर्गत कहानियों में मुख्य रूप

[1] जोड़ा हारिल की रूपकथा - राकेश कुमार सिंह, पृ.सं. 128

से देखा जाता है, मन से निकलवाली भावना का विश्लेषण। यह एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया होती है, यह भी कह सकते हैं। जहाँ मन के विचारों को प्रधानता दी जाती है। कहानी के पात्रों की मन:स्थिति पर मुख्य जोर दिया जाता है। प्रथम दशक की कहानियों में मनोविश्लेषणवादी विचारधारा को सहज रूप से देखा जा सकता है। जहाँ कहानीकार अपने मन की कुछ बातें कहना चाहती है। तथा उसके विचारों को साझा करना चाहती हो। कविता की कहानी 'उलटबाँसी' में लेखिका स्त्री के मन में उठ रहे तूफान के बारे में बताना चाहती हैं। "आत्मा होती है या नहीं, मुझे पता नहीं, अगर होती है तो वह यह देखकर भी कम दुखी नहीं हुई होगी कि माँ के खून-पसीने से पाले हुए बच्चों ने उससे एकबारगी कैसे किनारा कर लिया। सिर्फ यादों के सहारे जिंदगी नहीं बिताई जा सकती। पिता की आत्मा को शायद शांति ही मिले कि अब माँ चैन से है, सुखी संतुष्ट है, कोई है उसके सुख-दुख की परवाह करने वाला...।"[1] यहाँ माँ की मन:स्थिति का बयान उसकी बेटी दे रही हैं। क्योंकि ऐसा कहा जा सकता है। एक औरत ही दूसरे औरत की मन:स्थिति को समझ सकती है। यही वह गुण है मनोविश्लेषण शैली का जिसके अंतर्गत मन में उठने वाले विभिन्न भाव तथा अनेक विचारों को सहज रूप से समझा जा सकता है। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'पाँचवीं कब्र' में रहमान के मन में उठे भावों का विश्लेषण भी लेखिका ने अच्छी तरह किया है। रहमान को गर्व है कि उसके हाथों कब्र में जो लाशें दफनाई जा रही हैं उसमें अमीरों के भी बच्चे हैं। जो रहमान से छोटे भी हैं। रहमान को लगता है कि वह अकेला ही पूर्ण बस्ती के लोगों की लाशों को दफनाने के लिए काबिल है। "उस दिन हाफिज जी का जवान बेटा चल बसा। सब हैरान थे। उसे नहलाने रहमान ही गया था। नहलाते-नहलाते वह मुस्कराया- अरे रमजू, देखा! मैं तुझे भी नहला रहा हूँ, तेरे भी दिन पूरे हो गए। औल कलमें की ऊंगली से काजल आँखों में डाल दिया।"[2] यह मानसिक धारणा है। जिसे रहमान बड़े गौरव की बात समझ रहा है, वहाँ किसी

[1] उलटबाँसी - कविता, पृ.सं. 16

[2] मेरी बस्तर की कहानियाँ - मेहरुन्निसा परवेज़, पृ.सं. 212

और का दुख भी शामिल है। यह एक विकृत मानसिक वैचारिकता का मनुष्य है। यह कहना भी गलत नहीं होगा।

5.5.11 व्यंग्यात्मक शैली

हास्य-व्यंग्य के द्वारा अपनी बात को रखना यह व्यंग्यात्मक शैली कहलाएगा। व्यंग्यात्मक शैली में घृणा या तिरस्कार का भाव भी होता है। किसी से बात करते समय सीधी बात न कहकर उसे व्यंग्य रूप से उत्तर देना। यह शैली लगभग सभी कहानियों में प्रयोग की जाती है। यह एक प्रकार का विशेष भाव भी है। शब्दों से खेलने की एक शैली है। कहानीकार अपने अप्रतिम विचारों से शब्दों को सजाता है। यह हास्य भरे भी होते हैं और ईर्ष्यापूर्वक भी होते हैं। इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की कहानियों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग भरपूर मात्रा में किया गया है। अजय नावरिया की कहानी 'एस धम्म सनंतनो' में चित्रित यह व्यंग्य संदर्भ- "मेरी कौन-सी दो चार हैं। एक है क्या उसका भी लाड़ न करूँ।"[1] यहाँ माँ अपनी बेटी के पक्ष में अपने मत रख रही हैं। यह कहानी जातिवाद पर आधारित है। इसीलिए कहानी में भाषा शैली की सभी धाराओं को भिन्न-भिन्न रूपों में देखा जा सकता है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम - ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' में प्रयुक्त किया हुआ यह वाक्य- "बेटी तो बेटी रहती है, धिए, इसे बेटा बनाने की जुर्रत न करना।"[2] बुआ एक समझदार व्यंग्य भरी हँसी हँसकर चल रही थी। एक माँ जिसने तीन बेटियों को जन्म दिया। उसे कोई शिकायत नहीं कि उसे बेटी हुई परंतु यह शिकायत समाज तथा परिवार को हमेशा रहती है। जो हमेशा बेटा और बेटी में फर्क समझते हैं। बेचारी बेटी जन्म से ही उसे कोसना शुरू कर देते हैं। व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करके यहाँ बेटा और बेटी में अंतर को रेखांकित किया गया है। रूपसिंह राठौड़ की कहानी 'आदर्श की अर्थी' का व्यंग्यात्मक संदर्भ- "बेटा! जबान को थोड़ी लगाम लगा। क्यों व्यर्थ में जगहंसाई करा रही है? बिना सिर पैर की बात करने से क्या लाभ!

---

[1] पटकथा और अन्य कहानियाँ - अजय नावरिया, पृ.सं. 13

[2] काला शुक्रवार - सुधा अरोड़ा, पृ.सं. 128

देखो तो, हमारे परम हितैषी मजमा लगाये हमारे घर में हो रहे नाटक को दत्तचित्त हो निहार रहे हैं। सबके मन में लड्डू फूट रहे हैं।"[1] घर में हुए सास-ससुर के वाद को यहाँ दर्शाया गया है। बहू जब बड़ों की बात न मानकर उनके विचारों के खिलाफ अपनी मनमर्जी करना चाहती है। तब ससुर अपने व्यंग्य शब्दों के तीक्ष्ण बाणों से उपरोक्त संदर्भ कहता है। व्यंग्य का निर्माण करना, कहा जाए तो यह भी एक बड़ी कला की तरह माना जाएगा। साहित्यकार ही अपने शब्दों की रचनाओं से ऐसे विविध प्रयोग कर सकता है। इसी वजह से कहानियों की मौलिकता इक्कीसवीं सदी में अधिक उभरकर आयी है।

निष्कर्ष

गद्य साहित्य की मुख्य विशिष्टता उसकी भाषा शैली होती है। भाषा शैली कहानी का एक ऐसा उपकरण है, जिसके सिवाय कहानी को पूर्ण नहीं मान सकते हैं। भाषा मनुष्य की एक मानसिक प्रक्रिया भी है। जिसकी वजह से सभी कामों में मदद मिलती है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में भाषा के विविध प्रयोगों को देखा गया है। विविध भाषाओं की पद्धतियों से कहानियों को और सुंदर बनाया गया। कहानी में भाषा के विविध घटकों के उपयोग से भाषा अधिक प्रभावशाली व विशिष्ट बन जाती है। भाषाओं का स्वरूप विस्तृत है। उसमें प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक प्रयोग कहानी की पहचान बदल देते हैं। प्रथम दशक में अनेक विद्वानों ने अपनी कहानियाँ प्रकाशित की है। सभी के विषय एक-दूसरे से अलग हैं। सभी में कल्पना और यथार्थ दोनों का समावेश दिखाई देता है। कहानी की पृष्ठभूमि भले ही यथार्थ पर टिकी हो, परंतु उसमें कल्पना की तरंग तो जोड़ना ही पड़ता है। इसीलिए कहानियों में बिम्ब का प्रयोग विशेष तौर पर दिखाई देता है। बिंबात्मक भाषा कहानियों में लय का निर्माण करती है। उनमें एक सरल प्रवाह बनता है। जो नदी की भांति बहता ही जाता है। उसे किसी मार्ग की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ रास्ता मिले वह आगे बढ़ती जाती है। कहानी भी नदी की भांति

---

[1] कोई है! - रूप सिंह राठौड़, पृ.सं. 42

ही पाठकों के बीच अपना बहाव करके आगे बढ़ती है। कहानी को निपुण व साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिए प्रतीक को जोड़ा जाता है। कम से कम शब्दों में प्रतीक योजना अपना काम करने लगती है। जिससे पाठक वर्ग में पठन की रुचि का निर्माण होती है। शैलियाँ एक औजार का काम करती हैं भाषा के लिए। जिसमें भाषा के विभिन्न अंगों को देखा जा सके। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं को बड़े मार्मिक रूप से निखारा है। इसीलिए कहानियों की विशेषता बढ़ जाती है। कहानी की भाषा सरल रखना अधिकतर कहानीकारों ने देखा है। भाषा की प्रौढ़ता उसकी संरचना पर आधारित होती है। लेखक का प्रयास हमेशा अपनी रचना को सही राह मिल पाये यही कोशिश रहती है। कहानीकार अपनी रचनाओं को यथार्थ की पृष्ठभूमि पर उतारता है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। जिसे कहानीकार ने अपनी अनोखी भाषा शैली तथा भाषा का विभिन्न प्रयोग करके उसे अलग ही ऊँचाइयों पर पहुँचाया है। भाषा की अभिव्यक्ति मूलत: समाज का दर्पण होती है जिसे भाषा की अलौकिक शक्ति से अलंकृत किया जाता है। प्रथम दशक की कहानी के विद्वानों ने अपनी भाषा पर अपना सही नियंत्रण रखा है। इसी वजह से कहानी की भाषा चाहे शहरी हो या गाँव की उसमें एक नयापन देखने को मिलता है। आधुनिकता का पूर्ण असर कहानी जगत पर भी हुआ है, शायद कहना गलत नहीं होगा। भाषा ही साहित्य का सौंदर्य है। जिससे पाठक अपने-आप खिंचा चला आता है।

*****

उपसंहार

समय परिवर्तन का दूसरा नाम है। समय के साथ प्रत्येक वस्तु में बदलाव आना निश्चित है। हम बदलाव को देखने का एक नजरिया कहानी को मान सकते हैं। कहानी समाज का यथार्थ बयान करती है। समाज में हो रहे छोटे-छोटे घटकों का तथा पहलुओं को रचनाकार अपनी सूक्ष्म नजर से देख ही लेता है। और उसका चित्रण कहानियों के माध्यम से पाठक तक पहुँच जाता है। मनुष्य संवेदनशील प्राणी होने की वजह से समाज में हो रही घटनाओं का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर देख सकते हैं। कहानी गद्य की प्रचलित विधा है। कहानी से पाठक अपने-आप कही-न-कहीं संबंध जोड़ लेता है। इसलिए कहानी समाज का दर्पण है। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों का अवलोकन करने से यह पता चला कि, समाज विविधता का भंडार है। यहाँ प्रत्येक मनुष्य की अपनी एक अलग सोच और अपनी एक अलग विचारधारा होती है। कहानी मनुष्य के अंतर्मन का बयान करती है। कहानियों के माध्यम से समझा जा सकता है कि आज कौन-से युग में मनुष्य अपनी साँस ले रहा है।

कहानियों में चित्रित जीवन का मार्मिक चित्रण का दृश्य भयावह और कहीं-न-कहीं वास्तविक होता है। कहानीकार कहानी को अपनी कल्पना के बल पर सृजन करता है। परंतु उसकी पृष्ठभूमि तो यथार्थ से ही बनती है। जहाँ तक मैंने कहानियों को समझने का प्रयास किया, वहाँ हर तरफ बस कुंठा, नफरत, दुहरी भावना, समाज का विद्रूप चित्रण आदि कहानियों में दिखाई देता है। अगर यही समाज का दर्पण है, तो इस दर्पण को तोड़ना ही अच्छा होगा । क्योंकि मनुष्य जीवन एक ही है, वह भी द्वेष, कुंठा से भरा हो तो मनुष्य चैन की साँस कैसे ले पायेगा । इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में कहानीकारों ने मानवीय तथा अमानवीय सभी दृश्यों का चित्रण किया है। रूढ़ि और परंपराओं के बीच अटका अपना समाज नैतिक-अनैतिक से अधिक पाप-पुण्य को मानता है कहानियों में चित्रित अंधश्रद्धा इसका खुला बयान करती हैं। सबको बस आगे बढ़ना है। आगे बढ़ने की गति में पीछे हम क्या

छोड़कर जा रहे हैं, यह सोचने का किसी के पास समय नहीं है। कहानी यथार्थ पर आधारित होती है। परंतु यह समझ पाना मुश्किल है कहानीकार कौन-से यथार्थ की बात कर रहा है। क्योंकि यथार्थ का चित्रण इतना घिनौना होगा तो समझ सकते हैं, जिसपर यह घटना घटी होगी। वह कितनी यातनाओं से अपना जीवन व्यतीत करते होंगे। कहानियों के माध्यम से मनुष्य जीवन के सुख तथा दुःख दोनों संवेदनाओं का अवलोकन करने में मदद मिलती है। प्रथम दशक का युग आधुनिकता के दौर पर बहुत आगे जाता दिखा है। पहले से अब तक का समाज पूर्ण रूप से बदलता नजर आ रहा है। यही बदलाव कहानियों में आना भी स्वाभाविक है। पहले से अब तक का समय कहानी का एक युग बन चुका है। क्योंकि कहानी ने अपने सौ वर्षों से अधिक की कालावधि पूर्ण कर ली है। यह सौ वर्षों से अधिक की कालावधि कहानी की बड़ी महत्वपूर्ण रही है। कहानी ने स्वातंत्र्योत्तर और स्वतंत्रपूर्व दोनों समाज को अपने-आप में बसाया है। आज की पीढ़ी को बीता समय जानना है तो कहानी से अच्छा माध्यम और नहीं हो सकता।

प्रेमचंद, अज्ञेय, जैनेंद्र, प्रसाद, यशपाल आदि की कहानियों में समाज का जीता-जागता वर्णन किया गया है। प्रथम दशक आते-आते कहानी का स्वरूप बहुत हद तक बदल चुका है, कह सकते हैं। वैश्वीकरण के चलते संस्कृति, सभ्यता आदि सब पर असर होने लगा। वैचारिकता बदलने लगी। नयी पीढ़ी के कहानीकारों ने नयी सोच को निर्माण किया। समाज को देखने का नजरिया बदलने की कितनी आवश्यकता है यह समझाने की कोशिश की। समय के साथ परिवर्तन आना आवश्यक है। परंतु वह परिवर्तन अगर सही मार्ग पर आगे बढ़ रहा हो, तभी वह नैतिक विचार कहलाएगा। जीवन अनुभवों से तैयार होता है। यह अनुभव हमें सब कुछ सिखाते हैं। प्रथम दशक की कहानियों के पात्र हमें इसी सत्य से रूबरू कराते हैं। 'तलाश' कहानी के रामवीर सिंह, 'न्यूड का बच्चा' की वीनू, 'गौरा गुणवन्ती' की गौरा, 'संघर्ष' कहानी का शंकर आदि सब अलग-अलग समाज से आए हैं। परंतु वह पाठक को

कहानी के माध्यम से सीखाकर जाते हैं कि जिंदगी जीने का नाम है। हार कर जीते वही सिकंदर है।

जीवन कठिनाइयों का दूसरा नाम है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उतार-चढ़ाव आना स्वभाविक है। यही भावनाएँ मनुष्य मन की संवेदनाएँ होती हैं, जो जीवन जीना सिखाती हैं। संवेदनशील प्राणी सभी विचारों को बार-बार उकेरता रहता है। जिससे मन में भरी कुंठा या प्रेम वह सामने से व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत कर पाता है। संवेदना मन की सबसे जटिल भावना होने के कारण उसके समक्ष जो भी हो रहा है, उसका प्रभाव शीघ्र-अतिशीघ्र मनुष्य पर होता है। यही प्रभाव हम रचनाकारों पर देख सकते हैं। जिसका प्रत्युत्तर हमें उनकी रचनाओं के माध्यम से मिलता है। प्रथम दशक के रचनाकारों ने कहानी के जरिये समाज का विद्रूप चित्रण किया है। जहाँ जातिवाद, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, अंधश्रद्धा जैसे पहलुओं को केंद्रित रखकर समाज का चित्रण किया गया है। कहानियों में चित्रित ऊँच-नीच की भावना वर्णभेद मनुष्य को मनुष्य से दूर करता दिखाया गया है। कहानी को जीवन का सच कह सकते हैं। यह सच रचनाकारों के विचारों का होता है। रचनाकार किस प्रकार सोच रहा है, और उसकी सोच का कारण क्या है? यह जानना भी पाठक के लिए आवश्यक हो जाता है। क्योंकि कहानी की पृष्ठभूमि यथार्थ की है, तो अपने समाज का यथार्थ इतना भयावह क्यों है ? यह भी पाठक वर्ग को सोचना जरूरी है। हम भी इसी समाज का एक हिस्सा हैं। शरीर का एक भी अंग अगर काम न करे तो उसे अपाहिज कहेंगे । कहानियों के माध्यम से देखा जा सकता है कि अपना समाज तो आधे से भी ज्यादा अपाहिज है। यहाँ स्त्री को सम्मान नहीं, दलितों को खाना नहीं, आदिवासियों को रहने के लिए जगह नहीं, पशु-पक्षियों के लिए पानी नहीं, तो कहिए क्या अपना समाज अपाहिज नहीं है।

पाठक बस संवेदना के धरातल पर अपने विचारों को रख पाता है। परंतु रचनाकार उन सब विचारों को जीता है। कहानी का प्रत्येक समय बदलता रहता है। क्योंकि समाज बदल रहा

है। कहानियों में चित्रित भावनाएँ, संवेदनाएँ कभी स्थिर नहीं देखी जा सकती हैं। समयानुसार सभी को बदलना ही होता है। आज के कम्प्यूटर युग में टाईपराइटर पर काम करने बैठे तो उसे बस समय की बर्बादी कहा जाएगा । इसलिए प्रथम दशक तक आते-आते कहानीकारों के विचारों में बदलाव अपने-आप आने लगा । कहानीकारों ने दिखाया है कि आज का समाज पहले से अधिक भयावह है। वैज्ञानिक स्तर पर चाँद को पार करके मंगलग्रह तक मनुष्य झंडा लहरा कर आ चुका है। परंतु गाँव तथा शहरों में आज भी सभी मनुष्य की सोच उतनी आगे नहीं बढ़ पायी है। कहानी में देखा जा सकता है, जैसे 'माँ' नामक पात्र को जो 'उलटबाँसी' कहानी की पात्र है। उन्हें उनके विचारों के साथ खड़ा रहने नहीं दिया जाता । समाज क्या कहेगा, समाज में मुँह कैसे दिखाएगे ऐसे शब्दों से माँ डर जाती है। क्योंकि वह वृद्धावस्था में अकेलेपन की वजह से दूसरी शादी करना चाहती है। इसमें क्या गलत है अगर कोई अपनी मन मर्जी से जीए । यहाँ देखा गया कि समाज आज भी अपनी पुरानी विचारधाराओं, रूढ़ी-परंपराओं में जकड़ा हुआ है। जया जादवानी की कहानी 'अंदर के पानी में काँपता कोई सपना' में कहानीकार के विचारों को प्रणाम करती हूँ । क्योंकि मैं भी एक स्त्री हूँ । कहानीकार इस कहानी के माध्यम से समाज को बताना चाहती है कि स्त्री बस एक शिशु को जन्म देने वाली मशीन न होकर, भावनाओं, संवेदनाओं के ढाँचे से बनी हाड़-मांस की मनुष्य है। कहानी में दर्शाया गया है, एकल परिवार और संयुक्त परिवार के बीच का दायरा क्या होता है। क्यों प्रत्येक क्षण स्त्री को ही केंद्रित करके समाज अपना विचार बनाता है। यह देखकर सचमुच लगता है कि कहानी का यथार्थ रूप बहुत भयावह है।

प्रथम दशक की कहानियों में संवेदनाओं के सभी पहलुओं को समझने की कोशिश की गयी है। कहानीकारों के शब्दों में एक आत्मविश्वास को देखा जा सकता है। निडर भाव से लिखी कहानियाँ मौलिकता भरी हैं। जो समाज का सच पाठक के सामने नग्न रूप से प्रस्तुत कर रही हैं। आज की पीढ़ी की कहानियों में सच्चाई का दर्पण झलकता है। समाज की

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या धार्मिक सभी परिस्थितियों का सच्चा चित्रण कहानियों के माध्यम से पाठक वर्ग के सामने रखा गया है। आज का समाज पूँजीपतियों के हाथ पर घूमता दिखाया गया है। जिसके हाथ में पैसा है वह राजा है, यह धारणा बन गयी है। पैसों के मोल ने छोटा-बड़ा सब कुछ भूला दिया है। बदलते समाज के साथ बदल रहा मनुष्य अच्छाई से बुराई की ओर अधिक खींचा जा रहा है। कहानियों में दिखाया गया जिसके पास सभी सुख-सुविधाएँ हैं उनके बच्चे पार्क में खेलने जाते हैं, टी.वी., कम्प्यूटर में खेल खेलते हैं, और गरीबों के बच्चे शिक्षा प्राप्ति के लिए भी बैचेन हो उठे हैं। बधुँआ बनकर काम कर रहे हैं।

कहानी का वर्तमान समय देखे तो उसमें बहुत बदलाव आकर, कहानी का रूप विस्तार बन चुका है। साहित्यिक दुनिया में जो कहानी अपना एक विशेष स्थान बना चुकी है। मानवीय मूल्यों का परिचय कराती कहानी यथार्थ के धरातल पर आकर रूकी है। कहानी का अर्थ समझकर, कहानी के स्वरूप पर प्रकाश डालने की छोटी-सी कोशिश से समझा जा सकता है कि कहानी का संसार कितना विस्तृत है। उन्नीसवीं शताब्दी में मूल कहानी लेखन का आरंभ माना गया। उन्नीसवीं शताब्दी से शुरू हुआ कहानी का यह सफर आज तक चल रहा है। वह भी अनेक बदवाल व विभिन्नता के साथ। कहानी की इक्कीसवीं सदी वैज्ञानिक सोच को आगे बढ़ाने लगी। भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण आदि घटकों की वजह से मनुष्य को भैतिक वस्तुओं की सुख-सुविधाओं में जीवन व्यतीत करने की आदत हो गयी है। परंतु यह बस शहरों तक ही सीमित रहा। क्योंकि गाँव और जंगल उजडकर वहाँ के मनुष्य को शहर में आकर दर-दर की ठोकरे खानी पड़ी। ‘जोड़ा हारिल की रूपकथा’ कहानी में देखा जा सकता है, आदिवासियों के साथ होता अत्याचार तथा त्रासदी की व्यथा।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों की पृष्ठभूमि को समझने के लिए विभिन्न माहौल के जरिए समाज को विश्लेषित किया गया है। धार्मिक माहौल पर बाते करना जैसे कहानीकारों ने कहानी में अंधश्रद्धा की नयी दुनिया बना दी हो। धर्म के नाम पर होता

अत्याचार डरावना है। धर्म के नाम पर पाखंड फैलाया गया है। कहानियों में चित्रित स्त्रियों की संवेदना देखी जा सकती है। 'भेम का भैरू माँगता कुल्हाड़ी ईमान' की सकीना को धर्म के नाम पर अपनी पवित्राता को साबित करने को कहा जाता है जो पुरुष के लिए नहीं बस स्त्रियों के लिए यह धर्म बना है। यह कहाँ का न्याय होगा कि बस स्त्री ही हमेशा अपनी परीक्षा दे।

सांस्कृतिक माहौल की दृष्टि से कहानियों को देखा जा सकता है। हमारा समाज संस्कृतिजन्य है। जो सबसे पहले अपनी संस्कृति को मुख्य स्थान देता है। विभिन्न संस्कृति तथा सभ्यता से बना हमारा समाज अच्छाई तथा बुराई दोनों मार्ग पर चल रहा है। सुशीला टाकभौरे की कहानी 'मुझे जवाब देना है' में वह मंगलसूत्र पहनकर अपनी संस्कृति का परिचय कराना चाहती है। सामाजिक स्तर या माहौल पर कहानी की चर्चा की जाए तो समाज का मुख्य घटक मनुष्य है। उसके विचार ही समाज की नयी सोच बनती है। मनुष्य जिस प्रकार विचार करता है, वह दिखता है कि समाज के प्रति उसकी क्या धारणा है। 'घुसपैठिये' कहानी का पात्र रमेश चौधरी जो अपने से अधिक अपने वालों के बारे में सोचता है। समाज में वर्णभेद, जातिवाद यह शब्द न रहकर सभी एक ही जाति को माने वह है मनुष्य जाति ऐसी रमेश चौधरी की विचारधारा है। आर्थिक पक्ष पर विचार करने से पता चला कि आज भी दुनिया में आधुनिकता के चलते सामान्य मनुष्य का जीना मुश्किल और दुरूह हो चुका है। एक ही घर में रहते भाई-भाई दुश्मन बन रहे हैं पैसों की वजह से। मानवीय संवेदना कहीं गुम सी हो गयी है। यहाँ मनुष्य भावनाओं से अधिक अपने वर्चस्व पर अधिक बल दिया जा रहा है। क्या आज बस पैसा ही सब कुछ बन गया है।

सूर्यबाला की कहानी 'गौरा गुणवन्ती' की पात्र गौरी पैसे की कमी की वजह से अपनी पढ़ाई छोड़ देती है। क्योंकि उसे अपने भैया-भाभी पर बोझ नहीं बनना। सामाजिक माहौल आज की सदी का पूर्ण रूप से बदलता दिख रहा है। राज्य, देश से अधिक बस अपने बारे में सोच कर राजनीति में उतर रहे हैं। एक नया जरिया अपनी जेबे भरने का और सुख-समृद्धी हासिल करने

का। यहाँ किसी को समाज की नहीं पड़ी। रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बदन दबना' के पात्र हल्कासिंह राजनीति में आने के लिए बहुत प्रयास करता है। कारण यह है कि उसके पिताजी भी गाँव के सरपंच थे। बस इस पद को बचाने के लिए बहुत प्रयत्न किया परंतु बन न पाया। जो मनुष्य अपने घर में बाल मजदूर को रखकर उस पर अत्याचार करता है, क्या पूर्ण गाँव को संभाल सकता है। परंतु समाज को इतना सब कुछ सोचने की जरूरत नहीं पड़ती। क्योंकि आज का युग पैसों के बाते करता है मनुष्य से नहीं।

इक्कीसवीं सदी का प्रथम दशक, इक्कीसवीं सदी का पहला चरण था। इसमें अनेक कहानीकारों ने अपने मूल्यवान विचार अपनी कहानियों के माध्यम से देने की कोशिश की। पाठक और लेखक के बीच का सेतु कहानी बनी। जो समाज की प्रत्येक घटना को एक-दूसरे से जोड़ने का काम करती है। प्रथम दशक के कहानीकारों ने अपने विचारों के व्यक्त करने की कोशिश की। जिसमें वह लगभग सफल भी रहे हैं। वंदना राग, प्रत्यक्षा, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सुधा अरोड़ा, पंखुरी सिन्हा आदि लेखिकाओं ने स्त्री जीवन के आयुष्य को नये तरीके से कैसे जीवन जी सकते हैं। यह समझाने का प्रयत्न किया है। महाश्वेता देवी, मेहरून्निसा परवेज, रमणिका गुप्ता, रोज केरकट्टा आदि की कहानियों ने समाज में आदिवासियों का स्थान कैसा और कहाँ है वह बताया है। भगवानदास मोरवाल, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे आदि कहानीकारों की कहानियों में दलित समाज की पीड़ा को देख सकते हैं। मनुष्य होकर दूसरे मनुष्य के प्रति जानवरों जैसा बरताव करता है। छुआछूत तथा अछूत यह दो शब्द जैसे उनके जीवन की छाया बन चुके हैं। जहाँ भी जाओ उनका पीछा बिल्कुल नहीं छोड़ेंगे। यह दुनिया बस गरीबों की परीक्षा लेने के लिए ही बनी है। कभी-कभी ऐसा लगने लगता है। पाश्चात्य देशों में काले-गोरे का फर्क अपने देशों में ब्राम्हण और दलित का फर्क शायद कभी नहीं मिटेंगे। क्योंकि मिटने वाली सोच अभी तक पाँच प्रतिशत मनुष्य के अंदर भी नहीं है। तो यह इतना बड़ा

विश्व क्या इससे यह सोच मिट पाएगी। शायद उत्तर भी होगा नहीं। पहले की तरह आज भी स्त्री, दलित, आदिवासी यह प्रश्न हमेशा उभरते ही रहेंगे।

नीलाक्षी सिंह, पंकज मिश्रा, कुणाल सिंह, वंदना राग नयी पीढ़ी की नयी सोच वाले कहानीकार है। इनकी कहानियों में नयी पीढ़ी की समझ और इनके नये विचार, जिससे कहानी को एक नयी राह प्राप्त हुई है। रचनाकार तथा सामान्य मनुष्य का भेद समझा जाए तो वह होगा उन दोनों की समाज को देखने का नजरिया। सामान्य मनुष्य घटना को देखकर छोड़ देता है, वही रचनाकार उस घटना को बार-बार सोचते हुए उसके बारे में लिखना चाहता है।

संवेदना मनुष्य जीवन का सबसे महत्वपूर्ण भाव है। जो मनुष्य को ज्ञानेंद्रियों से महसूस होता है। मनुष्य संवेदनशील तथा सामाजिक प्राणी है। क्योंकि जिस समाज में वह रह रहा है उसका प्रभाव उसके ऊपर आवश्य पढ़ता है। इससे पता चलता है कि समाज में वास करने वाला संवेदनशील मनुष्य है। संवेदना मनुष्य का जीवन प्राण है। संवेदना यह मानसिक प्रक्रिया है जो विभिन्न भावों से मनुष्य का परिचय करती है। संवेदना वह गुण है जो फूलों की सुगंध महसूस करवाती है, प्रकृति की सुंदरता दिखाती है। चिड़ियों की चहचहाट सुनाती है। सुबह की कोमल धूप को त्वचा पर बिखेरती है। मनुष्य जीवन में संवेदना ही सब कुछ है, इसलिए कहा गया संवेदना जीवन का प्राण है। इसी संवेदना के विविध मानवीय स्तर हैं जैसे- सुखात्मक संवेदना, दुखात्मक संवेदना, करूणात्मक संवेदना, अहंकारात्मक संवेदना, प्रेम संवेदना, घृणात्मक संवेदना, प्राकृतिक संवेदना तथा राष्ट्रीय संवेदना आदि हैं। यह सब संवेदनाएँ मनुष्य के भीतर छिपे मनुष्य से मिलवाती है। संवेदना एक राग है एक कला है जो सच्चाई का दर्शन करवाती है। मनुष्य का संबंध समाज से तो संवेदना भी अपने-आप समाज से जुड़ जाती है। समाज में घट रही घटनाओं का परिक्षण एक रचनाकार अपनी संवेदना के माध्यम से ही समझ सकता है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना के विविध धरातलों को समझने की कोशिश मैंने की है। किस तरह मनुष्य जीवन आज उलझा हुआ है। यह प्रथम दशक की कहानियों को पढ़ने बाद पता चला । आदिवासी समाज जो बरसों से या कहूँ शुरूआत से ही अकेला रहता आया है। सभ्य समाज की जीवन शैली से आदिवासी समाज का कुछ लेना-देना ही नहीं था । परंतु समय के साथ सब कुछ बदलता चला गया । वैश्वीकरण, पूँजीपतियों ने जंगल बर्बाद कर डाले । अपनी जमीन तथा जंगल को बेचा गया। जंगलों में पेड़ों की जगह बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी दिखने लगीं । प्रत्यक्षा ने अपनी कहानी 'जंगल का जादू तिल-तिल' में बड़े मार्मिक तरह से इस विषय पर लिखा है। जिसे पाठक पढ़ के खुद पे ही गलती प्रकट करता है। क्योंकि इस सबकी वजह हम सब हैं। आज मनुष्य को पेड़-पौधों का महत्व अधिक समझ में आ रहा है। क्योंकि विश्व को 'करोना' नामक राक्षस ने अपने हाथों में धर लिया है। इसका बचाव बस एक ही 'ऑक्सीजन' है, जो हमें पेड़ों-पौधों से मिलती है। आज हमने पेड़ों को ही रखा नहीं । इसलिए पैसे देकर ऑक्सीजन ले रहे हैं। कितनी शर्मनाक बात है यह मनुष्य जाति के लिए । इतना सब होकर भी शायद मनुष्य सुधरेगा नहीं। वह अपनी ही करेगा ।

दलित संवेदना पर विचार करने के पश्चात मन स्तब्ध हो गया । आज इक्कीसवीं सदी का नाम लगाकर भी हम उन्नीसवीं शताब्दी का ही जीवन जी रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है। इतनी वेदना, इतनी पीड़ा, इतनी त्रासदी यह समाज झेलता है, शायद ही कोई इतना झेलता हो । इस त्रासदी में हम 'संघर्ष' कहानी के शंकर, 'बधुँआ' के लक्खु, 'बदन दबना' के पुछाराम, 'सलाम' के हरीश, 'बैल की खाल' के काले व भूरे ऐसे बहुत से पात्र हैं, जिनसे हम दलित जीवन की संवेदना कितनी भयावह है यह देख सकते हैं। छुआछूत की त्रासदी में फंसा यह समाज सुख-सुविधाओं के पीछे भाग रहा है। सवर्ण समाज उन्हें अपनाता नहीं । कार्यस्थल के क्षेत्र, पाठशालाओं में, कॉलेजों में प्रत्येक जगह किसी-न-किसी समस्या का

सामना जरूर करना पड़ता है। वर्तमान समय में भी इस विषय पर हमेशा चर्चा होती है। लेकिन चर्चाओं में अधिक अगर काम किया जाए तो शायद उनके हिस्से का सूरज उन्हें भी रोशनी दे पाएगा। सुशीला टाकभौरे अपनी कहानी 'मुझे जवाब देना है' में दलित क्रांति की सोच के संबंध में अपने विचारों को रखती है। उनका कारण है कि कहना कम और करना अधिक करें। जिससे सभी दलित वर्ग में क्रांति की चेतना जगे।

स्त्री संवेदना का आदर करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। स्त्री जीवन है परंतु उस जीवन को ही जीने नहीं देते। इक्कीसवीं सदी तक आते-आते आज भी वह अपनी अस्मिता की लड़ाई लड़ रही है। क्या वजह हो सकती है इसकी। यह कभी सोचने की कोशिश करेंगे हम। रूढ़ी-परंपराओं को जैसे स्त्री के पैरों की पायल बना दी गई है। जिसे वह पायल नहीं बल्कि जंजीर समझती है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम- ये ठंड़े, सुखे, बेजान शब्द' की पात्र सुनयना को आत्महत्या करने की जरूरत क्यों पड़ी। क्योंकि सुनयना के पति को बिल्कुल नहीं अच्छा लगा कि एक औरत काम में उसके आगे कैसे बढ़ सकती है। पुरुषवादी विचारधारा को नष्ट करना शायद नामुमकिन है। पंखुरी सिन्हा की कहानी 'किस्सा-ए- कोहिनूर' की पात्र जो शिक्षक की नौकरी छोड़कर अपने साथ आने को कह दिया। क्योंकि इस समाज में बस पुरुषों का वर्चस्व हमेशा ऊपर रहना चाहिए। कालीचरण प्रेमी की कहानी 'उसका फैसला' की बिंदो जो चरित्र और गुण दोनों से अच्छी है। परंतु पति कभी पिता नहीं बन सकता। इसका गुस्सा वह अपने पत्नी पर उसे चरित्रहीन कहकर निकालता है। ऐसे पात्र के साथ प्रथम दशक के कहानीकारों ने संघर्ष करती महिला का भी चित्रण किया है। जहाँ स्त्री अपने अधिकार के लिए लड़ना जानती है। उड़ान कहानी की कुसुमिया जो सभी बंधनों को तोड़कर खुले आसमान में अपने खुले विचारों के साथ उड़ना चाहती है।

वृद्धावस्था जो जीवन का सुख भोगने का अंतिम चरण होता है। बस सुख के चार पल आराम से गुजर जाए उतनी ही उनकी संवेदना होती है। परंतु आज का मॉडर्न समाज इतना व्यस्त हो गया है कि उन्हें अपने बुढ़े माँ-बाप, सास-ससूर को देखने का समय नहीं इसलिए नाती-पोतों के साथ खेलने की उम्र में उन्हें वृद्धाश्रम में डाला जाता है। जहाँ अकेली जिंदगी को बिताते अपने आखिरी वक्त का इंतजार करते रहते हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानी 'प्रेतकामना' में अकेलेपन की त्रासदी किस तरह से वृद्ध मन पर हावी होती है। उसका चित्रण पाठक वर्ग भली-भाँति देख सकता है। 'उलटबाँसी' कहानी की पात्र माँ अपने आखिर क्षण सुख से पूर्ण करने के लिए परिवार के विरोध को अनदेखा कर दूसरा विवाह करती है।

'गौरा गुणवन्ती' कहानी की दादी गुमसुम रहती है, क्योंकि अब उसके पोती गौरा की शादी होने वाली है। तत्पश्चात दादी की सभी जरूरतों को देखने वाला कौन होगा ? स्वतंत्रता पूर्व प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' तथा 'चीफ की दावत' में जो वृद्ध महिलाओं की स्थिति दिखाई गयी थी वह आज के समाज की भी स्थिति है। लेखक एस. आर. हरनोट अपनी कहानी 'माँ पढ़ती है' में लिखते हैं उन्हें शर्मिंदगी महसूस होगी अगर किसी सम्मेलन में उनकी माँ को लेकर गए । क्योंकि उनकी माँ सीधी-साधी गाँव में रहने वाली महिला जो ठंड की वजह से बीड़ी पीती है। अगर समाज में यह किसी को पता चलेगा तो एक लेखक का जीवन ऐसा भी होता है। यह समझकर उन पर हास्यास्पद बातें आयेंगी । कितनी अजीब धारणा है। जिस कोख में नौ महिने रखकर दुनिया दिखाई, वही दुनिया अब माँ को नहीं दिखानी । समय बदलकर आगे बढ़ रहा है, लेकिन मनुष्य के विचार अभी वही अटके हुए हैं।

किन्नर भी मनुष्य है। संवेदना या भावना को मनुष्य भूल चुका है। इसलिए वर्तमान समय में भी किन्नर अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। जहाँ जाओं वहाँ तिरस्कार, अपमान, ईर्ष्या इन्हीं भावनाओं के साथ मनुष्य इन्हें देखता है। स्वयं के परिवार में भी उन्हें

जगह नहीं रहती। सूरज बडत्या की कहानी ‘कबीरन’ की पात्र कबीरन एक स्त्री किन्नर है। जन्म होते-होते ही कबीरन को मार डालने की चर्चा करने लगे। लेकिन पिता के आग्रह की वजह से कबीरन को किन्नर समाज में दे दिया गया। आखिर क्यों कबीरन के साथ ऐसा हुआ। यह बस एक ही कबीरन नहीं। ऐसी हजारों कबीरन हैं जिन्हें यह सभ्य समाज तिरस्कार भरी नजरों से देखता है।

अल्पसंख्यक में बहुत से धर्मों का समावेश होता है। जैसे ईसाई, सिख, फारसी, मुस्लिम, जैन आदि। मैंने यहाँ मुस्लिम समाज की संवेदनाओं का चित्रण करने की कोशिश की है। भारत विभाजन के बाद हिंदू तथा मुस्लिम ऐसी दो धारणाएँ बन गयी। जो आज इक्कीसवीं सदी तक आते-आते नहीं रूकी है। असगर वजाहत की कहानी ‘मैं हिंदू हूँ’ इसका जीवंत उदाहरण है। रती लाल शाहीन की कहानी ‘अब्दुल जिंदा है’ का पात्र अब्दुल अपना नाम कमाने के दौड़ में किस तरह से मारा जाता है। क्योंकि वह मुस्लिम है और अपने मौहल्ले में अपना ही नाम देखना चाहता है। मानवीय संवेदनाओं ह्रास होती हर तरफ चित्रित किया गया है।

भूमंडलीकरण की संवेदनाओं को समझने की कोशिश की तो पता चला की आज हम पाश्चात्य संस्कृति के हाथ की कठपुतली बन गए हैं। भूमंडलीकरण ने अपना ऐसा कहर भारत पर डाला है। जिसका पूर्ण समाज साक्ष है। आज हमें मॉल्स की चकाचौंध भरी दुनिया अधिक पसंद आती है। आज भूमंडलीकरण के चलते भ्रष्टाचार, बेरोजगारी के प्रमाण अधिक बढ़ रहे हैं। मजदूर वर्ग आज मशीनों के नीचे झुक गया है। क्योंकि दस-दस मजदूरों का काम बस एक मशीन कर लेती है। अवधेश प्रीत की कहानी ‘सी-इंडिया’ में वैश्वीकरण के चलते भारतीय कर्मचारियों पर हो रहा ह्रास का चित्रण है। राकेश कुमार की कहानी ‘जोड़ा हारिल की रूपकथा’ में आदिवासियों के विस्थापन का चित्रण देख सकते हैं। उदय प्रकाश की कहानी ‘पाल गोमरा का स्कूटर’ में राम गोपाल सक्सेना को पाल गोमरा बनना

पड़ा। इसका अर्थ भी हम समझ सकते हैं। मजदूर संवेदना बस उसका एक भाव न होकर उसका संपूर्ण जीवन है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों को शिल्पगत धरातल पर देखा गया है। शिल्प की नवीनता को कहानियों के माध्यम से समझा गया है। शिल्प कहानीकार का औजार है, जिसे वह अपना हथियार बनाकर कहानी की रचना करता है। कहानियों का समय जैसे बदलता गया वैसे ही शिल्प का बदलाव आना भी निश्चित हो गया। शिल्प अर्थात एक ढाँचा है। बिना ढाँचे के किसी भी वस्तु या घटक का विचार करना निरर्थक रहेगा। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य कुछ-न-कुछ सोच कर ही आगे बढ़ता है। शिल्प का मूल्यांकन हम शिल्प के तत्वों से कर सकते हैं। कथावस्तु, पात्र, संवाद, वातावरण, भाषा शैली तथा उद्देश्य यह कहानी के शिल्प के मुख्य तत्व कहलाते हैं। सभी रचनाकार अपनी रचनों को उपरोक्त ढाँचे में बनाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक कहानीकार भिन्न होता है। उसकी रचना भिन्न होती है। इसलिए प्रत्येक कहानीकार की अपनी एक विशिष्ट शिल्प शैली होती है। जिससे वह पहचाना जाता है। प्रस्तुत शोध कार्य में मैंने आदिवासी, दलित, स्त्री, किन्नर, वृद्ध कहानियों की कथावस्तु समझने का प्रयत्न किया है। पात्र कहानी की जान होते हैं। प्रथम दशक के कहानीकारों ने पात्रों की रचना सोच-समझकर की है। जिससे पाठक वर्ग उस परिवेश के संदर्भ में सोचने के लिए विवश हो जाए। संवाद कहानी की आवश्यकता है। जिससे कहानी पठन के समय पाठक हजारों प्रश्नों से गुजरता है। कहानी किस परिस्थिति तथा किस संदर्भ में रची होगी इसका विचार भी प्रथम दशक की कहानियों ने किया है।

कहानी में अनुकूल वातावरण को प्रस्तुत किया गया है। महाश्वेता देवी की 'डायन' में जंगल का चित्रण, एस. आर. हरनोट की 'जीनकाठी' में पहाड़ों का चित्रण 'उलटबाँसी' 'लपटें' 'संघर्ष' आदि कहानियों में गाँव का चित्रण स्पष्ट रूप से किया गया है। बिना उद्देश्य की कहानी जैसे घर बिना दरवाजा होगी कहना गलत नहीं होगा। कहानीकार कोई-न-कोई

उद्देश्य को सोचकर ही कहानी की रचना करता है। क्योंकि उसे पता है, कहानी समाज में अपनी छाप छोड़ जाती है। अगर यह छाप गलत होगी, तो कह नहीं सकते पाठक भी गलत राह पर निकल पड़े । रचनाकार को समाज को ध्यान में रखकर अपनी रचनाओं का निर्माण करना पड़ता है। जिससे वह रचना समाज के कुछ भी काम में आ सकें ।

शिल्प कहानी का औजार है। भाषा शिल्प का औजार है। दोनों घटक अपने-आप में जुड़े हुए हैं। भाषा और पाठक दोनों का अंतर्संबंध रिश्ता है। भाषा की विविध शैलियों से रचनाकार अपनी रचना को सजाकर आकर्षक बनाने का प्रयत्न हर वक्त करते रहता है। भाषा की विभिन्न शैलियाँ जैसे- वर्णनात्मक, काव्यात्मक, पत्रात्मक, पूर्वदीप्ति, संवाद, तुलनात्मक, व्यंग्यात्मक, आत्मकथात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, लोककथात्मक, नाटकीय आदि है। जो भाषा में नवीनता लाने का प्रभाव करती रहती है। 'उलटबाँसी', 'टोना', 'वाह किन्नी वाह', 'पाँचवी कब्र', 'क्या गुनाह किया', 'आदर्श की अर्थी', 'सफर', 'सत्ता-संवाद', 'कैसे-कैसे दिन' आदि कहानियों में भाषा की विविधता को देख सकते हैं। प्रथम दशक की कहानियों में अंग्रेजी, ऊर्दू, अरबी, राजस्थानी, पंजाबी, भाषाओं का प्रयोग देखने को मिला । कहानियों की अलंकारिक भाषा ने पाठक का मन जीत लिया। प्रथम दशक की कहानियों में प्रमुखता से प्रतीक तथा बिंब का प्रयोग अद्भुत है। मुहावरे, लोकोक्तियों से रचनाकारों ने अपनी कहानियों को जगह-जगह सजाया है। देशज भाषा देसी पाठक पर अलग ही जादू करती है। कहानियों की सरल व सहज भाषा से पाठक वर्ग आसानी से कहानी को अपना लेता है। जिससे वह कहानी को अलग ना समझकर आत्मसात कर लेता है।

संवेदना तथा शिल्प कहानी को देखने का नया भाव सिखाते हैं। इस शोध-प्रबंध के कार्य के चलते बहुत-सी नयी चीजों को सीखने का मौका मिला । अपनी पूर्ण निष्ठा से कहानी को समझकर अपना कार्य किया है। संवेदनात्मक भावों का फैलाव अपने-आप कैसे

बदलता जाता है, यह समाज हमें सिखाता है। मनुष्य ही समाज का महत्वपूर्ण घटक है। तो मनुष्य की संवेदनाएँ भी अपने-आप समाज का घटक बन जाती हैं। प्रथम दशक की कहानियों की प्रभावशीलता अगम्य है।

*****

संदर्भ ग्रंथ सूची

I. आधार ग्रंथ

1. अब्दुल जिंदा है, रतिलाल शाहीन, मेधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
2. आदिवासी कथा, महाश्वेता देवी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004
3. आदिवासी कहानियाँ, संपादक- केदार प्रसाद मीणा, अलख प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2013
4. ईस्ट इंडिया कंपनी, पंकज सुबीर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2011
5. उलटबाँसी, कविता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2009
6. उससे पूछो, जया जादवानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008
7. औरत होने का गुनाह, सुभाष नीरव, मेधा बुक्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2006
8. औरत की कहानी, संपादक- सुधा अरोड़ा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2010
9. अंदर के पानियों में कोई सपना काँपता है, जया जादवानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
10. कब्र का मुनाफा, तेनेंद्र शर्मा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
11. कठपुतली, मनीषा कुलश्रेष्ठ, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2010
12. कामरेड का बक्सा, सूरज बडत्या, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013
13. काला शुक्रवार, सुधा अरोड़ा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
14. कित्ता पानी, अनिता गोपेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2011

15. किस्सा-ए-कोहीनूर, पंखुरी सिन्हा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
16. कोई मेरा अपना, सुषमा जगमोहन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2009
17. कोई है, रूपसिंह राठौड़, ग्रंथ विकास, जयपुर, प्रथम संस्करण 2009
18. कोई भी दिन, पंखुरी सिन्हा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2006
19. क्या गुनाह किया, अंजु दुआ जैमिनी, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007
20. खेत तथा अन्य कहानियाँ, रत्नकुमार सांभरिया, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2010
21. गली दुल्हनवाली, मीराकांत, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
22. गौरा गुणवन्ती, सूर्यबाला, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
23. घुसपैठिये, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
24. जंगल का जादू तिल-तिल, प्रत्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2009
25. जीनकाठी तथा अन्य कहानियाँ, एस. आर. हरनोट, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2008
26. जोड़ा हारिल की रूपकथा, राकेश कुमार सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2016
27. तलाश, जयप्रकाश कर्दम, विक्रम प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2005

28. नई सदी की पहचानः श्रेष्ठ महिला कथाकार, संपादक- ममता कालिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2009
29. नई सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, संपादक- मुद्राराक्षस, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2004
30. नेम प्लेट, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010
31. पटकथा और अन्य कहानियाँ, अजय नावरिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
32. पाल गोमरा का स्कूटर, उदय प्रकाश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998
33. बूढ़ा चाँद, शमिला बोहरा जालान, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008
34. भीतर का वक्त, अल्पना मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2006
35. भेम का भेरू माँगता कुल्हाड़ी ईमान, सत्यनारायण पटेल, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 2007
36. मैं हिन्दू हूँ, असगर वजाहत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007
37. मेरी बस्तर की कहानियाँ, मेहरून्निसा परवेज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
38. लपटें, चित्रा मुदगल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पंचम संस्करण 2004
39. वाह किन्नी वाह ! यादवेंद्र शर्मा चंद्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

40. शिकारगाह, ज्ञानप्रकाश विवेक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2005

41. सलाम, ओमप्रकाश वालमीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004

42. संघर्ष, डॉ. सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण 2006

43. हमजमीन, अवधेश प्रीत, राजकमल प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण 2006

II. सहायक ग्रंथ

1. अलग-अलग दीवारें, सुमति सक्सेना लाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

2. अंधेरा, अखिलेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007

3. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002

4. इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी, प्रो. सूरज पालीवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012

5. उच्चतर शिक्षा-मनोविज्ञान, एस. पी. गुप्ता, अलका गुप्ता, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2003

6. ओ भैरवी, यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2010

7. औरत के लिए औरत, नासिरा शर्मा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011

8. अंतिम दशक की हिंदी कहानियाँ संवेदना और शिल्प, डॉ. नीरज शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011

9. कहानी नयी कहानी, डॉ. नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2016
10. काव्य के रूप, डॉ. गुलाबराय, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1947
11. कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण 1965
12. गुलमेहंदी की झाँडियाँ, तरूण भटनागर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2010
13. घनानंदः संवेदना और शिल्प, डॉ. राज बुद्धिराजा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण1976
14. चेहरे, चित्रा मुद्गल, पेंगुइन बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007
15. चंद्रकांता की लोकप्रिय कहानियाँ, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015
16. जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्प विधान, अशोक कुमार गुप्ता, बोहरा प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1996
17. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, एस. आर. हारनोट, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
18. दस प्रतिनिधि कहानियाँ, भगवानदास मोरवाल, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
19. दसवें दशक के हिंदी उपन्यासों में सांप्रदायिक सौहार्द, प्रो. मंजुला राणा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008

20. दूधनाथ सिंह कृत कहानी संग्रह 'जल मुर्गियों का शिकार' में कथ्य व शिल्प, पूजा गर्ग, इंशा पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019
21. धर्म सत्ता और प्रतिरोध की संस्कृति, राजाराम भादू, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003
22. धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्रे, दूधनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001
23. नई सदी बाजार, समाज और शिक्षा, दिनेश भट्ट, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2005
24. परिंदे का इंतजार सा कुछ, नीलाक्षी सिंह, हार्पर कॉलिस पब्लिशर्स इंडिया, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2010
25. पेंटिंग अकेली है, चित्रा मुदगल, सामायिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
26. भाव, उद्वेग और संवेदना, राजमल बोरा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1984
27. मीडिया और बाजारवाद, संपादक- राजाराम जोशी, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002
28. मेहरून्निसा परवेज की कहानियाँ एक अध्ययन, डॉ. अनिता जाधव, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2012
29. मेरी नाप के कपड़े, कविता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2006
30. मेरी प्रिय कहानियाँ, नासिरा शर्मा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
31. मैं हिजड़...मैं लक्ष्मी, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015

32. वृद्धावस्था में सुखी जीवन, सत्येंद्रनाथ राय, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016

33. विभाजन की कहानियाँ, मुशर्रफ आलम जौकी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

34. शिल्प, रचना- प्रक्रिया और अंतर्वस्तु, ब्रजनंदन किशोर, प्रभा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013

35. समकालीन कहानी समय, संपादक- पुष्पपाल सिंह, हार्परकॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया प्रकाशन, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2013

36. समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श, डॉ. शिवाजी देवरे, डॉ. मधु खराटे, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 2013

37. समय, समाज और मनुष्य, खगेन्द्र ठाकुर, पुस्तक भवन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009

38. संस्कृति और व्यावसायिकता, रमेश उपाध्याय, शब्द संधान प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006

39. हादसे, रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011

40. हिंदी कहानी कला, प्रतापनारायण टंडन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1970

41. हिंदी कहानी का इतिहास (1900-1950), गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 2016

42. हिंदी कहानी का इतिहास (1951-1975), गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016

43. हिंदी कहानी का इतिहास (1976-2000), गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016

44. हिंदी कहानी की इक्कीसवीं सदी, संजीव कुमार, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2019

45. हिंदी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, लक्ष्मीनारायण लाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2019

46. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. अशोक तिवारी, हरिश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण 2004

47. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, प्रथम संस्करण 1978

48. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, बाइसवाँ संस्करण 2011

49. हिंदी कहानी : बदलते प्रतिमान, डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1975

50. हुडुकलुल्लू, पंकज मिश्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008

III. पत्र-पत्रिकाएं

1. कथाक्रम, जुलाई-सितंबर 2003, संपादक डॉ. शिवकुमार मिश्र

2. परिकथा, जनवरी-फरवरी 2010 संपादक- शंकर

3. बयान, अगस्त 2010, सं. मोहनदास नैमिशराय

4. वर्तमान साहित्य, जून 2010 संपादक- नमिता सिंह

5. समकालीन भारतीय साहित्य, जनवरी- फरवरी 2003, संपादक- गिरधर राठी

6. संग्रथन, मार्च 2008, संपादक- टी. विजय शेखर

7. हंस, जनवरी 2005 संपादक- राजेंद्र यादव

8. हंस, जून 2008, संपादक- राजेंद्र यादव

9. हंस, दिसंबर 2006, संपादक- राजेंद्र यादव

10. हंस, सितंबर 1992, संपादक- राजेन्द्र यादव

IV. कोश ग्रंथ

1. मानक हिंदी कोश, खंड-5, रामचन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण 1966

2. संस्कृत शब्दार्थ, कौस्तुभ चतुर्वेदी, द्वारका प्रसाद शर्मा एवं पं. नारीणीश झा, रामलाल नारायणलाल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1957

3. संस्कृत-हिंदी कोश, वामन शिवराम आप्टे, भारतीय संस्कृति ग्रंथालय प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1966

4. हिंदी कोश, संपादक- रामचंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण 1966

5. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1 धीरेंद्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2015

V. अंतरजालः

1. www.gadyakosh.com

2. www.google.com

MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

April To June 2021
Special Issue-01

अतिथि संपादक

डॉ. संतोषकुमार यशवंतकर
डॉ.गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे

❖ **विद्यावार्ता** या आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक त्रैमासिकात व्यक्त झालेल्या मतांशी मालक, प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सहमत असतीलच असे नाही. **न्यायक्षेत्र:बीड**

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat**.

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205
Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

२६.	**दलित विमर्श का स्वरूप एवं अवधारणा** डॉ० विनय कुमार	||100
२७.	**दलित विमर्श का स्वरूप** प्रा. धोंडिबा भुरे	||105
२८.	**हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त दलित चेतना** डा.दस्तगीर एस. देशमुख,शेख अब्दुल बारी अब्दुल करीम	||108
२९.	**अफसरी सभ्यता में रौंदे हुए दलितों की दास्तान : कोर्ट मार्शल** डॉ. देविदास भिमराव जाधव	||112
३०.	**इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की हिंदी कहानी में दलित संवेदना** राठोड ज्योती चंद्रकांत	||114
३१.	**दलित समाज का राजनीतिक वर्तमान और दलित उपन्यास** Dr Sindhu A	||118
३२.	**टीस कहानी में आदिवासी विमर्श** डॉ.पुष्पा गोविंदराव गायकवाड	||123
३३.	**आम्बेडकरवादी कविता संग्रह 'दहकते अंगारे'** प्रा. रगडे परसराम रामजी	||126
३४.	**उसके जख्म कहानी में दलित स्त्री की वेदना** डॉ.पठान जे.सी. ,सावते राजू अशोक	||130
३५.	**हिन्दी—तेलुगु उपन्यासों में दलित आन्दोलन का प्रभाव** —बी . रविंदर	||133
३६.	**'दलित आंदोलन और हिंदी साहित्य'** डॉ.अनिलकुमार राठोड, प्रा. हिरामन देवराम टोंगारे	||138
३७.	**उपभोक्तावादी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उदय प्रकाश की कहानियाँ** प्रा.युवराज राजाराम मुळये	||142
३८.	**आदिवासी साहित्य का स्वरूप** डॉ परमेश्वर जिजाराव काकडे	||146

बंद करके सांमतशाही का गुलाम बनने से मुकर गया। इस देश के फौजी के साथ ऐसा ही होता रहा तो आझाद भारत माँ के सुपुत्र को कहाँ न्याय मिलेगा? प्रजातंत्र में कानून और व्यवस्था के उंचे पद पर विराजमान अफसरों नें सांमती दरबार समझ लिया है। इस दरबार में राजा जो कहें वही पूरब दिशा होगी। ऐसी स्थिति में निम्न मध्यमवर्गीय तथा दलित जवानों अपने घर का नौकर समझने की भूल वे करते रहेंगे। उनसे ऐसे कार्य करवाने के पक्षधर लोग समानता की दृष्टि से देखेंगे? प्रस्तुत नाटक इस प्रकार के जवानों के अंतर्गत शोषण को रोकने तथा सेना के भ्रष्ट अफसरों का असली चेहरा सबके सामने लाने का सफल प्रयास किया है। नही तो न्याय व्यवस्था भी शोषणमूलक व्यवस्था का ही एक अंग बन जायेगी। जिसमें शरीफ, इमानदार तथा देश के प्रति अपनी जान दाँव पर लगानेवाले रामचंदर जैसे जवानो को ऐसी व्यवस्था फाँसी के फंदे तक पहुँचाने की करती रहेगी। सेना के जवानों में दलित किसी भी कार्य में कम न होने पर भी सिर्फ जाति से छोटे मानने की संकीर्ण भावना और उससे उपजे अपराध को इस नाटक में बेहतर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ :

१. कोर्ट मार्शल, स्वदेश दीपक पृ. सं. ४२
२. वही. पृ. सं. ८२
३. वही. पृ. सं. ७८
४. वही. पृ. सं. ८९

❑❑❑

30

इक्कीसवीं सदी की प्रथम दशक की हिंदी कहानी में दलित संवेदना

राठोड ज्योती चंद्रकांत
शोधार्थी, हिंदी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद
तेलंगना— ५०००४६

****

हम हमारा देश बहुभाषिय, बहुसंस्कृति का मानते है । हम यह भी कहते है कि यहाँ विविधता में एकता है । यह कथन सही है यह भी हम कह सकते है । विविधता में एकता वाला यह देश सभी कुल—जाति को को सुई—धागों की तरह एक के साथ एक जोड़ता आया है । परंतु यही विविधता हमें शायद उन दलित समाज से नहीं जोड़ती जहाँ मनुष्य ही जन्म लेता है । वह भी हाड़—मांस से बना है । उसे चोट लगने से उसका भी लाल रंग का रक्त ही बहता है । क्यों दलितों को हर एक वस्तु के लिए क्रांति या आंदोलनों का सहारा लेना पड़ता है । धरती पर जन्मे हर एक नागरिक जन्मजात ही समानाधिकार होता है कि वह अपने तरीके से अपना जीवन व्यतीत करे । किसी भी मानदंड को गिनने से पहले मनुष्य की जातियाँ वर्ग को ही क्यों पूछा जाता है । हमारे भारतीय समाज में हम भारतीयों को चार वर्णों में बाँट दिया है वह है— ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र । शूद्र शब्द जो मानव को मानव से दूर करता है । दलितों को हम शूद्र कहते है । वह अछूत है, उनके स्पर्श मात्र से ही साधारण मानव अछूता बन जाता है, यह कहना कहाँ तक सही है ? हम जानवर को छूते है, उन्हें खाना, घास डालते है, तो क्या उनके स्पर्शमात्र से हम जानवर बन जाते है ? सभी प्रश्न शायद

दलितों के मन में बार—बार तलवार का कार्य करते होंगे । इक्कीसवीं सदी की कहानियों में भी हमें दलितों पर हुए शोषण एवं अत्याचार, उत्पीड़न की भावना सामने दिखाई देती है । दलितों के रक्षक या यूँ कहे भगवान बाबासाहब भीमराव अंबेडकर के कठोर परिश्रमों से दलित वर्ग थोड़ा सम्मान और अधिकार प्राप्त हुए हैं । बाबासाब जी ने दलित वर्ग की स्थिति को बदलने का भरसक प्रयास किया है । धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचारों का बाबासाहब ने विरोध किया । बाबासाहब के कदमों पर चलने वाले दलित साहित्यकार जैसे— ज.प्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कौशल्या बैसंत्री, नामदेव ढसाळ इत्यादि लेखकों ने अपने लेखनी के माध्यम से समाज को एक बड़ा विचार एवं सोच का रास्ता दिखाया है ।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में दलित उत्पीड़न और अत्याचारों को हम देख सकते है । आज का समाज जहाँ दलित शिक्षित हो या अशिक्षित उसकी योग्यता उसके कौशल से ना देखकर उसके वर्ग से देखा जा सकता है । गुणवत्ता अगर वर्ग से न नापकर उसकी योग्यता से नापा जाए तो दलित वर्ग भी एक उच्च श्रेणी का माना जाएगा । अस्पृश्यता यह भेदभाव मनुष्य को मनुष्य के प्रति तिरस्कार निर्माण करने का एक भाव बन गया है, जो दो भावनाओं को एकत्रित मिलने नहीं देता । दलितों को घर का काम अर्थात झाडू—पोछा, हवेली की साफ—सफाई इन सभी कामों के लिए चलते हैं, उनसे उच्च वर्ग के लोगों को कोई अछूतेपन का एहसास नहीं होता, परंतु यही दलित उनके घर के बर्तन या अन्य किसी चीज को स्पर्श नहीं कर सकते , उससे वह वस्तु अछूती हो जाती है । इसी संदर्भ में रत्नकुमार सांभरिया की कहानी 'बदन दबना' एक पात्र पूलाराम की विवशता को बताते हुए हवेली का मालिक हल्काराम कहता है— "सामने पेहड़ी पर अमरिया की मटकी रखी है ।

उसी पर गिलास है । कोने में हैंडपंप हैध्यास लगे, पानी खींच लाना ध्सुनाध्जीध्अलमारी की तरफ न हाथ बढ़ाना, ने देखनाध्जीध्योटी हम अपने हाथ देंगे ।"

हमारे समाज की जाति व्यवस्था ने मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दिया है । आज भी देश में चल रहे दलित अत्याचारों के चर्चे हर एक समाचारपत्र में हम देख सकते है । उनके साथ हुए अन्याय और अत्याचार की तो कोई सीमा ही नहीं है । अपमान का सामना करता दलित वर्ग बहुत सी कठिनाईयों का सामना कर रहा है । ऐसी ही एक घटना जो बयान पत्रिका में छपके आई थी— "तीन जुलाई २००६ की तारीख । भीलवाड़ा का भगवानपुर गाँव । दो दलित बच्चों बंटी और मोनु ने आईसक्रीम कप में खाई । दुकानदार ने बच्चों से उनकी जाति पूँछी । जैसे ही उसे पता चला कि बच्चे दलित है तो उसने उनके हाथों से आईसक्रीम कप छीन लिए और उन्हें गालियाँ देने लगा । बच्चे नहीं जानते थे की उन्होंने क्या खता की है उसकी सजा उनका पूरा समाज भुगतेगा । रात के अँधेरे में सवर्णों ने दलितों को उनके घरों से निकालकर पीटा । उनकी महिलाओं से बदसलूकी की गई । ये जुल्म अंग्रेजो ने नहीं किया था । जुल्म की यह इबारत ६० साल के आजाद भारत में लिखी गई थी । इस आईसक्रीम की सजा आज भी इस समाज के माथे पर लिखी हुई है । वे आज भी समाज से बहिष्कृत है । वर्ष २००९ तक भी दोषियों को सजा नहीं मिली जबकि अनुसूचित जाति एवं जनजाति अधिनियम को बने २० साल हो चुके है । मगर आज भी दलित जानवरों से बदतर जिंदगी जी रहे है ।" कितना भयावह है यह सब देखना कि बच्चों को अधिकार नहीं की वह आईस्क्रीम भी खा सके । अनाज तथा खान—पान पर भी जातिवाद की मुहर लगा दी गई है कि कौनसा वर्ग कौनसी वस्तु ग्रहण कर सकता है । जातिवाद ने किसी को नहीं छोड़ा है । चाहे वह छोटा बच्चा हो या कोई बुढ़ा । दलित, दलित ही होता है । यही उसकी पहचान है ।

धरती पर जन्मे प्रत्येक नागरिक को समानता से जीने का अधिकार है । समाज में बने कुछ वर्गों के कारणवश काम का बँटवारा भी उसी धारणा से होने

लगा । दलित समाज को शूद्र मानने के कारण मैला ढोने का काम दलित पुरुष–महिलाओं को सौंपा गया । पूर्ण इलाके का मैला उठाने की वजह से इनके शरीर से दुर्गंध आना स्वाभाविक है । समाज का कचरा साफ करके दलित सभी जन–जनता की एक तरह मदत ही करता है और इसी समाज ने दलितों को अछूत होने का धब्बा जमा दिया । यह कहाँ तक उचित है ? यह मैला ढोले की प्रथा सदियों से चली आ रही है, जो आज भी निरंतर चल रही है । इस संदर्भ में सुशीला टाकभौरे की 'संघर्ष' कहानी का एक चित्र प्रस्तुत है– "कुछ लोगों को झाडू का काम दिया जाता है । सड़के, गलियाँ, अहाते, मैदान, गड्डे, नालियाँ सबकी सफाई की जिम्मेदारी उनकी होती है । कुछ लोगों को मैला सफाई का काम दिया जाता है । वे लोग मोहल्लो के घरों की कच्ची संडासों की सफाई करके मलमूत्र से बड़े–बड़े डले या टोकरे बरते हैं । मलमूत्र के उन डलों को एक–एक करके अपने सिर पर उठाकर, मैलागाडी में रख देते हैं।"

सबका मैला ढोता समाज आज भी हम बदनाम ही देखते हैं । सदियों से गुलामी करता यह समाज अपनी भावना, संवेदनाओं को किसेके सामने प्रस्तुत करे यह प्रश्न इनको अभी तक है । हम बता नहीं सकते इन सभी प्रश्नों का पूर्ण उत्तर दलित समाज को कब और कैसे मिलने वाला है । शूद्र जाति से रहने के कारणवश दलितों को शिक्षा का अभाव बहुत पहले से ही होता या है । किसी–किसी ने थोड़ा धैर्य करके शिक्षा प्राप्ति की कोशिश की, उन्हें स्कूल से बाहर फेंका गया । कहा गया शिक्षा प्राप्ति का अदिकार केवल सवर्णों को ही है । दलितों का काम समाज को साफ रखना है, बस उनकी सीमा घर के दहलीज के बाहर ही होती है, दहलीज के अंदर नहीं । ऐसा कहकर उन्हें शिक्षा से भी वंचित रखा गया । किसी तरह अगर स्कूल में भरती हो भी गये, तो भी उनका अपमान किया जाता था । उनके सम्मान को बार–बार रौंदा जाता था । जिससे दलित विद्यार्थीयों को आत्मसम्मान और आत्मविश्वास कम होता जा रहा था । सवर्णों की ही सब बातों का मान किया जाता था । खेत तथा अन्य कहानियाँ की कहानी 'बदन–दबना' में हल्काराम, पुछराम के आत्मविश्वास को दबा देते हुए कहता है– "पुछिया,छात्रावास का सामान और कॉपी–किताब जमा करा आया है न तु । अमरिया आया था । थैले में स्लेट और किताब थी उसके । स्लेट मटकी पर रखी है । कॉपी के पन्ने फाड़–फाड़ हवाई जहाज बनाकर उड़ाता रहा था वह कई दिन ।"

इक्कीसवीं सदी का युग आ चुका है । समाज में परिवर्तन, बदलाव यह सभी लाना अनिवार्य है । यह बदलाव किस तरह से और कैसे आएगा यह हमें देखना है । इक्कीसवीं सदी की मानसिकता में कोई इतना बड़ा बदलाव हमें देखने को नहीं मिलता । आज भी यह समाज शिक्षा–दीक्षा के लिए लड़ रहा है । आज भी बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों में जातिवाद की भावना हमारे सामने आती है । आज भी विश्वविद्यालय में दलित विद्यार्थीयों को आगे बढ़ने का वसर नहीं मिलता । ऊँच–नीच की भावनाएँ सवर्ण विद्यार्थियों में उपस्थित है, जिसके रहते दलित विद्यार्थी अपनी समस्याओं का निवारण ढूंढने में पीछे रह जाते थे । ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिये' में ऐसे ही शिक्षित दलित वर्गों की समस्याओं को दर्शाया है कि किस तरह सवर्ण विद्यार्थी कॉलेजों में दलित विद्यार्थियों पर अत्याचार करके असमानता की भावना रखते है । "सर! हम लोग बहुत बड़ी परेशानी में है. ..समझ में नहीं आ रहा है क्या करें ?मेडिकल कॉलेज के जो हालात है, उसमें हमारे लिए पढ़ाई जारी रखना दिन–प्रतिदिन कठिन हो रहा है । ये साल हमने जिन यातनाओं के साथ गुजारे हैं....हम ही जानते है । कई बार तो लगता थी पढ़ाई छोड़कर वापस लौट जाएँ... लेकिन माँ–बाप की उम्मीदें रास्ता रोककर मजबूर कर देती है । उन सब यातनाओं के साथ पढ़ाई जारी रखना...बहुत तकलीफदेह है...एक रोज तो मैंने आत्महत्या तक कर लेने का निश्चय कर लिया था ।"

कहानी का पात्र अमरदीप इतनी बड़ी त्रासदी में होता है कि वह आत्महत्या तक करने की सोचता

है । ऐसा क्यूं ?क्योंकि वह दलित है सवर्ण नहीं । भविष्य में कुछ अच्छा बनने के लिए शिक्षा का मार्ग लेना आवश्यक है, परंतु शिक्षा का मार्ग इतनी यातनाओं से भरा हुआ हो तो वह अपना लक्ष्य कैसे साध पायेंगे।

स्कूल, कॉलेजों में रैगिंग पर प्रशासन ने बहुत से अवरोध लगाए है । यह कितने तक विद्यार्थीगण मानते है, इसके बारे में हम कह नहीं सकते । क्योंकि इतनी कठोर शिक्षा के बावजूद आज भी स्कूल और कॉलेजों में हम रैगिंग की वारदातें सुनते है । ऐसे ही दलित वर्ग के बारे में कहा जाए तो वह कुछ अलग ही होगा । दलित विद्यार्थियों का रैगिंग के नाम पर हो रहा अत्याचार और उत्पीड़न कुछ ज्यादा ही होता है । रैगिंग के नाम परहोता हुआ दुष्कर्मनिर्दयी मन से ही हो सकता है । शिक्षा हमें समानता की भावना सिखाती है, परंतु यह अपनी दुनिया में कहाँ तक माना जा रहा है । 'घुसपैठिये' कहानी में हम इस दृश्य को देख सकते है— "दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज का किस्सा है । प्रवेश परीक्षा के प्रतिसत अंक पूचकर थप्पड़ या घूँसों का प्रहार होता है । जरा भी विरोध किया तो तो लात पड़ती है यह दो—चार दिन नहीं साल के साल चलता है और यह पिटाई कॉलेज या छात्रावास तक सीमित नहीं है । शहर से कॉलेज तक जाने वाली बस में भी पिटाई होती है । कोई एक सीनियर चलती बस में चिल्लाकर कहता है इस बस में जो भी चमार स्टूडेंट है...वह खड़ा हो जाए...फिर उसे धकियाकर पिछली सीटों पर ले जाया जाता है जहाँ पहले से बैठे सानियर लात—घूँसों से उसका स्वागत करते है ।"

जहाँ हम अशिक्षित वर्ग को कहते है कि उन्हें कुछ समझ में नहीं आता, वो स्पृश्य—अस्पृश्य, अधर्म—धर्म जातिवाद इन सभी उलझनों में फँसे हुए होते है । तो यहाँ शिक्षित वर्ग और भी गया गुजरा है जो इन दलितों की भावनाएँ नहीं समझता । उनका तिरस्कार करता है, उनके आत्मसम्मान को झकझोर के रख देता है । दलितों को यह महसूस करने के लिए मजबूर कर देता है कि वह सभ्य समाज का हिस्सा कभी नहीं बन सकते ।

इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ दलित त्रासदी की विविध उदाहरणें हमारे सामने दिखाती है । सुशीला टाकभौरे की 'संघर्ष' में भी हम देखते है कि जब लड़का झाडू तोड़ने के बारे में कहता है, तब उसकी नानी डर जाती है, और उसे लगता है कि कोई पहचान नहीं रह गई है । वह दलित घर में पैदा हुआ है उसका अर्थ बस उसने झाडू—पोछा ही करना है । कलम और किताब से उसका कोई भला नहीं होनेवाला । आखिर में उसे हाथ में झाडू ही काम देनेवाला है । नानी अपनी बेटी से यही बात कहती है— "पढ़ाई करने से और स्कूल जाने से इस लड़के का दिमाग कहीं खराब तो नहीं हो गया ।...?"

मानवीय संवेदना भावनाओं से बनती है । इसी संवेदना को अगर कोईईट—पत्थरों से मारे तो वह बाहर से नहीं अंदर से टूट जाती है । मनुष्य का मनुष्य के तरह अगर देखा जाए तो उसमें कोई ऊँच—नीच की भावना निर्माण ही नहीं हो सकती । आज हमें जिने शूद्र, दलित, अछूत जैसे भयावह शब्दों से संबोधित करते है, वही आज अपना समाज स्वच्छ बना रहें है । समाज ने दलितों को सबसे बड़ा कार्य सौंपा है । समाज को साफ करने को, उसे स्वच्छ रखने का और उसे निष्पाप बनाने का शायद दलित समाज को शहर को, गाँव को मुहल्ले को साफ करने का कार्य नहीं करता तो यह गंदगी शायद इसी सभ्य समाज को कचरे के तले दबा डालती । मनुष्य जाति विभिन्न रोगों से त्रस्त होती रहती । तो हम सोच सकते है कि दलित वर्ग कितना बड़ा कार्य कर रहा है ।दलित शोषण का चित्रण 'बरगद का छाता' कविता में कुछ इस तरह किया है—

"बरगद के नीचे/हम छोटे—छोटे पौधे पैदा होते ही जाते है मरघट की जड़ें/धरती के अंदर घुस कर/हड़प लेती है/हमारे हिस्से का पानी हमारे खाते की रसदफ्लील जाती है/हमारे उगने की ऊर्जा/बढ़ने की हमारी ललक ।"

अपनी छोटी—छोटी आकांक्षाओं की बली चढ़ते देख किसी भी मनुष्य को बुरा लगता है । अगर वह प्रश्न जातिवाद का हो तो अधिक दर्द का सामना करना पड़ता है ।

अंतत: हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते है

कि इक्कीसवीं सदी की कहानियाँ विविध भावों से ओत–प्रोत दिखाई देती है । दलित संवेदना को प्रत्येक जगह तोड़ते हुए जिससे मानव को मानव के प्रति घृणा निर्माण हो जाती है । इक्कीसवीं सदी की कहानियों का प्रथम दशक दलित वर्ग के प्रत्येक क्षेत्रों को चित्रित करता है । शिक्षित–अशिक्षित दोनों मानसिकताओं के पाठक के सामने प्रस्तुत करता है । समाज में हो रहे दलितों के प्रति अत्याचार, उत्पीड़न उनकी विवशता को दलितों की लाचारी समझकर उनसे किए गये आत्याचारों को आलोच्य युग के कहानियों में भली–भाँति प्रेषित किया गया है । देश आगे बढ़ने का तात्पर्य यहीं नहीं की हम कितना पैसा कमा रहे है, कितनी शिक्षा ग्रहण कर रहे है, कितना नाम कमा रहे है, बल्कि यह कह सकते है कि मानव को मानव के प्रति प्रेम भावना को जागृत करना । समानता को प्रथमत: देना और जातिवाद को नष्ट करना ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. अब मूरख नहीं बनेंगे हम, रमणिका गुप्ता, अभिरुचि प्रकाशन,दिल्ली, प्रथम संस्करण१९९२

२. खेत तथा न्य कहानियाँ, रत्नकुमार सांबरिया, आध ार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण २०१०

३. बयान पत्रिका– अगस्त २०१० संपादक– मोहनदास नैमिशराय, नई दिल्ली

४. संघर्ष, सुशीला टाकभौरे, शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण २००६

५. घुसपैठिये, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००३

६. नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ, संपादक– मुद्राराक्षस, लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण २००४

❑❑❑

31

दलित समाज का राजनीतिक वर्तमान और दलित उपन्यास

Dr Sindhu A,
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Payyanur College, Edat P O, Payyanur,
Kannur, Kerala

****

किसी भी समाज का स्वत्व निर्माण तभी संभव होता है जब देश काल द्वारा निर्णीत अनुभवों को अन्यों की नजर से न होकर स्वयं पहचानने लगते है। यह पहचान ही एक समाज को स्वत्व प्रदान करती है। हाशिएकृत समाज वर्तमान समय में अपने स्वत्व की तलाश में है। ब्राह्मण या सवर्ण समाज द्वारा निर्णीत दलित अपने स्वत्व निर्माण की प्रक्रिया में लगे हुए है। अन्यों द्वारा निर्धारित अपने को वे (दलित) आज अपनी नजर से देख रहे है और पहचान रहे है। अन्यों द्वारा दी जानेवाली सामाजिक इमेज को नकार कर अपना प्रतिबिंब (इमेज) स्वयं बना रहे है। इसके लिए साहित्य को एक औजार के रूप में वे स्वीकार कर रहे है।

साहित्य सामाजिक परिवर्तन का एक औजार है। सदियों से दबाये गए शब्द जब बाहर निकले लगते है तब वह शब्द विस्फोट के साथ बाहर आ जाते है। दलित साहित्य दलित आन्दोलन का हिस्सा है । यह तो मान्य है कि समाज में जब कोई परिवर्तन या आन्दोलन चलते तब साहित्य उससे अछूता नहीं रह सकते। भारत के दबाए गए लोगों की जिन्दगी, उनकी करुणादायक पीड़ाएँ, अपने हक के लिए चलाए गए आन्दोलन आदि से प्रेरित होकर दलित साहित्य का उदय हुआ। । दलित लेखक सामाजिक सरोकार के दायित्व से लिखता है।उसके लेखन कार्यकर्ता और निष्ठा अभिव्यक्त

ISSN No. 2319 - 5908
Issue-07/Vol-22/March 2019
An International Multidisciplinary Refereed Research Quarterly Journal

शोध संदर्श

शोध संदर्श

SHODH SANDARSH

शिक्षा, साहित्य, इतिहास, कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य आदि

(विशेषांक)

Chief Editor :
Dr. V.K. Pandey

Editor :
Dr. V.K. Mishra
Dr. V.P. Tiwari

UGC Approved Journal No. 41329
SCIENTIFIC JOURNAL IMPACT FACTOR SJIF No. 4.713
GENERAL IMPACT FACTOR GIF No. 1.4293

विविध ज्ञान - विज्ञान - विषय का मन्थन एवं विमर्श ।
नव - उन्मेषी दशा - दिशा से भरा 'शोध - सन्दर्श' ।।

- भारतीय संस्कृति बनाम पाश्चात्य जीवन शैली (डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों के विशेष संदर्भ में) –नाना साहब जावले 653-657
- आधुनिक परिप्रेक्ष्य में चोलकालीन ग्राम सभाओं की प्रासंगिकता–आशुतोष शुक्ल 658-661
- हिन्दी दलित पत्रकारिता में साहित्य, शिक्षा और दलित स्त्रियों की समस्याएँ–लाल चन्द पाल 662-666
- प्रेमचंद की कहानियों में दलित दृष्टि–मुकेश कुमार 667-670
- दूधनाथ सिंह के कथा साहित्य पर पूर्वांचल की भाषा अवधी व भोजपुरी का प्रभाव–नूतन सिंह 671-673
- मन्नू भण्डारी के उपन्यासों में स्त्री पात्रों की सामाजिक भूमिका–डॉ. आराधना मिश्रा 674-678
- सूरदास का विरह-वर्णन–डॉ. मनोहर आप्पासो जमदाडे 679-681
- बौद्ध देशना में पर्यावरणीय विमर्श–डॉ. विमलेश कुमार पाण्डेय 682-684
- **Wordsworth the Poet of Solitude in the Prelude**–*Dr. Atul Kumar Tiwari* 685-689
- **Impact and Importance of Cashless Transaction in India** –*Dr. Jyotsana Kumari* 690-695
- प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित जल का महत्त्व-भूगर्भ जल के विशेष संदर्भ में–गामा यादव 696-700
- प्राचीन भारत में कृषि-तकनीक : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–सोनी कुमारी 701-705
- जनधर्मी रंगशिल्पी : नरेन्द्र मोहन–डॉ. नवनाथ शिंदे 706-708
- भाषा की विशेषताएँ एवं भाषा के विविध रूप–डॉ. एम. वासंती 709-711
- फिल्मांतरित सिनेमा के द्वारा भाषा शिक्षण (साहित्य पर बनी हिंदी फिल्मों के विशेष संदर्भ में) –डॉ. गोकुल गोरख क्षीरसागर 712-714
- स्मृतिसम्मतोपनयनसंस्कारस्य साम्प्रतिकजीवने उपादेयता–निकूरामः 715-716
- हिंदुस्तानी साहित्य और संस्कृति में अमीर खुसरो का योगदान–सुमय्या असमा 717-720
- आधुनिक प्रमुख संस्कृत महिला नाटककारों का अवदान–नीलिमा पाण्डेय 721. 723
- निर्धनता एवं ग्रामीण जीवन–चन्द्र प्रकाश 724-727
- विवेकानन्द की दृष्टि में जगत का स्वरूप : एक दार्शनिक विश्लेषण–डॉ. तृप्ति सिंह 728-730
- ग्रामीण महिला उत्थान में स्वयं सहायता समूह की भूमिका–राणा प्रताप सिंह 731-734
- इक्कीसवीं सदी कहानियों में संवेदना के विविध धरातल (2000-2010) –राठोड़ ज्योति चंद्रकांत 735-737
- स्त्री विमर्श का नया यथार्थ रचती शिवमूर्ति की कहानियाँ–देवेन्द्र कुमार कनौजिया 738-741
- अमरकान्त के उपन्यासों में प्रमुख मध्यवर्गीय स्त्री पात्र–शिव नरायन राजभर 742-745
- महात्मा गाँधी का साधन-साध्य सिद्धान्त : एक समालोचनात्मक अध्ययन –डॉ. राजेश बहादुर सिंह 746-748
- **Marriage, Political Corruption and Complied in the Early Plays of Elmer Rice**–*Shipra Mishra* 749-750
- बाल श्रमिक एक सामाजिक अभिशाप–रवीन्द्र नाथ शर्मा 751-753
- भारतीय समाज के शहरी क्षेत्रों में औरतों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रम–डॉ. रणभद्र सिंह 754-757
- भारत की जनसंख्या नीति–डॉ. अरविन्द कुमार सिंह 758-759
- भारतीय शिक्षा प्रणाली की दशा एवं दिशा–डॉ. गिरजा प्रसाद मिश्र 760-761
- हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य के प्रति पक्ष व विपक्ष के तर्कों के मध्य प्रगति की ओर अग्रसित दलित आन्दोलन–डॉ. सुनील कुमार 762-766
- हिन्दी नाटक और रंगमंच के विकास में उत्पन्न अवरोध–स्वाति मौर्या 767-771
- रत्नप्रकाशानुमत स्त्रीत्व-विमर्श–बलिष्ठ 772-775
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र संत तुकडोजी महाराज के काव्य की प्रासंगिकता –डॉ. कमलकिशोर गुप्ता 776-783

* * * * *

(U.G.C. Approved Journal No. : 41329) ISSN No. - 2319-5908
Hindi : Shodh Sandarsh-VII, Vol.-XXII, March. 2019, Page : 735-737
General Impact Factor : 1.7276, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

इक्कीसवीं सदी कहानियों में संवेदना के विविध धरातल (2000-2010)

*राठोड़ ज्योति चंद्रकांत**

संवेदना एक भाव है, जो मानव हृदय से निर्माण होता है। मनुष्य की भावना विविध रूप से प्रकट होती है। या हम यूँ भी कह सकते हैं कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। मनुष्य अपने विचार को कागज पर उतारने के लिए कलम की सहायता लेता है। मनुष्य की यही भावना या सोच–विचार कलम बनकर कागज पर उतरती है वह मनुष्य की संवेदना होती है। प्रत्येक मनुष्य–साहित्यकार–कथाकार की अपनी एक शैली होती है, उसकी एक अलग–अलग भावना होती है, जोसंवेदना का रूप धारण करती है। इसीलिए कहते हैं कि साहित्य और समीक्षा इन दोनों का भी आरंभिक स्रोत मानव हृदय एवं मन होता है। समीक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो साहित्य में संवेदनाओं का विश्लेषण करते हुए शिल्प के विविध लक्ष्यों को निर्धारित करती है।

हिन्दी साहित्य के अनुसार–''साधारणतः संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है, मूलतः वेदना या संवेदना का अर्थज्ञान या ज्ञानेंद्रियों का अनुभव है। मनोविज्ञान में इसका अर्थ ग्रहण किया जाता है। उसके अनुसार संवेदना उत्तेजना के सम्बन्ध में देह रचना की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया है, जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है।''[1] प्रस्तुत कथन से हम यह समझ सकते हैं कि संवेदना एक भावना है, जो मानवीय मन या ज्ञानेन्द्रियों से समझा जाने वाला भाव या विचार है।

मनुष्य का जीवनचक्र सुख–दुख यह दोनों चक्रों से चलता है। इस धरातल पर मनुष्य जीवन व्यतीत करने के लिए सब के साथ मिल–जुल कर रहता है। इन्हीं सम्बन्धों में मनुष्य अपनी सभी भावनाओं का, व्यवहारों का, आदान–प्रदान करता है, यह भी एक प्रकार की संवेदना का रूप है, जो हम हिन्दी साहित्य में देखते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानवीय भावनाओं को संवेदना के साथ इस तरह से परिभाषित किया है–संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दुःख का अनुभव करना संवेदना है।''[2]

संवेदना का स्वरूप–इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कहानियों का स्वरूप अंतिम दशक की कहानियों से कुछ अलग–सा है। आधुनिकता के कारणवश भाषा का बदलना सहज ही है। डॉ. रामदरश मिश्र संवेदना के स्वरूप के बारे में कहते हैं–''संवेदनाओं के कारण ही हम समय की दूरियां पार कर आदिकाल के कवियों की कविताओं का आस्वाद ले लेते हैं, मध्यकालीन कविता में तन्मय हो जाते है। सुख–दुख, राग–विराग, सौंदर्य–असौंदर्य की संवेदना प्राचीन है और चिर नवीन है। इन संवेदनाओं को जागृत रखने वाले उपादान बदलते रहते हैं और सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता के अनुरूप संवेदनाओं में जटिलता आती रहती है। एक का दूसरे में संक्रमण होता रहता है। आज की संवेदनाएं उलझी हुई हैं क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध उलझे हुए हैं, मूल्य उलझे हुए हैं। इन संवेदनाओं को उनकी समस्त गहनता, सच्चाई और तीव्रता में पकड़कर उन्हें चित्रित करना सर्जक का मूल धर्म है। इसी से कृति में शाली और मर्मस्पर्शिता आती है।''[3]

इक्कीसवीं सदी के कहानियों का मूल्यगत स्वरूप अगर हम देखने जाते हैं तो वह पहले की कहानियों से अत्यंत विपरीत दिखाई देता है। आज के लेखक का परिवेश उसकी भाषा अधिक ज्वलंत एवं धारदारक है। अभी के परिवेश में व्याप्त हो रहा अन्याय, शोषण, असंगति, दमन, उत्पीड़न की भावना तीव्र रूप से अस्वीकार कर रही है।

संवेदना के स्तर–मनुष्य संवेदनशील प्राणी है। इसी प्रकार साहित्यकार भी एक संवेदनशील प्राणी है। संवेदनशीलता के कारण वह जिस–जिस अवस्था या प्रक्रियाओं से गुजरता है उन्हें संवेदना के स्तर कह सकते

* शोधार्थी, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

हैं। यह सार इस प्रकार से है–(1) तनाव, (2) अलगाव, (3) उपेक्षा, (4) भूलना, (5) हंसना, (6) अभिरुचि, (7) परिवर्तन, (8) भक्ति, (9) शील, (10) आश्चर्य, (11) क्षमा, (12) शांति, (13) संताप, (14) ऊब।

इसी प्रकार विभिन्न मानवीय संवेदनाओं से हम संवेदना के विविध प्रकार देख सकते हैं। जैसे–जातिवादी संवेदना, स्त्री संवेदना, अल्पसंख्यक संवेदना, दलित संवेदना आदि।

जातिवादी संवेदना–सत्यनाराण पटेल 21वीं सदी के एक उभरते कहानीकार के रूप में हमें दिखाई देते हैं। सत्यनारायण पटेल जी के बारह से अधिक कहानियां और बहुत से वैचारिक लैब महत्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी साहित्य जगत में पटेल जी का योगदान महत्वपूर्ण है। 'भेम' का भूरूमांगता कुल्हाड़ी, ईमान, लाल छीटवाली लूगड़ी का सपना, यह दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'लाल सलाम' नामक कुछ किताबें सम्पादित की हैं। सत्यनारायण पटेल द्वारारचित कहानी संग्रह 'भेम का भेरु माँगता कुल्हाड़ी ईमान' यह पुस्तक जब मैंने पढने की लिएली तो कहानी संग्रह के शीर्षक से ही मैं अचम्भित हो गयी। क्योंकि यह शीर्षकएक बार पढ़ने में समझने में आनेवाला नहीं था। प्रस्तत कहानी संग्रह के अंतर्गत कुल छः कहानियाँ हैं–'पनही', 'रंगरूट', 'बोदा बा', 'गाँव और काँकड़ के बीच', 'बिरादरी मदारी' और बंदरिया, भेम का भेरु मागता कुल्हाड़ी ईमान इत्यादि। कहानी पढ़ते समय कहानी की भाषा शैली पर विशेष आकर्षण निर्माण होता है। कहानी संग्रह में संग्रहीत सभी कहानियों की अपनी एक विशिष्ट विशेषता पाठक के सामने आती है। शिल्प एवं संवेदना के दृष्टिकोण से अगर संप्रेदित करना चाहे, तो विशिष्ट भावों का निर्माण हमें इन कहानियों में देख सकते हैं।

हर एक युग में जातिवाद यह एक बड़ा प्रश्न है। जातिवाद मनुष्य की गुणवत्ता पर नहीं, तो वह किस जगह से आया है उस पर निर्धारित किया जता है।प्रत्येक कहानी के पात्र अपने जीवन के कुछ विशेषताओं से कहानी को पूर्णता प्राप्त हुई है। चाहे वह उत्तर–आधुनिकता और वैश्वीकरण की चका–चौंध और चमत्कृत करनेवाली कहानियों अपने नजदीकी यथार्थ को बगैर हड़बड़ी के उद्घाटित करते हैं। सत्यनारायण पटेल जी ने लोक संवेदना को अपनी कहानियों में उतारा है। कहानी के पात्र शिक्षित होकर जातिवाद को नष्ट करने का प्रयास करते हुए भी दिखते हैं–

"अरे तू जाग मजुरा रे
तेरे जागू, जागे जग सारा रे
आँगन कूँकड़ा बाँग तेरे
चोर अम्बा के कंधे चढ़ा,
कंधे चढ़ा लाल सूरज रे
अरे तू जाग मजूरा रे
तेरे जागे, जागे सारा रे"[4]

अल्पसंख्यक संवेदना–आज का भारत देश पूर्ण तरह से बदल चुका है। आज आतंकवादियों को बाहर से आने की जरूरत नहीं, क्योंकि प्रत्येक राजनीतिक पार्टीअपने लिए गुंडों कादल बना रही हैं। इन गुंडों के अत्याचार बाहर के आतंकवादियों से कम नहीं हैं। एक मनुष्य जो शरीर से अच्छा होते हुए भी बुद्धि से अपाहिज है, उसे भी हिन्दू–मुस्लिम के आतंक का डर है। एक ऐसा समुदाय भी है जो न ही हिन्दू है न ही मुसलमान, इन्हें बस देश की शांतता को भंग करने में ही आनन्द प्राप्त होता है, वह है आतंकवादी समुदाय। उसे नहीं पता कि वह मुस्लिम है या हिन्दू लेकिन इसका पता है कि अगर धोती वाले ने मारा तो मैं मुसलमान हूँ। अगर कुर्तेवाले ने मारा तो मैं हिन्दू हूँ।

"मैं हिन्दू हूँ' कहानी–संग्रह में मुस्लिम स्त्री–पुरुष संवेदनाओं का आकलन किया गया है। उसी के साथ समाज में चल रहे दंगे, साम्प्रदायिकता, विभाजन की त्रासदी, कूट राजनीति आदि के सम्बन्ध में भी लेखक अपने विचार कहानियों के माध्यम से पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। असगर वजाहन जी ने अपने आंतरिक भावनाओं का रूपांतरण 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी संग्रह में किया है–"समाज में चल रहे फिजूल दंगों से आम जनता कितनी परेशान

है, जिसका न किसी हिन्दू से सम्बन्ध है ना किसी मुस्लिम से। नाच कहानी के जरिए लेखक समाज तक एक संदेश पहुंचा रहा है–'देखो जमूरे....ये दुनिया वाले जालिम हैं। नाचने वाले का नाच देखकर उन्हें मजा नहीं आता.... हां जो नहीं नाचता.... उसे नाचता देख लोगों को मजा आता है।"[5]

स्त्री संवेदना–इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री का श्रेष्ठ रूप दर्शित हुआ है। आज की स्त्री पुरुष प्रधान समाज पर निर्भर नहीं। वह भी घर और बाहर दोनों जगहों को संभाल रही है। अगर स्त्री शिक्षित नहीं, फिर भी वह कुछ न कुछ काम जिसमें वह घर संभाल सके यानी जो आत्म निर्भर बन ही चुकी है। आज की स्त्री शिक्षा के ओर बढ़ रही है। शिक्षा के माध्यम से वह जागरूक हो रही है। आज भी देश में बलात्कार, दहेज प्रथा, वेश्यावृत्ति है, परन्तु शिक्षा के माध्यम से वह इन सब का विरोध करने खड़ी हो गयी है। इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई दे रही है। वह राजनीतिक, शैक्षणिक, सामाजिक हो या सांस्कृतिक हो, सब में वह प्रतिभागी हो रही है। यह समाज का एक भाग हो गया, जहाँ नारी शिक्षित है, आत्मनिर्भर है। लेकिन उसी समाज का दूसरा हिस्सा जहाँ आज भी भारत पितृसत्तात्मक देश है। आज भी माता–पिता कहीं–न–कहीं डरते हैं बेटी को रात में अकेले बाहर भेजने के लिए, पति अपनी पत्नी को बाहर भेजने के लिए। अहबु ने कहा था कहानी का नायक अपनी पत्नी से कहता है–"तुम्हें किस चीज की कमी है जो शिकायत करोगी? घर में नौकर है, बाई है। तुम्हें तो बस, जरा–सी बच्ची को देखना है, वह भी तुमसे होता नहीं।"[6] जहाँ सुख हैवहाँ दुख भी है, इसी तरह जहाँ स्त्री आगे बढ़ने का प्रयास करती है वहीं उसे भी शायद समाज और लोगों का एहसास है कि प्रत्येक क्षेत्र या जगह उसे कष्टों का सामना तो करना ही है।

दलित संवेदना–इक्कीसवीं सदी की कहानियों में स्त्री जितना ज्वलंत विषय है, दलित संवेदना भी उसका ही साथी है। दलित समाज अपने मान–सम्मान के लिए आज लडद्य रहा है। आज भी दलित समाज के लिए बहुत सी जगह अस्पृश्यता की भावना है। सुशीला टाकमेरि, ओमप्रकाश वालिमिकी, सूरजपाल चौहान आदि कथाकारों के साहित्य ने हिन्दी कथा साहित्य को दलित वर्ग को देखना का नजरिया बदलने लगाया है। यह मानसिकता बदलने के लिए भारत सरकार ने बहुत से नियम और कानून लगाए, परन्तु वह सभी जगह लागू नहीं हो पाते। ओम प्रकाश गाबा दलितों के न्याय के बारे में कहते हैं कि–"संगठित समाज जीवन से जो भी लाभ प्राप्त होते हैं, वे इने–गिने लोग के साथ में सिमटकर न रह जाएं, बल्कि सर्वसाधारण को विशेषतः निर्बल और निर्धन वर्गों को उनमें समुचित हिस्सा मिले ताकि वे सामान्यतः सुखी व सम्मानित व निश्चित जीवन जी सके।"[7] आज कादलित समाज अधिकतर क्षेत्रों में जागृत हो रहा है। अपने अधिकारों के लिए लड़ना वह जानता है। कहीं–न–कहीं जाति व्यवस्था के कारण यह अंतर दिखाई देता है। भारतीय संविधान के अंतर्गत भले ही यह अंतर खत्म हो गया हो, परन्तु सच्चाई यह नहीं है। आज भी यह समाज अपने स्थान व अधिकारों के लिए लड़ ही रहा है।

निष्कर्ष–इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने अपने–अपने विचारों से कहानी जगत को सफल बनाया है। आलोच्य युगीन के साहित्यिक संवेदनाओं का दर्शन हमें इन कहानियों में होता है। आलोच्य युगीन समस्याओं का परिचय हमें मिलता है। संवेदना के विविध आयामों से काल की विविधता पाठक के सामने आती है।

संदर्भ–सूची

1. डॉ. वीरेन्द्र वर्मा (सं.) : हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृष्ठ 863
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 692
3. डॉ. रामदरश मिश्र : आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, पृष्ठ 8
4. सत्यनारायण पटेल : भेम का भेरू मांगता कुल्हाड़ी ईमान, पृष्ठ 104
5. असगर वजाहत : मैं हिन्दू हूँ, पृष्ठ 26
6. चंन्द्रकांता : अब्बू ने कहा था, पृष्ठ 71
7. ओम प्रकाश गाबा : राजनीति सिद्धान्त के आधार, पृष्ठ 127

* * * * * *

विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति

अजायब, रोहतक (हरियाणा) (रजि.),

इण्डो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन)

एवं

ISSN 2395:7115

बोहल शोध मंजूषा

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी (हरियाणा)

के संयुक्त तत्त्वाधान में आयोजित

महिला सशक्तिकरण : विविध आयाम

दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय (Multi Disciplinary) सेमिनार

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री/श्रीमती/डॉ. राठौड़ ज्योति चंद्रकांत

संस्था/स्थान हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद.

ने दिनांक 13-14 मार्च 2021 को महिला सशक्तिकरण : विविध आयाम विषय पर

जयपुर, राजस्थान में आयोजित दो दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार में सहभागिता

की और "इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की हिन्दी

कहानियों में स्त्री-संवेदना" विषय पर अपना शोध-आलेख प्रस्तुत किया।

Sulaxmi
डॉ. सुलक्षणा अहलावत, अध्यक्षा
विलक्षणा : एक सार्थक पहल समिति

R Bharti
राकेश शंकर भारती, अध्यक्ष
इण्डो-यूरोपियन लिटरेरी डिस्कोर्स (यूक्रेन)

नरेश सिहाग
डॉ. नरेश सिहाग, एडवोकेट
संयोजक/सम्पादक

अंजुमन खैरूल इस्लामस्

पूना कॉलेज ऑफ आर्टस्, साइन्स व कॉमर्स

कैम्प, पुणे 411001 (महाराष्ट्र)

1970 - 2020

हिंदी विभाग द्वारा

सुवर्ण जयंती समारोह के उपलक्ष्य में

बैंक नगर राजभाषा कार्यान्वियन समिति, पुणे (संयोजक–बैंक ऑफ महाराष्ट्र)

शुभचिंतक फाउंडेशन, पुणे तथा पृथा फाउंडेशन, पुणे

के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी

इक्कीसवीं सदी में मीडिया एवं साहित्य का बदलता स्वरुप

06 मार्च 2020

शुभचिंतक फाउंडेशन ट्रस्ट (रजि.) सेवा शिक्षा परमोधर्म

बैंक ऑफ महाराष्ट्र
Bank of Maharashtra
भारत सरकार का उद्यम
एक परिवार एक बैंक

पृथा फाउंडेशन

प्रमाणपत्र

प्रा./डॉ./श्री./श्रीमती राठोड ज्योति चंद्रकांत (शोधछात्रा) (कें.वि.वि. हैदराबाद) मोकिला थंडा, शंकरपल्ली, जिला-रंगारेड्डी (तेलंगाना)

ने दि. 06 मार्च 2020 को संपन्न एक दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी "इक्कीसवीं सदी में मीडिया एवं साहित्य का बदलता स्वरूप" में मार्गदर्शक / सत्राध्यक्ष / विषय प्रस्तोता/ प्रतिभागी के रूप में सहभाग लिया।

शोधालेख का विषय 21वीं सदी के प्रथम दशक की कहानियों में संवेदना एवं शिल्प

डॉ. बाबा शेख	डॉ. मोहम्मद शाकिर शेख	प्रा. मोईनुद्दीन खान	डॉ. आफताब अन्वर शेख
संयोजक	संयोजक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष	उपप्राचार्य, कला शाखा	प्राचार्य एवं संगोष्ठी अध्यक्ष